बीरसतसई

महाकवि मिश्रण सूर्यमल्ल-प्रणीत

वीरसतसई

[मूल पाठ, महत्त्वपूर्ण पाठान्तरों, विशद टीका, शब्दार्थ-विवेचन, प्रमाणभूत उद्धरणो, विवेचनात्मक टिप्पणियों एवम् बारैठ श्री किशोरदानजी—कृत मूल राजस्थानी टीका तथा दोहानुक्रमणिका सहित]

संपादक
शंभुसिंह मनोहर
हिन्दी-विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

उपमा प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक
उपमा प्रकाशन
जयपुर

लेखक :
शम्भुसिंह मनोहर

मूल्य ~~30.00~~ 35/=

मुद्रक :
मूनलाइट प्रिन्टर्स
जयपुर-3

समर्पित—

जिनके साथ जीवन के पच्चीस वसन्त-पतझर देखे,

सुख-दुख की राहे पार की;

और अब

शेष जीवन-यात्रा मे, जिनका सामीप्य

पल-पल प्राणो का मधुर पर्व बन

मेरे चरणो को गति और अस्तित्व को सार्थकता दिए है,

अपनी उन्ही अनन्य जीवनसगिनी

श्रीमती सायरकुमारी राठौर को !

तथा

स्नेह की मूर्तिमती प्रतिमा

मेरी प्राणाधिक प्रिय, लाडली बेटी

आयुष्मती स्नेहप्रभा को !

प्राक्कथन

महाकवि सूर्यमल्ल-रचित 'वीरसतसई' डिंगल की एक अनुपम कृति है। इसमे 288 दोहे हैं,[1] जिनमे वीरोन्मेष से परिपूर्ण एव वीरोचित परम्पराओ से प्रेरित जीवन के एक से बढकर एक ओजस्वी चित्र उभरे हैं। ये चित्र राजस्थान के उस मध्ययुगीन परिवेश से सम्बद्ध है, जिसमे आन और मान, शौर्य और वीरता, त्याग और उत्सर्ग को ही जीवन के उदात्ततम मूल्यो के रूप मे स्वीकार किया गया था। राजस्थान का कृत्स्न वीररसमूलक डिंगल-साहित्य प्रकारान्तर से उन्ही जीवनमूल्यो का साहित्य है एव इसके आलम्बन हैं वे वीर और वीराङ्गनाएँ, जिन्होने उन जीवन-मूल्यो को अपने जीवन मे चरितार्थ कर वीरत्व की गौरवमयी परम्पराओ का प्रतिनिधित्व किया है। सूर्यमल्ल वीरता के उन्ही आदर्शों एव उत्सर्ग की उन्ही महत् परम्पराओ के गायक हैं एव उनकी 'वीरसतसई' वीररसपूर्ण ऋचाओ का ऐसा ही अमर उद्गीथ है।

यद्यपि डिंगल भाषा मे सर्वप्रथम 'वीरसतसई' सज्ञक काव्य के सृजन का श्रेय सूर्यमल्ल को है, तथापि मुक्त छन्द मे वीररस-वर्णन की एक सुदीर्घ परम्परा प्राकृत-

---

1. 'वीरसतसई' की लोलावस निवासी बारैठ किशोरदानजी द्वारा सवत् 1972 मे लिखी राजस्थानी टीका मे मूल पाठ भी दिया हुआ है। तदनुसार दोहो की सख्या तो 288 ही है, परन्तु इसमे एक अतिरिक्त दोहा और मिलता है, जो क्रम मे श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि द्वारा सम्पादित 'वीरसतसई' के 31वें व 32वें दोहे के बीच आता है। वह निम्नलिखित है —

   धीमा धीमा ठाकुरे, हमे न भीजी हेल ।
   हाथ पसीजै त्यॉ नथी, मूठ वणीजै मेल ।।

   इस टीका की पुष्पिका मे टीकाकार की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है—
   "इति श्रीमान् कविकुलतिलक कविराज मिश्रण चारण सूर्यमल्ल विरचित 'वीरसतसई' दोहा 288। **और वधता दोहा मिलया नहीं।** तद आ उपरला दोहा रा अर्थ ग्राम लोलावस निवासी बारहट सत्तीदानात्मज किशोरदान करने लिखिया छै। भूल चूक कवी सुधार लेसी।"

   टीकाकार के 'वधता दोहा मिलया नही' उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि मूल मे इन दोहो की सख्या कदाचित् कुछ अधिक रही हो।

अपभ्रश काल से चली आरही है । मौलिक काव्य-प्रतिभा के धनी होते हुए भी हम इस तथ्य को उपेक्षित नही कर सकते कि सूर्यमल्ल अपनी भावव्यजना एव वर्णनशैली मे अपने पूर्ववर्ती कवियो, विशेषत ईसरदास एव बाँकीदास के अत्यन्त ऋणी है । 'वीरसतसई' की रचना मे, कवि की अन्तश्चेतना मे पूर्ववर्ती कवियो व काव्य-परपराओ का प्रभाव स्पष्ट रूप से रहा है, जैसाकि प्रस्तुत कृति मे तुलनात्मक विवेचनार्थ एव शब्दार्दों की पुष्टि मे यथाप्रसग दिए गए प्रभूत उद्धरणो से विदित होजाएगा । तथापि, इससे 'वीरसतसई' का महत्त्व किंचित् भी कम नही होता । कारण, हर महाकवि अपनी पूर्व-परम्पराओ की सृष्टि एव भावी परपराओ का स्रष्टा होता है । महाकवि तुलसी ने अपने 'मानस' की रचना मे औरो से कितना लिया था, यह उन्होने 'नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्' कह कर स्वय ही उदारता से स्वीकार किया है, परन्तु मानस का महत्त्व क्या उससे कुछ कम हुआ है ?

सूर्यमल्ल की 'वीरसतसई' भी डिंगल-काव्य-परपरा को एक अपूर्व योगदान है । इसमे कवि की मौलिकता भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है । रही औरो से लेने की या औरो के प्रभाव की बात, इस सम्बन्ध मे हमे काव्यमीमासाकार राजशेखर की इस उक्ति को—'नास्त्य चौर कविजनो, नास्त्य चौरो वणिग्जन' को ध्यान मे रखना चाहिए । उनसे भी अधिक मार्मिक बात 'ध्वन्यालोक' मे आनन्द-वर्द्धनाचार्य ने कही है '—

दृष्टपूर्वा अपरिह्यर्या काव्ये रसपरिग्रहात् ।
सर्वे नवा इवा भान्ति मधुमास इव द्रुमा ।।

महाकवि सूर्यमल्ल एक ऐसा ही मधुमास है, जिसने प्राचीन काव्यपरपराओ की भावभूमि पर विकसित वीरत्व की कल्पवल्ली-रूपा 'वीरसतसई' को एक सर्वथा अभिनव सौन्दर्य-श्री से मडित कर दिया ।

सूर्यमल्ल की विशेषता इस बात मे भी है कि उन्होने अपनी वीरत्व की वाग्धारा को तत्कालीन राजनीतिक सदर्भ से जोड कर इसे और अधिक प्रभावशाली एव प्रेरणाप्रद बना दिया है । अत. वीरोचित आदर्शों के सफल चित्रण के साथ साथ हमारी तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने की दिशा मे भी इसका योगदान अन्यतम है, जिसके लिए राजस्थानी साहित्य को निश्चय ही गौरव हो सकता है ।

सूर्यमल्ल की इस अनूठी काव्यकृति का प्रथम सुसम्पादित सस्करण सन् 1948 मे बगाल-हिन्दी-मंडल से सर्वश्री डा० कन्हैयालाल सहल, प्रो० पतराम गौड़ एव ठा० ईश्वरदान आशिया के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ था । वस्तुत. 'वीरसतसई' को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय इन्ही विद्वान् सम्पादको को है ।

तत्पश्चात् 'वीरसतसई' का एक और संस्करण लगभग दो वर्ष पूर्व, सर्वश्री नरोत्तमदास स्वामी, डा० नरेन्द्र भानावत एव डा० लक्ष्मीकमल के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ है। 'वीरसतसई' के इस परवर्ती सस्करण मे सम्पादको ने दोहो का विषयानुसार स्वैच्छिक वर्गीकरण कर उनके क्रम को उलट-पुलट कर दिया है, जिसका वस्तुत कोई औचित्य नही है। कारण, बारैठ किशोरदानजी द्वारा लिखित राजस्थानी टीका मे भी दोहो का वही क्रम है, जो श्री डा० कन्हैयालाल सहल द्वारा सपादित 'वीर सतसई' मे है । यही नही, 'वीरसतसई' की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो मे भी दोहो का अनुक्रम प्राय. वही है। इससे यह असदिग्ध रूप से प्रमाणित है कि स्वय कवि द्वारा रचित दोहो का मूल रचना-क्रम वही रहा होगा, जिसे 'वीरसतसई' के राजस्थानी टीकाकार तथा डा० कन्हैयालाल सहल व उनके सहयोगी सम्पादको ने स्वीकार किया है। अतः मात्र वर्गीकरण की सुविधा (?) के लिए पाठ-परम्परा के विपरीत कवि के उस मूल रचना-क्रम को भग करना हमारी समझ मे सपादकीय अधिकार की सीमाओ का अतिक्रमण है।

'वीरसतसई' के उक्त दोनो सस्करणो के होते हुए भी प्रस्तुत सम्पादन की आवश्यकता क्यो समझी गई, इसका उत्तर विज्ञ पठको को कदाचित् इस कृति मे ही मिल सकेगा। अपनी ओर से केवल इतना ही निवेदन करूँगा कि 'वीरसतसई' मे प्रयुक्त अनेक शब्दार्थों के सम्बन्ध मे लेखक ने यह अनुभव किया कि उन पर पुर्नविचार करने की आवश्यकता है। साथ ही, उसने यह भी अनुभव किया कि डिंगल-काव्यो मे उपलब्ध उन शब्दो की विशिष्टार्थक प्रयोग-परम्परा से परिचित हुए बिना कवि के उद्दिष्ट भाव तक पहुँच सकना सम्भव नही है। इसी भाँति, 'वीरसतसई' की समीक्षा या विवेचना मे, इसके कथ्य या प्रतिपाद्य को लेकर भी उक्त दोनो सस्करणो के सम्पादको द्वारा की गई कुछ मूलभूत स्थापनाओ से इन पक्तियो का लेखक सहमत नही हो सका। फलत अधिकारी विद्वानो द्वारा सयुक्त रूप से सम्पादित 'वीरसतसई' के दो सस्करणो के होते हुए भी, अपने उपर्युक्त दृष्टिबिन्दु से 'वीरसतसई' को पुनर्सम्पादित करने की उसकी इच्छा बलवती होती गई। प्रस्तुत कृति लेखक की उसी मनोवाछा का फल है।

मूलत मेरा विचार 'वीरसतसई' की समीक्षा व टीका सहित इसका एक सर्वाङ्गीण अध्ययन प्रस्तुत करने का था परन्तु मूल पाठ, टीका एव शब्दार्थ-विवेचनादि से ही पुस्तक का कलेवर इतना बढ गया कि समीक्षा को मूल पाठ व टीका के साथ देने का विचार छोडना पडा। अब यदि सुयोग हुआ तो भविष्य मे वह एक स्वतन्त्र कृति के रूप मे ही निकलेगी।

यद्यपि इन पृष्ठो मे 'वीरसतसई' की समीक्षा से सम्बद्ध किसी भी प्रश्न पर विचार करना मेरा इष्ट नही है, तथापि 'वीरसतसई' के कथ्य के विषय मे श्री डा० कन्हैयालालजी सहल आदि सम्पादको द्वारा की गई एक मूलभूत स्थापना की किञ्चित् चर्चा करना चाहूँगा, क्योकि इसके कारण 'वीरसतसई' के प्रतिपाद्य को लेकर साहित्य-जगत मे एक व्यापक भ्रान्ति फैल गई है। अपने द्वारा सपादित 'वीरसतसई' की भूमिका मे इसकी निर्माणकालीन परिस्थितियो पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डालते हुए डा० कन्हैयालाल सहल सहित अन्य सम्पादको ने यह सर्वथा उचित ही लिखा है कि " 'वीरसतसई' का निर्माण गदरकालीन परिस्थितियो के दबाव के कारण हुआ।"[1] इसमे सन्देह नहीं कि 1857 की राज्य-क्रान्ति ने 'सतसई' के सृजन की प्रेरक पृष्ठभूमि का कार्य किया। परन्तु जहाँ तक उक्त 'वीरसतसई' के प्रतिपाद्य का प्रश्न है, हम सम्पादको के इस मत से सहमत नही कि " 'वीरसतसई' भारत के इतिहास की एक महान् घटना (स्वातन्त्र्य सग्राम) का काव्यमय उद्गार है।"[2] इस स्थापना के परीक्षण के लिए तनिक कृति पर ही दृष्टिनिक्षेप कीजिए। भला सम्पूर्ण 'वीरसतसई' मे प्रारम्भ के तीन दोहो—4, 5 और 6 को छोडकर क्या एक भी दोहा ऐसा है, जिसमे उस महान् ऐतिहासिक घटना का प्रत्यक्ष या परोक्ष उल्लेख मिलता हो ? विद्वान् सम्पादको ने अपनी उपर्युक्त मान्यता की पुष्टि मे जिस निम्नाकित दोहे को उद्धृत करते हुए लिखा है कि विद्रोह की असफलता के कारण कवि का स्वर टूटने लगा एव गिरते-गिरते निराशा के स्वर मे कवि के हृदय से चीत्कार उठी—

जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिडराज।
तिण बन जबुक ताखडा, ऊधम मडै आज ॥285॥

वह दोहा तो वस्तुत पडितराज जगन्नाथ-रचित 'भामिनीविलास' के एक संस्कृत-छद का ही डिंगल रूपान्तर है, सूर्यमल्ल की अपनी मौलिक उद्भावना नही। उक्त छद को हमने सबद्ध दोहे की व्याख्यान्तर्गत उद्धृत किया है। अत इस दोहे के आधार पर, जिसमे तत्कालीन राजनीतिक घटनाओ की ओर सकेत केवल अन्योक्ति के द्वारा ही देखा जा सकता है, यह स्थापना करना कि 'वीरसतसई' स्वातन्त्र्य सग्राम का काव्यमय उद्गार है, तथ्यसगत नही है। अपनी सम्पूर्ण कृति मे कवि, कही भी न तो क्रान्ति से सम्बद्ध किसी घटना या व्यक्ति का उल्लेख करता है और न विदेशी शासकों के प्रति राष्ट्र की आहत चेतना को मुखरित करता हुआ क्रोध या आक्रोश का

---

1 वीरसतसई, भूमिका, पृ० 78 (बगाल-हिन्दी-मडल से प्रकाशित)

2. वही, पृ० 74,

एक शब्द ही कहता है। न ही इसमे देश की विच्छिन्न एव विश्रृखल शक्तियो को परस्पर सगठित होकर अग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खडे होने का स्पष्ट आह्वान है। फिर किस अर्थ मे यह हमारे स्वातत्र्य-सग्राम का काव्यमय उद्गार है ? मात्र वीरत्व-वर्णन एव तत्सम्बद्ध भावनाओ के आधार पर तो उक्त स्थापना नही की जा सकती क्योकि इनका चित्रण तो सूर्यमल्ल से पूर्व अनेक कवियो ने अपने-अपने काव्य मे किया ही है। श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि सम्पादको के इसी स्वर मे स्वर मिलाते हुए श्री डा० नरेन्द्र भानावत ने भी उनकी उक्त स्थापना को प्राय: ज्यो का त्यो दुहरा दिया है —

"निष्कर्षत कहा जा सकता है कि सतसई भारत के इतिहास की महान् घटना (स्वातत्र्य सग्राम) का काव्यमय उद्गार है।"[2]

परन्तु इस स्थापना का क्या कोई तार्किक आधार भी है ?

तात्पर्य यह कि 'वीरसतसई' की रचना के मूल मे चाहे तत्कालीन स्वातत्र्य-सघर्ष की प्रेरणा मुख्य रही हो, परन्तु कृति मे, जिसको आधार मान कर ही कोई स्थापना की जानी चाहिए, कही भी उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति नही मिलती, जैसी कि सूर्यमल्ल के समकालीन अन्य कवियो ने अपने स्फुट छन्दो मे की है। उदाहरणार्थ, कविराजा बाँकीदास ने अपने निम्नलिखित गीत मे ऐश-आराम मे डूबे हुए तत्कालीन राजा-महाराजाओ को फटकारते हुए देश के समस्त हिन्दू-मुसलमानो को एक जुट होकर ब्रिटिश शासन से लोहा लेने के लिए ललकारा था —

आयो इगरेज मुलक रै ऊपर, आहँस लीधा खैंचि उरा।[1]
धणियाँ मरे न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा॥

× × × ×

राखो रे किहिक रजपूती, मरद हिन्दू की मुस्सलमाण।
पुर जोधाँण उदैपुर जैपुर, पहु थाँरा खूटा परियाँण।
आँकै गई आवसी आँकै, बाँकै आसल किया बखाँण॥

इसी प्रकार कविवर शकरदान सामोर ने अपने स्फुट दोहो मे अग्रेजी शासको को 'झोपडियो का लुटेरा' बतलाते हुए उनकी चगेजखाँ से तुलना की है —

महलज लूटण मोकला, चढ्या सुण्या चिंगेज।
लूटण झूपा लालची, आया बस इगरेज॥

---

1. बाँकीदास-ग्रथावली, भाग 3, पृ० 104-105,
2. वीरसतसई, भूमिका, पृ० 71; डा० नरेन्द्र भानावत आदि द्वारा सपादित।

उन्होने अंग्रेजो को 'मुलक रा मीठा ठग' की सज्ञा देते हुए 'मिल मुसलमान राजपूत ओ मरेठा' कह कर देश के विविध वर्गों को एक झंडे के नीचे इकट्ठे होकर अंग्रेजी हुकूमत से जूझने का आह्वान किया। यही नही, उस स्पष्टवादी और दूरदर्शी कवि ने 1857 की क्रान्ति को अपनी खोई हुई स्वतत्रता को प्राप्त करने का एक अनमोल अवसर बताते हुए देशवासियो को इन मार्मिक शब्दो मे झकझोरा :—

फाल हिरण चूक्यां फटक, पाछो फाल न पावसी।
आजाद हिन्द करबा अवर, औसर इस्यो न आवसी।।

देश को स्वतत्र करने के लिए इससे अधिक स्पष्ट आह्वान और क्या हो सकता था ? उस समय जिन राजाओ ने अंग्रेजी सत्ता का साथ दिया था, उनकी भर्त्सना करने मे भी यह निर्भीक कवि चूका नही।

क्या सूर्यमल्ल-कृत 'वीरसतसई' मे क्रान्ति से सम्बद्ध ऐसे किसी भी व्यक्ति, प्रसग या भाव का चित्रण हुआ है ? ऐसी स्थिति मे सम्पादको के कथन को स्वीकार करना इसके निर्माण की पृष्ठभूमि को ही कृति पर आरोपित करना है। तद्विपरीत, यह कहना अधिक सगत होगा कि 'वीरसतसई' मे कवि ने विविध आलम्बनो के माध्यम से वीरत्व के उच्चतम आदर्शो एव परम्पराओ का चित्रण करते हुए उत्सर्ग होने की प्रेरणा दी है। निश्चय ही, इन वीरोन्मेष से परिपूर्ण, प्रेरणादायी दोहो की रचना के मूल मे कवि का उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो के सन्दर्भ मे देश के सुप्त पौरुष को उद्बुद्ध करना रहा है, परन्तु जहाँ तक 'वीरसतसई' के वर्ण्य या प्रतिपाद्य का प्रश्न है, 'वीरसतसई' मे वीरता के सामान्य आदर्शों एव परम्परागत मूल्यो की ही अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से 'वीरसतसई' तत्कालीन क्रान्ति से अपने उद्देश्य के द्वारा ही अधिक जुडी हुई है, कथ्य के द्वारा नही।

प्रासगिक रूप से, यहाँ 'वीरसतसई' मे निरूपित आदर्शों की वर्तमान युग मे सार्थकता के प्रश्न पर भी विचार कर लेना अयुक्त न होगा। कारण, 'वीरसतसई' के काव्यगत मूल्याकन का प्रश्न इससे अभिन्नत सबद्ध है। इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि युगीन परिस्थितियो एव परिवर्तित जीवन-मूल्यो के परिप्रेक्ष्य मे अब वर्णन के परम्परारूढ प्रतीको के माध्यम से वीरत्व की व्यजना कोई अर्थ नही रखती। उदाहरणत, आज युद्ध मे धराशायी हुए पति के साथ सती होने, वीर-पत्नी का तदर्थ अपनी मजूषा मे नारियल सहेज कर रखने, युद्ध मे दिवगत वीर को वरण करने हेतु अप्सरा की छीना-झपटी करने, कालिका के रुधिर-पान करने हेतु लालायित होने आदि के वर्णन वस्तुत मध्ययुगीन विश्वासो के साथ जुडे हुए हैं, जो अब सदा के लिए हमारे जीवन से उठ गए है। इस सम्बन्ध मे, प्रसिद्ध विद्वान् एव चिन्तक,

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'धर्मयुग' मे प्रकाशित—'सामंजस्य की खोज: परम्परा और आधुनिकता' शीर्षक अपने लेख मे एक बडी ही महत्त्वपूर्ण बात कही है। वे लिखते हैं —[1]

"यह गलत धारणा है कि मनुष्य पीछे लौट कर हू-ब-हू उन्ही विचारो को अपनायेगा जो पहले थे। जो लोग मध्ययुग की भाँति सोचने की आदत को एक भयकर वात्याचक्र की उलझन से बच निकलने का साधन समझते हैं, वे गलती करते हैं। इतिहास चाहे और किसी क्षेत्र मे अपने को दुहरा लेता है, विचारो के क्षेत्र मे गया सो गया। उसके लिए अफसोस करना बेकार है।"

राजस्थानी काव्यो मे वर्णित वीरता के मध्ययुगीन आदर्शों के विषय मे भी यही बात है। यदि राजस्थानी काव्य मे वीरत्व के स्रोत को सुखाना नही है तो उसे युग की जीवन-चेतना से सस्पर्शित रखते हुए नूतन भाव-भूमियो पर उतारना होगा। वीरता के कुछ मूल्य शाश्वत होते हैं, जो उसके पार्श्ववर्ती उपकरणो के बदलने के बावजूद भी अपरिवर्तित रहते है। उदाहरणात मध्ययुग मे युद्ध के अपरिहार्य तत्त्वो—अश्व, गज, तलवार, ढाल आदि तथा मध्ययुगीन वीर के व्यक्तित्व के अनिवार्य अगो—भौहो तक तनी हुई मूँछे, सुरा या अमल के नशे मे छके हुए नेत्र आदि के चित्र वीरत्व-वर्णन के प्रसग मे अयथार्थ ही प्रतीत होगे, क्योकि अब ये हमारे जीवन से विलुप्त होगए है, परन्तु उत्साह से परिपुष्ट वीरत्व का जो सहज भाव है, वह आज भी जीवन मे उतना ही सत्य है, जितना पहले था। उसकी सवेदना सार्वकालिक एव सार्वजनीन है। क्रान्तदर्शी कलाकार सवेदना की उन शाश्वत शिराओ मे नई युगचेतना का नया रक्त भरता है, वीरता की नई उमगो को नए शब्द-माध्यमो द्वारा अभिव्यक्ति देता है तथा प्राणो मे आस्था और विश्वास की नई स्फूर्ति एव स्पन्दन जगा कर उल्लास के नित नए क्षितिज छूने की नई ललक भरता है। जीवन की इस सतत प्रवहमान धारा के स्पर्श से ही जीव त साहित्य की सृष्टि होती है।

अब रही 'वीरसतसई' सहित मध्ययुगीन काव्यो के मूल्याकन की बात। इस सम्बन्ध मे हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि उनका मूल्याकन तद्युगीन विश्वासो, रूढियो, भावनाओ, रीतिरिवाजो एव मान्यताओ आदि के सन्दर्भ मे ही सभव है। आज के प्रतिमानो को आधार मान कर अथवा आज की विचारधारा का आरोपण कर प्राचीन या मध्ययुगीन काव्य-कृतियो का मूल्याकन नही किया जा सकता। जो विवेचक, साहित्यिक मूल्याकन के अधुनातन सिद्धान्तो को मध्ययुगीन काव्यो के

---

1 धर्मयुग, 28 सितम्बर 1969, पृ० 12,

परीक्षण की कसौटी बनाते है, कालपुरुष उन पर व्यग्य से मुस्कुराता है; यह देखकर कि उनके उन आधुनिक किंवा प्रगतिशील कहे जाहे वाले सिद्धान्तो की भी कल यही नियति होगी ! युगप्रवाह के इस दुरन्त एव अनुक्षण परिवर्तनशील विवर्त मे कौनसा आदर्श या जीवनमूल्य शाश्वत होकर टिक सका है ? हर कालखड अपने साथ कुछ नए विचारो की बहार लेकर आता है तथा पतझर के विरस, पीत पत्रो की भाँति पुरानो को धूल मे उडा कर चला जाता है । ऐसी स्थिति मे, केवल वर्तमान को ही एक मात्र सार्वकालिक सत्य समझ कर अतीत की भावसपदा को नकारने या उसका अवमूल्यन करने का प्रयास बौद्धिक बौनापन नही तो और क्या है ?

मध्ययुग मे भूमि, जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय आदि से सम्बद्ध मूल्यो की रक्षा व निर्वाह ही शौर्य और वीरता के प्रमुख प्रेरक तत्त्व रहे थे । आज उनका स्थान राष्ट्रवाद (Nationalism) ने ले लिया है तथा कल का युग शायद अन्तर्राष्ट्रीयवाद का हो । उस स्थिति मे, यदि विश्वैक्य की ओर अग्रसर होती हुई मानव-मनीषा आज की राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत रचनाओ को सकुचित मनोवृत्ति की उपज मान कर उन्हे काव्य की सर्वोच्च पीठिका से च्युत किए जाने की घोषणा करने लगे, तो फिर साहित्यिक मूल्याकन के हमारे प्रतिमान आखिर कहाँ जाकर स्थिर होगे ? निष्कर्ष यह कि हर कलासृष्टि का मूल्याकन कालसापेक्ष होता है । अपने सृजनकालीन सदर्भ से विच्छिन्न कर हम किसी भी कलाकृति के साथ न्याय नही कर सकते एव इस प्रकार किया गया ऐकान्तिक मूल्याकन आलोचक का दृष्टिदोष बन कर ही उभरेगा; कलागत सत्य का उद्घोष बन कर नही । मध्ययुगीन डिंगल-काव्य भी इसके अपवाद नही है । अस्तु,

प्रस्तुत कृति मे 'वीरसतसई' को डिंगल-काव्यों की इस व्यापक पृष्ठभूमि मे समझने का विनम्र प्रयास किया गया है । 'वीरसतसई' मे प्रयुक्त शब्दो के अर्थनिर्णय मे मैंने डिंगल-साहित्य मे उपलब्ध उनकी विशिष्टार्थक प्रयोग-परपरा को ही सर्वाधिक विश्वसनीय आधार माना है एव यथासभव कवि की ही अपर कृति—'वशभास्कर' के उद्धरणो से अपने प्रस्तावित अर्थों की पुष्टि है, ताकि उनकी प्रामाणिकता अधिकाधिक निर्विवाद हो सके । एक-एक शब्द के, प्रस्तावित अर्थ मे प्रयोग ढूँढने हेतु मुझे अनेक ग्र थ छानने पडे है तथा अर्थ-सधान की इस प्रक्रिया मे आत्मसतोष न होने तक कई बार पुस्तक-लेखन का क्रम बीच मे भंग करना पडा है । तथापि, स्वय सन्तुष्ट हुए बिना मैंने किसी अर्थ को स्वीकार नहीं किया है । जहाँ कही किसी शब्द का अर्थ मुझे सदिग्ध या अस्पष्ट लगा है, वहाँ तदनुसार निर्देश कर दिया गया है, ताकि विद्वान् पाठक स्वय उसके अन्वेषण मे प्रवृत्त हो मार्गदर्शन करे । इस पर भी मुझसे स्खलन होजाना असभव नही है । एतदर्थ, विद्वान् पाठको से विनम्र अनुरोध है कि व्याख्या

था शब्दार्थ-विवेचन मे—जहाँ कही उन्हे मेरे द्वारा कोई स्खलन या अर्थगत अनौचित्य हुआ लक्षित हो, मेरी भ्रान्ति का निराकरण करने की कृपा करें। ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है तथा मेरी अपनी सीमाएँ है।

प्रस्तुत कृति मे मैंने 'वीरसतसई' का मूल पाठ प्राय. वही रखा है, जो बगाल-हिन्दी-मडल से प्रकाशित व श्री डा० सहलजी आदि संपादको द्वारा सपादित 'वीर सतसई' मे है, परन्तु बारैठ किशोरदानजी-कृत 'सतसई' की राजस्थानी टीका मे उपलब्ध पाठ को ध्यान मे रखते हुए, जहाँ उचित समझा है, पाठगत सशोधन भी किया है, जिसका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। साथ मे, मैंने बारैठ किशोरदानजी-कृत मूल राजस्थानी टीका भी अविकल रूप मे दे दी है जो अपने ढग की सर्वथा अनूठी है। 'वीरसतसई' पर राजस्थानी मे लिखी गई कदाचित् यह प्रथम एवं एकमात्र टीका है। इसकी हस्तलिखित प्रति मुझे लगभग तीन वर्ष पूर्व आदरणीय श्री सीतारामजी लालस से प्राप्त हुई थी। तब तक यह प्रकाशित नही हुई थी एव श्री लालसजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि यह प्रकाशित हो। उन्ही दिनो मैं 'वीरसतसई' पर कार्य कर रहा था। फलत मैंने अपनी व्याख्या के साथ राजस्थानी टीका को भी अपने मूल अविकल रूप मे दे देना उचित समझा। लोलावस निवासी बारैठ किशोरदानजी डिंगल के उद्भट विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो डा० टैसीटरी ने उन्हे अपना शोध-सहायक नियुक्त किया था। डा० टैसीटरी ने अपने द्वारा सपादित ग्रन्थो मे दी गई शब्दार्थ विषयक टिप्पणियो मे इनका स्थान-स्थान पर नामोल्लेख किया है, जो इनकी विद्वत्ता तथा डा० टैसीटरी की गुणग्राहकता का परिचायक है। राजस्थानी टीका की उक्त हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ सुलभ करने हेतु लेखक श्रद्धेय लालसजी का अतिशय कृतज्ञ है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रायः वर्ष भर पूर्व लिखी जा चुकी थी एव तैयार होते ही प्रकाशन विषयक चर्चा चलने पर मेरे अनन्य मित्र श्री डा० जगदीशचन्द्र जोशी ने सदा की भाँति इसके प्रकाशन का भार अपने पर ले लिया। उन्ही के प्रयत्नो से आज यह इस रूप मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत हो सकी है। वे मेरे इतने निकट है कि उनके विषय मे कुछ भी लिखना मुझे आत्मश्लाघा का ही भागी बनाएगा। अत उनकी मैत्री से अनुभूत, स्नेह-गर्वित हृदय का मौन ही उन्हे समर्पित करता हूँ।

मै विद्वद्वर श्रद्धेय डा० सत्येन्द्रजी का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने अपने अभिमत से इसे गौरवान्वित किया है। साथ ही, गुरुवर श्रद्धेय श्री लक्ष्मणप्रसादजी वैश्य, सप्रति कुलसचिव, राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं अपनी सविनय

कृतज्ञता निवेदित करता हूँ, जिनका स्नेहसिक्त, कृपापूर्ण प्रोत्साहन सदा से ही मेरा प्रेरणा–स्रोत रहा है। साहित्य के प्रति मेरी अभिरुचि उन्ही के शुभाशीर्वाद का फल है।

राजस्थानी दोहो, कहावतो तथा आख्यानो के अक्षय कोश एव बहुज्ञ, आदरास्पद दादाभाई श्री देवीसिंहजी भादवा ने, 'पाबूप्रकाश' सहित कुछ अप्राप्य ग्रथ उपलब्ध कर इस पुस्तक के लेखन मे अपना अप्रत्यक्ष सहयोग दिया है। दोहानुक्रमणिका तैयार करने मे मेरे ज्येष्ठ पुत्र आयुष्मान् राघवेन्द्र मनोहर ने मेरी महती सहायता की है।

आशा है, महाकवि सूर्यमल्ल की 'वीरसतसई' का यह अभिनव सम्पादन विद्वज्जनो की तुष्टि चाहे न कर सके, उनके प्रीति–प्रसाद से वचित न होगा।

विनीत

शभुसिह मनोहर

गणेश चतुर्थी

११ सितम्बर, १९७२

वीर सतसई

लाऊँ पै सिर लाज हूँ, सदा कहाऊँ दास ।
गणवै गाऊँ तूझ गुण, पाऊँ वीर प्रकास ।। १ ।।

व्याख्या—हे गणपति ! मैं लज्जा (विनय) से आपके चरणो मे अपना मस्तक नवाता हूँ । मैं तो सदा से ही आपका दास कहलाता हूँ । मै आपका गुणगान करता हूँ, ताकि मुझे वीरत्व का प्रकाश मिले । अर्थात् मैं इस वीरोन्मेष से परिपूर्ण काव्य का सृजन कर सकूँ ।

शब्दार्थ—लाऊँ = लगाता हूँ, नवाता या झुकाता हूँ । 'लाना' राजस्थानी मे 'लगाने' के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है । यथाः—

1. कौन जतन करो मोरी आली ! चदन लाऊँ घसिके ।[1]

एव—2. अ तर अग न लावहीं सदा न कर ले केस ।[2]

पै = पद , चरण । **लाज हूँ** = लज्जा, अर्थात् संकोच या विनय से । सकोच इसलिए कि आपके योग्य न होने पर भी आपके चरण-स्पर्श का आकाक्षी हूँ । श्री डा. कन्हैयालाल जी सहल आदि सपादको ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"लज्जा इसलिए कि मैं सदा दास कहलाता हूँ ।"[3] यह व्याख्या हमे सगत नही लगती, क्योकि जिस भक्त को अपने आराध्य का दास कहलाने मे लज्जानुभव हो- वह भक्त कैसा ? **गणवै** = गणपति ! **तूझ** = तुम्हारे (स० तुभ्यम् प्रा० तुज्झ) । **पाऊँ** = प्राप्त करूँ । **वीर प्रकास** = वीरत्व का प्रकाश , वीरता की प्रेरणा । डिगल मे तालव्य (श) व मूर्धन्य (ष) के स्थान पर सर्वत्र दन्त्य (स) का ही प्रयोग होता है ।

विशेषः—दोहे के उत्तरार्द्ध के प्रथम चरण मे 'गणवै' के स्थान पर 'गणवे' एव 'गणहू' पाठान्तर भी मिलते है । 'गणवे' एव 'गणवै' मे अर्थ की

---

1. मीराँ-पदावली : स. शम्भुसिह मनोहर, पृष्ठ 116 : पद 6
2. कु वरसी साखला री वात : स. श्री डा० मनोहर शर्मा : मरुवाणी, जून-अगस्त 71 : पृ. 32, स श्री रावत सारस्वत ।
3. वीर सतसई : सर्व श्री डा. क. ला. सहल., प्रो. पतराम गौड व ईश्वरदान जी आशिया द्वारा सपादित, पृठ 1.

दृष्टि से कोई भेद नही होता, क्योकि दोनो ही गणपति से व्युत्पन्न तथा उसके वाचक हैं (गणपति > गणवई > गणवै > गणवे) परन्तु 'गण हूं' पाठान्तर स्वीकार करने से अर्थ-व्यजना मे निश्चय ही एक अनूठा चमत्कार आ जाता है। वह यह कि गणेश का पुराणो मे गणनायक सेनानी के रूप मे भी उल्लेख हुआ है। अतः कवि उन्हे इस रूप मे स्मरण करता हुआ मानो यह प्रार्थना करता है कि हे गणपति। मैं तो सदा से ही आपका दास कहलाता हूँ, परन्तु आज मैं आपका 'गण' होकर आपके 'गणनायक' रूप का स्तवन करता हूँ, ताकि मुझे तदनुरूप वीरत्व की प्रेरणा मिल सके। अर्थात् मै इस वीर रस से परिपूर्ण काव्य का सृजन कर सकूँ। इस दृष्टि से 'गण हूं' एक साभिप्राय प्रयोग है। परन्तु हमने गणवै' पाठ ही स्वीकार किया है, जो टीका मे है।

राजस्थानी टीका—हे गणेश। थारा चरणा पर म्हारी लाज भेंट कर अरज करूँ हूँ कि हूँ अबै सदा थारो दास कहायबो करूँ और थारै प्रताप सू वे गुण गाऊँ जिकण रै प्रभाव वीर पुरषा रा प्रकास अर्था वीरा सुभाव नें पहचाण लेउ ॥1-1॥इ

> आणी उर जाणी अतुल, गाणी करण अगूढ।
> वाणी जगराणी व्रले, मै चीताणी मूढ ॥ 2॥

व्याख्या—जिस सरस्वती की महिमा को अतुलनीय समझ कर मैंने अपने हृदय मे धारण किया है तथा जिस गूढ ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने वाली (विद्यादात्री) का मैंने गुणगान किया है, आज पुनः मुझ मूढ ने जगत की स्वामिनी उस वाग्देवी शारदा का स्मरण किया है, ध्यान किया है।

दोहे के पूर्वार्द्ध के प्रथम चरण—'आणी उर जाणी अतुल' को विभक्त कर अर्थ यो भी किया जा सकता है—'जो सरस्वती मेरे हृदय मे आई है (आविर्भूत हुई है) तथा जिसकी महिमा को मैने अतुलनीय (अनुपम, अनिर्वच) समझा है।' प्रसिद्ध है कि सरस्वती का हृदय मे आविर्भाव होने पर कवि को काव्य-सृजन की सहज स्फूर्ति एव दुर्निवार प्रेरणा होने लगती थी।

राज० टीका मे 'गाणी · अगूढ' का अर्थ 'वीर पुरुषो की कीर्ति प्रकट करने हेतु' किया गया है।

शब्दार्थ—[1]**आणी** = लाया, धारण किया (स० आनीता)।[2]. आई, आविर्भूत हुई। **जाणी** = जाना। **गाणी** = गायन किया, गुणगान किया।

करण अगूढ = स्पष्ट करने वाली (गूढ ज्ञान के स्वरूप को), विद्यादात्री।

उदाहरणः—गूढ औ अगूढ बिना जाके जगमूढ यातै[1]

1. वश भास्कर, प्रथम राशि, पचम मयूख, पृ० 41

'अगूढ' शब्द 'वश भास्कर' मे विख्यात या प्रसिद्ध के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है। यथाः—

गहि छत्र चामर आदि निजपति राजचिन्ह अगूढ।[1]

किन्तु यहाँ यह 'स्पष्ट' के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।

वाणी=सरस्वती । **वले**=पुनः, फिर । चीताणी=ध्यान या चिन्तन किया है।

विशेषः—श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि सम्पादको ने दोहे के द्वितीय चरण 'गाणी करण अगूढ' का अर्थ "उसका (सरस्वती का) रूप स्पष्ट करने के लिए उसका गान गाया" किया है, जो हमे समीचीन नही लगता। कारण, प्रथम दोहे के समान यहाँ भी कवि मगलाचरण के रूप मे शारदा की स्तुति कर रहा है। हमारे यहाँ सरस्वती, गणेश आदि देवी-देवताओ की महिमा को अकथ्य मान कर अपनी विनम्रता प्रकट करने की सदा से ही एक कवि-परिपाटी रही है। तदनुसार दोहे के प्रथम चरण मे कवि ने स्पष्टत. कहा भी है कि 'मैने सरस्वती की महिमा को सर्वथा अतुलनीय समझ कर अपने हृदय मे धारण किया है, जो विनम्रता-प्रकाशन की प्राचीन कवि-परम्परा के सर्वथा अनुरूप है। परन्तु विवेच्य चरण का उक्त सपादको द्वारा किया गया अर्थ उस परम्परा के ही नही, बल्कि स्वय कवि द्वारा दोहे के प्रथम चरण मे प्रोक्त विनम्रता के स्वर के ही किंचित् प्रतिकूल पडता है। ऐसा मानना प्रकारान्तर से कवि मे सरस्वती के स्वरूप को स्पष्ट करने की क्षमता का आरोपण करना है, जो कवि का अभिप्रेत नही है, क्योकि इसके अगले चरण मे ही अपनी विनम्रता-सूचक असामर्थ्य का द्योतन करते हुए वह अपने प्रति 'मूढ' शब्द का प्रयोग करता है।

'वीर सतसई' के कुछ अर्थों पर पुनर्विचार' शीर्षक अपने एक लेख मे[2] इस असंगति की ओर सपादको का ध्यान आकृष्ट करने के उपरान्त भी श्री डा. कन्हैयालाल जी सहल इस दोहे के विवेच्य चरण का अपने द्वारा स्वीकृत अर्थ ही ग्रहण करने के पक्ष मे हैं। वे लिखते हैः[3]—

"इतनी ऊहापोह और अनेक अर्थों की संभावना के बाद भी विवेच्य दोहे का वही सीधा-सादा अर्थ प्रतीत होता है —

मेरे द्वारा वाणी हृदय मे लाई गई और मैने उसे अतुल जाना। उसके रूप को स्पष्ट करने के लिए मैंने उसका गान गाया।"

---

1. वशभास्कर, सप्तम राशि, नवम मयूख, पृ० 2849
2. मरुभारती, जनवरी 1971 मे प्रकाशित मेरा लेख : पृ० 17.
3. वही, पृष्ठ 51 : 'वीर सतसई का एक दोहा' शीर्षक डा० सहलजी का लेख।

विद्वद्वर डा० सहल जी द्वारा अपने पूर्व अर्थ की पुष्टि किए जाने पर भी हम उसे स्वीकार करने मे असमर्थ है। अपने प्रस्तावित अर्थ की पुष्टि मे मै यहाँ प्राचीन राजस्थानी काव्यो से एतद्विषयक कुछ उदाहरण देना चाहूँगा, जिनसे यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाएगा कि काव्य-परंपरानुसार सरस्वती की महिमा को अकथ्य मान कर ही उसका स्तवन किया गया है। यहाँ तक कि केशव जैसे समर्थ कवि ने भी यही कहा है :—

1. बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,[1]
ऐसी लौ कहो धो मति कहा कौन की भई ?

अन्य राजस्थानी कवियो ने भी प्राय: इसी स्वर मे शारदा का स्तवन किया है। यथा :—

2. माई अक्षर माहि तूं रमइ, अक्षर नूं बधाण।[2]
ते भेद जाणेवु दोहिलु, जाणइ पडित सुजाण ॥

तथा :—

3 सवु को सारद सारद करइ,[3]
तिस कउ अत न कोउ लहहि

यही नही, 'जिणदत्त चरित' मे तो शारदा स्वय यो कहती है :—

सुणिवि वयण सारद यो कहै।[4]
मेरिउ अन्त न कोई लहै ॥

अर्थात्, 'मेरा कोई पार नही पा सकता।'

'वर्णक समुच्चय' मे भी इसी आशय का उल्लेख हुआ है :—

मयूर किसिउ चित्रीइ,[5]
सरस्वती किसिउ पाढइ।

इस आशय के और भी सैकडो उदाहरण दिए जा सकते है। स्वय कवि द्वारा रचित अन्य कृति-वंशभास्कर मे भी शारदा-स्तुति के प्रसग मे वह कहता है :—

---

1. रामचन्द्रिका, केशवदास,
2. नल दवदती रास, महीराज-कृत, पृ० 1 : स. श्री डा. भोगीलाल साडेसरा।
3. प्रद्युम्न चरित, सधारु-कृत, पृ० 1 : सं श्री प चैनसुखदास न्यायतीर्थ व डा. कस्तूरचद कासलीवाल।
4. जिणदत्त चरित, कवि राजसिह-कृत, पृ० 8, स. श्री डा० मा० प्र० गुप्त व श्री डा० क० च० कासलीवाल।
5. वर्णक समुच्चय; प्रथम भाग, पृ० 58; सं. डा० भोगीलाल साडेसरा।

विधि तनया को नमत विधि, पूजो अजलि पानि ।[1]
सरद इन्दु छबि सारदा, उकति देहु नव आनि ॥

शारदा से 'उक्ति' की प्रार्थना करने वाला कवि उसके स्वरूप को स्पष्ट करने की बात कहे—यह हमे जचता नही। उपर्युक्त उद्धरणो के सदर्भ मे विवेच्य चरण के अर्थौचित्य का निर्णय विज्ञ पाठक स्वय करे।

राजस्थानी टीका—हे सरस्वती ! म्है म्हारा हिृदय मैं मनरी जाणी उक्ती लायौ हू क्यूकि वीर पुरषा री कीरती गाय नें प्रगट करण सारू, सौ म्हारौ चूक है क्यूकि उर जाणी, मन री जाणी उकत लायौ हू, सो तू म्हारी लाज राखे और म्हू चित रो मूढ हू; पण हे वाणी, सरस्वती देवी ! तू जागराणी, जगत री मालक है, सो म्हारी सरम राखजे ॥इ०॥

बरण सगाई वालियाँ पेखीजै रस पोस।
बीर हुतासण बोल मे, दीसै हेक न दोस ॥3॥

व्याख्या—कविता मे 'बरण सगाई' (या बैण सगाई) का निर्वाह करने से सामान्यतः रस-वृद्धि होती देखी जाती है, परन्तु कभी-कभी वीर-रस-पूर्ण वचनो की अग्नि-ज्वाला मे 'वरण सगाई' न होने पर भी कोई दोष दिखाई नही देता। अर्थात् जैसे अग्नि सवभक्षी होती है, जिसमे सारे कलुष-कल्मष जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार वीरत्वपूर्ण वचनों की प्रचड ज्वाल-माला मे 'बरण सगाई' अलकार की अनुपस्थिति का दोष भी दग्ध हो जाता है। भाव यह कि 'बरण सगाई' सामान्यतः रसोत्कर्षक मे सहायक ही होती है, तथापि कवि की वीरत्व से उद्वेलित ओजस्वी वाग्धारा मे उसके न होने पर भी काव्य की प्रभविष्णुता मे कोई अन्तर नही आता। कारण, वीर-रस-पूर्ण कविता के प्रवाह मे सारे दोष तिरोहित हो जाते है।

शब्दार्थ—बरण सगाई—(पाठा० बैण सगाई) डिंगल-काव्य का एक प्रसिद्ध शब्दालकार जिसके अनुसार पद्य के हर चरण के प्रथम शब्द के आदि मे जो वर्ण (अक्षर) आए, वही वर्ण उसके अतिम शब्द के आदि मे भी आए और यदि अन्तिम शब्द के आदि मे न आ सके तो मध्य या अन्त मे कही अवश्य आए। 'वरण' का अर्थ है वर्ण, अर्थात् अक्षर एव 'सगाई' का सम्बन्ध। छद के हर चरण मे आद्यक्षरो के सम्बन्ध का नियमानुसार सम्यक् निर्वाह

---

1. वशभास्कर : प्रथम भाग, पृ० 40–41;

करना ही 'बरण सगाई' है, जिसका डिंगल-कवि बडो तत्परता से पालन करते देखे जाते है। इसके समावेश से कवि की पद-योजना, विशेषतः काव्य के मौखिक वाचन मे एक अनूठा चमत्कार आ जाता है, जो रस-सृष्टि करता है। डिंगल-कवि अपने दोहो–गीतो आदि का प्रायः सस्वर पाठ करके ही सुनाया करते थे। अत' अपने काव्य-प्रेमी श्रोताओ को रस–विभोर करने मे 'बरण सगाई' के नियम का पालन निश्चय ही अत्यन्त सहायक सिद्ध होता था। इसे एक प्रकार का अनुप्रास ही समझना चाहिए, जैसा कि कविवर फतहकरण जी 'उज्वल' ने अपने ग्र थ 'पत्र प्रभाकर' की भूमिका मे इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :—[1]

"वर्ण सगाई एक अनुप्रास का नाम है, वह मरु भाषा मे विशेष मानी जाती है, सो इस ग्र थ मे है ही, परन्तु जहाँ दूसरा अनुप्रास है, वहाँ नही भी है। वश भास्कर मे भी ऐसा ही है।"

'वश भास्कर' मे 'बरण सगाई' (या बरण सम्बन्ध) के विषय मे सूर्यमल्ल ने लिखा है :—[2]

वृत्त चरन के आदि बरन जो, ताही के उप अ त बहुल सो।
इक सौ लेरू च्यारि लग अति बर, मध्यम, अधम अधिकतर तम पर।
नाम बरन सम्बन्ध अलकृति, अर्धन मैं हु करत यह अनुसृति।
ग्र थ चतुर्थ भाग बिच नाँ यह, सेस माँहि सब ठाम नियम सह।

तथाः—

इते ग्र थ बिच किय अनिस, बिदित बरन सम्बन्ध।[3]

कवि के उपर्युक्त कथन से यह पता चलता है कि वह 'बरण सगाई' के नियम का पालन करने के प्रति अत्यधिक सचेष्ट था, जैसा कि वीर सतसई मे उसने प्रायः किया भी है।

डिंगल के प्रसिद्ध लक्षण-ग्र थ 'रघुनाथ रूपक' मे लिखा है कि 'वयण सगाई' से सब दोष मिट जाते है.—

वयण सगाई वेस मिल्या साच दोखण मिटै।[4]

परन्तु सूर्यमल्ल ने इसके पालन मे शिथिलता ही बरती है तथा उसका कारण स्पष्ट कर दिया है, जो सर्वथा सगत है।

---

1. पत्र-प्रभाकर; फतहकरण जी 'उज्वल'-रचित, पृष्ठ 5
2. वंशभास्कर, प्रथम राशि, द्वादश मयूख पृष्ठ 145
3. वशभास्कर : अष्टमराशि, एकादशमयूख, पृ 4263,
4 रघुनाथ-रूपक गीताँ रो : कवि मछ-कृत, पृष्ठ 13 स. श्री महताबचद्र खारैड।

वालि़याँ = (पाठा० 'बालियां') पालन या निर्वाह करने से। राजस्थानी टीकाकार ने बालियाँ पाठांतर मानते हुए इसका अर्थ 'जलाना' या 'होमना' किया है, परन्तु प्रसंगानुसार यहाँ 'वालि़याँ' से तात्पर्य पालन करने या निर्वाह करने से ही है।

प्रयोग का उदाहरण:—

"कहै छै राव जैसे बावीस घेढ जीती। बड़ा-बड़ा बोल **वालि़याँ**।"[1]

'जलाना' या 'होमना' अर्थ करने से यह ध्वनि निकलती है मानों कवि 'बरण सगाई' अलंकार के प्रयोग के सर्वथा विरुद्ध है, जबकि कवि इसके प्रयोग का पक्षपाती है, जैसा कि वंशभास्कर में उसके कथन से भी स्पष्ट है। हाँ, यह अवश्य है कि वीर-रस-प्रधान काव्यों में वह इसके निर्वाह पर ऐकान्तिक आग्रह नहीं करता। अतः 'वालि़याँ' की व्याख्या कवि के उक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ही की जानी चाहिए।

पेखीजै = (सं. प्र + ईक्ष) = देखा जाता है। **रस पोस** = रस का पोषण : रस-वृद्धि। **हुतासण** = अग्नि। **बोल** = वचन ; वीरत्व के उद्गार। 'वीर सतसई' के पूर्व प्रकाशित दोनों ही संस्करणों में संपादकों ने 'बोल' का 'बोऌ' (बोऌ) पाठान्तर मानते हुए इसका अर्थ 'रंग' किया है, जो प्रसंगानुसार अयुक्त है। तद्विपरीत, हमें बारैठ किसोरदान जी द्वारा मान्य 'बोल' पाठ ही प्रसंगानुसार अधिक संगत प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है 'वचन'। राजस्थानी टीका में भी यही अर्थ किया गया है। **दीसे** = (सं. दृश्) दिखाई देता है। **हेक** = एक भी (पाठा. 'एक')। डिंगल-काव्यों में एक का रूपांतर 'हेक' भी अति प्रचलित है। 'एक' तथा उससे निर्मित शब्दों का 'ए' राजस्थानी में 'ह' हो जाता हैं। यथा—

हेक जैत मिलियाँ हुवौ, सो निकलंक सरीर।[2]

राजस्थानी टीका—कवता में वैण सगाई, एक कवता री रीत है। जिण तरैं कै कवत, दोहौ, गीत हरेक जात रौ डिंगऌ रौ छंद तिकण मैं हरेक झड़ रौ पहलो आखर रै तथा दोय वा तीन रै पैला लावणो पड़ै है। उदाहरण:—

जुड़े मुसायब मांन अप कीया एकण जमैं।

'जु', जजा सूं ऊठी झड़ सों अन्त रौ आखर 'मैं' (जमैं) इण मैं सू पैलौ आखर 'ज' आयौ–फेर 'मैं'। 'पड़े' अनेकां काऌ केकां भमैं–इण मैं ही छूटतो आखर मैं–(भमै) है, इणमें 'भ' ऊठती झड़ रौ छूटता आखर म रै पैला 'भ' आयौ–इणनै वैण सगाई कहै छै।

---

1. नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृष्ठ 137, सं. श्री बदरीप्रसाद साकरिया।
2. बाँकीदास-ग्रंथावली : प्रथम भाग, पृष्ठ 71, सं. पं. रामकर्ण आसोपा।

सो कवी कह है कै वैण सगाई रो नियम राखणा सू वीरा रस मन चायौ कहीजं नही, क्यूंकि मनचाहो झड नई आवै। झड विगडै तोई वैण सगाई तो लावणी। इण वासतै कवीरौ मत है कि वैण सगाई बालणा सू वीर रस रौ पोखण वालौ दोहौ वणै सो वीरा रा हुतासण, अगनी रूपी वचना मे वैण सगाई बाल् दू तौ कोई दूसण नही। जिण तरै अगनी सर्वंभ खी है, यण मै दूसण नही, इणही तरै वीरा रा बोल रूपी अगनी नै दोष नही। अठै अगनी मैली चीज ही भस्म कर दै तौ लोकीक दूसण नही और वीर वचन अगनी मे वैण सगाई होमणा सूं कविता रा दूसण नही। कविता मै वैण सगाई नही होवै तो दूसण होवै है ॥ इ. ॥

बीकम बरसा बीतियाँ, गण चौ चद गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस ।।4।।

व्याख्या—विक्रम (सवत्) के 1914 वर्ष व्यतीत होने पर ज्येष्ठ कृष्णा पचमी गुरुवार के दिन सिर पर समय ने पलटा खाया। अर्थात् देश की शीर्षस्थ या सर्वोपरि सत्ता के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी आन्दोलन उठ खडा हुआ।

शब्दार्थ—बीकम=(स विक्रम) विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित सवत् से आशय है। **गण**=गिनो, जानो। **चौ**=4। **चंद**=1। **गुणीस**=19 (सं.एकोनविंशति)। 'अंकानाम् वामतो गति.' के अनुसार सवत् 1914 (सन् 1857)। **बिसहर तिथ**= नागपचमी (विषधर–साँप)। यहाँ नागपंचमी पर्वविशेष से आशय न होकर नाग की तिथि— अर्थात् पचमी मात्र से अभिप्राय है—ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की पचमी। **गुरु**=गुरु या ब्रहस्पतिवार। **बदि**=कृष्णपक्ष। **समय पलट्टी**=समय पलटा, क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। 'समय' का प्रयोग यहाँ स्त्रीलिंग मे हुआ है। **सीस**= सिर पर, या देश की सर्वोपरि अथवा शीर्षस्थ सत्ता (के विरुद्ध)।

विशेष—कवि ने यहाँ सन् 1857 की क्रान्ति की ओर सकेत किया है, जिसके फलस्वरूप कवि को वीर सतसई के सृजन की प्रेरणा मिली। ज्येष्ठ कृष्णापचमी ग्रन्थ-रचनारम्भ करने की तिथि है।

राजस्थानी टीका-विक्रम रा बरष वीता हे। गण =जाणणा। **चौ**=च्यार ने **चंद**=एक, उल्टा गिणणा सू एकै चौकै चवदै ने गुणीस=उगणीस सो उगणीसा रे चवदै, सवत् 1914 मै गदर हुई जद अ दोहा वणाया सो कवी कहै अबै जगत पर समै पलटौ खायौ। विसधर व्याकरण सू बरौह हूवौ। अठै विसहर सरप री तिथ नागपचमी नें गुरु ब्रै सपतीवार जेठ वद 5–मनै औ ग्रन्थ वणावणौ सुरु कीधौ ।।इ ॥

इकडकी गिण एक री, भूले कुल् साभाव।
सूरा आलस अैस मे, अकज गुमाई आव ।।5।।

व्याख्या—देश मे सर्वत्र अंग्रेजो की ही एकच्छत्र प्रभुता स्थापित हुई देख शूरवीर अपने परम्परागत कुल-धर्म एव वीर-स्वभाव को भूल गए तथा आलस्य एव

भोगविलास मे लिप्त हो अपनी आयु व्यर्थ खो दी। अर्थात् विषय-वासना मे लीन हो अपना जीवन नष्ट कर दिया।

शब्दार्थः—**इकडंको**=एकच्छत्र प्रभुता। मध्ययुगीन सामती व्यवस्था से सबद्ध शब्द है, जिसके अनुसार जिसका जहाँ शासन या प्रभुत्व होता था, वहाँ नगाडे पर केवल उसीका डका गूँजता था। हालो–भालो का इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है, जिसे लेकर ईसरदास ने 'हाला–भालाँ रा कु डलिया' की रचना की। यहाँ इकडकी से तात्पर्य एकच्छत्र स्थापित अग्रेजी शासन से है, जिसके फलस्वरूप तत्कालीन नरेश अपने परम्परागत शौर्य और पराक्रम से विहीन हो भोग विलास मे लिप्त हो गए। प्रयोग का उदाहरण—

इकडको—वाजतो जावै छै। घोडा री कलल हुय रही छै।[1]

साभाव=स्वभाव, कुल–स्वभाव अर्थात् अपनी भूमि व स्वातत्र्य रक्षा के लिए मरने-मारने का कुल-धर्म। **अकज**=व्यर्थ (सं० अकार्य)। **गुमाई**=खो दी। **आव**=आयु, जीवन।

विशेषः—1857 की क्रान्ति के समय देश के अधिकांश तत्कालीन नरेशो ने उस राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति जो भूमिका निभाई थी, उससे कवि का हृदय क्षोभ और आक्रोश से भर गया। प्रस्तुत दोहे मे कवि ने उन्हे अपने परम्परागत कुल-धर्म का स्मरण कराते हुए उनकी दयनीय स्थिति का सटीक चित्र खीचा है। कुछ नरेश इस स्थिति के अपवाद भी थे, जिनमे भरतपुर के राजा रणजीतसिंह, आउआ के ठाकुर खुशालसिंह, अमरकोट के सोढा राणा रतन, नरसिंहगढ के राजकुमार चैनसिंह प्रभृति उल्लेखनीय है, जिन्होने अग्रेजी शासन से जूझते हुए राष्ट्र की स्वतत्रता-वेदी पर अपने को उत्सर्ग कर दिया। हमारे स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा जाएगा। कवि ने अपने वीर-धर्म के प्रति जागरूक ऐसे शूरवीरो का अगले दोहे मे उल्लेख किया है।

राजस्थानी टीका—एक डकी नौबत एक री–एक अगरेजी राज री सुण नें सूरवीरा आपरी जात री ने कुल री स्वभाव वीर पणो भूला और वाँ सूरमा आलस मै अर अँस मै सरीर निरस्थक वीतावणो सुरु कीधो ॥५॥

इण वेळा राजपूत वे, राजस गुण रजाट।
सुमरण लागा वीर सब, वीरा रौ कुळवाट ॥6॥

व्याख्या—इस समय वे सब राजपूत, जो शौर्य और वीरत्व से ओतप्रोत थे, अपने

---

1. कु वरसी साखला री वात, स० डा० मनोहर शर्मा, 'मरुवाणी' जून-अगस्त 71 : पृ. 34, स० श्री रावत सारस्वत।

शूरोचित कुल-मार्ग का स्मरण करने लगे। अर्थात् अपने स्वत्व और स्वातन्त्र्य की रक्षा करना, प्राण रहते शत्रु को अपनी भूमि हस्तगत न करने देना, अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए सर्वस्व निछावर करना—आदि वीरोचित कुलरीति का अनुसरण करने हेतु कटिबद्ध हो गए।

शब्दार्थ—इण = इस। **वेळा** = समय। **राजस गुण** = रजोगुण ; अर्थात् क्षत्रियोचित वीर-दर्प या वीर-रोष, वीरत्व। **रंजाट** = रंजित, युक्त। **सुमरण लागा** = स्मरण करने लगे, कुल-रीति का अनुसरण करने हेतु कटिबद्ध होगए। **कुळवाट** = कुल-धर्म, वीरोचित कुल-रीति, जिसके अनुसार अपने स्वत्व व स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए शत्रु से लोहा ले या तो उस पर विजय प्राप्त करना अथवा वीरता पूर्वक लडते हुए वीरगति प्राप्त करना। कविवर दुरसा आढा ने 'बिरुद छिहत्तरी' मे राणा प्रताप के सदर्भ मे कुलवाट (या खत्रवाट) का परिचय यो दिया है :—

बुहा बडेरा बाट, बाट तिकण बहणो बिसद।[1]
खाग त्याग खत्रवाट, पूरो राण प्रतापसी।

विशेष—यहाँ 'राजपूत' शब्द के प्रयोग का मर्म समझने की आवश्यकता है। मध्ययुग मे भूमि, धर्म, सस्कृति एव स्वतत्रता की रक्षा का भार प्रायः क्षत्रियो पर ही था। अतः कवि ने यहाँ अपने कुलधर्म के प्रति जागरूक क्षत्रिय वीरो का ही विशेष रूप से उल्लेख किया है। इस शब्द के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए श्री डा० कन्हैयालाल सहल लिखते हैं कि "'इण वेला रजपूत' मे यदि रजपूत, जाति विशेष तक ही सीमित हो तब तो वीर सतसई की राष्ट्रीयता जातीयता से ऊपर नही उठ पाती।" तद्विपरीत, वे 'रजपूत' को व्यापक अर्थ मे 'शूरवीर' के अर्थ मे ग्रहण करने के पक्ष मे है।[2] इस सम्बन्ध मे, हमारा निवेदन है कि ऐसा सोचना वस्तुतः मध्ययुगीन काव्यो का आज के जीवन-मूल्यो या प्रतिमानो के आधार पर मूल्याकन करना है, जो अयुक्त है। ऐसा कर हम कवि एव उसकी कृति-दोनो के ही प्रति न्याय नही करेंगे।

'राजपूत' या 'राजपूती' का प्रयोग डिंगल-काव्यो मे क्रमशः 'शूरवीर' व 'शौर्य' के अर्थ मे भी देखने में आया है, यथा कविराजा बाँकीदास की इस गीत-पक्ति मे–'राखो रे किंहिक रजपूती मरद हिंदू की मुस्सलमान।[3] तथापि, विवेच्य पक्ति मे इसे 'क्षत्रियो' का वाचक मानना ही सगत होगा, जैसाकि 'वशभास्कर' मे कवि ने स्वय कहा है कि युद्ध राजपूतो के बल पर होता है.—

---

1. महाराणा-यश-प्रकाश, पृ० 101 सं० श्री ठा० भूरासिंह शेखावत।
2. मरु-भारती, अक्टूबर 1971 पृ० 30 :
3. बाँकीदास-ग्रथावली, भाग 3, पृ० 105 :

''जानी नहिं मतिमंद जिहि, रजपूतन बल रारि ।[1]

राजस्थानी टीका—अबै इण वखत मै वे रजपूत राजोगुणी राज रा गरभ में रजीयोडा वीर है, वीरां रा कुल रौ मारग–वीरता सू धरती आपरी म्हालणी, कुल रा मान मरजाद री चिंता करणी, सत्रुवा रा हाथ सूं देस वचावणौ आदि आदि वाता सोचण लागा और वडेरा रा पौरष सुमरण, याद करण लागा ॥६॥

सत्तसई दोहामयी मीसण सूरजमाल ।
जपै भडखाणी जठै सुणै कायरा साल ॥7॥

व्याख्या—[अपने कुल-धर्म के प्रति जागरूक ऐसे शूरवीरो मे वीरत्व का सचार करने के लिए] मिश्रण शाखा के चारण सूर्यमल्ल ने यह दोहाबद्ध वीर सतसई कही है (रचना की है), जो वीरो को मर-मिटने को प्रेरणा देने वाली (अतः वीर-भक्षिणी) है तथा कायरो के हृदय को सालने वाली है (क्योकि कायर, जो मृत्यु के नाम से ही डरते हैं, इसमे वर्णित वीर-भावो एव वीर–प्रसगो को सुन मन ही मन आत्मग्लानि से पीडित और व्यथित होते हैं) ।

शब्दार्थ—मीसण = (स. मिश्रण) = चारणो की एक शाखा । वश भास्कर मे कवि ने अपनी इस मीसण शाखा का व्युत्पत्ति-सहित यो परिचय दिया है :—

तिन विच साखा चतुरतर इक मीसण अभिधान ।[2]
चडकोटि कवि तै चली सूरिन लहि सनमान ॥9॥
भाखा खट मिश्रण भणिति बदि जिन्ह जित्त बाद ।
उनको मिश्रण नाम इम हुव सु लाछनिक ह्लाद ॥10॥
प्राकृत बिच सो सब्द परि हुव मिस्सण भुव ख्यात ।
मीसण इल देसीय मे प्रकट्यो सुहि छबि पात ॥11॥

सूरजमाल = सूर्यमल्ल । **जंपै** = (स० जल्प, — प्रा० जम्प) कहता है; रचना करता है । उदा०—

दिल धाई आसीस दै, कवि जम्पै जैकार ।[3]

भड़खाणी = (भट = योद्धा, खाणी = खाने वाली) योद्धाओ को मर-मिटने की प्रेरणा देकर उनका भक्षण करने वाली । इस शब्द की लाक्षणिक व्यजना बडी अनूठी है । वीरतापरक दोहे सुनकर शूरवीर पर पौरुष का ऐसा रग चढ़ जाता है कि वह युद्ध मे कट मरने के लिए आकुल हो उठता है । अत कवि ने इसे 'भडखाणी'

---

1. वशभास्कर : पचमराशि, चतुर्थ मयूख, पृ० 1718 :
2. वशभास्कर, प्रथम राशि, चतुर्थ मयूख, पृष्ठ 38
3. राठौड रतनसिंघजी, महेसदासोत री वचनिका, सं० टैसीटरी, पृ० 20

कहा है। **सुणौ** = (पाठा० 'सुणी') सुनते ही, सुनने मे। **साल** = (स शल्य) सालने या कष्ट देने वाली। कायरो को इस वीरोत्तेजक वीर सतसई को सुनकर दुःख होता है, क्योंकि अपनी कायरतावश वे इसमे निरूपित वीरोचित आदर्शो का अनुसरण न कर सकने के कारण मन ही मन लज्जित और आत्मग्लानि से पीडित होते है।

राजस्थानी टीका—आ वीरा री वरणण री वीर सतसई है सो दोहा वाळी सूरजमल कवी वरणण करै है। जोधार है, तिकानै तो सुणताई पौरष चढै तिणसू जुद्ध मै जूझ नै प्राण देवै है, जिणसू तो भडखाणी है नै कायर मरणा रा नाम सू ई डरै है, तिकाँरै वासतै सूरवीरा री कथा साल रूपी है, तिण सू आ सतसई कायरा री साल है ॥३॥

नथी रजोगुण ज्या नरा, वा पूरौ न उफाण।
वे भी सुणता ऊफणै, पूरा वीर प्रमाण ॥8॥

व्याख्या—जिन पुरुषो मे वीरोचित रोष (वीरत्व) नही है, अथवा जिनके हृदयो मे शौर्य का उन्मेष हिलोरें नही लेता है, वे भी इस वीर-रस-प्रबोधिनी 'वीर सतसई' को सुनते ही शूरवीरो के समान प्रचड क्रोधावेश से उबल पडते हैं। अर्थात् उन पर भी 'सूरातन' चढ़ जाता है, वीरोन्माद छा जाता है।

शब्दार्थ—**नथी** = नही है (सं. नास्ति, अप. नत्थी, गुज० नथी)। **रजोगुण** = वीर-रोष, वीरोचित अमर्ष जो भावार्थ मे वीरत्व का वाचक है। रणाङ्गण मे शत्रु से जूझने हेतु आकुल, क्रुद्ध एव गर्वोन्मत्त वीर के इस वीरोचित अमर्ष को कवि ने समष्टि मे 'रजोगुण' की सज्ञा दी है। वशभास्कर मे कवि ने इसका इसी अर्थ मे प्रयोग किया है, जिससे इसके विशिष्टार्थ पर स्पष्ट प्रकाश पडता है। यथा.—

1. सोढा ठठ्ठ रा मल्हनास इत्यादिक राजाँनू रजोगुण रै **उफाण** दड ले लेर गंजिया।[1]
2. अर रण रा गलियार **रोस मैं रजोगुण** रूप हुआ थका सिहनाद रै साथ दाकालिया।[2]
3. जनक करन बरज्योहु, रुक्यो न तदपि **गुन राजस**।[3]
4. इण रीति रा **रजोगुण रै प्रकास** उण समय रो हाडो राव किण ही न आसगियो।[4]

---

1. वशभास्कर : चतुर्थ राशि, षोडश मयूख, पृ. 1356.
2. वही, ,, ,, ,, ,, पृ. 1373,
3. वही, ,, ,, विंश मयूख, पृ. 1410
4. वही, ,, ,, पचत्रिंश मयूख, पृ. 1610.

वा = अथवा । **पूरौ** = भरा (क्रिया) प्रपूरित हुआ । श्री डा सहल जो आदि सपादको ने इसका अर्थ 'पूरा' (विशेषण) किया है, परन्तु हमारे विचार से 'पूरौ' यहाँ क्रिया है, जो पूरणौ क्रिया का भूतकालिक रूप है । 'पूरणौ' अर्थात् भरना, पूर्ति करना । अतः 'पूरौ उफाण'-जिनमे वीरोन्मेष नही भरा है-ऐसा अर्थ किया जाना चाहिए । इस अर्थ मे 'पूरणौ' क्रिया के प्रयोग का उदाहरण:—

आगइ पत्र जोगणिया तणा पूरिया[1]

उफांण = अदम्य वीरोन्मेष या वोरोल्लास, जो मानो मन मे समा न पा सकने के कारण छलका पडता है । **ऊफणै** = वीरोचित रोष या अमर्ष से उबल पडते हैं । **पूरा** = पूरी तरह । **प्रमाण** = समान, भाँति । यथा—

सोकरडा रा सिन्धु मे, पूगौ प्रवन प्रमाण ।।249।।

राजस्थानी टीका—जिका पुरषा मै रजोगुण, राज रौ अभिमान । उदाहरण·—

दोहा—धरती म्हारी म्हे धणी, ढाहण नेजा ढल्ल ।
किम कर पडसी ठाकुरा, ऊभा सीहा खल्ल ।।

आ धरती म्हारी है । म्है इण धरती रा धणी म्हे हाँ और म्हे कायर नही हा, सत्रुआ रा नेजा (झडा) हाथीया रै जुद्ध रै समै कपोल सामै चाँचरै जुद्ध री ढाल बधै है, सो हाथीया ने तरवाराँ सू वाढ गज-ढाला रा ढाहण प्रथी ऊपर न्हाकण ने समरथ हाँ । तिकाँरी ऊभा पगा जमी जावणी तौ जीवता सिंध री खाल पाडणी है सो आ किण तरै होसी ? इण तरै आपरा धरम री, कुल री, मरजादरी, धरती री रिच्छया करणी-औ रजोगुण कहीजै सो जिकाँ मै रजोगुण नही (अभिमान) तिकानै अँ दोहा सुंण वीर रस उपजै नही, क्यू कि वामें वीरताई रौ उफाण नही । पण कवी कहै वीरा रा वरणण रा प्रभाव सू वामैं ही वीर रस आ कवता सुण न आय जावसी ।।इ.।।

विशेषः—तुलनीय—'अर बार बार सिराहि भोगा मे आसक्त आलसी और अवनीसा रा आसय मैं सूतो बीररस जगायो'[2]

जे दोही पख ऊजला, जूझण पूरा जोध ।
सुणतॉ वे भड़ सौ गुणा, बीर प्रकासण बोध ।।9।।

व्याख्या—जो शूरवीर अपने दोनो ही पक्षो—मातृपक्ष और पितृपक्ष मे उज्ज्वल हैं (अर्थात् वीर माता और वीर पिता के यशस्वी कुल मे उत्पन्न हुए है)

---

1. महादेव पारवती री वेलि, पृ 74, स. श्री रावत सारस्वत ।
2. वशभास्कर : चतुर्थ राशि, षट्त्रिंश मयूख, पृ 1628

तथा जूझने मे पूरे योद्धा हैं, उन्हे तो इन वीरतापरक दोहो को सुनते ही सौगुना शौर्य प्रदर्शित करने की प्रेरणा मिलेगी। अर्थात् सच्चे व वीर कुलोत्पन्न सुभटो पर तो इन दोहो को सुन वीरता का ऐसा रग चढेगा कि उनका पौरुष सौगुना हो जाएगा।

शब्दार्थ—दोही पख = दोनो पक्ष, अर्थात् मातृ-पक्ष और पितृ-पक्ष। भाव यह कि जिनके माता व पिता—दोनो के वश वीरता के लिए उज्ज्वल रहे है—ऐसे वीर वश मे उत्पन्न पुरुष स्वभावत. व सस्कारत. शूरवीर होगे ही। मिलाइए:—

1. सत्रा जड काढण सूर सधीर,[1]
   नरेसुर चाढण **बे पख** नीर।
2. कुलवन्ति पतीवरता किहडी,[2]
   उधरे **पख** च्यारि जिसा इहडी।
3. हउं ऊजालिसि आपणा त्रेवे पख तिणि तालि।[3]

ऊजला = उज्ज्वल, वीरता के लिए प्रसिद्ध, यशस्वी।

जूझण = जूझने या युद्ध करने हेतु (स युद्ध, प्रा. जुज्झ)। **जोध** = योद्धा। **भड़** = योद्धा (स. भट)। **बीर** = वीरता, यहा 'बीर' से तात्पर्य वीरता से है। वीर का वाचक शब्द 'भड' पक्ति मे आ चुका है। **बोध** = ज्ञान, प्रबोध, प्रेरणा।

विशेष—माता-पिता के कुल व सस्कारो का प्रभाव सन्तान पर पडता ही है। वीर माता-पिता की सतान स्वभावतः वीर होती है। आज चाहे हम वीरता की इस वशगत धारणा के प्रति शका करने लगे, किन्तु इतिहास के स्वर्ण पृष्ठो मे बिखरे वीर पुत्रो के शत-शत आख्यान इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण है। इसीलिए यदि राजस्थान के कवि ने वीर पुत्रो को जन्म देने वाली वीर-प्रसविनी माताओ की यो प्रशस्ति की हो—

एथ घराणँ सीहणी कवर जणँ सौ काल

तो अत्युक्ति क्या है ?

इसी भाँति जैनाचार्य मानतु ग ने यदि भगवान् ऋषभदेव जैसे सुपुत्र को जन्म देने के लिए परम महीयसी माँ मरुदेवी के मातृत्व का स्तवन किया हो तो इसमे अयुक्त क्या है ?

---

1. वीरवाणः ढाढी बादर री वणायो, पृ. 2 स श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूँडावत।
2. वचनिका राठौड रतनसिंघजी, महेसदासोत री, पृष्ठ 81, स. टैसीटरी।
3. अचलदास खीची री वचनिका, पृ 14 गाडण सिवदास री कही ;
   स. श्री दीनानाथ खत्री।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,[1]
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानु सहस्र रश्मि,
प्राच्यैव दिक् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

राजस्थानी टीका—जो राजपूत माता-पिता रा दोनु ही ऊजला पक्ष रा जनमियोडा पूरा जोधार है, वे अै दोहा सुण जुद्ध मे सौ गुणो पौरप दिखावसी ॥ इति ॥

दमंगल बिण दुमनौ रहै, जडै न कगल जत।
सखी बधावौ त्यां भडां, जेथ जुडीजै कंत ॥10॥

प्रसंग—एक वीराङ्गना की अपने युद्धरत पति की युयुत्सा एव वीर-स्वभाव के सम्बन्ध मे सखी के प्रति उक्ति—

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत का स्वभाव कुछ ऐसा निराला है कि वे युद्ध के बिना सदा उदास रहते है तथा कवच की कडियाँ भी बन्द नही करते ,जाने किस क्षण युद्ध छिड जाए इस आशा मे कवच की कडियाँ खोले ही उमे पहने रहते हैं, ताकि युद्ध छिडते ही अविलम्ब कडियाँ बद कर युद्ध के लिए चल पडे , एक क्षण का भी विलम्ब न हो) । हे सखी ! मेरे इन रणाकुल स्वामी की युयुत्सा-तृप्ति के लिए उन प्रतिपक्षी वीरो को ही अपने गीत-गानादि से प्रोत्साहित करो (जोश दिलाओ) जहाँ मेरे वीर स्वामी उनसे जूझ रहे है ताकि वे किसी तरह मेरे शूरवीर कत से लडते रहे एव इनकी युयुत्साजन्य उदासीनता दूर हो ।

[इस दोहे मे वीर की अदम्य युयुत्सा तथा उसके उद्‌भट पराक्रम की साकेतिक व्यजना हुई है, जो युद्ध के बिना अन्यमनस्क रहता है । पत्नी का सखी को प्रतिपक्षी वीरो को युद्धार्थं प्रेरित करने हेतु कहना यह सूचित करता है कि शत्रुओ की उस शूरवीर से भिडने की सहज ही हिम्मत नही होती थी, जिसके फलस्वरूप पति की उदासीनता भी दूर नही होती थी । अतः पत्नी यह कामना करती है कि गीतो से 'बधाए' जाकर शत्रु किसी तरह उसके शूरवीर पति से कुछ देर लोहा ले उसकी युद्धेच्छा पूर्ण करें ताकि उसकी उदासीनता दूर हो]

शब्दार्थ—दमंगल = युद्ध । उदाहरण:—

विढे वीजजल गुडिया गजदल **दमगल** हू कल कलियल ए ।[2]

दुमनौ = उदास (स दुर्मनस्क) । **जडै** = बद करे , जुडे ।

---

1. भक्तामर स्तोत्र, 22 वा श्लोक ।
2. गजगुणरूपकबध ।

कंगल = कवच (सं. कङ्कट)। डिंगल-काव्यों में इसके 'कगल,' 'क्रगल' आदि अनेक रूपभेद मिलते हैं। कवि ने 'वंश भास्कर' में इसके मूल रूप 'ककट' का भी प्रयोग किया है। यथा:—

ककट टोपो कट्टिकैं कढि जात अधाया।[1]

जत्र = कड़िया (स. यत्र)। **बधावौ** = मांगलिक गीत-गानादि से अभिनंदित करो। ऐसे गीतों को बधावे के गीत कहते हैं।

उदाहरण:—

सिद्धियल सगत धावौय सरब पाल वधाऔ आइयां।[2] **त्यां** = उन (प्रतिपक्ष के)। **भडां** = योद्धाओं को (स भट)। **जेथ** = जहाँ, श्री कन्हैयालाल सहल आदि संपादकों ने व्याख्या में इसका अर्थ 'जिससे' तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसका अर्थ 'जिनके साथ' किया है, परन्तु 'जेथ' का अर्थ जहाँ' (स्थानवाचक) होता है; जिसके प्रयोग के अनेक उदाहरण दिए जा सकते है। यथा:—

जेथि दीप दीपता, तेथि प्रजलै हुतासण।[3]
जेथि हसति गूंजता, तेथि गुंजै पचाइण॥

राजस्थानी टीकाकार ने अपनी प्रथम दो व्याख्याओं में 'जेथ' को 'जेत' का रूपभेद मान कर जीत या विजय अर्थ किया है, जो अयुक्त है। 'जेथ' व 'जेत' अलग अलग शब्द है। यहाँ 'जेथ' पाठ है, जा अव्यय है, सज्ञा नहीं। स्वय कवि ने वीर सतसई मे इसका अन्यत्र भी इसी अर्थ मे प्रयोग किया है (देखिए दोहा संख्या 26 (जैत) व 29 (जेथ)। **जुड़ीजै** = भिडें या लड़ें।

राजस्थानी टीका—(पहलौ अर्थ) जिके सूरवीर दमगल (झगडा) विना दुचता रहै और जुद्ध में बगतर री जत (कड़िया) जडै नहीं, उघाडी छाती लडै-इसा सूरवीरां मै जुद्ध करण वाली हे सखियां! म्हारौ पती, सो म्हारा पती रा नाम सूं सारी जणिया बधावौ, क्यूं कि जठै इसा जोधार दुममण तिका मै म्हारा नायक नै जै जुडी, अर्थात फतै मिली है।

दूसरो अर्थ –

हे सहिया! आज थे बधावा गावौ हो दूसरा भडाँ रा, नै फतै म्हारै धणी करी है—इण मे सूरवीर री स्त्री रा वचन है। कोई सिरदार रै सत्रुआं सूं मुकाबलौ हूवौ तठै एकण आदमी सत्रुआं नै मार भगाया सो सिरदार री फतै हुई पाछा

1. वंशभास्कर, सप्तमराशि, त्रयस्त्रिंश मयूख, पृ० 3177
2. पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत, पृ० 219
3. गजगुणरूपकबंध, पृ० 99।

आया तरै वड बेहुडा सू वधाय वधावा ठावा ठावा आदमी तिकारा नाम सूं गावीजरा लागा, तद वीर पुरस री स्त्री नै आ वात रूची नही तिरा सू कहै है कि हे सखियाँ ! फगत ऊजला कपडा राखरा वालाँ रा थे वधावा गावौ हौ परा वीर पुरस नै पिछाणी नही–नै सौखीन मौजीया तिका रौ जस करौ हौ परत वारा और म्हारै पति रै सभावाँ रौ मिलॉन करौ तो निश्चै होवै । इति भावारथ (अरथात् ऊपरली समजावरा री बात) अबै दुहा रौ दूसरौ अर्थः—

वीर परगौ पति रौ दिखारा सारू कहै छै थे जिकारा वधावा गावौ छौ तिकारा सुभाव सू म्हारा पति रौ सुभाव विलक्षरा छै—किसो कि दमगल (जुद्ध) विना दुचितौ रहै अने जुद्ध मे कलग (कगल ?) बगतर रा जत (कडिया) ही नही जडै-इसा वीर परगा रा सुभाव है । हे सखी । जीतै तो म्हारौ पती अर वधावौ त्या भडा, वधावा वारा गावौ जेथ उठै जै, फतै म्हारा पती नै जुडी (मिली) है सो वधावा देख नें गायबो करौ–इरा मे प्रथम असगती अलकार है–प्रथम असगती रौ लक्षरा–काज अरु कारन न्यारे न्यारे ठौर–जैसे 'खोर भई पग ऊँठ के दीजै खर कै डाभ'–ऊँठ रै पग रै पीड हुई ने गदौ डाभियौ–काररा और कारज : ऊँठ रै पग पीड काररा, गदौ डाभरगौ कारज–पीड काररा, ओषद कारज–इराहीज तरै जीतरगौ काररा तौ इरा जोधार रौ ने वधावा कारज दूजारा तिरा सू असगती अलकार रौ प्रथम भेद छै ॥

तीसरो अरथ—सूर वीर री स्त्री अपछराओं ने कहै छै—म्हारौ धरगी जुद्ध बिना दुचितौ रहै ने जुद्ध मे ही बगतर री कडी जडै नही इसो निरभय, सो हे सखिया ! थे जेथ (जठै) म्हारौ धरगी जुद्ध कररा जावै तिका भडा ने वधावौ–वे थाराँ पती होवसी प्रयोजन म्हारौ पती जिका सूं लडसी तिका सारा ने मार लेसी सो वे थारा धरगी होवसी तिकाने वधावो ॥१॥

टिप्पणी—टीकाकार ने 'जडै न कगल जत' का अर्थ जो 'युद्ध मे खुली छाती ही लडता' किया है, इससे हम सहमत नही। कारण, यदि वह खुली छाती ही लडना चाहता है तो फिर कवच पहनता ही क्यो है ? व्यर्थ उसका बोझ क्यो वहन करता है ? अतः कवच पहनते हुए भी उसकी कडियाँ बंद न करने की व्याख्या उसकी युयुत्साजन्य उदासीनता के संदर्भ मे ही कीजानी चाहिए ।

दमगल विरा अपचौ दियरा, वीर धरगी रौ धान ।
जीवरा धरा वाल्हा जिका, छोड़ौ जहर समान ॥11॥

व्याख्या—वीर स्वामी का अन्न युद्ध के बिना अजीर्ण उत्पन्न करने वाला होता है (अपने अन्नदाता स्वामी के लिए युद्ध मे मरे बिना वह पचता नही) । अतः जिन्हे अपने जीवन व स्त्री से मोह हो—वे इसे जहर समझ कर छोड दें ।

भाव यह कि स्वामिभक्ति-धर्म का पालन करने के लिए वीर को अपने व पत्नी का मोह त्याग देना चाहिए ।

शब्दार्थ—**दमंगल** = युद्ध । **विण** = बिना । **अपचौ** = अपच, अजीर्ण । **दियण** = देने वाला, उत्पन्न करने वाला । **धणी** = स्वामी । **धान** = अन्न (स. धान्य) । **धण** = स्त्री, स्त्री को पुराकाल मे रूढिग्रस्त मनोवृत्ति के व्यक्ति अपनी निजी सपत्ति (Property) मात्र समझते थे । फलतः उसके लिए 'धरण' का प्रयोग कालान्तर मे रूढ होगया । हमारे समाज-शास्त्र के विद्यार्थियो के लिए इस कोटि की शब्दावली विशेष रूप से ध्यातव्य है, क्योकि शब्द हमारे सास्कृतिक मूल्यो एव सामाजिक व्यवस्था के ही ज्ञापक होते है, तथा इन शब्दो द्वारा तत्कालीन जीवनस्थितियो व जीवन-दृष्टि पर अच्छा प्रकाश पडता है । **वाल्हा** = प्रिय (स. वल्लभः प्रा. वल्लहोः गु० वाल्हा) । **जिकां** = जिन्हे ।

विशेष—स्वामिभक्ति राजस्थानी साहित्य व सस्कृति का एक उदात्ततम जीवनमूल्य है, जिसके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए राजस्थानी कवि थके नही हैं । इसी भाव के ज्ञापक कविराजा बाँकीदास के दोहे देखिए, जिनमे उन्होने स्वामिभक्त शूरवीरो की इन शब्दो मे वदना की है —

नमसकार सूराँ नराँ, विरद नरेस वरम्म ।[1]
रिजक उजाळै साँम रौ, पाळै साँम धरम्म ॥

तथाः—

कृपरण जतन धन रौ करै, कायर जीव जतन्न ।[2]
सूर जतन उरण रौ करै, जिरण रौ खाधौ अन्न ॥

यही नही, राजस्थानी कवि ने तो यहाँ तक कहा है.—

करता तोलै ताखडी, लेकर सबै करम्म ।[3]
सौ सुक्रत हिक पालड़े, अेको स्याम धरम्म ॥

सूर्यमल्ल के इस दोहे की राठौड जसवतसिंह पातावत पर रचित एक गीत की निम्नाकित पक्तियो से तुलना कीजिए.—

पचे नही पच लुरण ओखद जसो यम पुरणे, [4]
अखाडा पचे नही मला अडता ।

---

1. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 3
3. डिंगल-गीत-साहित्य ; पृ. 221, ले. डा. नारायणसिंह भाटी ।
4. गीत राठौड जसवंतसिंह पातावत रौ : प्रा. रा. गी., भाग 2, पृष्ठ 148-149 स. श्री गिरधारीलाल शर्मा. श्री साँवलदान आशिया ।

धणीरो धान सेला तणा धमाका,
पचे तरवारिया भाट पडता ॥1॥
अमावड रूजक खावँद तणो अरोगे,
अति चढै लूण पाणीर आटा।
अजीरण जिकौ छडियाल ऊभेलिया,
भलिया ऊतरे खाग भाटा ॥2॥

राजस्थानी टीका—सूरवीर सिरदार री स्त्री सिरकार मे रहण वाला राजपूता ने कहै छै—म्हारा पती रौ अंन है सो दमंगल (जुद्ध) विनां कीधा किण नैं ही पचैला नही, अपचौ देवैला सो सूरवीर होवौ वे खावजौ नै जिका ने जीवणौ नैं लुगाया वाली लागै तिकै छोड दौ क्यू कि ओ अ न जैहर जिसो है सो जैर सू ई विना आई मरै है नै ओ अ न खावै तिकै ही भगडो कर आई विना मरै है।इ।

नहँ डाकी अरि खावणौ, आयाँ केवल वार।
वधावधी निज खावणौ, सो डाकी सिरदार ॥12॥

व्याख्या—अपने शत्रुओ को वारविशेष (शनिवार) को ही खाने वाला डाकी, वस्तुतः डाकी नही होता। डाकी तो वह सरदार (वीर सेनापति) है, जो अपनो को ही बिना किसी वारविशेष के अहमहमिकया हर समय मरवा डालता है।

भाव यह है कि डाकी तो अपनो की रक्षा करता है, तथा दूसरो को मारता है और वह भी शनिवार को ही। परन्तु जो सरदार मरने की होड़ मे आगे बढ़ते हुए अपने ही योद्धाओ को हर क्षण युद्ध मे झोककर उनके प्राण ले लेता है, वह वस्तुत: सच्चा डाकी है, न कि 'डाकी' नामधारी नरभक्षी। कारण, वह तो बिना किसी वार विशेष का विचार किए अपने ही लोगो का भक्षण करता रहता है। अतः वह 'डाकी' कहे जाने वाले नरभक्षी से भी बढ़कर डाकी है।

ध्वनि यह है कि वीर सेनापति या सरदार के लिए उसके अपने भाई-बेटे अहमहमिका से अपने प्राण न्यौछावर करने हेतु हर समय उद्यत रहते है। व्याजस्तुति का सुन्दर उदाहरण है।

अन्यार्थ—उपर्युक्त व्याख्या में 'डाकी' शब्द को अभिधार्थ (नरभक्षी) मे ही ग्रहण कर अर्थ किया गया है। परन्तु यदि इसे लक्ष्यार्थ (प्रचड वीर या उद्भट योद्धा) मे ग्रहण करें तो व्याख्या यो भी की जा सकती हैः—

वस्तुतः प्रचड सेनापति वह नही है, जो अवसर आने पर ही अपने शत्रुओ का सहार करता है, अपितु प्रचड सेनापति तो वह है, जिसके लिए उसके निज के ही सैनिक अहमहमिका से अपने प्राण दे देते है।

डिंगल-काव्यो मे प्रचड शूरवीर के अर्थ मे भी 'डाकी' शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा:—

1. मार पाड माचतौ गयौ अजरावल डाकी ।[1]

2. दिस गोगा रे मलफीया, डाकी भरता डाण ।[2]

हमे व्यजना-चमत्कार की दृष्टि से प्रथम अर्थ अधिक सगत लगता है, जो हमने राजस्थानी टीका से ग्रहण किया है। अतः प्रस्तावित अर्थ का श्रेय राजस्थानी टीकाकार को दिया जाना चाहिए। राजस्थान मे यह सामान्य लोक-विश्वास है कि डाकी या डाकण (डायन) अपने शत्रु को अपने निर्धारित वार—अर्थात् शनिवार को ही भक्षण करते है। अतः उक्त विश्वास के सदर्भ मे कवि के इस शब्द-प्रयोग द्वारा अर्थ मे एक चमत्कार आजाता है।

शब्दार्थ—डाकी = 1 नरभक्षी (अभिधार्थ मे) 2. प्रचड वीर या उद्भट योद्धा (लक्ष्यार्थ मे)। द्वितीयार्थ मे इसके प्रयोग का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। **अरि खावणौ** = शत्रु को खाने वाला। **वार** = 1 वार विशेष अर्थात् शनिवार, जिस दिन लोकविश्वासानुसार डाकी या डायन अपने भक्ष्य को खाते है। 2. अवसर। **वधावधी** = (पाठा. वदावदी) अहमहमिका से, प्रतिस्पर्द्धा से। **निज** = निज के, अपने ही बधु-बाधवो या आश्रित शूरवीरो को।

राजस्थानी टीका—औ सिरदार डाकी नही है, परत अरिया नै खावण वालौ है और डाकी होवै सो तो केवल फकत वार आया अर्थात् सनेसर ने ही ज मारै नें औ सिरदार तो सदेव ही मारे और डाकी आपरा री रिछा करै ने दूजा ने

---

1. पाबू प्रकाश (बडा), आशिया मोडजी-कृत, पृ 286.
2. वीरवाण, पृ 58, स. श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूँडावत। प्रासगिक रूप से हम यहा सपादिका द्वारा प्रदत्त 'वीरवाण' नाम पर अपनी आपत्ति प्रकट करते है। ग्रन्थ का प्रचलित नाम 'वीरमायण' (रूपभेद 'वीरमाण') है, 'वीरवाण' नही। स्वयं सपादिका ने जिस प्रति के आधार पर यह भ्रान्त नामकरण किया है, उसमे भी 'वीरमाण' का उल्लेख हुआ है। यथा—'इण पोथी मे 'वीरमाण' ग्रन्थ रा दुहा पुणी दोयसे है' (पृ 61)। दूसरे, किसी प्रति मे प्राप्त अशुद्ध नाम के आधार पर पुस्तक का अशुद्ध नामकरण नही किया जा सकता। इसी भाँति महाकवि केसोदास गाडण-रचित 'विवेक वार' को भ्रातिवश 'विवेक वारता' कहकर बताया गया है (देखिए गजगुणरूपकबध की भूमिका, पृ 20, स श्री सीताराम जी लालस) किन्तु उसका शुद्ध नाम 'विवेक वार' है। 'वार' नीसाणी छद का ही एक भेद है। श्री प. कृपाशकर जी तिवारी के निजी सग्रहालय की हस्तलिखित प्रति मे भी 'विवेक वार' नाम है।

मारै पण श्रौ डाकी सिरदार वदावदी (विवाद कर) निज (आपरा) राजपूत भाई बेटा तिका ने जुद्ध मैं माराय नाखै इण वासतै डाकी, डाकी नही, डाकी श्रौ सिरदार है सारा ने युद्ध मे मरावण वालौ ।इ।

डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखा रौ विष एक।
गहल मुवा ही ऊतरै, सुणिया सूर अनेक ।।13।।

व्याख्या—[ऊपर कथित] प्रतापी स्वामी का अन्न तथा तक्षक सर्प का विष-ये दोनो एक-से (प्राणघाती) होते हैं। इनका नशा मरने पर ही उतारता है-ऐसा अनेक शूरवीरो से सुना है (अथवा, यह बात सब शूरवीर सुनलें)। भाव यह कि जैसे तक्षक सर्प के विष की मूर्च्छना मरने पर ही टूटती है, उसी भाँति प्रतापी सेनापति के अन्न (जीवन-वृत्ति) रूपी विष की खुमारी भी उसके लिए युद्ध मे अपने प्राण निछावर करने पर ही उतरती है-जीते जी नही। अत सभी शूरवीर, स्वामी के अन्न के इस मर्म को भलीभाँति समझ लें। जो स्वामिभक्त शूरवीर प्राणो के मोल पर यह फर्ज उतार सकें, वे ही इसे खाए, कृतघ्न और कायर नही।

शब्दार्थ—**डाकी ठाकर**=प्रतापी सेनापति। **रिजक**=जीवन-वृत्ति, जीविका, अथवा एतदर्थ दी गई भूमि। **ताखां**=तक्षक सर्प। **एक**=एक-से (प्राणघाती)। **गहल्**=नशा, मूर्च्छना, खुमारी, उन्माद (सं, ग्रथिल, गु० घेलो; मराठी-घैलट, घैलाड)। **मुवां**=मरने पर। **सुणिया**=सुना है, या सुन ले।

विशेष—स्वामिभक्ति के भाव का कितना सटीक और मार्मिक चित्र है! जिसका अन्न खालिया, उसका फर्ज उतारने के लिए वीर पर मानो हर क्षण एक उन्माद-सा छाया रहता है, जो मरने पर ही उतरता है। स्वामिभक्ति की इसी उत्कट भावना के फलस्वरूप राजस्थान की धरती ने राठौड दुर्गादास जैसे वीर पुरुष और पन्ना धाय जैसी वीराङ्गना को जन्म दिया है।

राजस्थानी टीका—इसा डाकी ठाकर रौ अन्न अर ताषा सरप रौ विस बराबर है। उण जहर री गैल ही मरिया उतरै ने इण अन रूपी जहर री गैल अन रो फरज जुद्ध मे मरण सू ही ऊतरै-सो सारा सूरवीर सुण लेजो। अरथात् सूरवीर श्रौ अन्न खाजो, कायर नीच होवौ वे मत खाजो ।।इ०।।

डाकी ठाकर सहण कर, डाकण दीठ चलाय।
मायड खाय दिखाय थण, धण पण वलय बताय ।।14।।

व्याख्या—प्रतापी और मन से उदार स्वामी अपने सेवको से हुए अपराधो को सहन क्षमा) कर मानो उन्हे खाता है, डायन अपनी कुदृष्टि से व्यक्तियो को खाती है; माँ युद्ध मे जाते हुए अपने शूरवीर पुत्र को अपने स्तन दिखा कर (दूध की लाज रखने का ध्यान दिलाकर) तथा वीर पत्नी अपना चूडा दिखाकर (चूड़े की लाज रखने का स्मरण करा कर) खाती है।

भाव यह कि धीर-वीर स्वामी जब अपने सेवको का बडा से बडा अपराध भी मौन भाव से सहन कर लेता है तथा उसके लिए उन्हे क्षमा कर देता है तो उसकी सहनशीलता से उसके सेवको का मानो मरण होजाता है, क्योंकि इस सहनशीलता व मनोगत औदार्य के फलस्वरूप वे कृतज्ञतावश उसके लिए मर-मिटने का सकल्प करते है तथा मर कर ही उसके उपकार का बदला चुकाते है। इस प्रकार स्वामी की वह सहनशीलता उनके लिए मरणातक सिद्ध होती है।

वीर माता भी जब युद्ध मे जाते हुए अपने वीर पुत्र को अपने स्तनो की ओर सकेत करती हुई कहती है—वत्स! देखो, मेरे दूध को लजाना नही; ऐसा न हो कि तुम रण मे पराजित हो जीवित लौट आओ—तो वह वीर पुत्र या तो विजय-श्री वरण करके ही घर लौटता है, अन्यथा शत्रुओ से जूझता हुआ मृत्यु का आलिगन करता है। माँ द्वारा दिलाए गए दूध की लाज का ध्यान उसके लिए मरण का आह्वान बन जाता है। इसी भाँति वीर पत्नी द्वारा अपने चूडे (सुहाग के गौरव) की लाज रखने का ध्यान भी शूरवीर पति को पराजित हो जीवित घर नही लौटने देता। वह मरण-प्रबोधन उसे वीरगति प्राप्त करने हेतु आकुल कर देता है। लोकविश्वासानुसार डायन द्वारा अपनी कुदृष्टि डाल कर लोगो का भक्षण किया जाना प्रसिद्ध है ही। इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत दोहे मे अपनी अनूठी व्यजना-शैली द्वारा मरण के विविध रूपो तथा उसकी प्रेरक वृत्तियो का अत्यन्त सटीक एव भाव-पूर्ण चित्रण किया है, जो राजस्थान की वीरोचित परम्पराओ के अनुरूप है। राजस्थानी टीकाकार ने वीर स्वामी की सहनशीलता तथा सेवक की स्वामिभक्ति के आदर्श को एक ऐतिहासिक आख्यान द्वारा बडी सुन्दरता से समझाया है।

शब्दार्थ—सहण = सहन; सेवक द्वारा हुई हानि को सह लेने या उसके अपराध को क्षमा कर देने का भाव। **डाकण** = डायन। **दीठ** = दृष्टि। लोकविश्वास है कि डायन अपनी कुदृष्टि डालकर व्यक्ति का शनैः शनैः शोषण करती हुई उसका भक्षण करती है। **मायड़** = माँ, राजस्थानी मे प्रेम या प्रीति के द्योतनार्थ 'ड' प्रत्यय लगा दिया जाता है, जैसे 'बैनड़' या बैनडी' आदि।

उदाहरणः—

देवर थे जावो म्हारै देस,[1]
म्हारै सरीसी छोटी बैनड़ी जी राज!

थण = स्तन। **धण** = पत्नी। **पण** = भी (स. पुनः)। **वलय** = चूडा (सं. वलय) राजस्थानी 'बलिया' स. 'वलय' से ही व्युत्पन्न है। **बताय** = बताकर, स्मरण दिलाकर।

---

1. राजस्थानी लोकगीत, सं० श्री रावत सारस्वत, पृष्ठ 144

विशेष—डा० सहलजी आदि संपादको ने 'मायड खाय बताय' वाली पक्ति मे क्रमश' एक कायर पुत्र व कायर पति की उद्भावना कर यो अर्थ किया है - युद्ध से लौटे हुए कायर पुत्र को माता जब स्तनो की ओर इशारा करके कहती है कि तूने इनको लजा दिया तो उस कायर पुत्र का मरण हो जाता है' आदि। परन्तु यह अर्थ प्रकल्पित प्रतीत होता है। यहाँ वीर माता द्वारा युद्ध मे जाते हुए अपने वीर पुत्र को अपने स्तनो की ओर सकेत कर (दूध की लाज रखने का ध्यान दिलाकर) उसे जीतेजी युद्ध से पलायन न करने की प्रेरणा देने का अर्थ ही कवि का उद्दिष्ट है।

राजस्थानी टीका—कोई कहै अन खाणा सू ने रहणा सूं ईज कुण मरै, तद कवी कहै कै डाकी ठाकर तो सहण करनें जिण तरैह कि ठिकाणै खीमाडै ठाकर चाँपाउत वीठलदासोत मुकनदास जी, पाली जद आरै ही सो डीगाडी तलाव पर डेरा किया, जोधपुर आवता, सो डीगाडी मे मामौ भाणेज, मामौ पडिहार भीमौ, भाणेज धनौ रहता। तिकारा खाजरू एवड मे, मो आरा आदमिया राईका सूं जबरदस्ती मार माँस करता भीमा-धना नें खबर लागी तद आय टाकणै ले हाडीया फोड वहीर हुवा। सौ पावडा आधा गया तरै रावला सातबीसी रजपूत खडबडीया जुद्ध करण ने, तद ठाकरा कही—माफ करावो म्हे सारा ने देखीया। ठाकुरा आदमी भेज भीमा-धना नै पाछा बुलाया तद आप आ खाजरू रौ टाकणौ निजर कियौ। गोठ दो। ठाकुरा आने राख लीया सो भीम रै वालौ दूषै। रात रा छोरा नें कयौ होकौ भर। छोरा री नीद न उडी पण ठाकुरा महल पौढियाँ सुणियौ तद चुपकै सै आय होकौ भर हाजर करीयौ। तद भीम छोरा रै भरोसै कोरडौ वायौ। ठाकुरा रै लागो। तद ठाकुरा कही 'कसूर माफ करावौ। मैल ऊपर सू आयौ इतरै जेज हुई।' तद भीमसीह पिछाणिया खुद ठाकुर है। जद कही क माथौ देवा (देवा) इतरै मत पडावाडौ। फेर आपस मे हेत चीत री वार्ताँ हुई। भीम माफी मागी।

जोधपुर गढ माथै मुकनदासजी नै छिपीयै ऊदावत ठा० परतापसीहजी मारीया तद भीम-धनौ सिनान करण गा हा पण पाछा आय गढ माथै लोहा पोल रा किमाड तो भेटी सूं तोड धनौ काम आयौ ने छिपियै ठा. मार भीम मारीजीयौ। साख रा दोहा घणा है पण अठै एक लिखूं। दो०—

आजूणी अधरात महलज रूंनी मुकन री।
पातल री परभात भली रूवाई भीमडा ।।1।।

इण नै सहनता कहै- सो डाकी ठाकुर तौ सहनता कर राजपूता रा माथा लेवै वा प्राण लेवै ने डाकण दीठ चलाय निजर सूं प्राण लै, माता जुद्ध मे जाता

कहै म्हारा हाचल चूगियौ है सौ लजाजे मती , लुगाई बिलिया देखाय कहै–चूडा री लाज राखजो।

प्रण—(क्यूंकि) आ विरुद्ध बात है। लुगाई खामद रौ मरणौ की कर चावै ? उत्तर—सूरवीर पुरसा रो और अवधूत सामिया रौ मत एक होवै है। सामी र ही जीवण री आस न होवै। सामी मोक्ष चाहै। वीर जस चावै है। इण सारु वीर धन है। स्त्री रा वचन है—धण पण वलय बताय- चूडारी लाज राखजो। साखरो दो०—

तू मत भागै बल्लहा, तो भागा मो खोड।
साईनी ठठ्ठा करै, दे ताली मुख मोड ।।

इण तरै वीर स्त्रिया जुद्ध मै मरणौ श्रेष्ठ गिणै, क्यूकि आप पती लारै सत कर वैकुठ दिव्य भोग भोगै-और वसरी सोभा होवै। तिणसू पुनः स्पष्ट अर्थ- डाकी ठाकर सहण कर रजपूता नै खावै,लुगाई चूडारी लाज भलाय नै खावै। दीपक अलकार ।।इ ।।

सहणी सबरी हू सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणौ पूत सम, वलय लजाणौ नाह ।।15।।

वीराङ्गना की उक्ति सखी के प्रति–

व्याख्या–हे सखी। मैं और सब कुछ तो सहन कर सकती हूँ, केवल दो उलटी (मर्यादा-विरुद्ध अथवा वीरोचित कुल-परपरा के विपरीत) बातें ही मेरे हृदय के लिए समान रूपेण दाहकारी हैं। एक तो दूध को लजाने वाला पुत्र और दूसरा चूडे को लजाने वाला पति ! अर्थात् कायर पुत्र व कायर पति के कारण क्रमशः अपने सुहाग और मातृत्व के लाछित होने का सताप ही मैं नही सह सकती।

अन्यार्थ—दोहे के पूर्वार्द्ध के द्वितीय चरण 'दो उर · दाहे' का अर्थ यो भी किया जा सकता है कि 'दो बाते मेरे मे उलटी है'। वे ये कि मै कायर पुत्र और कायर पति के आचरण को सहन नही कर सकती। भाव यह कि पुत्र व पति को सभी स्त्रियाँ चाहती है, परन्तु मुझ मे ये दो बातें उलटी है कि मै कायर पुत्र और कायर पति को फूटी आँखो भी नही देख सकती। इनके युद्ध-पलायन से उत्पन्न यत्रणा मेरे लिए सर्वथा असह्य है ; हृदय को जलाने वाली है।

हमारे विचार से प्रथम अर्थ अधिक सगत है, जिसमे दो उलटी, अर्थात् मर्यादा-विरुद्ध बातो की असह्यता का द्योतन करना ही कवि का उद्देश्य जान पड़ता है।

श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि सपादको ने इसके चार अर्थ प्रस्तुत किए हैं, तथापि मूल अर्थ अस्पष्ट ही रह गया है। कवि द्वारा शब्दानुक्रम मे व्यत्यय ही इस अस्पष्टता का हेतु है।

शब्दार्थ—**सबरी**=सब कुछ। **उलटी**=मर्यादाविरुद्ध , वीरोचित कुल-परपरा के विपरीत। सूर्यमल्ल ने वश भास्कर मे इसका इसी अर्थ मे प्रयोग किया है और वही अर्थ यहाँ उद्दिष्ट है। यथाः—

मुणियो धव जीवण मरण, है राणी हरि हाथ।[1]
है अपजस उलटी हुवाँ, सोपण छूटै साथ ॥13॥

श्री डा० सहलजी आदि सपादको ने इसके जो 'उलट देने वाली' व 'उमड पडी' आदि अर्थ किए हैं, वे निराधार हैं। राजस्थानी टीकाकार का अर्थ भी मूल से हटकर है।

दाह=दाहकारी , उत्ताप । **सम**=समानरूपेण। **नाह**=पति , स्वामी (स. नाथ) ।

राजस्थानी टीका—कोई बीर प्रकृती वाली स्त्री कहै है-हे सखी! हूँ सारी वाता री सहण वाली हू, म्हारी डावडी ही रीस मैं आय कुछ कहै तो सह लेउ सो सासू नणद री तो सहूँई सहू पण दोय वाता म्हारै माहै उलटी है ने दाह ही उलटी है। वे काई-कै झगडा मैं म्हारौ पुत्र सत्रुवा सू डरतौ न्हास जाय तौ-जगत नें तौ बेटो मरण री दाह हुँ है नें म्हनें भागल होय म्हारौ दूध लजावै तो उण रा जीवण रौ हरक नही आवै नें आ जाणू आज बेटौ मर गयो ने धणी झगडा मे भाग म्हारा बिलीया लजावै तो धणीरा मरणा रौ सोच होवै—आज म्हारौ धणी झगडा मे भागौ नही, मरगौ। जीवतौ रहण रौ हरक नही आवै। इण वासतै अै दोय दाहा उलटी है ॥इ.॥

जे खल़ भग्गा तो सखी, मोताहल़ सज थाल़।
निज भग्गा तो नाह रौ, साथ न सूनो टाल़ ॥16॥

व्याख्या—हे सखी! यदि शत्रुपक्ष के लोग भगे हो तो तू मोतियो से थाल सजा (मै प्रियतम की आरती उतारूँगी क्योकि वे निश्चय ही विजयी हुए हैं-शत्रुओ का भागना जिसका अनिवार्य परिणाम है) और यदि अपने ही लोग भगे हो तो प्राणनाथ का साथ बिछुडने न दे (अर्थात् मेरे सती होने की तैयारी कर, क्योकि स्वपक्ष के लोगो का भागना तभी सभव है, जब मेरे शूरवीर स्वामी वीरगति को प्राप्त हुए हो)।

इसमे अपने शूरवीर पति के प्रति वीरागना के स्नेहभरे आत्म-विश्वास की अत्यन्त मार्मिक एवं ध्वन्यात्मक व्यंजना हुई है।

---

1. वंशभास्कर : सप्तम राशि, एकादश मयूख, पृष्ठ 2677.

शब्दार्थ—जे = यदि , जो । खल़ = शत्रु (स. खल = दुष्ट)। डिंगल काव्यो में 'खल' शब्द प्रायः शत्रु के अर्थ मे ही प्रयोग-रूढ होगया है । यथाः—

पवारां सदन वरमाल़ सूं पूजियौ,[1]
खल़ा किरमाल सूं पूजियौ खेत ।

भग्गा = भागे । मोताहल = मोती (स. मुक्ताफल) । निज = स्वपक्ष के लोग । साथ न · टाल़ = साथ बिछुडने न दे । अर्थात् मुझे भी उनके साथ सहगमन करने दे।

विशेष—राजस्थानी टीका मे दिए गए पाठ मे उपर्युक्त दोहे के चतुर्थ चरण मे 'साथ न' शब्द एकात्मक ('साथन') है, किन्तु हमे अर्थ को दृष्टि से इसका विश्लिष्ट रूप 'साथ न' ही शुद्ध प्रतीत होता है, जिसे अन्य सपादको ने भी स्वीकार किया है । फलतः यहाँ हमने वही पाठ माना है ।

राजस्थानी टीकाकार ने दोहे के चतुर्थ चरण मे आए 'सून्न टाल़' की विविध व्याख्याए प्रस्तुत की हैं, जिन पर टिप्पणी अनावश्यक है । हम उनसे सहमत नही ।

इस दोहे का भाव आचार्य हेमचद्र के निम्न अपभ्र श दोहे से तुलनीय है.—

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।[2]
अह भग्गा अम्हह तणा तो तें मारिअडेण ।।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री वाक्य—जे खल (दुसमणो) ने म्हारै पती जुद्ध मे भगाय दीधा तो तौ हे सखी ! मोतीया रो थाल़ सज (तयार कर) सो वधाय नै लेवसा और जो निज-भगा, आप पती ही ज सत्रुआ सूं पराजै (भाग) आया है तो तौ हू पती रौ साथ देऊँ नही । अरथात् अठै न्यारी रहसूं और परलोक रौ साथ सत्तयिण भागल लारै करूँ नही सो पती भागौ तौ साथन सून्न टाल; वारा बेटा रै भेला रहण विनांवा नें साथ नही, अर्थात हूं पती रै साथे इण सरीर में रहूँ नही ।

दूजौ अरथ—निज पती भगा तो मृत्यु रै समै सत करनें साथ खामन्द रो करू नही सून्न टाल़ बेटा रौ भरोसौ है। म्हारो दूध पीयौ है । जुद्ध मे मरसी तद इण लारै सत्य कर मा सती कहावसू। इण सारू नाह (धणी) रौ साथ नही । सून्न टाल़ = लडका टाल़, अर्थात लडका लार सत्य करसूं ।।इ.।।

हथल़ेवै ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय ।
लाखा बाता हेकलो, चूड़ौ मो न लजाय ।।17।।

व्याख्या—हे माँ! हथलेवे (पाणिग्रहण) के अवसर पर ही तलवार की मूठ पकड़ने से उनकी हथेली मे पड़े चिह्न के जो मेरा हाथ लगा, उसीसे मै जान गई कि

---

1. गीत पाबू राठोड रौ ; कविराजा बांकीदास रौ कियौ ।
2. अपभ्रंश व्याकरण ; हेमचन्द्राचार्य ।

कि मेरे शूरवीर पति युद्ध मे अकेले पडने पर भी लाखो बातो (कदापि) मेरे चूडे को लज्जित न ही करेंगे (अर्थात् युद्ध मे पीठ दिखाकर मेरे सुहाग को लाछित नही करेंगे)।

शब्दार्थ—हथल़ेवे = पाणिग्रहण के अवसर पर। सप्तपदी के समय पति द्वारा पत्नी के हाथ को अपने हाथ मे लिए जाने को राजस्थानी मे 'हथलेवौ जोडणौ' कहते हैं। **किण** = (स. किण) चिह्न; किसी चीज के निरन्तर उपयोग करने या रगड लगने से त्वचा पर पडने वाला निशान। इसे राजस्थानी मे 'आटण' (स. आकुञ्चन) भी कहते हैं। शूरवीर पति बचपन मे ही असि-सचालन करता रहा है। अतः उसकी हथेली मे तलवार की मूठ का निशान पडना स्वाभाविक है। पाणिग्रहण के अवसर पर पत्नी ने कर-स्पर्श से ही यह जान लिया कि उसका पति शूरवीर है, तलवार का धनी है, जो उसके चूडे को कभी लज्जित नही करेगा। वीरागना को और क्या चाहिए! प्रयोग का उदाहरण:—

ध्वज कुलिश अंकुश कंज युत बन फिरत कटक किन लहे।[1]

विलग्गा = लगने पर, स्पर्श होने पर (स. विलग्न)। **माय** = माँ। **लाखां बातां** = कदापि; राजस्थानी मुहावरा है, जिसका अर्थ है चाहे जो भी हो; निश्चय ही। उदाहरण—'चारण वरण सकट सुणै लाख वात अ जल न ले।[2]

राजस्थानी टीका—वीर पुरस री स्त्री कहै है हे माता। हथलेवा मे हाथ देता ही मैं नेहचै (निश्चै) ही आ वात आछी तरह समझली क्यूं कि रात दिन तरवार कनै रहणा सू हाथ मे तरवार री मूठ रा आटण पड गया है, तौ लाख बात ही म्हारौ एकलो रौ चूडौ नही लेजासी क्योंकि बालपणा सू ही अभ्यास तरवार रो है सो धणी जणियारा चूडा साथे ले जासी। अर्थात् आप एकलौ मरनै फकत म्हानै हीज विधवा पणौ नही देसी, धणी जणीयां विधवा हुसी तद म्हारौ ही चूडौ लेजासी। चूडा रौ दूसरौ प्रयोजन लेजावणौ सो हू सती होवसू सो चूडा सहत साथे लेजासी। इणी तरै सत्रु स्त्रीया ही सतिया होय साथे जासी ॥इ.॥

समली और निसंक भख, जबुक राह म जाह।
पण धण रौ किम पेखही, नयण विणट्ठा नाह ॥18॥

व्याख्या—हे चील! तू निश्शक होकर मेरे पति के अन्य अगो का भक्षण कर, किन्तु शृगाल की रीति का अनुसरण न कर। अर्थात् शृगाल के समान पहले इनकी आँखें न निकाल, क्योंकि नेत्र-विहीन होने पर मेरे प्राणनाथ अपनी प्रिया का सती-व्रत-पालन कैसे देख सकेंगे?

---

1. तुलसी।
1. पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत, पृ. 21

यहाँ यदि पति घायल व मरणासन्न अवस्था मे रणक्षेत्र मे पडा है तब तो वीर-पत्नी के कथन का आशय यह है कि उसका पति जीते जी उसके सती-धर्म-निर्वाह हेतु सोलह शृगार कर सज्जित होने का दृश्य अपनी आँखो देखले। यदि यह वर्णन वीरगति-प्राप्त पति का है, तो वीरागना यह उत्प्रेक्षा करती है मानो पति के शव की खुली आँखें भी उसके सती-व्रत-पालन का दृश्य देखकर प्रसन्न होगी। उक्त दोनो ही रूपो मे प्रसंगोद्भावना कर व्याख्या की जा सकती है।

शब्दार्थ—**समली**=चील। **निसंक**=निश्शक, बिना सकोच। **भख**=खा, भक्षण कर। **जबुक**=गीदड, सियार। शृगाल के विषय मे प्रसिद्ध है कि वह सबसे पहले शव की आँखें निकालता है। इसका कारण राजस्थानी टीकाकार ने यह दिया है कि शारीरिक अ गो मे आँखें सर्वाधिक कोमल होती हैं। सियार एक कायर जतु है। अतः वह पहले आँखों का ही भक्षण करता है। परन्तु, हमारे विचार से इस रूढि का मूल वीर के तेजस्वी व्यक्तित्व की व्यजना मे है। मरणोपरात भी वीर के नेत्रो का तेज मंद नही होता। अतः सियार मन ही मन मानो उनसे सशकित व भयभीत रहने के कारण शव का भक्षण नही कर पाता। फलतः वह पहले उन्ही की ओर बढता है ताकि उन्हे खा लेने के बाद निश्शक होकर शव के शेष अ गो का भक्षण करे। मरने पर भी वीर के नेत्रो तथा तनी हुई मूँछो को देखकर, सियार-गृद्धादि के डरने का वर्णन काव्य मे पारम्परिक है। यथा, क्यामखाँरासा की ये पक्तियाँ देखिए—

खुले देख द्रिग सुभट के, डरपें गिर्भ सियार।[1]
बिकट लगै ह्वबै निकट, जो मरि गये मुछार॥

अतः सियार के पहले आँखें भक्षण करने की रूढ़ि का मर्म इसी सदर्भ मे ग्रहण करना उचित होगा।

श्री डा. सहल जी व स्वामी जी ने अपने द्वारा सपादित सस्करणो मे यहाँ 'जंबुक' के स्थान पर 'अ बक' पाठ माना है, जो युक्त नही लगता। तद्विपरीत हमे राजस्थानी टीकाकार द्वारा गृहीत पाठ 'जंबुक' ही सगत लगता है, जो वैण सगाई तथा काव्य रूढ़ि–दोनो से पुष्ट है।

राह=रीति, मार्ग, परिपाटी। **म**=मत, नही (सं. मा)। **पण**=प्रण; 'र' का लोप, प्राकृत व अपभ्रंश के समान् राजस्थानी मे भी ऐसा होता है, यथा 'व्रण' के स्थान पर 'बण'—'माता का बण' जैसे प्रयोग। **धण**=पत्नी। **किम**=कैसे! **पेखही**=देखेगा (स. प्र+ईक्ष)। **नयण-विणट्ठा**=नेत्र-विहीन। **नाह**=पति (सं. नाथ)।

---

1. क्याम खा रासा; कवि जान-कृत, पृष्ठ 78, स. डा. दशरथ शर्मा, श्री अगरचंद नाहटा व श्री भँवरलाल नाहटा।

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरष री वीर स्त्री रा वचन है, सँवली प्रतै-आपरौ पती जुद्ध मे मारीज नै पडियौ और आप अंतरीस मे पती रा दरसण करण ने गई है। तठै पती रा सव (मृतक सरीर) ऊपरै सवली नै बैठी देख कहै है हे सवली! और सरीर तो थू निसक खा, पण जम्बुक-सियाला री राह (वाट) मत वहै—इणारौ कारण ओ है के-स्यांल कायर जीव है सो करडौ काम कर सकै नही नै सुख सूं होवै सौ करै—काई, कै सरीर रा वीर री भुजाओ, छाती आदी कठोर वज्र जेडा है, फटै नही, तद आख आदि कवली चीजा सुख सूं खाई जै—वे खावै सो ओ तो नीच कायरा रौ काम है। तूं तौ सकती रौ रूप वीर जाती है सो हे सवली! आखिया कंवली जांण मत खाये। कारण, कै म्हारै पती सूं प्रण (वचन) करीयोडो हो कै आपनें एकला छोडू नही। आप जुद्ध मे मारीज सौ तो हू लारै सत करसूं सो आज ओ मोकौ है। तू आख खाय जासी तौ नैण-आख विणट्ठो-विनां म्हारौ प्रण कीकर देखैला? इण सारू आखीया नही खाण रौ कहे है ॥१८॥

विण दामा विलसै सदा, दामा दुर्लभ नाग ।
न्याय भडा घर नारियॉ, चूडो पोत सुहाग ॥19॥

व्याख्या—जो शूरवीर मूल्य देने पर भी दुर्लभ (अप्राप्य) हाथियो का बिना मोल उपभोग करते हैं (अपने बाहुबल द्वारा शत्रुओ से छीन कर), उनके घरो मे नारियो के सौभाग्यालकरण के रूप मे यदि गजमुक्ताओ का कठहार तथा गजदतो का चूडा हो, तो यह सर्वथा उचित ही है।

शब्दार्थ—**विण** = बिना। **दामां** = दामो से, मोल के। **विलसै** = विलास या उपभोग करते हैं। **दुर्लभ** = दुर्लभ, अप्राप्य। **नाग** = हाथी। **न्याय** = उचित। **चूडो** = चूडा (हाथी दात का)। **पोत** = टेवटे मे पिरोए जाने वाले छोटे मोती या 'चीड।' यहाँ गजमोतियो का कठहार।

विशेष—पोत (चीड की कठी, 'टेवटा' या तिमणियां) और चूडा-स्त्रियो के दो प्रसिद्ध सुहाग-चिह्न हैं। सूर्यमल्ल को नारी के सौभाग्यालकरणो मे ये दो विशेष प्रिय हैं। वशभास्कर मे भी उन्होने इनका बहुशः उल्लेख किया है—

कोन सुहागिनि कहहु पोत, चूरी बल पावत।[1]

राजस्थानी टीका—कवी कहै है कि नाग-हाथी सो भागवानां ने दाम-रूपिय्या देण सूं मुसकल हाथे आवै वे हाथी वीर पुरष बिना दामा विना रुपिया दीधा दुसमणा सू खोसलै है नै विलसै, सुख लेवै है। तिका वीर पुरषा री स्त्रियां रै चुडै और प्रोत = गलै बाधण रा तिमणीया री चीडा सू ही सुहाग न्याय है। अरथात्

1. वशभास्कर : पचमराशि, त्रिशमयूख, पृष्ठ 2089।

कायर सू ब कदरजाँ रुपिया भेला कीधा है। प्रजा रौ खू'न चूसनै ग्रौर वारां गहरणा कराया है—परण वे गहरणा जिरण तरह हाथी विना दामा लिया त्यू लेता वीरा नै जेज लागै नही सो चूडौ तो होथियारा दाता रौ ने चीडा हाथिया रै कु भस्थल रा मोतिया री जिरण सू हाथिया रौ सपूरण सुख वीर पुरष हीज लेवै है। ग्रौर चूडा ने प्रोत रौ सुहाग वाहीज वीर पुरषा री ग्ररधगा वारौ न्याय है क्यू कि सारी कमाई पती री तरवार री है। चूडौ गल प्रोत रा मौती ग्रादि ॥इ.॥

काय कलाली छल कियौ, सेज रचावरण रग ।
फूल दुबारै छाकियौ, चीतै चौगुरण जंग ॥20॥

व्याख्या—ग्ररी कलालिन ! तूने मेरे साथ यह क्या छल किया ? मैने तो सेज का रंग रचाने हेतु (रति-क्रीडा का ग्रानन्द लेने हेतु) तेरे यहाँ से दो बार की निकाली ग्रत्यधिक मादक मदिरा मँगवा कर उन्हे पिलाई थी [परन्तु यहाँ तो बात उलटी हो गई !] तेरी बढिया शराब के नशे मे मस्त हो वे [मेरे साथ रति क्रीडा मे लीन होने की ग्रपेक्षा] उलटे युद्ध का ही चौगुना स्मरण कर रहे है ! तेरी शराब ने मेरी सेज का मजा ही किरकिरा कर दिया।

[ध्वनि यह है कि वीर पुरुष प्रकृति से ही पराक्रमी ग्रौर युद्ध-प्रेमी होता है—विषय-भोगी ग्रौर विलासी नही। फलतः शराब के नशे मे चूर होकर भी वह ग्रपनी वीर-प्रकृत्यानुसार रणागण मे जूझने की ही इच्छा करता है—विषय-वासना मे लीन होने की नही। पत्नी ने सोचा था कि उसका शूरवीर स्वामी मदिरा के हल्के-मीठे नशे मे उन्मत्त होकर उसे रतिक्रीडा का ग्रानन्द देगा—परन्तु वह शूरवीर तो ग्रपने वीर स्वभावानुसार मदोन्मत्त हो उलटे युद्ध का चौगुना स्मरण करने लगा, जिसके फलस्वरूप सेज का सारा मजा ही किरकिरा होगया एव बेचारी कलालिन को उपालभ की भागिनी होना पडा।]

प्रस्तुत दोहा कवि की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ग्र तर्दृष्टि का परिचायक है।

शब्दार्थ—काय=क्या। **कलाली**=शराब बेचने वाली (स॰ कल्यापालिका) **सेज**=शय्या, पर्य क, यहाँ पति के साथ रति-क्रीडा के ग्रानन्द से तात्पर्य हैं। **रचावण रंग**=रग रचाने हेतु, मजा लूटने हेतु। **फूल**=उत्तम कोटि की मदिरा।

उदाहरण—

किया काचा ग्रमल गजन रा कलोधर,[1]
दुरत गत न पीधो फूल दारू।

दुबारै=दो बार की खीची हुई ग्रत्यधिक प्रभावकारी व मादक मदिरा।

---

1. गीत महाराजा जसवतसिह रौ : प्रा. रा. गी. स., भाग 2, पृष्ठ 110

उदाहरण:—

1. पनाँ नेह छक पूर, दुफल छक फूल दुबाराँ [1]

2 सजै तिनपै असवार कजाक, छके उन्मत दुबारनि छाक।[2]

छाकियौ = छका हुआ, मदमस्त। **चीतै** = स्मरण करता है। **चौगुण** = चौगुना। **जंग** = युद्ध।

विशेष—श्री डा० सहल जी आदि सपादको ने इस दोहे के द्वितीय चरण मे 'सेज गुमावण रग' पाठ माना है, परन्तु टीका मे 'सेज रचावण रग' पाठ है। हमने इसे ही स्वीकार किया है।

राजस्थानी टीका—वीर पुरुष री स्त्रीरा वचन है—हे कलाली! म्हारै पती ने सेझ मे रग-रमण वासतै म्है दारू-फूल तथा दुबारो दियौ सौ रग री नें ऐस री वात नही ने दारू लेता ही झगडा करण सारू वैर याद करण लागा-सादा थका करता जिकण सू चौगणा-सो ओ कलाली पण रो म्हाँसूं छल कियौ। सारास—वीर पुरखा री प्रकृती विषय दुरवासना सू हटीयोडी रहै है नें आपरा पुराणा वैर लेवणा रात दिन घाट घड मे वणिया रहै हैं सो आ प्रकृती भूलाय विषै सुख लेण सारू दारू दीधौ पण इसौ सूरवीर सो उण समे वैर होज याद किया, पण विषय मे लपट न हुऔ ॥२०॥

भड घोडा मुँहगा थिया, एकण झाट उडंत।
भड़ घोडा रा भामणा, जेथ जुडीजै कत ॥21॥

व्याख्या—एक वीराङ्गना द्वारा अपने वीर पति के शौर्य की प्रशसा.—मेरे शूरवीर स्वामी के साथ एक भिडन्त (युद्ध) होते ही योद्धा और घोडे मँहगे होगए। (अर्थात् मेरे अतुल शूरवीर स्वामी के साथ शत्रुसेना की एक ही भयकर मुठभेड मे अनेक योद्धा और घोडे मारे गये, जिसके फलस्वरूप दोनो की ही कमी होगई एवं वे मँहगे हो गए,)। क्यो न हों! जहाँ मेरे वीर स्वामी भिडते हैं—वहाँ योद्धाओ और घोडो की बलैयाँ ली जाती है। अर्थात् उनकी पूछ होने लगती है।

शब्दार्थ—**भड़** = योद्धा। **मुँहगा** = मँहगे (स० महार्घ)। **थिया** = होगए। **एकण** = एक ही। **झाट** = भिडन्त; टक्कर, युद्ध। उदाहरण—

1. घेरौ घेरौ सह कहै, मु हडै चढै न कोय।[3]
डाढालै री झाट मे, सारा रहिया जोय॥

---

1. पना वीरमदेव की वार्ता, पृ० 123
2. लावारासा: पृ. 66
3. डाढाला सूर री वात: राज. बात सग्रह, पृ. 145, सं० डा. नारायणसिह भाटी।

2. तपे देश खाबड तणौं, झलै न को खग झाट ।[1]

3. म्हारी राड छै काल री झाट सी, राणोजी अरु सुखौ अै भी म्हा सूं टालौ दै छै ।[2]

उडंत=उडते ही . होते ही । **भामणा**=वारणा, बलैया । स्त्रियो द्वारा अपने दोनो हाथो को मुँह तक लाकर 'वारी वारी जाऊं' कहते हुए 'वारणा' (बलैया) लेने की प्रणाली । उदा.

मुंह आगलि 'गजसाह' पराक्रम भामणा ।[3]
परिहाँ ऐसा पूत सपूत क नित वधामणा ।।

जेथ=(सं. यत्र) जहाँ । **जुड़ीजै**=लडते या भिडते हैं । उदाहरण—

दल बळा जुड़तां, नगारा बाजिया,[4]
जाण कई परभात गहरी सुर गाजिया ।

टीकाकार ने 'जुडीजै'' मे 'जै' को विश्लिष्ट कर अर्थ किया है, जो हमे युक्त नही लगता ।

राजस्थानी टीका—एक वीर पतनी आपरा पती रौ गरभ कर रही है। कोई सिरदार रै लघु भाई विखौ कर नीकलियौ सो ठिकाणा ने कायल कीधौ। ठिकाणा रौ मालक घोडा राजपूता नै वेग्रद राखतौ सो इण सारू उणरी स्त्री कह रही है-हे सखियां ! अठै ठिकाणा मे भड ने घोडा सुहगा हा सो एक आदमी सू झाट उडता (युद्ध होता) भड ने घोडा मुहगा होय गया नें वे मुहगा भड घोडा है, जिकारा अब वे ही ज सिरदार भामणा (वारणा) लेवै है, पण जेथ-जठै वाही भडां घोडा मे जै-फतै तो म्हारा ही कत (धणी) ने मिली है ।।इ०।।

झूठै हाकै हुलसता, पीव वधाईदार ।
जागौ सिव साँचौ कियो, घूमै मैगळ बार ।। 22।।

प्रसंग—किसी शत्रु-सेना द्वारा रातोरात वीर पुरुष का गढ घेर लिए जाने पर उसकी वीराङ्गना हर्षित हो अपने पति से कहती है:—

व्याख्या—हे प्रियतम ! आप मिथ्या शोरगुल को ही युद्धारभ का सूचक कोलाहल समझ कर हर्षित हो उठते थे । लीजिए, आज मैं सचमुच आपको युद्ध को

---

1. पाबू प्रकाश (बडा), आशिया मोडजी कृत ; पृ० 20 :
2. प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघ री वात , रा. सा. सं.; भाग 2
3. गजगुणरूपकबध ; पृष्ठ 33
4. महाराजा पदमसिंह री वात ।

बधाई दे रही हूँ (आपके मनोवाछित–युद्ध की अग्रिम सूचना देने वाली बधाईदार होगई हूँ)। उठिए, भगवान् शकर ने आज वह (युद्ध) सत्य कर दिया है जिसके फलस्वरूप द्वार पर (शत्रुओ के) मस्त हाथी झूम रहे है। (इनका स्वागत कीजिए। युद्धार्थ प्रस्तुत होजाइए)।

शब्दार्थ— **हाकै** = युद्धारभ के सूचक कोलाहल से, युद्ध छिडने पर होने वाले हल्ले या शोर से। उदा० अरु गढ मै **हाकौ** हुवौ तिणमै कानौं पण भगडौ कर काम आयौ।[1] **हुलसता** = प्रसन्न होते (स० उल्लसित)। **बधाईदार** = बधाई देने वाला, किसी हर्ष-भरे प्रसग या शुभ कार्य की सूचना देने वाला बधाईदार कहलाता है। **सिव** = शकर, युद्ध के अधिष्ठाता देवता, जिनके नाम का स्मरण कर ('हर हर महादेव') योद्धा युद्धारभ करते थे तथा सतियाँ सती होती थी—'ससि–वयणी सिव–सिव करइ पइसइ पावक माइ।'[2] यहाँ 'जागो सिव साँचौ कियौ' से वीराङ्गना के अ तस्थ मनोल्लास की व्यजना होती है, जो युद्ध छिडने को शिव द्वारा प्रदत्त एक अमूल्य वरदान समझती है। **घूमै** = (आक्रमण की मुद्रा मे) मस्ती से झूम रहे है। **मैगल** = मदमत्त या मस्त हाथी। यहाँ शत्रुओ के हाथियो से अभिप्राय है, जो योद्धा के द्वार पर आ खडे हुए हैं। **बार** = दरवाजे पर (स द्वार)।

विशेष—इस दोहे मे कवि ने एक वीर पुरुष के मनोभावो की अति सहज एव साकेतिक व्यजना की है। वीर व्यक्ति युद्ध के लिए सतत उल्लसित रहता है। बधाईदारो द्वारा युद्ध छिडने की झूठी सूचना पाने से ही उसका उल्लसित होना यह सूचित करता है कि युद्ध उसके लिए अपनी मनोरथ–पूर्ति का ही एक सुखद अवसर है। इससे उसकी अन्तर्निहित वीर–प्रकृति का पता चलता है। युद्ध की सूचना को 'बधाई' के रूप मे लेना ही इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

दूसरे, उसकी पत्नी भी वीराङ्गना है। वह अपने पति को युद्ध की स्वय सूचना देने मे आनन्दानुभव करती है। उसका युद्ध को शिव का कृपापूर्ण वरदान समझना उसकी वीर–मनोभावना का द्योतक है।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री आपरा पती ऊपरे अजाचक री कोई दुसमणा री फौज रातोरात आय गढ घेर लियो सो वीर पतनी फौज देखने पती ने कह रही है—हे पती! आप जुद्ध सारू झूठी ही हाकौ सुण ने हुलसता हा सो हे पती! आज आ हुईज यधाईदार हू–तथा वधाईदार रे झूठे हाकै ही जुद्ध सारू हुलसता राजी होवता हा तौ ऊठौ, आज सिव (महादेव) साचौ कर दीयौ है। अै देखौ दुसमणा रा

---

1. दयालदास री ख्यात, पृ० 41
2 अचलदास खीची री वचनिका, पृ० 41, स श्री दीनानाथ खत्री।

हाथी दरवाजै घूम रया हे । इण मे स्त्री रौ दुसमण सू नही डरणौ, पती मरण रौ सोक नही करणौ, सती होवणो जतावे है, ने पती रो झूठै हाकै ही हुलसणौ सूरवीर पणा रौ बोध करावै है ।।इ०।।

आज सवेलौ जागणौ, कसियौ चर तोखार ।
प्यारा मिलिया पाहुणा, मिजमानी री बार ।।23।।

प्रसंग—वीराङ्गना की अपने युद्धोद्यत वीर पति के प्रति उक्ति—

व्याख्या—आज सवेरे-सवेरे यह जागरण कैसा है ! सईस ने भी घोडे पर जीन कस कर उसे तैयार कर रखा है । ओह ! अब पता चला । आपके प्यारे मेहमान (शत्रु) आ पहुँचे है तथा उनके स्वागत (युद्ध) का अवसर उपस्थित हो गया है ।

शब्दार्थ—**सवेलौ**=सवेरे, बहुत जल्दी । **चर**=सईस, चरवादार । **तोखार**=घोडा (तुखार देश का घोडा) । **पाहुणा**=मेहमान (स प्रघुण) भावार्थ मे शत्रु । कवि को शत्रु के अर्थ मे 'पाहुने' का प्रयोग बहुत प्रिय है । उदा०—

'अर आपरी रजपूताँ उपेत पाहुणाँ रू तो मानण रो
दु दुभी दिवाइ बडे बेग साम्हो चलायो ।'[1]

मिजमानी=(फा० मेजबान से भाववाचक सज्ञा) आतिथ्य-सत्कार, भावार्थ मे युद्ध । **बार**=अवसर, समय ।

विशेष—सूर्यमल्ल वीरोचित परम्पराओ के गायक थे । वीर के पाहुने तथा उनका आतिथ्य-सत्कार भी वीरोचित परम्पराओ के अनुरूप ही होता है । सूर्यमल्ल की दृष्टि मे आगत शत्रु से वीरतापूर्वक लोहा लेना ही उसकी सच्ची 'मिझमानी' करना है । इस अर्थ मे कवि को 'मिझमानी' का प्रयोग बहुत प्रिय है, जिसमे वीरोचित व्यग्य गर्भित है । शत्रु जोश मे भरकर आक्रमण करने आया था— आगे वीर ने उसकी वैसी ही खातिरी कर दी ! वशभास्कर मे भी युद्ध-सदर्भ मे इसका प्रयोग हुआ है—

"पैला मैं पबिपात रै प्रमाण पूगता ही उठीरा भी कायर चल बिचल थिया अर सूर हूता तिके कवर दूदै **मझमानी मिलाइ** निहाल किया ।"[2]

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरा पती नै कह रही है—हे पती ! आज आपरौ वेगौ रात्री वदीत हुवा विना ही जागणौ और चर (चरवादार) घोडा नै वेगौ कसीयौ तिण सूं म्हने उनमान होवै है कै हे प्यारा ! कोई पाहुणा मिलिया है

1. वशभास्कर, पचम राशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 1842
2. वशभास्कर, षष्ट राशि, एकादशमयूख, पृ० 2327

(दुसमण आया है) ज्यानै अबै मिझमानी (जीमावण री) वार (जेभ) दीसै है-जीमावणौ सरआ सू प्रहाण करणौ । अठै लक्षण लक्षणा है ।

लक्षण-लक्षणा-लक्षण—व्याचारथ रौ बाध होय दूसरौ अरथ वाच्यार्थ रा सम्बन्ध सू होवै—जैसे उदा० 'गगाया घोष'—गगा मे गूजर वसै है—तौ गगा नाम पाणी रौ है, सो पाणी मे घर होवै नही, तद पाणी रै नेपड कारे सजोग नेडा पणा री सबध है, जिण सू जाण लीधो कि तट सू बोत नेडा घर है—तद पाणी मे क्यू कया तो पाणी मे जैडो ठडा पणौ, पवित्रपणौ है अैडो घरा मे ही हैं, जिण सू पाणी मे कया । अठै घर पाणी कैणा सू खडका माथे जाणिया, इणहीज तरै वैरी ने पामणा कया, सो पामणा नही दुसमण हे, और तरवारा सू कूटणा ने जीमावणौ कयौ सो जीमावणौ नही, मारणौ है ।।इति किंचित्।।

सुणता हाकौ सहज ही, कीधी जेज कधी न ।
नीदाळू अब छोडणा भाडाणा कुच पीन ।।24।।

प्रसंग--एक वीराङ्गना की नीद मे सोए अपने आलिंगन–बद्ध पति के प्रति उक्ति—

व्याख्या–[हे वीर स्वामिन् !] युद्ध का तनिक भी कोलाहल सुनकर आपने शत्रुओ से लोहा लेने मे कभी देर नही की । आज फिर यह विलम्ब क्यो ? हे निद्रालु ! अब तो प्रगाढ आलिगन मे बद्ध मेरे इन पुष्ट स्तनो को छोड दीजिए । अर्थात् कठोर आलिगन मे कसे मेरे उरजो को छोड कर युद्धार्थ प्रस्तुत होजाइए । [यहाँ नीदाळू से पति के आलस्य की नही, अपितु उसकी निर्भीकता एव निश्चिन्तता की व्यजना उद्दिष्ट है, जो शत्रु की तनिक भी चिन्ता किए बिना मस्त होकर सोता है । फलत 'नीदाळू' डिंगल–काव्यो मे वीर के लिए प्रशस्तिमूलक उपाधि के रूप मे प्रयुक्त हुआ है ।]

शब्दार्थ—**सुणता** = सुनते ही । **हाकौ** = युद्ध का कोलाहल । **कीधी** = की । **जेज** = देर । **कधीन** = कभी भी । **छोडणा** = छोडना ही है । **भीड़ाणा** = भिडे हुए, कठोर आलिगन मे बद्ध । **कुच**=स्तन । **पीन** = पुष्ट ।

विशेष—मध्ययुगीन राजस्थानी नारी की जीवन–धारा प्रेम और वीरता के युगल कूलो का स्पर्श करती हुई बही है । एक ओर वह अपने पति की अकशायिनी रही है, तो दूसरी ओर उसके पौरुष की प्रेरिका भी । जिस उमग मे भर वह अपने प्रियतम के साथ जीवन मे प्रणय–सेज पर विलसी है, उससे दूनी उमग से उसने अपने दिवगत पति के साथ अनल–सेज पर अभिसार किया है । वह पातिव्रत्य-प्रेम की पार्वती है, किन्तु उसकी रक्षा के लिए उसने छिन्नमस्ता का भी रूप धारण किया है । उसके

पत्नीत्व ने पुरुषों के पौरुष को अपने प्राणों के तेज से प्रदीप्त किया है, तो उसके मातृत्व ने शौर्य के स्रोत को अपनी स्तन्य-धारा से सदा सरसित रखा है। राग और विराग, शक्ति और शृंगार की पावन समष्टि राजस्थान की महिमामयी नारी को हमारा कोटि कोटि नमन!

राजस्थानी टीका—एक कठैई अजाणचकरा दुसमणा रा आवण रौ हाकौ हुवौ, तठै एक पतिव्रता वीर स्त्री विचार करै है—म्हारो पति सूरवीर है और जुद्ध करण रौ प्रण है—सो सहज रौ ही कोई चोर नार रौ हाकौ सुण जेझ न कीधी है नै आज दुसमण चढ आयो है, साचो हाकौ है सो पती रै तो दुसमणा सू जुद्ध करणौ औ नेम है ने म्हारै पतिव्रतापणा रौ नेम है कै पती ने नही जगावणौ सो आज नीदालू नीद मे है सो म्हारा पीन (मोटा-मोटा) कुच बाथ मे भीड सूतो है, तिणा सू अब छोडणौ न्यारौ करणौ। जगावू तो म्हारौ धरम जावे, नही जाऊँ (जगाऊँ) तो पती रौ धरम जावै हे, अब काई करणौ चाहिजै? ।।इति।।

पूजाणौ गज मोतिया, मीडाणौ कर मूझ।
बीजाणौ घण चामरा, है चूडौ बल तूझ।।25।।

प्रसंग—युद्धार्थ पति को विदा देती हुई वीराङ्गना कहती है—

व्याख्या—हे प्रियतम! जो गजमोतियो से पूजित हुआ है, जो मेरे हाथो मे सयत्न धारण कराया गया है (अथवा जिससे मेरे हाथ मडित-सुशोभित हुए है) तथा जो निरतर चँवरो की वायु से व्यजित हुआ है—ऐसा मेरा यह सुहागचिह्न चूडा आपको बल दे। अर्थात् इसकी लाज की रक्षा का ध्यान आपको समराङ्गण मे जूझने की शक्ति दे।

अन्तिम चरण का अर्थ यो भी किया जा सकता हे कि 'यह चूडा आपही के बल पर है, अर्थात् इसकी लाज आपही के शौर्य व पराक्रम पर निर्भर है।'

शब्दार्थ—**पूजाणौ** = पूजित हुआ है। सौभाग्यवती स्त्रिया चूडा धारण करते समय मागलिक विधान से उसकी पूजा करवाती है। चूकि पति शूरवीर हे, अत साधारण मोतियो की जगह उसकी वीराङ्गना का चूडा गजमोतियो से पूजित हुआ है। **मीडाणौ** = मसल कर हाथो मे चढाया गया, सयत्न धारण कराया गया। चूडा हाथ की नाप के अनुसार यथासभव तग व कसता हुआ ही पहना जाता है। फलत उसे चढाते समय ललनाओ के हाथ की मुट्ठी को किंचित् कस कर बन्द करते हुए तथा उसे मसल कर ही चढाया जाता है। मनिहारिने इस कला मे अत्यन्त निपुण हुआ करती है। **मूझ** = मेरा। **बीजाणौ** = व्यजित, दासियो द्वारा जिस पर निरन्तर चँवर डुलाए गए है, ऐसी राजोचित परिचर्या से गौरवान्वित। **घण** = प्रचुर। **चामरां** = चँवरो।

विशेष—डा० सहल जी आदि सपादको ने इस दोहे का अर्थ यो किया हे "हे पतिदेव ! गजमुक्ताओ से मैने आपकी पूजा की है, मुझ जैसी वीरबाला का आपने पाणिपीडन किया है. आदि ।" परन्तु यह अर्थ हमे सगत नही लगता । कारण, प्रस्तुत दोहे मे हमारे विचार से 'पूजाणौ', 'मीडाणौ', व 'बीजाणौ' सब चूडे के ही विशेषण है । अत इन्हे चूडे पर ही घटित कर अर्थ किया जाना चाहिए । यहाँ वीराङ्गना द्वारा अपने सुहागचिह्न चूडे की लाज रखने का ध्यान दिलाने हेतु उसकी पवित्रता व गरिमा का अनेक विशेषणो द्वारा द्योतन करने का अर्थ ही अधिक सगत व उद्दिष्ट प्रतीत होता है ।

राजस्थानी टीका--हे पती ! आपरै प्रताप सूं म्हारौ चूडौ गजमोतिया सू पूजीजियौ और म्हारा हाथ री चूडिया सू मीढीज गयौ । और तो सब होय गया पण वीजाणू–वीजणौ होवणौ चवरा रौ औ अबे आपरा वलै–बल सारू छै । प्रयोजन कि आप कोई राज दबाय राणी वणावौ सो छोकरिया ऊभी चवर करसी तिण सू चवरा रौ वायरौ आवणौ औ वीजणौ तथा दूसरौ वीजणा रौ अरथ-आप जुद्ध मे काम आवौ, हू सत करू पछै विमाण मे बैस स्वरग मे जासो जद अपछरावा–चमर करसी तिण रौ वायरौ लागसी औ वीजणौ हुसी । अबै वीजणौ करावणौ औ वलै आपरा वल सारू है ।।इ०।।

कर पुचकारे धण कहै, जाण धणी री जैत ।
नीराजण वाधावियौ, हू बलिहार कुमैत ।।26।।

व्याख्या—अपने स्वामी की विजय के समाचार सुन वीराङ्गना ने उल्लसित हो उसके अश्व की आरती उतारी तथा उसे अभिनदित कर प्यार से पुचकारती हुई थपथपा कर बोली—हे कुमैत ! मै तुझ पर बलिहारी हूँ ।

शब्दार्थ--**धण** = पत्नी । **जैत** = जीत । **नीराजण** = आरती । **वाधावियौ** = बधाया, अभिनदित किया । **कुमैत** = स्याही लिए लाल रग का घोड़ा । यहाँ सामान्य अश्व का पर्याय प्रतीत होता है ।

विशेष—मध्ययुगीन राजस्थान की युद्धप्रधान व्यवस्था मे अश्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है । वह योद्धाओ के जीवन–मरण का साथी था । फलत वे उसे अपने प्राणो से भी प्रिय समझते थे । वीरवर महाराणा प्रताप के यशस्वी एव स्वामिभक्त अश्व 'चेटक' का नाम कौन नही जानता ? राणा प्रताप उसे कितना प्यार करते थे, यह स्वामी गणेशपुरी–कृत एक डिंगल–छप्पय से विदित होगा, जो अश्व के प्रति निश्छल एव उत्कट प्रेम–व्यजना की दृष्टि से समूचे डिंगल–साहित्य मे अन्यतम है.—

नच्चन बेर निहारि, पुत्त कहि चारु प्यार चहि ।[1]
उहि छिन उमँगि उडात, कध धर हाथ भ्रात कहि ।।
बग्ग उठत रन रुप्पि, बप्प कहि अप्प विरुद वर ।
तात भ्रात सुत सोक, गजब त्रिक परिग अरिग गर ।।
कट्टिग न पैर कट्टिग यक्कत, कट्टिग मान निसान धन ।
हय मरिग नहिं न चेटक अहह, मरिग रान पत्ता सु मन ।।

अश्व–प्रेम का एक अन्य उदाहरण हमे 'जहाँगीरनामा' मे मिलता है। जहाँगीर ने आंबेर नरेश राजा मानसिह को एक घोडा भेट किया। उसे पाकर वे कितने प्रसन्न हुए इसका वर्णन करते हुए बादशाह जहाँगीर लिखता है,—

"उसी महीने की 15वी को हमने एक अपना सर्वश्रेष्ठ घोडा राजा मानसिंह को कृपा कर भेट दिया। इस घोडे को शाह अब्बास ने अन्य घोडो तथा योग्य भेंटो के साथ अपने एक विश्वासपात्र दास मनोचेहर के द्वारा गत सम्राट अकबर के पास भेजा था। इस घोडे की भेट मिलने से राजा इतना प्रसन्न हुआ जितनी एक राज्य मिलने से वह प्रसन्नता प्रगट न करता।"[2]

उपर्युक्त उद्धरणो के सदर्भ मे, रानियो द्वारा अश्वो की आरती उतारे जाने तथा उन पर न्योछावर होने मर्म को समझा जा सकता है।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री पती रे चढण रा मरजीदान घोडा ने हाथ सू पुचकार नै कह रही छै—अर आभी जाण रही छै कै म्हारा धणी री फतै इण ही ज घोडा रै प्रताप सू छै। इस वासतै कह रही छै कि हे घोडा! जिण थारी नीराजण री पूजा (दशरावा ने घोडा ने पूजै सो) करी है तिणरी हू बलीहारी हू ।।इ ।।

जग नगारा जाण रव, आण धगारा अंग ।
तग लियता तडियौ, तोनै रग तुरग ।।27।।

व्याख्या—युद्ध के नगाडो का शब्द सुनते ही तू अपने अग–अग म जोश भर तग खीचते–खीचते हिनहिनाकर नाच उठा। हे अश्व! तुझे रग है! (शाबाश है तेरी वीरोचित युयुत्सा को!)।

शब्दार्थ—**जाण** = सुन कर। **रव** = शब्द, घोष। **आण** = लाकर, भर कर। **धगारा** = जोश, ताव, वीर–स्फूर्ति, जिसका सचार होने पर अश्व उमगित हो उठता है। उदाहरण—

---

1. महाराणायशप्रकाश, पृष्ठ 132, स. ठा, भूरसिंह शेखावत, मलसीसर।
2. जहाँगीरनामा, अनु० व्रजरत्नदास, पृ० 213

लागूवां हजारां भोंज आवियौ धगारा लागौ,[1]
बाजता नगारा रासो राण रै वखत्त ।।

तथा —

मलेछा हीकीटे जगा, धगारां आणरे मूछा,[2]
ऊभो जगा जीते कलो भाण रे अनाण ।।

श्री हिगलाजदान जी इस शब्द को यहाँ आकाश के अर्थ मे ग्रहण करते है, जो हमे सगत नही लगता ।

तंग = घोडे की जीन कसने का चमडे का तस्मा । **लियंता** = लेते या कसते समय । **तंडियौ** = वीर दर्प से हिनहिना कर नाचने लगा । (स ताण्डव) । 'तडणौ' या 'ताडणौ' डिंगल-काव्यो मे नाचने व वीर-दर्प से बोलने, दोनो ही अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है । प्राय वृषभ की बोली के लिए इसका प्रयोग हुआ है । यथा.—

जद तू **ताडै** धवल जिम, तो **ताडणौ** प्रमाण ।[3]

तथा—

तोडर बाधे **त्राडियो**, गजबधी बलि-बड ।[4]

यहाँ वीरोल्लास से हिनहिनाकर नाचने का अर्थ उद्दिष्ट है ।

तोनै = तुझे । **रंग** - शाबाश । राजस्थानी मे किसी के द्वारा कोई स्तुत्य या वीरतापूर्ण कार्य किए जाने पर उसे 'रग है' ('शाबाश है') कहकर प्रशसित किया जाता है । इस भाव के दोहे 'रग रा दूहा' कहलाते है ।

यथा —

भालै कोतक भोण, बावन चौसट जस बकै ।[5]
रग है पाबू राण, वनड़ा गाया वाहरू ।।

तथा —

राव कहै जीती किधू तै मेवाड तमाम ।[6]
किरमाला धोकल कियौ, रग बगसीराम ।।

---

1 गीत राजा रायसिह झाला सादडी रौ प्रा० रा० गी० स० भाग 1, पृ० 147

2. गीत राठोड कर्मसेन रौ, खिडिया प्यारा रौ . प्रा० रा० गी० स०, भाग 7 पृ० 22,

3 बाँकीदास ग्रंथावली, भाग 1, पृ० 41.

4 गजगुणरूपकबध, पृ० 89.

5 पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत · पृ० 209

6 बात बगसीराम जी प्रोहित हीरां की रा० सा० स० भाग 3, पृ० 40 स० श्री गोस्वामिलक्ष्मीनारायण दीक्षित ।

तुरंग = अश्व ।

राजस्थानी टीका– कवी कहै जुद्ध रा नगारा री शबद सुण और सरीर धगारां आण सम्भ नै नग खाचता ही गरजना कर हीस करी । इसा तुरग नै घणा रग है ।।इ०।।

हू बलिहारी राणियां, थाल बजाणै दीह ।
बीद जमीरा जे जणै, साकल हीटा सीह ।।28।।

व्याख्या--मै उन रानियो के थाल बजाए जाने वाले, अर्थात् पुत्रजन्म के शुभ दिन पर बलिहारी हूँ, जो शृ खलाओ को तोड फैंकने वाले (या शृ खला-मुक्त) सिहो के समान रोषोन्मत, दुर्दम्य एव शूरवीर पृथ्वीपतियो को जन्म देती हैं । अर्थात् जो ऐसे नर-शार्दूलो को उत्पन्न करती है, जो अपने प्रचड बाहुबल एव उद्भट पराक्रम से इस पृथ्वी का निर्बाध एव निष्कटक उपभोग करते हैं ।

शब्दार्थ—हूं = मै । **थाल्""दीह** = थाल बजाए जाने वाले दिन अर्थात् पुत्रजन्म के दिन । पुत्रजन्म होने के दिन हर्षसूचक थाल बजाये जाने की प्रथा आज दिन तक विद्यमान हे । **बीद** = पति, स्वामी । डिंगल-काव्यो मे पृथ्वी को वधू तथा शूरवीर नराधिपो को उसका पनि मान कर वर्णन करने की परिपाटी रही है । पृथ्वी तो चिर कुमारी है एव जो शूरवीर होता है, वही इसका वलात् वरण कर उपभोग करता है ('वीर भोग्या वसु धरा')। इस आशय के वर्णन डिगल-काव्यो मे प्रचुर हुए है । **यथा** —

मार सार मारकां... इला हूवै आंपाणी ।[1]
मुहि खग्गा है-खुरा, जेह रक्खी ते माणी ।
घर केता वौलिया, कलह केताइ कुनारी ।
पुरख न परणी किणिह, आद जुग्गादि कुआरी ।
गढ लियण कोट मैवट्ट मे, कमधज दिखण मथण कली ।
महि तैंहिज मार मनावि इम, खेडेचा राउ खग-बली ।।

डा सहलजी आदि सपादको द्वारा सपादित कृति मे यहाँ 'बीर' पाठ माना गया है ।

जमी रा = पृथ्वी के । **जणै** = जन्म देती है, उत्पन्न करती है । **साकल् हीटा** = 1 शृ खलाओ को तोड फैकने वाले (हीटा = हेठ अर्थात् अवहेलना या तिरस्कार करने वाले) अर्थात् निर्बन्ध । अथवा, 2. शृ खलाओ से छूटे हुए, बधन-मुक्त । भावार्थ मे क्रुद्ध और भयकर । शृ खला से मुक्त हुआ सिह क्रुद्ध एव भयकर

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 107 107

होता है । अत डिंगल-काव्यो मे रोषोन्मत्त शूरवीर के शौर्य की व्यजना करने हेतु प्राय· बधन-मुक्त सिंह की उपमा दी गई है । यथा —

1 राघो वागो वीरवर, इका बैहु अबीह ।[1]
जुध जुटा इण विध जबर, साकल छूटा सीह ।।

2 साकला हूत नाहर किना बिछूटौ ।[2]
तगसिआ कासिपी किना त्रूटौ ।।

इसी भाँति एक अन्य डिंगल-गीत मे भी —

दिली साह दरगाह दो राह नर देखता,[3]
खीज साकल जडे सीह खूटौ ।

तदनुमार पक्ति का अर्थ होगा—'शृ खला मे छूटे हुए सिंह के समान दुर्दम्य एव रोषोन्मत्त पृथ्वीपतियो को जन्म देती है ।'

राजस्थानी टीका—कवी कहै है—इसी राणीया री हू बलीहारी जाऊ जिका छतीस बस राजपूत, जे राजपूत किसाक कि इण जमीरा वीद–धणी जिणिया है, अर जमीरी रुखाली करै है उणा रै जनम दिन मै भला ही थाल वाजीया है और झगडा ऊपरै किसाक है, जाणै साकल सू छूटोडा सीह होवै जिसा है ।।इ०।।

खोयो मैं घर मे अवट, कायर जबुक काम ।
सीहा केहा देसडा, जेथ रहै सो धाम ।।29।।

व्याख्या—मैंने घर मे ही घुसे रह कर अपनी आयु व्यर्थ खो दी, जो कायरो और गीदडो का काम है । वस्तुत मुझे तो सिह-धर्म का पालन कर अपने बाहुबल से नित्य नई भूमि को अधिकृत करना चाहिए था, जैसा कि कहा गया है, सिंहो के कौनसा देश और विदेश–वे तो जहाँ रहते है, वही उनका घर है ।

[तात्पर्य यह कि अपने घर मे ही आत्म-सतुष्ट हो सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करना शूरवीर का आदर्श नही है । उसे तो चाहिए कि सिंह के समान अपने पराक्रम से जहाँ इच्छा हो वही अपना प्रभुत्व स्थापित करके रहे ।]

---

1 वीरवाण, पृ० 9
2 गीत राठौड बलू गोपालदासोत रौ · 'राजस्थानी' (1) पृ० 72, स श्री नरोत्तमदास स्वामी ।
3 गीत लालसिंघ सोलकी रौ रा० वी० गी० सं० भाग 1, पृ० 156 स० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

शब्दार्थ—अवट = [1] आयु, जीवन 2 खड्डा अथवा शिकार की ओदी। राजस्थानी टीकाकार ने इसका अर्थ 'खड्डा' ('खाडौ') करते हुए व्याख्या की है। 'अवट' का अर्थ 'खड्डा' भी होता है, जैसाकि वशभास्कर मे स्वय कवि ने इस अर्थ मे इसका प्रयोग किया है—

सद्धिय **अवट** सिकार सुकवि स्वतुपक सम्मेलन[1]

परन्तु यहाँ 'अवट' आयु के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है, जैसाकि 'खोयो' क्रिया से प्रकट है। 'खोदने' के अर्थ मे 'खोयो' क्रिया का प्रयोग हमारे देखने मे नहीं आया, जैसाकि राजस्थानी टीकाकार ने उक्त अर्थ कर व्याख्या की है। यदि 'खोयो' को खोदने व 'अवट' को 'खड्डे' के अर्थ मे ग्रहण करे तो अर्थ यो भी किया जा सकता है—'मैंने शृगाल के समान खड्डा खोद कर अपने ही घर मे रहने का कायरतापूर्ण आचरण किया।' **केहा** = कैसा, कौनसा। **जेथ** – जहाँ। **धाम** = घर।

विशेष-- तुलनीय—

सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न।[2]
सीह जिकै वन सचरै, सो सीहाँ रौ वन्न ॥31॥

राजस्थानी टीका—कोई सूरवीर राजपूत कोई कायर सिरदार कन्है रहियौ तिणरी पारख न हूई तद कहै है—म्हे इण सू ना घर मे कायर जबक स्याल रै वासतै खाडौ खिणियौ अरथात ठाली दौडियो—फेर मन सू विचार कर कहै है—हू अठै ही ज बैठो सो काही करण–सिंघ जठै रहे तठै ही उण रौ घर है। सिघा र किसौ देस आपरौ ने किसौ परायौ ? भुजा मै बल है तो जठै तठै ही धरती दबाय लेवसू ॥इ०॥

काली नाहक की डरै, खेती लाभ म खोय।
धरती रा जेथी धणी, हू कल तेथी होय ॥30॥

प्रसंग—युद्ध की विभीपिका से त्रस्त कालिका को वीर-पत्नी का सम्बोधन—

व्याख्या—हे कालिके! युद्ध की विभीपिका से नाहक क्यो त्रस्त हो रही हो? तुम्हारे लिए तो रणखेती से रक्तपान करने व मुण्डमाल धारण करने का अपूर्व

---

1 वशभास्कर, अष्टमराशि, एकादशमयूख, पृ० 4265

2. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृ० 17

अवसर आ उपस्थित हुआ है। अत इस दुर्लभ लाभ को भयभीत होकर यो खोओ नही। तुम जानती नही, जहाँ धरती के स्वामी परस्पर आ भिडे है—यह रणनिनाद वही तो होरहा है।

अन्यार्थ—राजस्थानी टीकाकार ने 'काली' शब्द को "नई डरपोक स्त्री" के लिए प्रयुक्त सबोधन मानते हुए व्याख्या की है। तद्नुसार 'काली' को उक्त अर्थ मे ग्रहण करने पर दोहे का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता हे —

एक कायर स्त्री को सबोधन कर वीराङ्गना कहती है—ए पगली ! युद्ध से व्यर्थ क्यो भयभीत हो रही है ? रणखेती से प्राप्य इस दुर्लभ लाभ को यो खो नही। क्या तू जानती नही कि जहाँ धरती के स्वामी होते है—वहाँ युद्ध और तज्जन्य रण–कोलाहल भी होता ही है। [अत स्वामी को युद्ध मे जाने से रोक मत। अपना तो व्यवसाय ही रणखेती है। यदि पति विजयी हुए तो पृथ्वी (राजलक्ष्मी) का उपभोग करेगी एव यदि वे वीरगति को प्राप्त हुए तो सहगमन कर उनके साथ स्वर्ग मे शाश्वत सौभाग्य प्राप्त करेगी।]

परन्तु हमारे विचार से प्रस्तुत तथा आगे के दोहे मे प्रयुक्त 'काली' शब्द कालिका या दुर्गा का वाचक प्रतीत होता है। डा० सहलजी व स्वामीजी आदि सपादको ने भी इसे इसी अर्थ मे ग्रहण किया है।

शब्दार्थ—काली = 1 हे कालिके ! 2 पगली (सबोधन)। **नाहक** = व्यर्थ। **की** = क्यो। **खेती** = रणखेती। डिंगल-काव्य मे वीरत्व की कृषि के रूपक द्वारा अत्यन्त मार्मिक व्यजना की गई है। इस आशय के, बडली ठाकुर राठौड लालसिह के प्रति कथित एक डिंगल-गीत की ये पक्तियाँ देखिए —

पोहौ कीरत बीज खेत रजपूती, दाह सत्रा उर खाद दियौ।[1]
हल भालौ करता बडहाली करसण आरभ गजब कियौ॥

× × × ×

पाहड हरा अवर कुण पूगै, जग थारा हासल रै जोड।
रस आई जाणी रजवाडा, रजवट री खेती राठौड॥

म = मत, नही। **जैथी** = जहाँ। **हूंकल** = रणनिनाद, युद्धजन्य भयकर कोलाहल। 'हूकल-कलल' शब्द डिंगल-काव्यो मे बहुश प्रयुक्त हुआ है, जो विशेषत घोडो के हिनहिनाने की ध्वनि तथा सामान्यत समवेत रण-कोलाहल का वाचकत्व करता है। यह रोषोन्मत्त सुभटो की क्रुद्ध हुकारो के लिए भी प्रयुक्त हुआ है —

---

1. राज० वी० गी० भाग 1, पृ० 168–169, स० श्री सौभाग्यसिह शेखावत।

कलल हूकल अवसि खेति सूरा करै ।[1]

तेथी = वहाँ । उदाहरण —

सूरा जेथी रोडियै कलहल तेथी होय ।[2]

राजस्थानी टीका—कोई वीर स्त्री नवी डरपोक स्त्री ने उपदेस देवै है—हे काली ! दुसमणा री फौज देख नाहक डरती पती ने झगडा सू रोक मत । आपा री तो खेती ही ज तरवार री है सो इण लाभ ने हाथा कर मत खोव । देख जठै धरती रा धणी है तो हूकल फौजा रा घमसाण तेथी–तठै होवै ही ज । आ आपारी आदू खेती छै । पती मारीजै तो सती हूँ सुरग रौ सुख ला, नै जीता तो जमी भोगा ।।३०।।

काली करै वधावणो, सतियाँ आयो साथ ।
हथलेवै जुडियौ जिको, हमै न छुटै हाथ ।।31।।

व्याख्या—रणक्षेत्र मे वीरगति-प्राप्त योद्धाओ के मस्तको को लेकर काली (उन्हे अपनी मुडमाला मे धारण करने हेतु) उनकी बलैयाँ ले रही है । इतने मे सतियो (वीर-पत्नियो) का समूह आगया । सतियाँ, अपने स्वामी के मस्तको पर, जो उनका प्राप्य है, यह अनुचित हस्तक्षेप सहन नही कर सकती तथा काली को ललकारती हुई कहती है—हे काली ! हमारा साथ यही नही छूटेगा । हथलेवे (पाणिग्रहण) के अवसर पर जो हाथ एक बार जिससे जुड गया है, वह अब यो ही नही छूटने का । अर्थात् वह तो मरणोपरात भी परलोक तक जुडा रहेगा । (अत हमारा प्राप्य मस्तक हमे दो जिसे लेकर हम सती होगी तथा सहगमन कर स्वर्ग मे पति सामीप्य का शाश्वत सौभाग्य प्राप्त करेगी) ।

[युद्ध मे वीरगति-प्राप्त वीरो के मस्तको को लेने हेतु अप्सराओ, कालिका तथा सतियो की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का चित्रण करने की प्राचीन राजस्थानी काव्यो मे एक सामान्य परपरा रही है । उदाहरणत 'पृथ्वीराजरासउ' मे वीर अल्हण के मस्तक के धराशायी होने पर जब महामाया प्रकट हुई तो अप्सराओ को सदेह हुआ कि कही उस वीर का मस्तक दुर्गा अपनी मुडमाला के लिए न ले ले । अत वे 'अरीत-अरीत' (यह रीति विरुद्ध है) कहती हुई वहाँ आ उपस्थित हुई --

तब सु भइ परतक्खि अरीत अरीत कहत कह ।[3]

---

1 हालाँ-झालाँ रा कुडलिया, पृ० 9, स० डा० मोतीलाल मेनारिया ।

2 वही ।

3. पृथ्वीराजरासउ, स डा माताप्रसाद गुप्त ; पृ० 230, पद्य 24, पंक्ति 4.

प्रस्तुत दोहे मे भी सतियाँ काली को उसी भाव से सबोधित करती हुई कह रही है]

अन्यार्थ—यदि 'काली' को अप्सराओ के प्रति सतियो का सबोधन माना जाए, जैसाकि राजस्थानी टीकाकार ने माना है, तो दोहे की व्याख्या यो भी की जा सकती है—

पगली (अप्सराए) स्वर्ग मे दिवगत वीरो का वरण करने हेतु उनका अभिनदन कर रही थी कि इतने मे सतियो का समूह अपने वीर पतियो के साथ सहगमन कर वहाँ आ पहुँचा। अप्सराओ द्वारा अपने पति को यो वरणार्थ अभिनदित किया जाता देख वे बोली—हमारा साथ मृत्युलोक तक ही नही था। हथलेवे के अवसर पर जो हाथ एक बार जुड गया है, वह अब यो नही छूटने का। अत हमारे पति का वरण करने की अनधिकार चेष्टा न करो।

शब्दार्थ—**वधावणो** = (स वर्द्धापन) अभिनदन। **साथ** = समूह, दल।

उदाहरण—

'पछै कवरा रो **साथ** नागौर सु नीसरीयो नै राव चूडो अेक हजार रजपुता सु काम आयौ।'[1]

विशेष—श्री डा सहलजी आदि सपादको ने यद्यपि 'काली' का अर्थ कालिका किया है, तथापि वे दोहे के उत्तरार्द्ध ('हथलेवै जुडियो ''छूटै हाथ') को सतियो के प्रति कालिका का कथन मानकर यो अर्थ करते है—"सतियो के समूह को युद्धभूमि मे आया देखकर कालिका इन उत्साहवर्द्धक शब्दो से उनका अभिनदन करती है कि पाणिग्रहण के अवसर पर जो हाथ जिस हाथ से जुड गया है, वह भला अब छूटेगा थोडे ही ?"

परन्तु हमारे विचार से यहाँ बात उलटी है। यह वचन काली सतियो से नही कहती, वरन् सतियाँ काली से कहती है। इसे सोढी रानी के पाबू के प्रति कथित निम्नलिखित दोहे से मिलाइए —

हथलेवै भेली हुई, नह होसी न्यारीह।[2]
सोढी रहसी सरबदा, साथे सुपियारीह ॥322॥

तथा —

सती योषिद् प्रकृतिश्च निश्चला पुमासमभ्येति भवान्तरेष्वपि।[3]

---

1 बार्डिक एण्ड हिस्टोरीकल मैन्युसक्रिप्ट्स, खड 1, भाग 1, पृ० 13
स. टैसीटरी।

2. पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी—कृत, पृष्ठ 129

3 महाकवि माघ।

राजस्थानी टीका—कोई झगडा मे सूरवीर मारीजिया तिकाने अपछराआ वरिया सो स्वरग वधावा हुता लारै ही लारै सतिया पिण सत करने गई सो अपछराआ रा वधावणा देख सतिया कहै छै--हे अपछरा काली, थू क्यू वधावा करै ? औ देख सूरमा लारै सत कर सतिया रौ साथ आयौ देखे पतीने हथलेवा मे हाथ सु परत कोयौ हौ सो हमे भवो भव ही छूटै नही ।।इ०।।

धीमा धीमा ठाकुरे, जमी न भागी जाय ।
धणियाँ पग लूँबी धरा, अबखी ही घर आय ।।32।।

व्याख्या—किसी वीर पुरुष की भूमि पर अधिकार करने के लिए आकुल सरदारो के प्रति कवि की व्यग्योक्ति—

हे ठाकुरो ! जरा धीरे रहो, धीरे । इतने उतावले क्यो हो रहे हो ? यह भूमि कही भागी नही जाती । (अगर तुममे बल है तो इसे पीछे भी ले सकते हो, फिर अभी से इतने बेताब क्यो हो रहे हो ?) । तुम्हे यह स्मरण रखना चाहिए कि जिन शूरवीर स्वामियो के पैरो से यह पृथ्वी बँधी हुई है—उनसे छूट कर यह मुश्किल से ही तुम्हारे घर आएगी ! [अर्थात् यह पृथ्वी ऐसे शूरवीरो के अधिकार मे है (उनकी चरणानुगता हे) कि उनसे इसे छुडा लेना तुम्हारे बस की बात नही है । अत अपनी वीरता के मिथ्या दभ मे अन्धे और उतावले न हो ! यह पृथ्वी जिन वीरो के चरणो से चिपटी हुई है—उनसे इसे अलग करना खेल नही है । अत जरा अपने होश सँभालो, जोश ही जोश मे चढ मत जाना !]

शब्दार्थ—ठाकुरे=ठाकुरो, सरदारो (सबोधन) । डा सहलजी व श्री स्वामीजी द्वारा सपादित सस्करणो मे 'ठाकुरा' पाठ है, परन्तु राजस्थानी टीका मे 'ठाकुरे' पाठ है, जो हमे अप्रामाणिक नही प्रतीत होता । कारण, अन्य प्राचीन डिंगल-काव्यो मे भी 'ठाकुर' के बहुवचन के रूप मे 'ठाकुरे' रूप का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है, जिससे इस शब्द की प्राचीनता ही सिद्ध होती है । 'ठाकुरे' शब्द के प्रयोग के कुछ उदाहरण देखिए —

1 चीरी फाटी चहु दिसे, सामी कमधज्जाह ।[1]
कटक पधारौ **ठाकुरे**, जोधा रिडमल्लाह ।।

2. इतरा मे सहस फुण धारी, कुरम रौ असवार, धरती रौ धरणहार बौलियौ—**ठाकुरे**, दाणवा तो भुजाडड करी अडडा नै डड लगाया ।[2]

---

1. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 35
2. माताजी री वचनिका, जती जैचद-कृत, पृष्ठ 31, स. डा नारायणसिंह भाटी ।

3 **ठाकुरे** ! वो म्होकमसिंघ कोट मैं उड पड्यौ ।[1]

4 ताहरा हासू कह्यो—ठाकुरे ! बाहर ग्रायी · ·।[2]

5 साबता **ठाकुरे** चढो पेहरो सलह[3]

6. 'रा दासौ पातलौत उ. जैमल नु इरण **ठाकुरे** खबर मेल्ही ।[4]

ग्रत हमने 'ठाकुरे' पाठ ही स्वीकार किया है ।

धणियाँ = स्वामियो, पृथ्वीपतियो । **लूँबी** = लिपटी, बँधी । भावार्थ मे ग्रधिकृत । **अबखी** = मुश्किल से, कठिनता से । उदाहरण.—

बल थका **अबखी** बखत बेली,[5]
तवै जगत तमाम ।

विशेष—तुलनीय —

धीरा धीरा ठाकुराँ गुम्मर किया म जाह ।[6]
महुँगा देसी भूँपडा, जै घरि होसी नाह ।।

तथा —

'थाहरे पगसू मेवाड रो राज नही जाय ।'[7]

राजस्थानी टीका—कोई दुसमण खाता पडीया है जुद्व सारू तिकाने जमीरी धणी वीर पुरष कहै है—धीमा खडौ ठाकुरा, जमी भागी को जावैनी ने ग्राप लेणनैं ग्राया हौ पण जमी धणिया रै पगा रै बाधी है । ग्रापरे घरे मुसकल सू इज ग्रावती दीखै है । ग्रर्थात् ऊभा पगा म्हे जमी देणवाला नही ।।इ०।।

भूल न दीजै ठाकुरे, पावक माथै पाव ।
राख रहीजै दाझियाँ, तेथ धरीजै चाव ।।34।।

व्याख्या—हे ठाकुरो ! भूल कर भी ग्राग मे पैर मत रखना । हाँ, यदि यह इच्छा हो कि जलने पर राख ही शेष रहे तो वहाँ शौक से पैर बढाना ।

भाव यह कि ग्रपनी भूमि के लिए ग्रपने प्राणो की बाजी लगाने वाले शूरवीर ग्रग्नि-तुल्य होते है । उनके पराक्रम की ज्वाला मे तुम दग्ध हो जाग्रोगे । ग्रत भूल

---

1 प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघ री बात, रा. सा. स. भाग 2, पृ० 54

2 बात कगरै बलोच-री . राजस्थानी वाता, भाग 1, स श्री नरोत्तमदास स्वामी ।

3 रुषमणीहरण, पृ० 34, स. श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।

4 मारवाड रा परगना री विगत; पृ० 49, स डा नारायणसिंह भाटी ।

5 रघुवरजसप्रकास, पृ० 218.

6 हालाँ-झालाँ रा कु डलिया, पृष्ठ 2

7. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 3, स श्री बदरीप्रसाद साकरिया ।

कर भी उस ओर मुँह नही करना । हाँ, यदि उसमे जल कर राख होने की ही इच्छा हो, तो फिर भले ही वहाँ पैर बढाना । अर्थात् शूरवीर सुभटो से युद्ध करना आग से खेलना है एव जिसे अपने सर्वनाश की कामना हो, वही उनसे बैर मोल ले ।

पाठान्तर—इस दोहे के चतुर्थ चरण मे 'तेथ' की जगह 'तियाँ' पाठान्तर है, जिसे डा० सहलजी आदि सपादको ने स्वीकार किया है । 'तियाँ' का अर्थ 'स्त्रियाँ' करते हुए वे प्रस्तुत दोहे मे निहित कथन को कायरो के प्रति सती की गर्वोक्ति मानते हुए यो व्याख्या करते है—'हे सरदारो ! आप लोग भूल कर भी आग पर पैर न रक्खे । इससे जलने पर राख ही बचती है । ऐसी दाहक वस्तु तो स्त्रियाँ ही (सती होते समय) उमग से धारण करती है ।"

राजस्थानी टीका के अनुसार हमने 'तेथ' पाठ ही स्वीकार किया है । श्री स्वामीजी आदि सपादको द्वारा सपादित सस्करण मे भी 'तेथ' पाठ ही स्वीकार किया गया है यद्यपि व्याख्या मे तीनो के अन्तर है । श्री स्वामीजी ने सबद्ध चरण का अर्थ यो किया है—"उसमे जलने पर राख ही बाकी बचती है, जब उसकी इच्छा की जाती है तो जलना पडता है और पीछे केवल राख ही रहती है ।" हमे यह व्याख्या अयुक्त प्रतीत होती है, क्योकि 'जलना पडता है' (जिससे व्याख्याकार का आशय कदाचित् सती हाने से है) से यह ध्वनित होता है मानो सती होने के मूल मे निज की उमग न होकर वाह्य विवशता होती है, जो कि तथ्य-विपरीत है ।

राजस्थानी टीकाकार ने भी इस चरण की किंचित् भिन्न व्याख्या की है । ऐसी स्थिति मे अर्थगत उपयुक्तता का निर्णय हम विज्ञ पाठको पर ही छोडते है ।

शब्दार्थ—**पावक** = अग्नि । **माथै** = पर (अव्यय) । **पाव** = पैर । **दाझियाँ** = जलने पर । **तेथ** = वहाँ (पाठा० 'तियाँ') । **धरीजै** = रखना । **चाव** = इच्छा ।

राजस्थानी टीका—कोई गभीर सूरवीर छछोरा टोली रा दुसमण जमी लेण रौ करै तिकांने कहै है—ठाकुरा ! भूल ने ही पावक (अगनी) रा अंगीरा माथै पग मत देरावाडजौ—वल जाओला । जठै आगरा खीरा बुझ ने राख रह गई है उठै भलाई मन री चाह पूरण करीजै । प्रयोज (न)—जिण धरती रा धणी खीरा होवै जेडा झिगझिगाट करता है, तठै टल नें वहौ नें ज्यारा सूरवीर माझी मारीजगा है तठै भलाई चाव (मन री इच्छा) धरावाड सी क्यू (कि) वे आसरा सू रहित है ।।३०।।

भोला की हठ ठाकुरे, रोला हेक न राह ।
गेह रहीजै रोवणौ, देह सहीजै दाह ।।35।।

व्याख्या—किसी शूरवीर से लडने को आकुल सरदारो के प्रति कवि की व्यग्योक्ति:—

हे भोले सरदारो ! तुमने यह क्या हठ ठाना है ? तुम्हारा यह युद्ध का सारा होहल्ला व्यर्थ है। तुम्हारी एक चाल नही चलने वाली है। यदि तुम मानोगे नही तो इसका एक ही परिणाम होगा, और वह यह कि तुम्हारे घर मे तो रोना-पीटना मचेगा और तुम्हारी देह (चिता पर) अग्निदाह सहेगी। अत अपनी इस असभव महत्वाकाक्षा के पीछे अपना सर्वनाश न करो।

राजस्थानी टीकाकार द्वारा किए गए इस दोहे के अर्थ से हम सहमत नही।

शब्दार्थ—**भोला** = नादान, बावले। राजस्थानी मे 'भोलौ' शब्द इस सदर्भ मे, मूर्खता से कुछ अधिक भिन्न अर्थ की व्यजना नही करता है। अन्तर इतना ही है कि 'भोलौ' शब्द मे 'मूर्खता' के भाव का कुछ कोमलीकरण हो जाता है। **की** = क्या। **रोळा** = व्यर्थ का हल्ला-गुल्ला। राजस्थानी मे 'रोळौ' शब्द झगडे या युद्ध का भी वाचक हे, जैसे—

जुटै वागि रावत न्रप जौला,[1]

रौळा हेक माहि दो **रौळा** ॥

परन्तु यहाँ यह व्यर्थ के होहल्ले का वाचक है। युद्ध के अर्थ मे ग्रहण करने पर व्याख्या यो भी की जा सकती है–'इस रोळे (झगडे) मे तुम्हारी एक युक्ति नही चलेगी।' **राह** = युक्ति, चाल, उपाय। **रहीजै** = रहेगा। **सहीजै** = सहेगी या सहन करना होगा। **दाह** = अग्निदाह, चिता पर ज्वलन।

राजस्थानी टीका—एक कोइ वीर स्त्री पती ने उपदेस दे कहे छै—पती जुद्ध सू घबराय गयौ तद स्त्री कहै हठ छोड–सो हे भोला ठाकुर, की हठ करै कै हू फेर झगडौ करू–रौला एक राह–तरह रा नही है। झगड़ा मै तो घर मे तौ रोवणो वड जाय है सो नीकलै नही नै सरीर मैं वैर लेवण री इच्छा सू रात दिन ताप तपती सहणी पडै है ॥३०॥

सूता नाहर सारखा, साल न छेडौ सूर ।
कत विणट्ठा काच-सा, दो ही विलखा दूर ॥35॥

प्रसंग—एक शूरवीर निर्भय निद्रा मे अपने शयनकक्ष मे सोरहा है। इतने मे शत्रु उसे आ घेरता है। इस पर वीराङ्गना उसे सम्बोधित करती हुई कहती है—

व्याख्या–शयनकक्ष मे सिंह की भातिनिश्चिन्त सोए हुए मेरे शूरवीर स्वामी को छेडो नही (जगाओ नही) क्योकि जागते ही उत्तेजित होने पर ये तुम्हारे प्राबल्य की

---

1. सूरजप्रकाश, भाग 1, पृ०129, स श्री सीतारामजी लालस।

तनिक भी चिन्ता किए बिना अपने को युद्ध मे झोक कर काच के समान् टुकडे-टुकड़े होजाए गे, जिसके फलस्वरूप केवल दो ही दूर पडी हुई बिलखेगी–एक मैं और एक तुम्हारी भार्या !

ध्वनि यह कि मेरे शूरवीर स्वामी तो युद्ध मे वीरतापूर्वक लडते हुए टुकडे-टुकडे होगे ही, तुम भी जीवित नही जा पाओगे जिसके फलस्वरूप मै और तुम्हारी पत्नी––दोनो ही प्रिय-वियोग-व्यथा मे विलखेगी, अकेली मैं नही !

अत अपनी कुशल चाहते हो तो चुपचाप लौट जाओ ।

पाठान्तर—प्रस्तुत दोहे के द्वितीय चरण मे डा सहलजी तथा स्वामीजी आदि सपादको के सस्करणो मे 'छोडै' पाठ है, जबकि राजस्थानी टीका के अनुसार हमने 'छेडौ' पाठ स्वीकार किया है। इस दोहे की उक्त दोनो ही सस्करणो के सपादको ने जो व्याख्या की है, वह हमे असगत व निराधार प्रतीत होती है। डा सहलजी आदि सपादको ने इसमे एक कायर पति की कल्पना की है, जो घर मे तो पत्नी के तिरस्कार-भय से नही आ पाता तथा युद्धक्षेत्र मे मृत्यु के भय से नही ठहर पाता। यह सपादको की अपनी प्रकल्पना है। उन्होने 'कत विणट्ठा काच-सा' का अर्थ 'हे कत ! नष्ट हुए काच के टुकडो के समान अलग-अलग पडे हुए आज हम दोनो ही दूर पडे-पडे विलख रहे है', किया है तथा स्वामीजी आदि सपादको ने "टूटे हुए काच के टुकडो की भाति उनके शत्रु दूर-दूर ही रहकर विलखते है।" वस्तुत काच के समान टुकडे-टुकडे होजाने की उपमा डिगल-काव्यो मे वीर के लिए युद्ध मे अप्रतिम शौर्य से लडते हुए कट मरने के अर्थ मे व्यवहृत हुई है, जैसा कि हमने आगे उदाहरण दिया है। यदि 'छोडै' पाठ माने तो इस दोहे की व्याख्या यो की जानी चाहिए—

'जो अपने को सिंह के समान पराक्रमी समझते थे, वे सोए पडे है एव जो शूरवीर (अथवा वराह के समान पराक्रमी सूर=शूकर) बने बैठे थे वे आज अपने शयनकक्ष को भी नही छोड रहे हे। उधर मेरे वीर स्वामी को देखो जो युद्धस्थल मे काच के टुकडो की तरह बिखर गए है (कट मरे है) जिसके फलस्वरूप अब हम दो ही एक दूसरे से वियुक्त हुए मिलने हेतु विलख रहे हैं (वे स्वर्ग मे और मै यहाँ–दोनो ही एक दूसरे से दूर होगए है। इसलिए अब दोनो परस्पर मिलने हेतु आकुल है। सहगमन की तैयारी करती वीराङ्गना की यह आत्मगर्वपूर्ण दर्पोक्ति है)।

अन्यार्थ—उक्त पाठानुसार ही इस दोहे की प्रथम पक्ति का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है—

प्रसंग—एक वीराङ्गना युद्धक्षेत्र मे धराशायी वीर पति के प्रति आह्लाद-भरे उद्‌गार प्रकट करती हुई कहती है—

व्याख्या—देखो, रणाङ्गण मे काच के समान टुकडे-टुकडे हुए मेरे वीर स्वामी सिंह की भाँति मस्त हो कैसे सोए हुए है ! अथवा, ये मानो उस महाबली वराह की तरह है, जो निश्चिन्त लेटे हुए अपने कक्ष को नही छोड रहे है।

इस प्रकार मेरे वीरगति प्राप्त कन्त स्वर्ग मे और मै यहाँ—दोनो ही एक दूसरे से मिलने हेतु विलख रहे है–आकुल हो रहे है।

हमारे विचार से राजस्थानी टीका मे दिया गया 'छेडौ' पाठ शुद्ध है क्योकि इसी प्रसग के आगे के दोहो—37 व 38 मे भी यही पाठ है जहाँ निद्रालु वीर स्वामी को शत्रुओ द्वारा घेर लिए जाने पर वीराङ्गना द्वारा उन्हे ताडना दिए जाने का प्रसग है। अत हमने यह पाठ अधिक प्रामाणिक मान कर अपनी व्याख्या की है। तथापि पाठान्तर के अनुसार भी सभावित अन्यार्थो का निर्देश कर दिया है।

शब्दार्थ—**सारखा** = (स सदृश), समान। **साळ** = नीचे की मजिल पर बना कक्ष जो लम्बाई मे ज्यादा व चौडाई मे कम होता है तथा जिसके सामने प्राय तिबारा या चौबारा (बरामदा) होता है। राजस्थानी मे इसे 'साल' कहते है, जो आज भी बोलचाल मे प्रचलित है। **छेडौ** = जगाओ, युद्धार्थ उत्तेजित करो। **सूर** = शूरवीर। **विणट्ठा** = विनष्ट। **काच-सा** = काच के टुकडो के समान। युद्ध मे टूक-टूक होकर कट मरने वाले योद्धा के लिए डिगल-काव्यो मे काच के टुकडो के समान बिखर जाने की उपमा प्राय पारम्परिक-सी हो गई है। यथा —

सूरा रण साँकै नही, हुवै न काटल हेम।[1]
टूक करै तन आपणौ, काच कटोराँ जेम ॥15॥

अत उपमागत प्रयोग—परम्परा की दृष्टि मे इसे परस्पर वियुक्त होने या एक दूसरे से दूर रहने के अर्थ मे ग्रहण करना असगत है, जैसा कि वीर सतसई के दोनो ही सस्करणो के सपादको ने किया है।

राजस्थानी टीका—कोई वीर सिरदार रा गढ रै सत्रुआ री फौज रौ घेरौ है सो सत्रुआ री फौज कठी सू ही गढ रै नैडी लाग गई तद सिरदार रा सूरवीर वाकब करण आया उठै उण वीर पुरष री स्त्री पती रा सुभाव जाणै है सो सारा वीरा ने कह रही है —

अरथ—हे सूरा! अै सूता थका म्हारा पती साल मैं नाहर सरीखा थे मत छेडौ। सुणीया थका काचरी सीसीरा टूकडा होवै है तिऊ सत्रुआ री फौज मे मिल सरीरौ विणठा—विणास करसी। अर्थात् घणा सत्रुआ मे घोडौ न्हांक शरीर भागताँ जेझ न करसी ने आपे सत्रुआ मे घोडौ न्हाकण रौ ना कहसा सो वे गिणसी नही इण सारू आपे दो ही विलखा, दूर आगा ऊबा ना कहण सारू विलखसा पण रुकसी नही सो थे मोरचो सैठो सभावौ और मालक नै मत कहौ, जो कयौ तौ मारीज जासी ॥३॥

कत न छेडौ ठाकुरे, कालौ जाण करड।
इण भोगी रा जहर थी, दूजो की जमदड ॥36॥

---

1 बाँकीदास ग्रथावली, भाग 1, पृ० 4

व्याख्या—ए ठाकुरो ! मेरे पति को शयनागार मे सोया समझ कर छेडो नही । यह पिटारी मे वन्द काला नाग है । इस फणधर के भयकर विषदश से बढकर और दूसरा कालदड भला क्या होगा ? अर्थात् जैसे पिटारी मे बन्द काला नाग महा क्रुद्ध व भयकर होता है, जिसका प्रचड फूत्कार एव दारुण विषदश कालदड के समान मरणान्तक होता है, उसी भाँति मेरे वीर स्वामी भी कालसर्प के समान भयकर है । जागने पर ये क्रुद्ध हो तुम्हे वैसे ही मार गिराए गे मानो तुम पर काल-दड का प्रहार हुआ हो । अत तुम्हारी कुशल इसी मे है कि इन्हे बिना छेडे ही चुपचाप यहाँ से चले जाओ ।

वीर के रोष, एव आतक की मार्मिक व्यजना हुई है ।

शब्दार्थ—कालौ = काला नाग । डिंगल-काव्यो मे काला साँप अपने वीरोचित रोष एव प्रचड क्रोध के कारण वीरत्व के प्रतीक-रूप मे गृहीत हुआ है, जिसे लेकर डिंगल-कवियो ने एक से बढकर एक अनूठे रूपक बाँधे है । कुछ उदाहरण देखिए —

कलह कौपिया किया फण अडै नित काकडा,[1]
खला उर जहर गत रूप खिझरौ ।
झाप मझ न आवै अमै अरि झाट सू,
असौ मोकल सुतन सरप अजरो ।।
प्रिसण तट न आवै तजै गारडि पणौ,
चुरस पण न रोपै बाधि—चालो ।
करि त्रिजड फू करड हूत बटका करै,
कीलणी न मानै भुयग कालौ ।

तथा —

पखालौ भुयग कालौ धणी री बजालौ.फतै,[2]
राव वालौ दीसै इसौ छडालौ वज्राग ।।

समर मे अत्युग्र एव भयकर रूप धारण किए जूझने वाले उन्मत्त वीर की उपमा क्रुद्ध काले सर्प से देने के कारण यह शब्द कालान्तर मे स्वय वीर की उपाधि, किवा उसका पर्याय बन गया तथा उसके उद्भट शौर्य की व्यजना करने के लिए काव्य मे इसके प्रयोग की एक व्यापक परपरा-सी चल पड़ी । करड = पिटारी ।

---

1. गीत महाराव सेखा कछवाहा रौ, रा वी स , भाग 1, पृ० 1, स श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।
2 गीत महाराव रामसिह हाडा रा भाला रौ, सूर्यमल्ल—रचित ।

पिटारी मे बद काला सॉप जैसे क्रुद्ध व भयकर होता है, वैसे ही रोपोन्मत्त वीर भी। डा सहलजी ने इसका भावार्थ 'कारागार मे पडे हुए पति' किया है, जो हमे अयुक्त लगता है। कारण, यह राजस्थान की वीरत्व-वर्णन-परपरा के किंचित् विपरीत पडता है, जिसके अनुसार वीरो के लिए दो ही विकल्प मान्य हुए है—या तो युद्ध मे विजयश्री वरण करना या शत्रु मे लडते हुए वीरगति को प्राप्त होना। वन्दी होकर कारागार मे पडना तो राजस्थानी वीर के लिए अचित्य है—अभिशाप है। कहा भी है —

मरणौ लाजम मामलै, धार अणी चड धाप।[1]
पडणौ साकल पीजरै, सिंहा बडौ सराप ॥55॥

भोगी = सर्प, फणधर। **थी** = से। **की** = क्या। **जमदड** = कालदड, मृत्यु।

विशेष —तुलनीय—

सखी अमीणौ साहिबो, निरभै काल्हौ नाग।[2]
सिर राखै मिण सामध्रम, रीझै सिधू-राग ॥33॥

क्रोध के लिए सॉप की उपमा 'गजगुणरूपकबध' मे भी दी गई है—

सत पराक्रम सूरमा, मन्न म हुआ उदमाद।[3]
रोस फुणिदा रढ त्रिया, हम्मीरा हठवाद ॥

राजस्थानी टीका—वीर री स्त्री पती नीद मे जितै ऊपर दुसमण आय गया तिकानै समझाय ने कहै छै—हे ठाकुरे! म्हारा खामद नै मत छेडौ, औ किरड मे दबीयोडौ कालदार छै सो इण भोगी (फणवाला) रा जहर-क्रोध सू वध ने दूजौ कोई जमदड मरण री उपाय वध ने नही छै। अरथात पाछा जावौ परा। पती जागीयौ तो मारसी ॥इति॥

नीदाणौ गिण टेकलौ, पुलौ न छेडौ पीव।
जाय पुजावौ पावई, चूडौ धण चिरजीव ॥37॥

प्रसग— आगत शत्रुओ को वीर-पत्नी का सम्बोधन.—

व्याख्या—हे ठाकुरो! मेरे हठी और आन-मान पर मर मिटने वाले पति को निद्रावश जान कर छेडो नही। यहाँ से भाग जाओ तथा जाकर सही सलामत घर पहुच जाने के लिए पार्वती का पूजन करवाओ, ताकि तुम्हारी स्त्रियो का चूडा चिरायु हो, अर्थात् उनका सौभाग्य बना रहे।

---

1 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृ० 31
2. वही, पृ० 7
3 गजगुणरूपकबध, पृ० 143

[घर पहुँच जाने के उपरान्त भी गौरी-पूजन करवाने के कथन मे यह ध्वनि है कि आगे भी गौरी की कृपा से तुम मेरे शूरवीर पति के सामने न पडो और तुम्हे वैधव्य का दु ख न देखना पडे ।]

शब्दार्थ—नींदाणौ = निद्रित, सोया हुआ । **गिण** = समझ कर । **टेकलौ** = टेक या हठ रखने वाला, धुन का पक्का, आन-मान पर मर-मिटने वाला । **पुलौ** = भाग जाओ । **जाय** = जाकर । **पुजावौ** = पूजा करवाओ । **पावई** = पार्वती । सौभाग्य के लिए गौरी-पूजा का विधान है । डा सहलजी आदि सपादको ने 'पावही' पाठ मानते हुए इसका अर्थ 'पाओगे' किया है ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरष नीद मै सूतौ हौ इतरै दुसमरा ऊपर आय गया तिका ने वीर री स्त्री कहे छै—रे नीद मे सूतौ देख इरा आपरी टेक-आन रा निभावरा वाला नै (ने) थे मत छेडौ । पुल जावौ और घरे जाय नै कुसलै पूगगा इरा वासतै देवताआ रा थाना मे पगलीया पूजावौ सो चूडौ थारी स्त्रीआ रौ चिरजीत रहै ।।इ०।।

भोला जरगौ भूलिया, बरसा आठा बाल ।
एथ घराणँ सीहणी, कवर जणै सो काल ।।38।।

प्रसंग—आगत शत्रुओ के प्रति अपने वीर पुत्र को लक्ष्य कर कही गई वीर माता की उक्ति—

व्याख्या - हे भोले लोगा ! जान पडता है तुम भ्रम मे हो जो इस आठ वर्ष के बालक को मात्र बालक समझे हुए हो । तुम जानते नही इस वीर कुल मे सिहनी (वीर क्षत्राणी) जो कँवर उत्पन्न करती है, वह काल-रूप होता है । [अर्थात् आयु मे छोटा होने पर भी जैसे सिंह-शावक मत्त गजयूथो को अपने प्रचड करतल-प्रहार से धरासात् कर देता है, उसी प्रकार मुझ सिहनी से उत्पन्न मेरा वीर पुत्र भी तुम्हारे लिए कालरूप सिद्ध होगा । अत यदि अपनी कुशल चाहते हो तो यहाँ से अपने प्राण लेकर भागो]

इसे वीर माता के स्थान पर कवि-वचन मान कर भी व्याख्या की जा सकती है ।

शब्दार्थ—जाणौ = जान पडता है । **भूलिया** = भूले हुए या भ्रम मे हो । **एथ** = यहाँ, इस । **कंवर** = कुमार, पुत्र । **जणै** = उत्पन्न करती है ।

विशेष—तुलनीय—

केहर मत बालक कहौ, देखौ जात सुभाव ।[1]
बासै देखै बाहरा, परत न छडै पाव ।।6।।

---

1. बाँकीदास ग्रन्थावली : भाग 1, पृ० 10

राजस्थानी टीका— कोई एक वीर पुरष मारीज गयौ ने लारै नाबालक जांण सत्रुआ हलौ करणौ विचारीयौ तठै उण वीर (पुर)*षरी स्त्री आपरा बालक रौ परिचै सत्रुआ ने करावै छै–हे सत्रुआ ! थे हू जाणू भोला पणै भूला छौ क्यू कि म्हारौ पुत्र आठ बरष रौ बालक जाण युद्ध रौ मतौ करौ छौ, पण इण घर री रागिया सिंघणिया छै। वे कवर जिणै सो काल जिसा छै। थे डरावणा चाहो सो डरै नही ।।३०।।

टिप्पणी—टीका मे चिह्नांकित शब्द मे, प्रारभ के दो अक्षर कदाचित टीकाकार की भूल से लिखने मे छूट गए है। शब्द सभवत. 'पुरषरी' है, जबकि उसमे केवल 'षरी' ही लिखा है।

बाला चाल म बीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरता ढील की, ऊठ थियौ घमसाण ।।39।।

प्रसंग—युद्ध छिडने पर भी प्रमाद मे पडे अपने बालक पुत्र को वीरमाता का प्रबोधन —

व्याख्या—हे वत्स ! अपनी कुल-रीति को भूल नही। क्या तू जानता नही कि मेरे स्तनो का दूध विष-तुल्य है, जिसका पान करने पर युद्ध मे प्राणोत्सर्ग करना अनिवार्य है। और फिर, युद्ध मे वीरगति प्राप्त करने की तो अपनी कुल-परपरा रही है। तब मरणवेला मे यह विलम्ब क्यो ? उठ, समर छिड गया है, रणक्षेत्र तेरा आह्वान कर रहा है।

[वीर माता का यह प्रबोधन राजस्थान की वीरोचित परपराओ के सर्वथा अनुरूप है, जहाँ माताए मरने के लिए ही अपने अमृतस्रावी स्तनो का विष पिलाती थी ! राजस्थान की गौरव गाथाए मर कर भी अमर होने वाले वीरो को पिलाए गए वीर जननियो के उसी विष भरे अमृत के उज्ज्वल आख्यान है, जिन्होने मातृत्व की गरिमा को अकु ठित रखने के लिए अपने पुत्रो को मरने का वरदान दिया था। राजस्थान के वीर पुत्र उसे पीकर मरे नही-मृत्युञ्जय होगए।]

शब्दार्थ—**बाला** = हे वत्स !, पुत्र। **चाल** = कुल-परपरा। **म** = मत, नही। **थण** = स्तन। **ढील** = विलम्ब। **की** = क्यो। **थियो** = हुआ, छिड गया। **घमसाण** = भयकर युद्ध। 'घमसाण' शब्द यहाँ विशेषण न होकर, सज्ञा है। डिंगल-काव्यो मे ऐसे अनेक विशेषण-शब्द सज्ञा-रूप मे व्यवहृत हुए हैं। डिंगल मे युद्धवाची अनेक शब्दो मे 'घमसाण' भी एक है। यथा —

1 घण थट्टा गढ घेरिया, वणि रिण ऊग विहाण ।[1]
निस जाये चख जग्गणौं, दिन पाये **घमसाण** ।।

---

1 राजरूपक।

2 जठै दो ही फौजा रै दूज ही दिवस काल कोप तोपा रो घोर **घमसाण** राचियौ ।[1]

राजस्थानी टीका—कोई वीर माता आपरा बालक पुत्र ने जुद्ध सारू सीख देती अै वचन कह रही छै—हे बालक पुत्र ! थारा वीर घर री चाल वीसरजे मत । थारा पिता रौ वीर पक्ष पालजे और माता रौ पक्ष म्हारा थरण रौ दूध जहर जिसौ (अर्थात् क्रोध रौ भरियौडौ) छै—अने थारा घर री मरण मारण री रीत छै—सो मरण मे ढील किसी ? ऊठ, घमसाण युद्ध हुवण लागौ छै ।।इ०।।

नागण जाया चीटला, सीहण जाया साव ।
राणी जाया नहँ रुकै, सो कुलवाट सुभाव ।।40।।

व्याख्या—नागिन से उत्पन्न सर्प-शिशु, सिहनी से उत्पन्न सिंह-शावक तथा रानियो से उत्पन्न राजपुत्र (क्षत्रिय-कुमार) किसी के रोके रुकते नही हे—यह इनकी वशपरपरागत रीति एव सहज स्वभाव हे ।

शब्दार्थ—चीटला = सर्प-शिशु । **साव** = शावक, बच्चा । **राणी जाया** = रानियो से उत्पन्न, अर्थात् राजपुत्र, क्षत्रिय कुमार । **कुलवाट** = कुलमार्ग, कुलरीति । **सुभाव** = स्वभाव ।

राजस्थानी टीका—वीर माता आपरा पुत्र ने कह रही छै, हे पुत्र ! नागणी (सरपणी) रा जायोडा चीटल (छोटा बच्चा) अने सिंघणी रा जायोडा साव (बच्चा) अने राणीया री कूख सू जनमियोडा वीर बालक सत्रुवा रा भय सू रुकै नही, क्यू कि आरा कुल रौ औ हीज सुभाव छै ।।इ०।।

असिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक ।
रण झाटकता कत रै, लगै न झाटक एक ।।41।।

प्रसंग—सिकलीगरनी के प्रति वीराङ्गना की प्रशसोक्ति —

व्याख्या—हे सिकलीगरनी ! मैं तेरे प्रियतम पर बारम्बार बलिहारी हूँ, जिसने उनकी तलवार की धार इतनी तेज करदी कि युद्ध मे उससे प्रहार करते समय उनके हाथ मे रचमात्र भी झटका नही लगता । अर्थात् अपनी तीक्ष्ण धार के कारण वह एक ही वार मे शत्रुओ के आर-पार निकल जाती है ।

शब्दार्थ—असिधावण = सिकलीगरनी, तलवार आदि शस्त्रो के सान चढाने या धार लगाने का पेशा करने वाली जाति की स्त्री । **झाटकतां** = वार या प्रहार करते हुए । **झाटक** = झटका ।

---

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2665

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरष री स्त्री आपारा पती ने दुसमणा ऊपर तरवार वाहता देख पती रा वीरपणा सू ने सरीर रा पौरस सूं छकी थकी असीधावण (सिकलीगर) वा खुरसाणिया री स्त्री ने कह रही छै—हे असि-तरवार रा धावण-सुधारण वाला री स्त्री ! असिधावण री लुगाई ! थारै पीव रै हाथा री बलिहारी वारणा लेउ इसी तरवार खुरसाण चढाय तयार कर दीधी है सो रिण मे दुसमणा ऊपरै झाटकता हाथ रै नाम भर झटकौ (हचको) नही आवै, जिण दुसमण माथै वहै सो निरलग होतौ निजर आवै ।।इ०।।

लोहारी तो पीव रा, वळे न पूजूं हत्थ ।
फूलता रण कत रै, कडी समाणी मत्थ ।।42।।

प्रसंग—लोहारी की निदा द्वारा परोक्षत पति के अदम्य वीरोल्लास की व्यजना--

व्याख्या—हे लुहारिन ! तेरे पति के हाथो को अब मैं नही सराहूँगी। कारण, वह निपट नासमझ है। उसने शिरस्त्राण इतना छोटा बना दिया कि युद्ध मे वीरोल्लास से उल्लसित होते ही उसकी कडी कत के सिर मे चुभ गई ! उसे इतना भी अन्दाज नही कि मेरे वीर स्वामी वीरोन्मेष मे कितने उल्लसित होते है, जो उसने नाप के अनुसार ही शिरस्त्राण घड दिया ! उसे चाहिए था कि उसे किंचित् बडा बनाता क्योकि सूरातन चढने पर मेरे वीर स्वामी का अ ग-अ ग जोश मे फूल उठता है, जिससे उनके कवच और टोप-सब छोटे पड जाते है।

इस दोहे मे लुहार की निन्दा द्वारा परोक्षत वीर के अप्रमेय वीरोल्लास की मार्मिक व्यजना हुई है।

शब्दार्थ—वळे = फिर, अब। **पूजूं** = सराहूँगी या प्रशसा करूँगी। **हत्थ** = हाथ अर्थात् हस्तकौशल। **फूलतां** = वीरोल्लास से प्रफुल्लित होने पर। **कड़ी** = शिरस्त्राण या टोप की कडी। **समाणी** = समा गई, घुस गई।

राजस्थानी टीका—वीर पुरस री स्त्री लुहारी नै ओलभौ देती कह रही छै—बगतर घडण वाला लुहार री स्त्री लुहारी थार पीव रा हाथ नही पूजू-नही वखाणू। वगतर इसौ काठौ घडियौ जो जुद्धरी समे पती पहरीयौ सो काठौ हूवौ नै टोप री कडी माथा मे समाणी-बैस गई। अठै लुहार री निंदा सू पति री स्तुती है सो काई कि जुद्ध रौ सुणता इतरौ पौरष चढने फूलियौ सो टोप री कड़ी माथा मे गड गई ।।इ०।।

सूतो देवर सेज रण, प्रसव अठी मो पूत ।
थे घर बाभी बॉट थण, पालौ उभय प्रसूत ।।43।।

प्रसंग—अपने वीरगति-प्राप्त पति के साथ सती होती हुई देवरानी की जेठानी के प्रति उक्ति—

व्याख्या—हे भाभी ! आपके देवर (पति मे अभिप्राय है) तो रणशय्या पर सोगए है, वीरगति को प्राप्त हुए है, एव इधर मैंने पुत्र प्रसव किया है। अब मै तो आपके देवर के साथ सती होरही हूँ और आप घर मे, आपके व मेरे, इन नवजात शिशुओ मे अपना एक-एक स्तन बॉट कर इन दोनो का पालन करे।

विशेष:—अपनी अनूठी भाव-प्रवणता मे यह दोहा सर्वथा निराला है। वीराङ्गना को पुत्र की ममता भी अपने सती-धर्म-पालन से रोक नही सकती। वह अपने सद्योजात शिशु को अपनी भावज के भरोसे छोडकर ही (जो पारिवारिक सौमनस्य का कितना जीवन्त परिचायक है !) पति का अनुगमन करना चाहती है। सती होने की बात भी कवि ने यहाँ ध्वन्यार्थ के द्वारा ही कहदी है। यहाँ एक बात और भी द्रष्टव्य है, जिसकी ओर राजस्थानी टीकाकार ने सकेत किया है। वह यह कि वीर देवरानी अपने पुत्र को अपनी भावज का ही दूध पिलाना चाहती है, किसी धात्री का नही। कारण, वह जानती है कि भावज के दूध मे जो वीरता के सस्कार है, वे धात्री के दूध मे नही आ सकते। फलत उसे डर है कि कही ऐसा न हो कि किसी कायर स्त्री का दूध पीकर उसका पुत्र कायर निकल जाए और उसकी कुक्षि को लज्जित करदे। अत वह अपनी वीरकुलोत्पन्ना भावज से ही अपने शिशु को दूध पिलाने का अनुरोध करती है—भले ही एक स्तन उसके लिए अपर्याप्त रहे ! राजस्थान का कवि वोर जननी के दूध से निर्मित सस्कारो को कितना महत्व देता है, यह गजगुणरूपकबध के इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाएगा। —

जो न्रप पूती नह दियै, दासी दूध अहार।[1]
तौ विहरै गिरि वज्र जिम, खत्री खग्ग प्रहार॥

किन्तु, ये सब बाते अब अतीत की वस्तु होगई है ! आज वन्द डब्बो और बोतलो का दूध हमारी सतानो का उपजीव्य होगया है, जो पौष्टिकता की दृष्टि से चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यो न हो, क्या मातृत्व की गरिमा से उद्वेलित स्तन्य-धारा का वह कभी स्थानापन्न हो सकेगा ?

शब्दार्थ—**सेज रण** = रण-सेज, रणशय्या। **प्रसव** = जन्म देना। **पूत** = पुत्र। **थे** = आप, राजस्थानी मे 'थे' आदर सूचक अर्थ मे प्रयुक्त होता है, जिसे 'आप' का पर्याय समझना चाहिए। **बाभी** = हे भाभी ! **उभय** = दोनो। **प्रसूत** = उत्पन्न (शिशुओ से तात्पर्य है)।

- **राजस्थानी टीका**—एक वीर पुरस री वीर सती रा वचन पतीरा बडा भाई री स्त्री कहै छै—हे बाभी जी साहेबा ! आपरौ देवर (म्हारौ पती) तौ आज

1. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 164

रिणसेझ मे पोढियो छै—अठी म्हारै पुत्र प्रसव कहै जनमियौ है सो हू तौ पति रौ साथ छोडू नही, सत करसू ने आप दोनू थण वाट ने दोनू प्रसूत-आपरा अर म्हारा दोनू पुत्रा ने दूध पाय मोटा करजो—आपरा थण रौ दूध पावणा सू घर री वीर ओल वणी रहै, जिण सारू धाय रौ नही कयौ। दोनूं पुत्र पालजो-घर री सपत जताई ।।६०।।

साथण ढोल सुहावणौ, देणौ मो सहदाह ।
उरसाँ खेती बीज धर, रजवट उलटी राह ।।44।।

व्याख्या—हे सखी ! मेरे सहमरण के अवसर पर तू सुहावना ढोल बजवाना। मेरे लिए वह कितने आनन्द की घडी होगी जब मैं अपने वीर स्वामी के साथ चितारोहण कर स्वर्ग मे शाश्वत सौभाग्य का सुख प्राप्त करूँगी। अरी, क्षात्रधर्म की यही निराली रीति है कि इसका बीज पृथ्वी पर बोया जाता है और खेती स्वर्ग मे फलती है ! अर्थात् इस लोक मे रणक्षेत्र मे लडते हुए वीरगति पाने से ही स्वर्ग मे दिव्योपभोगो के रूप मे वीरत्व के सुफल की प्राप्ति होती है।

शब्दार्थ—साथण=हे सखी ! **देणौ**=देना, बजवाना । **मो**=मेरे। **सहदाह**=सहदहन या सती होने के अवसर पर। **उरसाँ**=आकाश मे । **धर**=पृथ्वी। **रजवट**=क्षात्रधर्म । **उलटी राह**=उलटी या निराली रीति ।

विशेष—इस दोहे की राजस्थानी टीकाकार द्वारा की गई व्याख्या से हम सहमत नही, जिसके अनुसार पत्नी यह आशका व्यक्त करती है कि 'वाहर का ढोल' तो सुहावना है, परन्तु यह उसके लिए 'सहदाह' देने वाला होगा क्योकि शत्रु, सख्या मे अधिक है और पति अकेला है, जिसके फलस्वरूप वह युद्ध मे मारा जाएगा।' टीकाकार का यह अर्थ स्पष्ट ही वीर सतसई मे वर्णित वीरादर्श के प्रतिकूल है, जिसके अनुसार अकेला वीर भी अनेक शत्रुओ से जूझने मे समर्थ चित्रित किया गया है। यथा —

1 वाभी देवर एकलै, सोचीजै न लगार।
मूझ भरोसौ नाहरौ, फौजा ढाहण हार ।।103।।

2 पैला सुणिया पाच सै, घर मै तीर हजार।
आधा किण सिर ओरसी, जे खिजसी जोधार ।।224।।

स्पष्ट ही टीकाकार का यह अर्थ दोहे मे वर्णित वीर भाव के भी अनुरूप नही है। फलत हमने इसे स्वीकार नही किया है। इसी भाँति श्री स्वामीजी का यह अर्थ कि "पति के साथ अग्निदाह देने वाला यह ढोल का शब्द बडा सुहावना लग रहा है" किंचित् अ तर्विरोधपूर्ण है, क्योकि जब पत्नी ढोल को 'अग्निदाह देने वाला' समझती है तो फिर उसे ढोल का शब्द सुहावना कैसे लग सकता है ?

तद्विपरीत, हमे इस दोहे की श्री डा सहलजी आदि सम्पादको द्वारा की गई व्याख्या सर्वाधिक सगत व भावपूर्ण प्रतीत होती है, जिसमे एक वीराङ्गना की समारोह के साथ सती होने की अन्तस्थ एव सहज उमग का सुन्दर चित्रण हुआ है।

राजस्थानी टीका—काई वीर पुरस री स्त्री आपरी साथण ने वाहर रौ ढोल वाजतौ साभलै नै कहे छै—ए साथण ! आज रौ वाहर रौ ढोल सुहावणौ छै, पण म्हारा सहवात ने (सुहाग ने) दाह देण वालौ छै, क्यू कै दुसमण घणा ने पती म्हारौ एकलौ पूगसी सो मारीजसी। पती ने जाण सू वरजू तौ सरै नही। राजवट-रजपूती रा मारग उलटा छै। आकास मे खेती वाय धरती मैं बीज बावणौ–प्रयोजन आकास मे खेती करणी असभव। आकास मे खेती करै ने बीज धरती मै वावणौ उलटौ राह छै तिणहीज तरह रजपूता रौ पिण उलटौ राह छै—मरनै (सुरग सुख) लेणौ ससार मै नाम राखणौ, आपरौ गरभ निभावणौ इत्यादि ।।इ०।।

ढोलण ढोली सूं कहै, पला उतावल माह ।
भीडै वाह दुबाह चर, भीडै नाह सनाह ।।45।।

व्याख्या—ढोलन ढोली से कहती है—चलो, जरा जल्दी चलें। जान पडता है युद्ध छिड़ गया है, क्योंकि सईस योद्धा के घोडे को तथा स्वामी अपने कवच को कस रहे है। अत हमे भी इन वीरो को प्रोत्साहित करने हेतु शीघ्र समराङ्गण मे पहुँच जाना चाहिए।

शब्दार्थ—**सूं**=से। **पला**=चलें (स पलायन)। **उतावल माह**=जल्दी से। **भीडै**=कस रहा है। **वाह**=वाहन, घोडा। **दुबाह**=योद्धा (स द्विबाहु)। दोनो हाथो से तलवार चलाने या शस्त्र-प्रहार करने मे समर्थ होने के कारण 'दुबाह' शब्द डिंगल-काव्य मे योद्धा के पर्याय रूप मे रूढ होगया है। मध्ययुग मे योद्धा लगाम को मुँह मे पकड कर दोनो हाथो से तलवार चलाते थे। फलत 'दुबाह' शब्द ऐसे उद्भट योद्धा का वाचक वन गया। टैसीटरी ने इसे 'योद्धा' के अतिरिक्त 'तलवार' के अर्थ मे भी ग्रहण किया है,[1] यद्यपि तलवार वाची अर्थ को उन्होने सदिग्ध माना है। 'दुबाह' का तलवार के अर्थ मे प्रयोग हमारे देखने मे नही आया। टैसीटरी ने, वचनिका मे, जिन तीन छदो (11, 15, 89) मे हुए इस शब्द के प्रयोग के आधार पर 'तलवार' का अर्थ किया है, उनमे से दो मे वह 'योद्धा' के अर्थ का एव तीसरे मे सभवत 'घोडे' का वाचक है। वे प्रयोग निम्नाकित है[2]:—

---

1 वचनिका, टैसीटरी, (शब्द सूची) पृष्ठ 128।
2. वचनिका, टैसीटरी।

1 गुज्जरधरा मुराद ग्रहि,
बिजडौ तोलि दुबाह् ॥11॥

2 सूजा दिसि जैसिघ सभि,
दूजौ मान दुबाह् ॥15॥

3. सिलहाँ खाना ऊधडँ,
बह् भङ कछै दुबाह् ॥89॥

प्रथम उद्धरण मे 'तलवार' का वाचक शब्द 'बिजडौ' आगया है। अत' 'दुबाह्' का अर्थ तलवार करने से पुनरुक्ति दोष होता है। प्रसग से भी 'बिजडो.... दुबाह्' का अर्थ 'उस वीर मुराद ने तलवार धारण कर' ही होगा। इसी भाँति द्वितीय उद्धरण मे यह् शाहजादे सुलेमान शिकोह् के लिए विशेषण रूप मे (वीर) प्रयुक्त हुआ है, जो पूर्व की मुहिम पर शुजा के विरुद्ध मिर्जा राजा जयसिह् के साथ गया था। तीसरे मे यह 'घोड' का वाचक प्रतीत होता है। इस अर्थ मे इसका प्रयोग अन्यत्र भी मिलता है --

उछाह् चाह आह्वी **दुबाह् दौड़ते नहीं** ।[1]

अत विवेच्य दोहे मे इसका अर्थ उद्भट वीर या योद्धा ही किया जाना चाहिए। इस अर्थ मे इसके प्रयोग के कुछ उदाह्रण देखिए --

1. यम 'वीर भद्र' स ऊचरै, प्रति वै 'अजरा' **दुबाह्** ।[2]

2 **दुबाह्** अखाडाजीत धाडा रामदूत ।[3]

चर = चरवादार, सईस। **नाह्** = स्वामी। **सनाह्** = कवच।

विशेष--दोहे के पूर्वार्द्ध का अर्थ डा सह्लजी आदि सपादको ने यो किया है--'ढोलिन ढोली से **जल्दी मे कहती है** कि तुम भी चलने को तैयार होजाओ'। यहाँ 'उतावल माह्', 'कहै' (कहने) क्रिया का क्रियाविशेषण न होकर 'पला' (चलने) का है। अत 'जल्दी चले' अर्थ किया जाना चाहिए, जिससे ढोलन की वीरो को प्रोत्साहित करने की अपनी उमग व कर्त्तव्यपरायणता का द्योतन होता है।

राजस्थानी टीका मे किंचित् भिन्न प्रसगोद्भावना करते हुए अर्थ किया गया है, जो टीकाकार की अपनी है।

राजस्थानी टीका--कोई वीर स्त्री ढोलण नू कहै छै धाडौ हुवौ तथा दुसमण वित लीधौ उण वेला ढोली वाह्र रौ ढोल जू भाऊ अने खातौ घणौ लियौ

---

1 ऊमर-काव्य।

2 बिन्हैरासो, पृ० 98 · स. श्री सौभाग्यसिंह् शेखावत।

3 रघुवरजसप्रकास, पृ० 320

तद कहै छै । वीरागना वचन--ए ढोलरा ! ढोली तू कह-इतरी ढाल री पला (ढौल री पौह वागत) मैं इतरी क्यू ताकीद करै ? जोधार तो आपरा बाह-घोडा नै चर-चरवादार मालक रौ घोडौ सभै छै-नै मालक है सो बगतर पहरै इतरी देर छै ।।इ०।।

काली फील कडाह लै, की खप्पर तो हत्थ ।
हेकै साथ धपाडही, मो वै दल गज मत्थ ।।46।।

प्रसंग--काली को वीराङ्गना का सम्बोधन --

व्याख्या--हे काली ! तूने रक्तपान के लिए यह छोटा (नरमुण्ड का) खप्पर क्या ले लिया ? तुझे चाहिए कि हाथी का विशाल शरीर रूपी कडाह हाथ मे ले, क्योकि मेरे ये शूरवीर कन्त आज गज-मस्तको को छिन्न कर उसे प्रभूत रुधिर से लबालब भर तुझे एक बार मे ही तृप्त कर देगे ।

शब्दार्थ--**फील** = हाथी, 'फील कडाह' अर्थात् हाथी का शरीर रूपी विशाल कडाह । राजस्थानी टीकाकार ने इसका अर्थ हाथी के मस्तक पर रक्षार्थ बाँधी जाने वाली ढाल किया है, जो आकृति मे कडाह जैसी होती है । यह अर्थ भी सगत है, परन्तु हमे प्रयोग व भाव-दृष्टि से 'हाथी का शरीर रूपी कडाह' अर्थ अधिक व्यजना-पूर्ण जान पडा । **की** = क्या । **हेकै साथ** = एक बार मे ही । **धपाडही** = तृप्त कर देगे । **मो वै** = मेरे वे, अर्थात् मेरे शूरवीर कत । राजस्थान मे स्त्रियाँ आदरवश अपने पति का नाम नही लिया करती । राजस्थानी टीकाकार ने 'मे वै' शब्द को एकात्मक मान कर 'मे वै दल' का अर्थ 'मेवासू' (मेवासी) किया है । परन्तु हमे डा सहलजी आदि सपादको द्वारा किया गया 'मेरे वे' (पति के प्रति प्रयोग) अर्थ अधिक सगत लगा । **दल** = दलन कर या छिन्न कर ।

विशेष--तुलनीय--

'जिरानूँ नवनीत रा पिंडरी उपमानभूत भेजी ऊछटी तिको ऊपर ही झेलि भद्र काली लोहित रूप आसव रा चसक रै साथ उपदस करि पीधी ।'[1]

राजस्थानी टीका--कोई वीर री स्त्री आपरा पती रौ जुद्ध मे अपूरब पौरष देख आनद सू महाकाली (शक्ति) जुद्ध मे आइ छै सो देखने कह रही छै-हे देवी काली ! तथा काल्ही बावली ! आज म्हारौ पती जुद्ध करसी सो लोही पीरा औ छोटौ खपर काही लीधौ । हाथी रा भ्रसु ड रौ कडाव होवै जैडौ खप्पर (माथा रौ आधौ भाग) लै--तथा रिरा समे हाथी चाचरा माथै ढाल बधै छै सो कडाव होवै जैडी हौवै छै तिरा सू कहै फील कटाह-फील (हाथी) कटाह (कडाव) औ लै । म्हारौ

---

1. वशभास्कर, चतुर्थ राशि, पचदशमयूख, पृ० 1351-52

धणी जू भ्रण ढूकौ जद एक साथे सह सकतिया ने धपाय देसी-मेवै दल-दल रूपी मेवासू ने हाथियारा सीस वाढ लोही सू ।।इ०।।

नाग द्रमका की पडै, नागण धर मचकाय ।
इण रा भोगणहार जे, आज भिडाणा आय ।।47।।

प्रसंग--ऊपर होरहे रण-गर्जन से भयभीत हो नागिन शेषनाग से पूछती है-

व्याख्या--नाग ! आज यह धमाके क्या होरहे हैं ? यह भयकर गर्जन किस कारण है ? शेषनाग उत्तर देता है--नागिन ! धरती लचक रही है, क्योकि इसके भोगने वाले वीर आज रणागण मे आ भिडे है । यह पृथ्वी उन्ही के पदाघातो से त्रस्त और कपित होरही है तथा यह भीषण गर्जन उन्ही के युद्ध का है ।

शब्दार्थ--**द्रमंका** = धमाके, गर्जन । उदाहरण--

नाचे हर सुत मोर **द्रमंके** खोह गु जाता ।[1]

राजस्थानी मे अनुस्वार के निरर्थक आगम की प्रवृति देखी जाती है, जैसे दुर्ग से द्र ग आदि । **मचकाय** = लचक रही है । **भिडाणा** = भिड गए, जूझ गए ।

विशेष--तुलनीय--हालइ महियलु सलकिउ सेस, जम सग्राम चलिउ हरि केसु ।[2]

राजस्थानी टीका--वीर जोद्धारा रौ जुद्ध होवण लागौ तिणसू धरती धूजण लागी तद नागणी नाग ने पूछै छै-हे नाग ! आज धरती मै घरराट काई तरह होवै छै । तद नाग कही-हे नागण ! आ धरती मचकै छै । नागण क क्यू ? तद फेर नाग कहै-इण धरती रा भोगण वाला धणी इण जमी सारू आज रण मे अडिया है ।।इ ।।

निधडक सूतौ केहरी, तो भी विमुहा पाव ।
गज गैडा धीर न धरै, वज्र पडै बघवाव ।।48।।

प्रसंग--सिह के दृष्टान्त द्वारा वीर के आतक की व्यजना--

व्याख्या--यद्यपि सिह निश्चिन्त गहरी नीद मे सोया हुआ है, तथापि हाथी और गैडो को मारे डर के धीरज नही बँध पारहा है । उनके पैर पीछे ही पड रहे है । उन्हे बाघ की गन्ध क्या आरही है, मानो उन पर वज्र पड रहा है । अर्थात् बाघ के कही समीप होने की गन्ध मात्र से ही उनके प्राण निकले जारहे है । वीरो का आतक भी शत्रुओं पर ऐसा ही छाया रहता है ।

---

1 मेघदूत, श्री डा नारायणसिंह भाटी ।
2 पद्युम्न-चरित, कवि सधारु-रचित, पृ 102 स. श्री पं चैनसुखदास न्यायतीर्थ व श्री डा कस्तूरचन्द कासलीवाल ।

शब्दार्थ—**विमुहा** = विमुख · उलटे । **बधवाव** = बाध की गन्ध (स व्याघ्र वायु) । उदा० वाघा रा **बधवाव** सू, भिलै अगजी भाड ।[1]

विशेष—तुलनीय—

सूतौ थाहर नीद सुख, सादूलौ बलवन्त ।[2]
वन काठै मारग वहै, पग पग हौल पडत ।।18।।

तथा—

जिण मारग केहर बुवो, लागी वास तिणाह ।[3]
ते खड ऊभा सूखसी, नह चरसी हिरणाह ।।

राजस्थानी टीका--कोई वीर स्त्री आपरा पतीरी वडाई कर रही छै-सिध रौ द्रिष्ठान्त देने । सिंघ निधडक सूतौ छै तो ही आरा पाछा पग पडै अने भागै छै । वनरा गज (हाथी) गैडा कोई निधडक नही । धीरज छूटगी । धिन है केसर थारी वज्र जै (डी) बधवाव-वाघरी बास नें । सिध रूप सिरदार, वनरूप देश, हाथी गैडा ज्यू सत्रू, बधवाव ज्यू परताप ।।इ ।।

भडा ओछाडै गयण, वसुधा पाडै वाह ।
तो भी तोरण बीद तिम, धीरो धीरो नाह ।।49।।

व्याख्या--युद्ध के लिए सन्नद्ध शत्रुसेना के भण्डो ने आकाश को ढक दिया है । अर्थात् शत्रुसेना का ऐसा प्रबल जमघट हुआ है कि उसके भण्डो से ही आकाश मे सघन घटाटोप-सा छागया है । उधर शत्रुदल के घोडे अपने स्वामी के सकेत पर टूट पड़ने के लिए बेताब हुए अपने पैरो से पृथ्वी खोद रहे है । तो भी, मेरे शूरवीर कत उस विशाल शत्रुवाहिनी की तनिक भी चिन्ता किए बिना उसकी ओर इस शान से इठलाते हुए बढ रहे है जैसे वर तोरण मारने जारहा हो ।

शब्दार्थ—**ओछाड़ै** = ढक दिया है आच्छादित कर दिया है । **गयण** = (स गगन) = आकाश को । **वसुधा** = पृथ्वी । **पाडै** = खोद रहे है । **वाह** = घोडा । **तोरण** = तोरण लकडी की बनी हुई उस मागलिक वस्तु को कहते है, जिसे कन्या-गृह के बहिर्द्वार पर लटकाया जाता है, तथा वर जिसे तलवार या छड़ी से छूकर ही वधू-गृह मे प्रवेश करता है । इस क्रिया को 'तोरण मारना' कहते है ।

विशेष—डिंगल-काव्यो मे सेना को वधू व योद्धा को वर के रूप मे उद्भावित कर अनूठी उक्तियाँ कही गई है । वीर के लिए 'कवारी घडा रो लाडौ' आदि उपाधियाँ इसी भाव की द्योतक है । इस आशय के कुछ अन्य उदाहरण देखिए —

---

1. बाँकीदास ग्र थावली, भाग 1, पृ 9
2. वही, पृ. 13
3. वही

विकट लाडी वणी बीद बाकौ त्रिबक,[1]
मयक रौ परणजे बाधियौ मौड ।

तथा .—

"अरसी" हर ओपम रिण अनीद ।[2]
वधियौ किरि तोरण चडण बीद ।।

योद्धा की दूल्हे से दी गई यह उपमा मात्र आलकारिक नही हे । इसके मर्म पर तनिक विचार कीजिए । दूल्हे के मन मे परिणय के अवसर पर जाते समय जो अपार उल्लास भरा रहता है, ठीक वैसा ही असीम उल्लास युद्धार्थ जाते हुए वीर के हृदय मे भी होता है । दोनो की समान मनस्थिति व अप्रमेय मनोल्लास की व्यजना की दृष्टि से इस उपमा के मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य का मूल्याकन कीजिए ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर स्त्री आपरै पती नै निसक जुद्ध करण नै जावतौ देख सखिया आगै वखाण कर कह रही छै—हे सखिया ! फौज तो सत्रुआ री इतरी है जिणरा झडा—धजाआ सू आकास छाईजगौ है ने घोडा रा पौडा सू धरती रा पाट (हिसा वा भाग) न्यारा न्यारा होय रया है पण इतरी फौज ऊपरै निसक थको तोरण माथै वीद जावै ज्यू म्हारौ पती निसक जाय रयौ छै ।।इ ।।

आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
बहू बळ बा हूलसै, पूत मरेबा जाय ।।50।।

व्याख्या—सहसा हर्षोल्लास का नजारा देख सास आश्चर्य-चकित हो पूछती है-आज घर मे अचानक यह हर्ष किस बात का होरहा है ? ओह ! अब पता चला । बहू तो सती होने के लिए हुलस रही है और बेटा लडने की उमग मे भर मरने जा रहा है ! अर्थात् युद्ध मे वीरगति पाने के लिए उल्लसित होरहा है ।

[अपने वीर पुत्र और उससे भी अधिक अपनीवीर पुत्रवधू (जो अपने पति के मरने से पहले ही सती होने के लिए लालायित होरही हे ।) के इस अपूर्व मरणोल्लास पर भला किस सास की छाती गर्व से फूल नही उठेगी !]

शब्दार्थ—घरे = घर मे, यह 'हरष काय' से जुडा हुआ है । अत अर्थ होना चाहिए—आज घर मे हर्ष किस कारण है ? डा सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ आज 'घर पर सास कह रही है' किया है, जो पदगत भाव की दृष्टि से अयुक्त है । 'घर पर सास कह रही है' का क्या अर्थ हुआ ? सास तो घर पर ही कहती—बाहर क्यो ?

---

1. राजस्थानी-वीर-गीत-सग्रह, भाग 1, पृ० 13
2 गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 219,

हरष = हर्ष । काय = क्यो, किस कारण । **बळेबा** = जलने के लिए (स० ज्वलन, राज वलणौ) । **मरेबा** = मरने के लिए ।

राजस्थानी टीका — कोई अजाणचक जुद्ध हुवौ, तिण मे पुत्र मारीजण ने जावे छै । वहू सत करण ने सभै छै तठै तिण समे वारा सू आई सासू कहै छै—वीर माता कह रही छे—आज म्हारा घर मे अजाणचक रौ औ हरक काही छै सो देखियौ तो पूत तौ असक फौज मे जुद्ध कर मरण ने जावै छै ने वहू बलण (सत करण) सारू हुलस रही छै । प्रयोजन औ छै कि इसा सुद्ध कुळ रा दांही पखा उज्जल–वीरताई रा नमूना जिके मरणा नै मगल समुझै छै—पणवीर पुरसा रा तौ अै वचन होवै छै—पद (रिन मैं मरनौ अार तैं लरनौ, इन कारन छत्रिन देह घरी)[1] इति 'वीर विनोद' ग्रन्थे, स्वामी गणेशपुरि रचित ।।इ०।।

> थाल बजता हे सखी, दीठौ नैण फुलाय ।
> बाजा रै सिर चेतणौ, भ्रूणा कवण सिखाय ।।51।।

प्रसग—अपने नवजात शिशु मे वीरत्व के सहज सस्कारो को लक्ष्य कर वीर माता सगर्व अपनी सखी से कहती है —

व्याख्या—हे सखी ! प्रसव के अनन्तर हर्षसूचक थाल की ओर इसने आँखे फाड-फाड कर देखा, मानो उसे रणवाद्य-ध्वनि समझ उसकी अन्तर्हित वीर-वृत्ति जाग उठी हो ! भला, बाजे बजने के साथ ही यो वीरत्व से उत्तेजित हो जाना इन गर्भस्थ भ्रूणो को कौन सिखा देता है ? [अर्थात् वीरता के सस्कार जन्मजात होते है । फलत गर्भस्थ बालक भी रणवाद्य-ध्वनि पर रीझने वाले योद्धा की भाँति हर वाद्य-ध्वनि से उत्तेजित हो उठता है तथा अपने सहजात सस्कारो के कारण उसे सुन वीरोन्मेष मे भर जाता है]

शब्दार्थ—**बजंता** = बजते हुए । **दीठौ** = देखा । **चेतणौ** = सतर्क होना, उत्तेजित होना । **भ्रूणा** = गर्भस्थ बालको को । **कवण** = कौन ।

राजस्थानी टीका—एक वीर माता आपरा जनमता हीज पुत्र रौ वीर चरित्र देख सखीया ने कह रही छै—हे सखी, म्हारै पुत्र रौ जनम होवता ही थाल वाजियौ उण वखत आख फूलाय गौर सू थाल धकै देखियौ सो सखी ! वाजौ सुण सचेत होवणौ औ भ्रूणा—गरभरा निकलता हीज बालका नें कुण सीखावै है—वाजा पर चेतणौ—जुद्धरा वाजा सू वीर चेतै—त्यू चेतणौ—प्रयोजन—माता पितारी वीर प्रकृती—ओलाद मे आवै छै ।।50।।

> धण आखै जागो धणी, हूकल कलल हजार ।
> बिण नूंतारा पाहुणा, मिलण बुलावै बार ।।52।।

---

1. टीकाकार द्वारा उद्घृत यह पक्ति स्वामी गणेशपुरीजी कृत 'वीर विनोद' के पृष्ठ २७४ पर है सपादक ।

प्रसग —एक शूरवीर के घर पर रात्रि मे अचानक शत्रु सेना आ चढती है। इस पर —

व्याख्या:— वीर-पत्नी अपने निद्रालु वीर स्वामी को यो कहती हुई जगाती है–नाथ ! जागिए, हजारो अश्वो एव योद्धाओ आदि का भयकर रण-निनाद हो रहा है। अनामन्त्रित पाहुने (शत्रु) आपको मिलने (युद्ध करने) हेतु बाहर बुला रहे है। उठिए, उनका भरपूर सत्कार कीजिए ! अपने शौर्य से आगत अतिथियो की युयुत्सा–तृप्ति कर उन्हे कृतार्थ कीजिए !

शब्दार्थ ––**धण** = स्त्री , वीर-पत्नी। **आखै** = कहती है (स व्याख्यान– प्रा०-अक्खान)। **धणी** = पति। **हूंकल कलल** = अश्वादि के हिनहिनाने से उत्पन्न रण-कोलाहल। **हजार** = हजारो, अश्व-योद्धादि के सख्या-सूचन अर्थ मे। **बिण नूंतारा** = अनामन्त्रित। **पाहुणा** = अतिथि (शत्रु)। **मिलण** = मिलने हेतु, भावार्थ मे लडने हेतु। **बार** = बाहर, द्वार पर। **विशेष** — तुलनीय।

घोडॉ हीस न भल्लिया, पिय नीदडी निवारि।[1]

वैरी आया पावणाँ, दल-थँभ तूभ दूवारि॥

राजस्थानी टीका—एक कोई सिरदार माथै अजाचकरी दुसमणा री फौज चढ आई सो देखनें उण वीर पुर्स री स्त्री कहै हे–धण (स्त्री) आखै-कहै, हे धणी ! जागौ, नीद विछौडौ। हजारा घोडा आदमियॉ री हू कल-कलल होवै है-ने विना निवता रा प्रामणा (दुसमण) मिलण (जुद्ध करण) सारू बारै बुलावै है ॥इ०॥

देख सखी होली रमै, फौजॉ मे धव एक।

सागर मदर सारखौ, डोहै अनड अनेक ॥53॥

व्याख्या—हे सखी ! देख, शत्रु-सेनाओ के बीच मेरा पति अकेला ही रण-फाग रच रहा है , शत्रुओ को तलवार के घाट उतार कर रुधिर की होली खेल रहा है। अनेक उद्धत वीरो को धराध्वस्त करता हुआ वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे मदराचल महासिन्धु का मथन कर रहा हो।

अर्थात् सागर-मथन के अवसर पर जैसे मदराचल ने महासमुद्र को विलोडित किया था, उसी भॉति मेरा शूरवीर कत अकेला ही शत्रुपक्ष के उद्धत एव दुर्दम्य वीरो का दर्प–दलन कर उन्हे धराशायी कर रहा है। यहॉ रणक्षेत्र समुद्र है , वीराङ्गना का शूरवीर पति मदराचल है एव उसके द्वारा शत्रुपक्ष के वीरो का अनवरत सहार रण-सिंधु का विलोडन है।

दोहे के अन्तिम चरण मे प्रयुक्त 'अनड' को यदि हम वीराङ्गना के शूरवीर पति के लिए प्रयुक्त प्रशसात्मक उपाधि माने तो अर्थ यो भी किया जा सकता है—

'वह दुर्दम्य वीर अनेक [शत्रुओ] को विलोडित कर रहा है।' अथवा, यदि 'अनड' को पर्वतवाची अर्थ मे ग्रहण करे तो व्याख्या यो भी की जा सकती है—'मदराचल के समान वह शूरवीर अनेक पर्वतोपम योद्धाओ को धराशायी कर रहा है।' तथापि, 'अनड' का मूल व्याख्या मे किया गया अर्थ हमे अधिक सगत प्रतीत होता है।

शब्दार्थ —**रमै**= खेल रहा है, 'रमणौ' राजस्थानी मे खेलने को कहते है। यथा —

ब्राहन-पुर खट मास रहि, होली **रमे** वसत।[1]

डिगल-काव्यो मे युद्ध-वर्णन के प्रसग मे तलवारो से दण्ड या लकुट रास खेलने अथवा रुधिर-फाग खेलने के वर्णन प्रचुरता से हुए है। यथा —

जुध मातौ रीठ डडेहड 'जाणौ' खाग खडाखड खाट खडै[2]

धव = पति। **एक**= अकेला। **सारखौ**= सदृश, समान। **डोहै**= विलोडित कर रहा है। शत्रु-सेना के सहार की उपमा डिगल-काव्यो मे प्राय दधि-विलोडन से भी दी गई है —

वार वार दध जेम विलोअै, ताईया दल नगराज तणा।[3]

तथा —

रिण **डोहै** फिर फिर खला, धडा धपावे धार।[4]

अनड= (स अनम्र) 1 उद्धत या दुर्दम्य शूरवीर। 2 पर्वत, अर्थात् पर्वतोपम वीर। यहाँ प्रसगानुसार प्रथम अर्थ ही उद्दिष्ट प्रतीत होता है। प्रयोगगत उदाहरण —

1 अरि घडा खेमवै आप न खिसै **अनड़**।[5]

2 आखाडै **अवनाड़** वाबाडे ऊभो विकट।[6]

डा सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'शत्रु' (उद्धत) किया है। यद्यपि, 'अनड' शब्द यहाँ शत्रुपक्ष के उद्धत वीरो के लिए प्रयुक्त हुआ है, तथापि 'अनड' शब्द का अर्थ 'शत्रु' नही होता। अपितु, प्रयोग-परपरा से 'अनड', 'ओनाड' आदि शब्द 'दुर्दम्य वीर' के लिए प्रशस्ति रूप मे प्रयुक्त हुए है।

---

1 गजगुणरूपकबध, पृ० 71

2. वही, पृ० 30

3 गीत दूदा नगराजोत रौ . रा० वी० गी० स० भाग 1, पृ० 23

4 खुमाणरासो, दलपतविजय, पृ० 174, स श्री भँवरलाल नाहटा।

5 हालाँ-झालाँ रा कु डलिया, पृ० 8

6 बिन्हैरासो, पृ० 81, स. सौभाग्यसिंह शेखावत।

विशेष—सागर-मथन के प्रसग का 'ब्रह्मपुराण' मे यो उल्लेख हुआ है —

मन्थान मन्दर कृत्वा, रज्जु कृत्वा तु वासुकिम् ।[1]
देवाश्च दानवा सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम् ॥8॥

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरष री स्त्री आपरा पती ने दुसमणा री फौज मे जुद्ध करतौ देखने कह रही छै—हे सखी ! देख म्हारौ पती फौज मे होली रमै—तरवार वाहै सो डीडोडिया री तरह दीसै है—ने इण फौज रूपी दरियाव है तिण मे कोई जोधार पहाड जैसा हैं—पण इण दरियाव ने जोधारा रूपी अनड-पहाडाँ समेत एकलो ही मद्राचल रूपी होय डोय रयौ है—देवताआ ने असुरा मिल दरियाव मथियौ—विलोयौ हौ—रतना सारू तद मद्राचल पहाड री मथाणी (भेरणा जैडी) करी ही, तिण सह दरियाव नै मथियौ, इण तरै म्हारौ पती रण-रतनाकर डं.है छै ॥इ०॥

देख सहेली मो धणी, अजकौ बाग उठाय ।
मद प्याला जिम एकलौ, फौजा पीवत जाय ॥54॥

व्याख्या—हे सखी ! देख, मेरा चपल और युयुत्सु पति अपने घोडे की बाग उठाकर अकेला ही शत्रु-सेनाओ का इस तरह सफाया करता चला जारहा है, जैसे कोई मद्यप सुरा के प्याले पर प्याले खाली करता जारहा हो ।

शराबी को जैसे शराब के प्याले खाली करते देर नही लगती—शराब प्याले मे डाली नही कि गायब—वैसे ही मेरा शूरवीर कत अपने घोडे को शत्रु-दल मे ठेलता हुआ एक के बाद एक शत्रु-सेना का सहार करता चला जारहा है ।

शब्दार्थ—अजकौ = युयुत्सु, रणाकुल, जिसे बिना लडे चैन न पडता हो (जक = चैन), चपल । **बाग उठाय** = घोडे की लगाम उठाकर, अर्थात् घोडे को युद्ध मे भोंक कर । **फौजा पीवत जाय** = फौजो को पीता चला जा रहा है, अर्थात् उनका सफाया करता जारहा है ।

राजस्थानी टीका—आपरा पती ने जुद्ध करतौ देख आपरी सखी ने कहै—देख सखी ! म्हारो पती किसौक अजकौ (चचल) छै—दुसमणा री फौज ने घोडा री बाग उठाय एकलौ पजावै छै, जिण तरै कोई दारूखोरियो ने परूसगारौ सू पदे नै वो एकलौ प्याला भर भर आपरा पेट री करै ने आयौ प्यालौ कै स्वाहा, इणहीज तरेहे एकलौ ही आयौ जोधार कै मारियौ, एकलौ ही सारा सू लडे छै ॥इ०॥

पग पाछा छाती धडक, कालौ पीलौ दीह ।
नैण मिचै साम्हौ सुणै, कवण हकालै सीह ॥55॥

---

1. ब्रह्मपुराणम्, द्वितीयो भाग , पृ० 632, श्री मनसुखराय मोर ।

प्रसंग—सिंह के माध्यम से वीर के आतंक की व्यंजना।

व्याख्या—जिसे सामने आया सुनकर ही मारे भय के पैर पीछे पड़ने लगते हैं, छाती धड़कने लगती है, काला-पीला दिखाई देने लगता है (आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है) तथा आँखें मिच जाती है—ऐसे नर-शार्दूल को भला कौन ललकार सकता है ?

अर्थात् सिंह के समान प्रचंड बली और पराक्रमी जिस शूरवीर का आतंक ही शत्रुओं को चल-विचल और कंपित कर देता है—उसे ललकारने का साहस भला कौन कर सकता है—लड़ना तो दूर की बात है।

शब्दार्थ—कालौ-पीलौ = भय के कारण आँखों के आगे जो अँधेरा-सा छा जाता है, उसे 'कालौ पीलौ दीखणौ' कहते है। **दीह** = दिखाई देता है (सं दृश्य)। **सम्हौ सुणै**= सामने आया सुन कर। **हकालै** = ललकारे, दकाले।

विशेष—तुलनीय.—

धाल घणा घर पातला, आयौ थह मैं आप ।[1]
सूतौ नाहर नींद सुख, पौहरौ दियै प्रताप ॥22॥

तथा —

डरै लोग वन डाडिया, सूते ही सादूल ।[2]
जे सूता ही जागता, सबला माथा सूल ॥26॥

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरा पती रौ वीर पणौ देख मस्त हुई कहै छै—ए सखी ! म्हारौ पति सिंघ होवै जैडौ छै सो सत्रु ऊपरै आवण रौ मतौ करै पण पग पाछा पडै है, छाती धडकै धकै आवता कालौ-पीलौ दीसै छै—साम्हा आवतौ केई सुणै है तो आखिया भर री मारी आफेई मीचीज जावै छै—किण रो उणिहारौ इण सीह ने दकालै ॥इ०॥

धुर सूनी, मरियौ धवल, सकट हचक्का खाय ।
तिण रौ बालौ बाछडौ, तडै खध लगाय ॥56॥

व्याख्या—हा ! बली वृषभ मर गया ! उसके मरते ही धुर (जूडी) सूनी होगई (अथवा, सो गई, पृथ्वी पर गिर पडी) एवं शकट दचके खाने लगा। किन्तु धन्य ! तभी उस वृषभ का तरुण वत्स अपने पिता की जगह कंधा लगाकर (जुत कर) शकट को ऊँचा उठाते हुए वीर-दर्प से हुंकार उठा ! (इस भाव से कि

1 वीर विनोद, बाँकीदास ग्रंथावली, भाग 1, पृ० 24
2 वही।

बाप मर गया तो क्या हुआ—इस शकट को खीचने वाला अभी मै मौजूद हूँ ! यह रुकेगा नही!) ।

[अपनी उदात्त भाव-गरिमा एव अनूठी साकेतिक व्यजना (Suggestivity) की दृष्टि से 'वीर सतसई' का यह दोहा समूचे डिगल-काव्य मे अप्रतिम है । बलि बाल-वृषभ के माध्यम से कवि ने वीरत्व की परम्परा के वाहक तरुण शूरवीर का जो चित्र अ कित किया है—वह सर्वथा स्तुत्य और प्रणम्य है । शकट यहॉ कुल की कीर्ति, शौर्य, वीरता, पौरुष, पराक्रम और वदान्यतादि गुणो के सचित भार का प्रतीक है, जिसे कुल का कर्णधार शूरवीर खीचता-खीचता ही मर गया । उसके मरते ही कीर्ति और शौर्य का वह शकट सहसा रुक गया, परन्तु क्षणान्तर के लिए ही, क्योकि उस बली वृषभ के गिरते ही उसका बाल वृषभ (वीर पुत्र) उसकी जगह जूडे मे आ जुता तथा अपने पुष्ट स्कध से रुके हुए शकट को ऊँचा उठाते हुए वीर दर्प से हु कार उठा ! धन्य है वह बाल-वृषभ जो अपने पिता की वीरोचित परपराओ को यो मिटने नही देता है—जिसके रहते कीर्ति और शौर्य का शकट कभी रुकता नही है ! सूर्यमल्ल के इस दोहे मे बाल वृषभ के माध्यम से शौर्य और पराक्रम की पैतृक परपराओ को वहन करने की अनूठी प्रेरणा है । उस दोहे मे निहित सवेदना सर्वथा मौलिक एव अनूठी है । धवल को लेकर अपभ्र श व डिंगल-काव्यो मे पहले भी एक मे बढकर एक अनूठी उक्तियॉ कही गई है, परन्तु बाल-धवल को लेकर कथित यह उक्ति सूर्यमल्ल की अपनी मौलिक उद्भावना है] ।

शब्दार्थ —धुर= 'धुर' का शाब्दिक अर्थ 'आगे' होता है, परतु यहॉ 'धुर' शब्द जूडी या जूडे का वाचक है, जिसमे बैलो को जोता जाता है । आज भी अधिक भार खीचने के लिए जब दो बैलो से काम नही चलता तो चार बैल जोते जाते है । इनमे जूडे मे जोते जाने वाले बैलो को 'धुर मे जूपने वाले' तथा आगे वाले बैलो को बेली मे जूपने वाले' बैल कहा जाता है । धुर मे जुतने वाले बैलो को अधिक जोर पडता है। श्री स्वामीजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'धुरी' किया है, जो प्रसगनुसार अयुक्त है । तद्विपरीत,जैसाकि डा०सहलजी आदि सपादको का मत है,'धुर' यहॉ 'जूडे' का ही वाचक प्रतीत होता है ।

राजस्थानी टीका मे यहॉ 'धर' पाठ दिया गया है, जिसका अर्थ धरती, पृथ्वी किया गया है । हमे यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है । कारण, धवल-वर्णन के प्रसग मे 'धुर' शब्द का प्रयोग अन्य कवियो ने भी किया है–जो प्रसगानुसार 'जूडे' का ही बोध करता है । बैल के मरते ही जूडे का गिरना स्वाभाविक है । यहाँ उसी की ओर सकेत है । धवल-वर्णन के प्रसग मे कविराजा बॉकीदास ने भी सर्वत्र 'धुर' का ही

प्रयोग किया है । अत हमे यह पाठ शुद्ध प्रतीत होता है, राजस्थानी टीकाकार द्वारा गृहीत 'धर' पाठ नही । उदाहरण —

धवल न अटके धुर वहै, कासू पाणी कीच ।[1]

तथा —

खध न फेरै धुर वहै, धवला एह धरम्म ।[2]

इसी भाँति 'गजगुणरूपकबध' मे भी 'धुरि' पाठ है, 'धर' नही —

धमलौ बापूकारियौ, बालौ है बलि बड ।[3]
धुरि माथौ धूणै नही, भरि औडै भूडड ।।

सूनी = 1. खाली या रिक्त हो गई (छूडी) 2 सो गई, भूमि पर गिर पडी **धवल** = श्वेत वृषभ, जो डिंगल—काव्यो मे अटूट धैर्य, वीरता, कर्तव्यपरायणता, स्वाभिभक्ति, दायित्व-निर्वाह तथा अपराजेय साहस एव सघर्षशीलता का आदर्श प्रतीक माना गया है । कविराजा बाँकीदास तो इस पर इतने मुग्ध है कि उन्होने 'धवल पचीसी' मे धवल विषयक अत्यन्त मार्मिक भावोद्गार व्यक्त किए है । **सकट** = शकट, राजस्थानी 'सग्गड' । **बालौ** = बालक, तरुण । **बाछडो** = बछडा (स वत्स रूप) । भावार्थ मे युवावीर । **तडै** = वीर दर्प मे हुँकारना । वृषभ के वीरोन्मेष मे भग जोर से बोलने को 'टाडणो' कहते है । श्री स्वामीजी आदि सपादको ने 'ताण्डव' के व्यौत्पत्तिक सम्बन्ध से इसका अर्थ 'ताण्डव नृत्य-सा करने लगता है" किया है, जो यहाँ अनुद्दिष्टि है । वस्तुत 'टाडणौ' का अर्थ धवल-वर्णन के प्रसग मे वीर-दर्प से बोलना ही किया जाना चाहिए । इस अर्थ मे इसके प्रयोग के कुछ उदाहरण देखिए –

1 बडै भार जूपै बहै, करै न खाचा ताण ।[4]
जद तू **ताडै** धवल जिम तो **ताडणो** प्रमाण ।।19।।

2 बाप रै जोडै अतुली बल ।[5]
भलो **त्राडियौ** बाल धमल ।।

3 गैणाग ज्यार पडियौ गलै, वलहारी भुअडड बल ।[6]
तिणवार 'गजेसी' **त्राडियौ**, धुर हिलोल बालौ धमल ।।

---

1 धवल पचीसी, बाँकीदास ग्र थावली, भाग १, पृ० 37
2. वही, पृ० 42
3 गजगुणरूपकबध, पृ० 15
4. धवल पचीसी, बाँकीदास ग्रन्थावली भाग १, पृ० 41
5 वचनिका राठौड रतनसिंघजी महेसदासोत री, स श्रीकाशीनाथ शर्मा व डा० रघुवीरसिंह, पृ० 36.
6. गजगुणरूपक बध, पृ० 56

विशेष—धवल विषयक भावोद्‌गारो की परम्परा बहुत पुरानी है ।'अपभ्रंश व्याकरण' मे हेमचन्द्राचार्य ने भी धवल विषयक दोहे लिखे है ।

कविराजा बाँकीदास ने तो,जैसा कि कह आए है, धवल विषयक अत्यन्त सुन्दर भावोद्‌गार व्यक्त किए है । महाकवि सूर्यमल्ल पर इन कवियो की भावधारा का प्रभाव असदिग्ध रूप से रहा है । यथा —

1 सीगडियाँ ऊगण समै, वाछडुवा री वक ।[1]
खबर पडै धुर खैचसी, औ तौ आडै अ क ।।

2 कलिया गाडा काढतौ, दे काधो बड दोर ।
हव धवलौ बूढौ हुवौ, जगपत सू की जोर ।।32।।

शक्ति, शौर्य और पराक्रम का प्रतीक धवल वस्तुत धन्य है ।

राजस्थानी टीका— कवी कहै छै-जिण दिन सू धवला धोरी रूपी वो वीर पुरस मारीजियौ उण हीज दिन सू अठारी आ धरती सू नी होय गई अने सकट (गाडौ) क्रीत रा बोझ रौ भरियोडौ तथा वीरतारो-दातारगी रौ-स्यामधरम-साच -सत्य-साहस आदि ऊँची वातॉ रा बोझ खैचण सारू-इण समे रा कापुरसा-(कायरा) ने विरदाय माडॉणी जोतिया पिण गाडौ किण सू ही खचियौ नही, सो खैचाताण करी पण उठै हीज हचका खावै पण चलै नही जद ऊँणहीज वीर धवला रौ बालक वाछडौ तिकौहिज इण सकट नै कध लगाय नै ताड़कै छै-अरथात म्हारौ पिता जिण गाडा रै बोझ वुहौ वो कायरा सू खचै नही, हूँ ईज खेचसू ।।इ०।।

तु डा गज फेटॉ तुरी, डाढा भड औझाड ।
हेकण कवलै घू दिया, फौजा पाथर पाड ।।57।।

प्रसग—वराह के माध्यम से वीर के पराक्रम की व्यजना—

व्याख्या—उस महाबली वराह ने अकेले ही अपने मुँह की चपेटो से हाथियो को, टक्करो से घोडो को तथा अपनी प्रलयकर तीक्ष्ण डाढो के तिरछे प्रहार से सुभटो को चीरते हुए सारी फौज को बिछौने की तरह बिछाकर (धराशायी कर) रौंद डाला ।

शब्दार्थ—तु‌ंडा=(स तुण्ड) मुखाग्र की चपेटो से । **फेटाँ**=टक्करो से । **भड**=सुभट, योद्धा । **औझाड**=चीर कर , विदीर्ण कर । उदाहरण—पर्बत मेर रो सीस खड्गरी **औझाड** देर भूतनाथ भैरव रै उपायन कियो ।[2] **हेकण**=एक ही , अकेले ही । **कवलै**=वराह ने । **घू दिया**=रौद डाला । **पाथर पाड़**=बिछा कर ,

---

1. धवल पचीसी, बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृ० 43.
2. वशभास्कर, चतुर्थराशि, पृ० 1349,

धराशायी कर। श्री स्वामीजी आदि सपादकों ने इसका अर्थ "पत्थरो पर बिछा दिया" किया है, परन्तु हमारी समझ मे 'पाथर पाडणौ' का अर्थ बिछा देना या धराशायी कर देना है। इस अर्थ मे इसका प्रयोग भी हुआ है यथा —

सारे फेरि कीया सत्र **पाथर,** घडा तीन बाईस घड।[1]

'बिछाने' के अर्थ मे 'पाथरै' का प्रयोग कविराजा बाँकीदास ने भी किया है —

पग पग काटा **पाथरै,** वादीलौ वनराव।[2]

यहाँ मार-मार कर बिछाने या धराशायी करने से अभिप्राय है।

राजस्थानी टीका—कवी सूर रा दृष्टात सू सूरवीर रौ साहस कहै छै, इण कवलै (वाराह) तू ड रै जोर हाथी पाडिया–फेट दे घोडा सवार पाडिया, डाढा (दातडी) सू सूरवीरा ने ओझाडिया–झटको दे हेटा न्हाकिया–देखौ एकरण हीज कवलै (सूर) फौजारा पाथरा कर घू द न्हाकिया–प्रयोजन एकण हीज सूरवीर सारी फाज (फौज) ने पजाय दीधी ॥इ०॥

बंबी अंदर पौढियौ, कालौ दबकै काय।
पूंगी ऊपर पाधरौ, आवै भोग उठाय ॥53॥

प्रसंग— साँप के माध्यम से वीर के रोपपूर्ण व्यक्तित्व की व्यजना।

व्याख्या—बबी मे सोया हुआ काला नाग क्या पूगी की आवाज सुनकर भी दुबका रह सकता है? नही, वह तो पूगी की आवाज सुनते ही अपना फन उठाकर सीधा उस पर झपटता है। ठीक इसी भाँति शूरवीर भी रणभेरी की ध्वनि सुन एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना अपनी निद्रा त्याग कर रणभूमि की ओर चल पडता है।

शब्दार्थ—**कालौ** = काला नाग, भावार्थ मे वीर। **काय** = क्या। **पाधरौ** = सीधा। **भोग** = फन।

विशेष—कवि को यह उपमा कुछ विशेष प्रिय मालूम देती है। वशभास्कर मे भी उसने इसका प्रयोग किया है —

दूजा गज रो पोगर अरिसिंह री पाघ पर आयो।[3]
जाणे पूग्याँ रा पुज पर नागराज भोग झुकायो ॥

---

1. कानसिघ बलभद्रोत कछवाहा रौ गीत।
2. वीर विनोद, बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २०
3. वशभास्कर, चतुर्थराशि, पचदशमयूख, पृ० 1343

राजस्थानी टीका—कवी एक सूरवीर सिरदार आपरा ठिकाणा मे सचलियौ बैठो है, तिण नें दुसमण छेडणौ चाहै है, तिकाने कवी कहे हे कि बबी (सर्प बिल) मे कालिंदार काय सरीर दबक छिपाय ने पोढियौ है पण पू गी री राग ऊपरै पाधरौ भोग—फण उठाय ने राग सुणता ही आवसी–अरथात जुद्ध रा वाजा सु णता ही सिर उठाय आवसी। दुममण भोलै भूला छै कै म्हासू डरतौ बैठो छै–जाण नै दब कियौ छै ।।६०।।

अजकौ गहली रौ कलस, बलती रौ नाळेर ।

एकल पूगौ टेकलौ, आस किसूं वब केर ।।59।।

व्याख्या—मेरा रणाकुल और हठीला पति, जो पगली के कलश या सती के नारियल-तुल्य है, अकेला ही शत्रु-सैन्य के बीच रणक्षेत्र मे जा पहुँचा है। अब उसके जीवित लौटने की क्या आशा की जाए ? आए, न आए।

शब्दार्थ—अजकौ = रणाकुल, युयुत्सु, जिसे युद्ध के बिना चैन न पडता हो। **गहली रौ कलस** = डिंगल-काव्यो मे मृत्यु की परवाह न करने वाले निर्भय और साहसी शूरवीर की उपमा प्राय 'पगली के कलश' व 'सती के नारियल' से दीगई है। पगली के गिर पर रखे कलश का जैसे कोई भरोसा नही होता, वह कभी भी सिर हिलने के साथ गिरकर चकनाचूर हो सकता है, उसी प्रकार प्राण हथेली पर लिए घूमने वाले शूरवीर के जीवन का भी कोई भरोसा नही होता। अपने दुर्दम्य साहस के कारण वह कभी भी शत्रुओ से भिडकर वीरगति को प्राप्त हो सकता है। अत 'गहली रौ कलश' शब्दावली डिंगल-काव्य मे मृत्यु का वरण करने वाले अथवा सतत मरणोद्यत ऐसे वीर की प्रशस्तिमूलक उपाधि बन गई है, जिसका मरण निश्चित हो। **बलती रौ नाळेर** = 'गहली रौ कलश' की भाँति यह भी प्राण हथेली पर लिए घूमने वाले शूरवीर की उपाधि है। सहमरण के अवसर पर सती हाथ मे नारियल लिए हुए चितारोहण करती है, जिसका सती के साथ ही भस्मीभूत होना अवश्यम्भावी है। उसी प्रकार मृत्यु की परवाह न करने वाले हठी शूरवीर का मरना भी निश्चित है। फलत ऐसे मरणोत्सुक, निर्भय एव दुर्दम्य साहसी शूरवीर को 'बलती रा नाळेर' से उपमित किया गया है। **एकल** = अकेला, उदा०—'" 'कपाट रैं लागतां ही कुमार **एकल** असवार आपाऊपहरो आवतो देखि आसग मैं अणमावतो जाणि गगदेव हेलो भी न देण पायो "।'[1] एकल का अर्थ अपर यूथपति वराह भी होता है, जो राजस्थानी साहित्य मे अप्रतिम शौर्य, उद्भट पराक्रम एव दुर्दम्य वेग का प्रतीक माना गया है, जिसे लेकर स्वय सूर्यमल्ल सहित अनेक कवियो ने मार्मिक वर्णन किए है। यथा —

---

1 वशभास्कर . चतुर्थराशि, पर्चत्रिशमयूख, पृ० 1614

सबल वाराह हालौ लडण अ कडौ ।[1]

'एकल' शब्द के भी वराहवाची अर्थ मे प्रयोग के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है । यथा:—

1. सूअरा रो सिकार माँणीजै छै, **एकल** ढाहीजै छै ।[2]

2 सू सूवर किण भातरा छै ? भूरा, कवला कैई अबलख छै ।
डार एकै पासै छै । **एकल** एक तरफ छै ।[3]

3 धूहड ऊत सदा दिन धोलै, **अेकल** चरै वलै अण-बीह ।[4]

अत यहाँ भी अपनी मृत्यु की परवाह न करने वाले शूरवीर की उपमा अतुल बलशाली यूथपति वराह से देना कवि का अभीष्ट हो सकता है । तदनुसार अर्थ होगा—'वह हठीला शूरवीर यूथपति वराह–सा शत्रु-सैन्य मे जा पहुँचा ।' **टेकलौ** = टेक वाला, हठीला । वीर अपनी आन का पक्का होता है । किसी भी स्थिति मे वह अपनी जिद नही छोडता । वह जो ठान लेता है, उसे पूरा करके ही छोडता है, अन्यथा उसे पूरा करने के प्रयास मे मर मिटता हे । इसीलिए 'टेक' वीर का अनिवार्य भूषण माना गया है । इसके लिए डिंगल काव्य मे 'रावण' को आदर्श माना गया है–'रढ रावण मेवाडा राण'[5] । **किसू** = कैसी । **धव** = पति । **केर** = की ।

विशेष—डिंगल-काव्यो मे योद्धा-वर्णन के प्रसग मे, शूरवीर की 'पगली के कलश' व 'सती के नारियल' से उपमा प्राय पारपरिक है, जिसका अन्य कवियो ने भी बहुश. प्रयोग किया है । सूर्यमल्ल की भी यह अति प्रिय उपमा है, जिसका उन्होने 'वशभास्कर' मे भी प्रयोग किया है । यथा —

बावरी घट कै मनो सहगामिनी कर लागली सम ।[6]

तथा —

परन्तु काली रा कलस, सती रा नालेर, पति पहली प्रजली प्रतिव्रता रा प्रियतम रो पाल तूँ न भाई ।[7]

---

1. हालॉ-झालॉ रा कुडलिया, पृ० 44
2 राजान राउत रो वात-वणाव, रा. सा. स. भाग 1, पृ० 44
3. खीची गगेव नीबावत रो दोपहरौ, वही, पृ० 5
4 गीत राव रायपाल रौ,
5 महाराणायशप्रकाश, पृ० 75
6 वशभास्कर, चतुर्थराशि, त्रयोविशमयूख, पृ० 1451
7 वही, पचमराशि, एकादशमयूख, पृ० 1817.

इसी भाँति अन्य लेखको-कवियो ने भी इसका प्रयोग किया है, जिससे डिंगल-काव्य मे इस उपमा को अतिशय लोकप्रियता का पता चलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है —

1. सू किण भात रा छै[1]—

काल्ही रो कलस
सती रो नाल़ेर ।
तोरण रा आखा ।
कु वारी घडा रा बीद ।

2 **सती तणो नारेल़, तिकौ बेहड़ो उंताल़ी ।**[2]
कहियो नाम 'किसोर', जोर भरियौ जभाली ।

3, 'इसा दीसै कमर्‌या कसिया, **काल्ही रा कुंभ,** किना रभा रा रसिया ।'[3]

4 'इतरी वात करता माहे दाठीग दूठ प्राक्रमी बिरद
अणभग, **गहली रो बेहड़ौ** अनुज भाई निसभ बोलै ।'[4]

5 बटकाँ समर हुवौ चद बीजौ, **गहली वाला कल़श कल़** ।[5]

राजस्थानी टीका—कोई एक वीर पुरुष री महला आपरा धणी नें दुसमणाँ लारै वार चढियौ देख सखिया ने कहै छै—हे सखी ! म्हारौ पती इसौ अजकौ छै–सरीर तौ काली (बावली) स्त्री रौ कलस (घडौ) पाणी लावती लैर आवै जठै ही फोड न्हाके तथा बलती (सती) रौ नालेर कितरी दूर रौ ? सती रैं साथै बलै—इणहीज तरैं एकलौ ही दुसमणा ने पूगौ तरैं टेकलौ आपरी आन राखण वालौ आप सूरवीर पणा रौ छकियौडो पाछौ आवै तथा नही आवै–इण सारू पाछौ आवण री धव (धणी) री काई ? कुसलें-आवसी तथा नही आवसी ॥इ०॥

घोडा घर ढाला पटल़, भाला थम बणाय
जे ठाकुर भोगै जमी, और किसौ अपणाय ॥60॥

---

1. खीची गगेव नीबावत रौ दोपहरौ; रा सा स. भाग 1, पृ 3. स. श्री न. दा स्वामी ।
2 बिन्हैरासौ, पृ 42, स. श्री सौभाग्यसिह शेखावत ।
3. रतना हमीर री वारता, पृ. 12
4, माताजी री वचनिका, जतीजैचदकृत, पृ. 58
5. गीत गहली रा कलश रा बीनाण रौ, भीवसिंघ हाडा रौ, रा वी गी स. भाग 1, पृ 73.

व्याख्या--जो ठाकुर ढालो की छत तथा भालो के खंभो से घोडो की पीठ पर ही अपना घर बनाकर इस पृथ्वी का उपभोग करते है—उनसे उनकी भूमि छीन कर भला कौन उस पर अपना अधिकार कर सकता है ?

अर्थात् जो शूरवीर सामन्त नित्य अश्वारूढ रहते हुए ढाल और भाले मे सज्जित हो अपनी अधिकृत भूमि की रक्षा करते है—उन शूरवीरो से कोई शत्रु उनकी भूमि नही छीन सकता ।

शब्दार्थ—**पटल**=छत, 'पटल छदि[1] । **किसौ**=कौन । **अपणाय**= अपना सकता है, अधिकृत कर सकता है।

विशेष—प्रस्तुत दोहे मे अग्रेजी की कहावत, 'Eternal vigilance is the price of liberty' का भाव बडी सुन्दरता से व्यक्त हुआ है। अपने अधिकारो के प्रति सजग तथा अधिकृत भूमि की रक्षा के लिए सतत सन्नद्ध शूरवीरो की उपभोग्य भूमि की ओर किसी शत्रु की क्या मजाल है जो आँख उठाए ।

राजस्थानी टीका—कवी कहै है कि इण जमीन भोगण वाला अैडा होवे है, जिकारा घर तौ घोडा ऊपरै है नै तावडौ तथा वरषारी निव्रतीकरण वासतै ऊपर पटल (छात) है ढालाँ रो अर थबा है छात रै नीचै भालाँ रा—इसा मरदाना जे ठाकुर जमी भोगै है वा जमी और किसौ ठाकर अपणाय सकै—अर्थात् दूजौ अपणाय सकै नही वा जमी ॥६०॥

> **नायण आज न मॉड पग, काल्ह सुणीजै जग**
> **धारां लागीजै धणी, तौ दीजै घण रग ॥61॥**

प्रसंग—नाइन के प्रति वीराङ्गना की उक्ति—

व्याख्या—हे नाइन ! आज मेरे पैरो मे महावर मत रच, अलक्तक न लगा । सुना है, कल युद्ध छिडने वाला है । उसमे मेरे वीर स्वामी यदि धारातीर्थ मे स्नान करते हुए वीरगति प्राप्त करे तो तू खूब रग देना—जी भर महावर राचना ।

भाव यह है कि मेरे श्रृगार का अवसर अभी नही, उस समय होगा जब मेरे वीर कत धारातीर्थ मे स्नान करते हुए कट मरेगे और मै उनके साथ सती होऊँगी । उस समय, स्वर्गीय मिलन की उमग मे भर जब मैं सोलह श्रृगार करूँ तब तू मेरे पैरो मे मनचाही महावर राचना ! प्रणय-सेज पर विलसने का यह श्रृंगार मुझे भाता नही ।

शब्दार्थ—**माँड**=रच या लगा । 'माँडणौ' से अभिप्राय, महावर के सदर्भ मे, राचने से है । **धारां लागीजै**=तलवार के घाट उतरे , धारातीर्थ मे स्नान करे । **घण**=प्रचुर, मनचाहा ।

---

1. अमरकोष, 2-2-14,

विशेष—सती होते समय सोलह श्रृ गार किया जाता है । वीरता के संस्कारो मे पत्नी वीराङ्गना यहाँ उसी की ओर सकेत करती है । उसके लिए लौकिक विपय-सुख तथा तदर्थ किए जाने वाले श्रृ गार की अपेक्षा स्वर्ग मे शाश्वत मिलन का श्रृ गार अधिक आनन्ददायक होता है ।

बाभी देवर नीद वस, बौलीजै न उताल ।
चगतॉ धावॉ चैकसी, जे सुणसी त्रबाल् ।।62।।

प्रसंग—देवरानी की जेठानी के प्रति उक्ति —

व्याख्या—हे भाभी ! आपके देवर (घावो से छके हुए) नीद मे सो रहे है- जोर से न बोलें । यदि ये युद्ध का नगाडा सुन लेगे तो रिसते घावो ही क्रुद्ध हो उठेगे । अर्थात् रोषाविष्ट हो पुन युद्ध करने चल पडेगे, जिससे घाव और भी बढ जाएगे ।

शब्दार्थ—बाभी = भाभी । **उताल** = जोर से , राजस्थानी मे 'उतावलौ बोलणौ' का अर्थ 'जोर से बोलना' होता है । यहाँ वही अर्थ उद्दिष्ट है-'शीघ्रता या उतावली' का अर्थ नही, जैसा कि डा० सहलजी आदि सपादको ने अन्यार्थ मे किया है । **चगता** = रिसते या बहते हुए , चूते हुए । **चैकसी** = क्रुद्ध हो उठेगे । डा० सहलजी व श्री स्वामीजी आदि द्वारा सपादित दोनो ही सस्करणो मे 'चैकसी' का अर्थ चौक उठेगे' किया गया है जो अनुपयुक्त है । 'चैकसी' यहाँ 'क्रोध करने या क्रुद्ध होने' का वाचक है, जैसा कि 'वश भास्कर' मे इस अर्थ मे इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है । यथा —

1 **चैकि चढ्यो** सो सुनि बडे दल मुगलराज ।[1]

'चैकि चढ्यो' अर्थात् क्रोध करके चढा', चौक कर चढा नही ।

इसी भाँति —2. गहै नर बेगुक प्रेरत गैल ।[2]
डिगै डग डाकत **चैक** चरैल ।।

3 चूडामनि लखि **चैकि** बहुल दल सज्ज बनाये ।[3]

4 गाल त्यो अपरा न इक्खत **चैकि** धावन मैं चमूगन ।[4]

5 तक्कै हुकम बिलब तिन्ह, चीरै गहि प्रभु **चैक** ।[5]

अत यहाँ शुद्ध पाठ 'चैकसी' माना जाकर इसका अर्थ 'क्रोध करना' या 'क्रुद्ध हो उठना' किया जाना चाहिए । जहाँ 'चौकने'का अर्थ उद्दिष्ट है, वहाँ कवि ने 'चौंकि' का प्रयोग किया है, 'चैकि' का नही । यथा 'वश भास्कर' मे—

---

1. वशभास्कर , पचमराशि, अष्टाविंशमयूख, पृष्ठ 2055
2 वही, अष्टमराशि, पचममयूख, पृष्ठ 4119;
3 वंशभास्कर चतुर्थराशि, विंशमयूख, पृ० 1410 ।
4 वही , चतुर्थराशि, त्रयोविंशमयूख, पृ० 1446 ।
5 बही , पचमराशि, चतुस्त्रिंशमयूख, पृ० 2154 ।

चलि आइ **चौंकि** चडी, रमि सढिढ् च्यारि रडी ।[1]

राजस्थानी टीका मे 'चाकसी' पाठ है, जो हमे अशुद्ध प्रतीत होता है । कारण, प्रथम तो 'चाकसी' पाठान्तर अन्य प्रतियो मे नही है । दूसरे, 'चैकि' शब्द की विशिष्टार्थक प्रयोग-परम्परा रही है, जिसका कवि ने 'वश भास्कर' मे भी व्यवहार किया है तथा 'वीर सतसई' की अन्य प्रनियो मे भी यही पाठ है । फलत हमने टीका के पाठ को स्वीकार नही किया है ।

त्रंबाल = युद्ध का नगाडा । 'वीर मतसई' के प्रकाशित दोनो सस्करणो मे 'बबाल' पाठ है, परन्तु टीका मे 'त्रबाल' हे । अर्थ दोनो का एक ही है ।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरप री स्त्री आपरा पती रा वडा भाई रै स्त्री ने कहै छै–वाभीसा आचै (ऊँचे) मत बोलौ-आपरौ देवर नीद मे है सो सजग हुवा तौ दुसमण री फौज रौ नगारौ सुंण जुद्ध करण ने पिंड रा घाव चकै छै तिका घावा री परवा न कर चिकता घावा ऊठ जासी ।।इ०।।

देराणी द्रग ग्रीध रा, जेठ श्रवण सैंजोड ।
कोसा चा सुण ढोलडा, ऊठै नीद बिछोड ।।63।।

प्रसंग—जेठानी की देवरानी के प्रति उक्ति—

व्याख्या—हे देवरानी ! (दूर की वस्तु ग्रहण करने मे) आपके जेठ के कान गीध की आँखो के समान तेज है । वह जैसे कोसो पार की वस्तु देख लेता है, वैसे ही ये भी कोसो दूर बजता हुआ (वाहर, अर्थात् प्रत्याक्रमण या युद्ध का) ढोल सुन तुरन्त निद्रा त्याग कर उठ खडे होते है ।

भाव यह है कि युद्ध छिडने की सूचना सुनने के लिए इनके कान सदा लालायित रहते है तथा उसे सुनते ही इन्हे एक क्षण का भी विलम्ब असह्य हो जाता है ।

शब्दार्थ—**द्रग** = नेत्र । **सैंजोड** = समान । **चा** = के । **ढोलडा** = ढोल । **बिछोड़** = छोड कर, त्यागकर ।

राजस्थानी टीका—तद जेठाणी आपरा पतीरी प्रकृती कहै छै–हे देराणी ! ताहरै जेठरा कान ग्रीधरी आखा जिसा छै (ग्रीध घणा कोसा ताई देख लै छै) सो कोसा ऊपर ही वाहरौ ढोल वाजतौ होवै तो नीद बिछोड जुद्ध करण ने तयार हो जावै छै ।।इ०।।

कत कहता सहगमण, कीधा रहबौ साथ ।
छोड़ौ अच्छर छेहडो, सोधण झालै हाथ ।।64।।

---

4 वशभास्कर, पचमराशि, विंश मयूख, पृ० 1931 ।

प्रसंग—अपने वीरगति-प्राप्त पति को स्वर्ग मे अप्सरा के साथ देखकर सती की पति के प्रति उक्ति —

व्याख्या—हे कत ! आप तो कहा करते थे न कि सहगमन करने से ही आगे भी सदा के लिए साथ बना रहता है (स्वर्ग मे शाश्वत सयोग का सुख प्राप्त होता है)। लीजिए, मै तो अपने सती व्रत का पालन कर आपके शाश्वत सयोग की कामना से यहाँ आगई, परन्तु आपने यह क्या किया जो मेरे आने तक की प्रतीक्षा किए बिना ही इस अप्सरा का वरण कर लिया ! खैर, अब इसका आचल छोडिए ताकि आप की परिणीता प्रिया आपका हाथ पकडे ।

शब्दार्थ—कहता = कहा करते थे । **कीधा** = करने से । **अच्छर** = अप्सरा । **छेहडो** = पल्ला, आँचल । **सोधण** = प्रिया, पत्नी या ललना के लिए डिगल-काव्यो मे सोधरण', 'सायधरण' आदि का प्रचुर प्रयोग मिलता है । यथा —

1 सोढी जलवा **सायधण**, हवन्ते पाय हलीह ।[1]
2 कर गहि लीन्ही ढोलियै, **सायधण** कथ मकाज ।[2]
3 सोच करौ मति **सायधण**, जाजौ राखौ जीव ।[3]

झालै = पकडे ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर री स्त्री जुद्ध मे काम आया पती लारै सत कर सुरग मे गई ने अपछरा साथे पती ने देख कहै छै-हे पती ! आप म्हने सहगमणी (साथेरी साथे वहण वाली) कहता हा ने हूँ नरलोक मे सदा साथे ही रही अठै (सुरग मे) आय आप अपछरा (पातर ने) परण गया सो छोडौ अपछरा रौ छहडौ —सो धण—वा धण सदा साथे रहनी तिका हाथ झालै छै ।।६०।।

काली अच्छर छक म कर, सूनौ धव अपणाय ।
सूर किसौ पाखै सती, बोली सुग्ग बसाय ।।65।।

प्रसंग—चितारोहण के बाद स्वर्ग मे अपने पति को अप्सरा के साथ देखकर सती उस अप्सरा को फटकारती हुई कहती है —

व्याख्या—हे पगली अप्सरे ! मेरे सूने (सती रहित) पति को अपना कर गर्व न कर ! हर्ष से इठला नही । क्या तू जानती नही कि बिना सती के शूरवीर कैसा ? अर्थात् (स्वर्ग मे) जहाँ शूरवीर होगा, वहाँ उसकी वीराङ्गना भी अनिवार्यत· सती होकर उसके साथ आएगी ही । सती और शूरवीर की जोडी तो अविच्छिन्न

---

1. पाबू प्रकाश (बड़ा) पृ० 232,
2 पना वीरमदेव की वार्ता, पृ० 50,
3 वही पृ० 72;

और अटूट है । परन्तु तू कैसी मूर्खा है कि तूने मेरे शूरवीर पति को सूना समझ उनका वरण कर लिया ! भला मै सती उनका साथ कभी छोडने वाली थी ? पगली ! क्या ऐसे ही स्वर्ग बसाया जाता है ? अर्थात् हम सतियो और शूरवीरो की जोडी से ही तो यह स्वर्ग, स्वर्ग है । हम सतियो के बिना भी कोई स्वर्ग बसेगा ?

शब्दार्थ—काली = पगली । **छक** = गर्व । यथा —

मीरा अधम गमार, घणौ **छक** अनड रहै घर ।[1]

सूना = सती से रहित । **धव** = पति । अपणाय = वरण कर, पति रूप मे अपना कर । **पाखै** = बिना (पाठा. 'परखै') । **बोली** = पगली, मूर्खा ।

विशेष—इस दोहे मे अप्सराओ की, वीरगति-प्राप्त शूरवीर को वरण करने की आतुरता व्यजित हुई है । डिंगल-काव्यो मे अप्सराओ की इस वरणाकुलता का वर्णन करने की पद्धति बहुत कुछ रूढ एव पारम्परिक-सी होगई है । यहाँ तक कि शूरवीरो द्वारा रण-सज्जा के उपकरण धारण करते ही अप्सराए उनके वरण के उपकरण सँजोने लगती है —

यत सूर कमरि बधै कसाय,[2]
उत रभ सजै कटि-मेखलाय ।।
यत सूर कवचि पहरै सुहेत ।
उत रभ कञ्चुकि तनी देत ।।
यत सूर पाघ बधै सुवीर ।
उत रग चीर पहरै सुधीर ।।
यत सूर शेष बधै अतूल ।
उत रभ दहै सिर सीसफूल ।।

वस्तुत इन विश्वासो के मूल मे परोक्षत योद्धाओ को वीरतापूर्वक लडते हुए मृत्यु का आलिगन करने की प्रेरणा देना ही उद्दिष्ट रहा है । मध्ययुगीन वीर इन विश्वासो से प्रेरित हो रणाङ्गण मे हँसते-हँसते अपने प्राण निछावर कर देते थे तथा इस प्रकार युद्ध मे वीरगति पाने को स्वर्ग मे शाश्वत सुखोपभोग का अमोघ अवसर समझते थे ।

इसी प्रकार वीराङ्गनाएँ भी सती होकर स्वर्ग मे अपना 'सतीपुर' या 'अमर-पुरी' बसाने तथा वहाँ अपने दिवगत पति के साथ अखड एव शाश्वत सौभाग्य का लाभ प्राप्त करने मे सच्चे मन से विश्वास करती थी तथा इससे प्रेरित हुई हँसती-

---

1 वशभास्कर
2. बिन्हैरासो, पृ० 32

हसती 'काठ पर चढ जाती' थी । सतियो द्वारा स्वर्ग मे 'सतीपुर' बसाए जाने सबधी उल्लेख डिंगल-काव्यो मे प्रचुर मिलते है । यथा —

वसायौ सती आगे सदन बाधा काकरण डोरला ।[1]

× × × ×

लार नृप उभै सतिया लिया **अमरपुरी** मे आविया ।

तथा —

सतीपुरै विच सदन सरब वणिया सोनारा ।
उठै नृपत आविया लीया नर सतिया लारा ।।

इस दोहे मे वर्णित भावधारा के मर्म को मध्ययुगीन विश्वास के इसी सदर्भ मे ग्रहण करना चाहिए ।

राजस्थानी टीका—कोई सूरवीर जुद्ध मे काम आयौ अने अपछरा वरियौ । इतरै तौ वीर स्त्री सत्त कर सुरग मे जावता ही पती ने अपछरा साथे देख बोली–ए काली अपछरा ! इसौ मन वछत वीर पती पाय लिगौ औ छक (गरभ) मत करे– थोडी दूर मे (सत कर आई इतरी दूर मे) सूनौ म्हा विना म्हारौ धव(पती) अपणाय ने । हे अपछरावौ ! किसौ सूरमौ सती पाखै (विना सती विना ? बोली (गहली !) थे सुरग मे वसायलौ । अरथात सूरवीर रौ ने सती रौ जोडौ हीज रहे छै ।।इ०।।

गीध कलेजो चील्ह उर, कका अत बिलाय ।
तौ भी सो धक कत री, मूछा भ्रूह मिलाय ।।66।।

प्रसग—रणक्षेत्र मे वीरगति-प्राप्त पति के मरने पर भी उसके शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व की प्रशसा मे वीराङ्गना की उक्ति—

व्याख्या—यद्यपि गीध ने कलेजा, चील ने वक्षस्थल तथा ककों ने अतडियाँ खाकर विलीन करदी है, तथापि मरणोपरात भी मेरे शूरवीर पति के मुँह पर वही रोष और जोश है कि मूँछें भौहो से मिल रही है, अर्थात् वीररोष मे तनी हुई भृकुटियाँ छू रही है ।

वीर का अग चाहे कितना ही क्षत-विक्षत क्यो न हो जाए, उसकी मूँछो की शान कभी कम नही होती । मरणोपरात भी वीरदर्प या वीररोष से जिसकी मूँछे भौहो तक तनी रहे–वही तो शूरवीर कहलाने का अधिकारी है ।

शब्दार्थ—**कंकां** = श्वेत चील । उदाहरण—

के जबुक मडै कवल, के **कंक** किलक्कै[2] ।

---

1. पाबू प्रकाश (बडा) कवि मोडजी आशिया-कृत, पृ०, 338-339
2. वशभास्कर, सप्तमराशि, त्रयस्त्रिशमयूख, पृ० 3180

अंत = अ तडियाँ, आँते । **बिलाय** = विलीन करदी है, नष्ट करदी है। **सो** = वही । **धक** = वीररोप या क्रोध । उदाहरण—

1 उभै भ्रात रहिया उठै छक ऊपर **धक** छाइ ।।[1]

2 जवन अनेक वैर **धक** जुडसी ।[2]
मरसी तिकौ काय जुध मुडसी ।।

यहाँ 'धक' से अभिप्राय वीर की उसी वीरोचित रोष से युक्त मुख-मुद्रा से है । **भ्रूंह** = भौहे ।

विशेष—मूँछो के भौहे छूने का वर्णन डिंगल-कवियो, विशेषत सूर्यमल्ल को, अत्यन्त प्रिय है । वीर-व्यक्तित्व के इस रूप पर वे सर्वान्ति करण से मुग्ध है। वशभास्कर की निम्न पक्ति से इसे मिलाइए'—इण रीति प्रामारा रा सहाय काज सोझति रा खेत मै जयरा दु दुभी घुराय पृथ्वीराज रा बीरा **भूँहाँरं भेडै मासुरी लोम** आणिया ।'[3]

इसी भाँति अन्य डिगल-कवियो ने भी इसके वर्णन मे अतिशय रस लिया है । यथा —

1 चख लाल किया मुख चोल वरन्नह मेलै भ्रू हा मू छ अणी ।[4]

2 मिले मू छ भूहारा डोलतो आकारीठ महा,[5]
गरीठ दोयणा हिया छोलतो गरूर ।

3 मू छ भ्रकुटत मिले धूत चष चोल रग धर ।[6]

इस सम्बन्ध मे एक मजेदार वर्णन मिलता है कि एक वीर की मूँछो पर कागजी नीबू तक ठहर जाता था ! यथा—'कासी रो राजा बलवडसिघ तगो, जिणरी मू छ माथै कागदी नीबू ठैरतो ।'[7] जरा कल्पना कीजिए उन मूँछो की !

राजस्थानी टीका— एक कोई सूरवीर जुद्ध मे मारीजियोडौ—रणसज्या सूतौ है । तठै झगडौ वीतौ अने सनिया तथा दुजाही कुटम्बी खेत सबालण ने गया

---

1 वशभास्कर, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2670 ।
2 सूरजप्रकास ।
3 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडशमयूख, पृ० 1375 ।
4 गजगुणरूपकबध, पृ० 29
5 रघुनाथरूपकगीतॉरो, पृ० 200
6 बात बगसीरामजी प्रोहित हीरा की, रा सा स भाग 3, पृ० 36 । स गो ल दीक्षित ।
7 बाँकीदास री ख्यात, पृष्ठ 166, स श्री नरोत्तमदास स्वामी ।

है–ग्रापरा काम ग्राया तिकारा छेला दरसण करणने । तठै एक वीर स्त्री रौ पती मारीजियौडौ पडियौ है–तिणने देख उणरी सहगमणी सती कह रही छै—हे सखी ! म्हारा पती रौ पौरस देख–ग्रीधण तौ कालजौ खायगी है ग्रने चील्हा उर डोडौ खाय गई है–ग्रौर कक - वडोढा ढैका रै खाण सू ग्रातरा पेट माय सू विलाय–छूट गया है-तौ भो सो धक-सो वोहीज धक (रीस) है-जोकि जुध पर चढिया जिण वखत सत्रुग्रा ऊपर ही–ग्रौर सह सरीर मसारू खाय गया है, पण मू छा ग्रजे भू हारा सू भिड रही छै—धिन्न है इसा सूरवीर रजपूता ने, धिन्न है इसी सतिया ने ।।६०।।

जोगण पहली खाय पल, करै उतावल काय ।
भर खप्पर वाल्है रुहिर, देसी कत धपाय ।।67।।

व्याख्या—हे योगिनी ! तुझे रुधिर प्रिय है तो पहले ही मास खाकर ऐसी जल्दी क्यो कर रही है ? तू थोडी सब्र रख । मेरे वीर स्वामी तेरी प्रिय वस्तु–नर–रक्त से तेरा खप्पर भर-भर कर तुझे तृप्त कर देगे । ग्रत पहले ही मास भक्षण कर ग्रपना पेट न भर ।

टिप्पणी—वीर सतसई की टीका मे प्रथम चरण मे 'पडसी खाय दल' पाठ है । इस पाठान्तर के ग्रनुसार ग्रर्थ होगा—'हे योगिनी ! रक्तपान के लिए इतनी उतावली क्यो कर रही है ? तू जानती नही, मेरे वीर स्वामी सारी शत्रुसेना का सहार करके ही धराशायी होगे । ग्रत जी भर रक्तपान करना । वे शत्रु-मुण्डो को काट-काट कर तेरा खप्पर रुधिर से भर तुझे पूर्णत तृप्त कर देगे ।'

हमे टीका के पाठ की ग्रपेक्षा 'पहली खाय पल' पाठ ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक सगत व सार्थक लगा, जिसमे मास खाने के लिए उतावले होने के सदर्भ मे उत्तरार्द्ध मे वर्णित रुधिर से तृप्त करने का भाव ग्रधिक स्पष्टता से व्यजित होता है । दूसरे, वीराङ्गना द्वारा ग्रपने शूरवीर पति के लिए पहले ही यह भविष्यवाणी करना कि वह 'पडेगा' (पडसी खाय दल)—चाहे शत्रु-सेना का सहार करके ही सही–ग्रर्थ की दृष्टि से कुछ खटकता है । उपर्युक्त कारणो से हमने टीका के पाठ को स्वीकार नही किया ।

शब्दार्थ—जोगण=युद्धप्रिय देवी, रणचण्डी । **पल**=मास (स. पल) । इसी से मासपक्षी राक्षसो का वाचक 'पलास' शब्द, बना है, जिसका ढोला-मारू मे भी प्रयोग हुग्रा है । यथा —ग्राडा डू गर बन घणा, ग्राडा घणा पलास ।[1] **काय**=क्यो ? **वाल्है**=प्रिय । **धपाय**=तृप्त कर देगे ।

---

1. ढोला-मारू रा दूहा, दूहा सख्या 174; स शभुसिह मनोहर

विशेष—नर-मास की अपेक्षा नर-रुधिर का पान योगिनियो को अधिक प्रिय है। डिंगल-काव्यो मे युद्ध-वर्णन के प्रसग मे योगिनियो द्वारा रुधिर-पान का वर्णन बहुत कुछ रूढ होगया है। यथा —

हसि जोगरिण हडहड, गोली रत गडगड, मडै खफर पत्र मिलै ।[1]

वशभास्कर मे भी कवि ने इस आशय का वर्णन बहुश किया है। यथा:—

पत्त खरक्कै जुग्गिनी के रत्त छरक्कै ।[2]

राजस्थानी टीका—कोई एक वीर पुरस री स्त्री आपरा पती ने जूझतौ देख कह रही छै—हे जोगणीया! सर्कातिया! रुधर पीरण ने इतरी क्यू खाती पडी छौ—म्हारौ पती सत्रुआ रा दल ने खुटाया पछै रण मे पौढसी नें थारै कनला खपर ने लोही रा भार सू छकाय थाने घणा वीरारा रुधर सू धपाय देसी ॥६०॥

ऊभी गौख अवेखियौ, पैला रौ दळ सेर ।
पडियौ धव सुणियौ नही, लीधौ धण नाळेर ॥68॥

व्याख्या—गवाक्ष मे खडी हुई वीराङ्गना ने देखा कि शत्रुदल प्रबल होरहा है—युद्ध मे शत्रुसेना का पलडा भारी होरहा है। बस, उसने पति के धराशायी होने का समाचार नही सुना तो भी तुरन्त नारियल हाथ मे ले लिया। अर्थात् यह मान कर कि उसका वीर स्वामी युद्ध मे तिल-तिल कट भले ही जाए—उससे कभी पराड्मुख नही होगा—उस वीर पत्नी ने सहमरण हेतु नारियल सहेज लिया।

टिप्पणी—इसमे वीर पत्नी की सती-धर्म-पालन की उमग का ध्वन्यात्मक चित्रण हुआ है। दूसरी पक्ति का अर्थ यो भी किया जा सकता है—'अपने पति का धराशायी होना पत्नी ने सुना नही कि तत्काल नारियल हाथ मे ले लिया।' अर्थात् पति के वीरगति प्राप्त होने का सवाद सुनते ही वह सती होने हेतु लालायित हो उठी।

शब्दार्थ—ऊभी = खडी हुई। **गोख** = झरोखा (स गवाक्ष)। **अवेखियौ** = देखा (स अवेक्षण)। **पैलां** = दूसरो, भावार्थ मे शत्रु। **सेर** = शेर, प्रबल। **पडियौ** = वीरगति को प्राप्त हुआ, धराशायी हुआ। **धव** = पति। **लीधौ** = ले लिया। **नाळेर** = नारियल (स नारिकेल)।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरष री सूरवीर सती आपरा पती रौ जुद्ध करणौ देख रही छै। तिण समे कवी कहै वा वीर स्त्री इसी दीसै छै। दोहार्थ—

---

1 गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 50

2. वशभास्कर, सप्तमराशि, चतुर्स्त्रिश मयूख, पृ० 3184

गौखडा माहै ऊभी थकी आपरा पती नै जुद्ध करता अवेखियौ—कहै देखियौ सो किसोक–पैला रा दल माहै युद्ध करतौ दीसै छै जाणै सेर (सिंघ) होवै जिसौ अने अठी गौख मे ऊभी वीर स्त्री किसडी हेक निजर आवै छै जाणै धव (पती) ने पडियौ सुणियौ नही ने नालेर हाथ मे लीधौ नही–प्रयाजन पती तौ सिघ होवै ज्यू वैरिया रै दल माथै पडियौ छै–ने आ वीर स्त्री सत करण ने साक्षात् सती रूप ऊभी छै ।।इ०।।

मूझ अचभौ हे सखी, कत वखाणू कीस ।
विण माथै दल वाढियौ, आँख हियै कै सोस ।।69।।

प्रसंग—सिर कटने पर भी लडते हुए पति की वीरता पर विस्मय-विमुग्ध पत्नी की उक्ति—

व्याख्या—हे सखी ! मुझे कत के शौर्य पर आश्चर्य होरहा है । उनकी वीरता का कैसे बखान करूँ ? उन्होने तो बिना सिर के ही सारी शत्रुसेना को काट गिराया । भला, उनकी आँखें सिर मे है या हृदय मे !

प्रवाद है कि सिर कट जाने पर योद्धा के हृदय (अन्तर्मन) की आँखे खुल जाती है । यहाँ कबध-रूप मे लडते ऐसे ही शूरवीर का वर्णन है ।

शब्दार्थ—मूझ = मुझे । **वखाणू** = बखान या प्रशसा करूँ । **कीस** = कैसे (स कीदृश) । **विण माथै** = बिना मस्तक के, कबध-रूप मे । **दल** = सेना । **वाढियौ** = काट डाला । **कै** = या, अथवा ।

विशेष—बिना मस्तक के, अर्थात् सिर कट जाने पर भी लडते रहने का वर्णन केवल कल्पना नही है । यह एक वास्तविक सत्य है । कबन्ध-रूप मे लडने वाले वीरो के आख्यानो से इतिहास के अनेक कीर्तिपृष्ठ रगे पडे है । इन वीरो मे अप्रतिम शूरवीर तोगा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसने बादशाह शाहजहाँ के समक्ष महज यह सिद्ध करने के लिए कि सिर कटने के बाद भी लडा जा सकता है--स्वेच्छा से अपना मस्तक कटवा कर इस अनुपम वीरता से युद्ध किया कि बादशाह देखता रह गया तथा शाही सेना को लेने के देने पड गए । राजस्थान के सिवा वीरता का ऐसा रोमाचक उदाहरण क्या किसी अन्य देश के इतिहास मे देखने को मिल सकेगा ? वीर तोगा की प्रशसा मे यह दोहा राजस्थान मे आज तक प्रसिद्ध है--

कट्टारी अमरेस री, तोगा री तरवार ।
सेलो रायसिंघ रो, सराहे ससार ।।

वशभास्कर मे भी इस आशय का वर्णन हुआ है । सिर कटने के बाद भी लडना वीरता का आदर्श माना जाता था--

हुकम दीव तिणनूं हुसे, हालण आप हरोल ।[1]
बिण माथै जूझण बलें, बदी बदियो बोल ।।86।।

राजस्थानी टीका--एक स्त्री आपरा पती नै विना माथै तरवार बाहतौ देख अत्यन्त आनद वाली होय अचु भा रै मिस पतीरी वीरता वखाणै है--हे सखी ! म्हनै औ इचरच आवै है कै म्हारै पती री वीरता किण तरह वरणण करू ? बिना सिर सत्रु दल काट न्हाकियौ सो आन आखिया सीस पर ही कै हिया मैं ऊघडी ही (सूरवीर रै सिर काटिया पछै छाती मे आख ऊघडै है) जिणने कबध कहै छै ।।६०।।

मतवालो जोबन सदा, तूझ जमाई माय ।
पडिया थण पहली पडै, बूढी धण न सुहाय ।।70।।

व्याख्या--हे मॉ ! तुम्हारा जँवाई तो सदा यौवन मे ही मतवाला रहता है । अर्थात् यौवन का उन्माद उस पर हर क्षण ऐसा छाया रहता है कि उसे वार्द्धक्य फूटी आँखो भी नही सुहाता । अत निश्चित है कि वह पत्नी के (अपने प्रति) स्तन ढीले होकर गिरने (लटकने) के पहले ही स्वय रणक्षेत्र मे गिर पडेगा, वीरगति को प्राप्त होगा ।

ध्वनि यह कि यौवन मे ही पति के वीरगति को प्राप्त होने पर मै सती होऊँगी एव इस प्रकार पुन युवा हो दोनो स्वर्ग मे चिर यौवन का सुखोपभोग करेगे । इस तरह मेरे वृद्ध होने की नौबत ही नही आएगी । प्रेम और शौर्य से गर्भित क्षत्रिय वीराङ्गना की मनोवृत्ति का सटीक चित्र है ।

शब्दार्थ— तूझ = तुम्हारा, आपका । **पड़िया** = शिथिल होकर लटकने (वार्द्धक्य के कारण) । **थण** = स्तन । **पडै** = धराशायी होगे, वीरगति को प्राप्त होगे । डिगल-काव्यो मे 'पडणौ' युद्ध-प्रसग मे, रणक्षेत्र मे वीरतापूर्वक लडते हुए धराशायी होने या वीरगति को प्राप्त होने का वाचक है । यथा —

आसकरन्न पिराग तन, **पडियौ** खाग बजाड[2]

राजस्थानी टीका-एक वीर पुरष री वीर स्त्री आपरी माता नें कहै छै–हे माता ! ताहरौ जमाई जोबन मे मतवालौ छै सो निज स्त्री रा स्थण (कुच) पडिया (लटकिया) पहली हीज जुद्ध मे मारीज ने पडण वालौ है सो मानू आने बूढी धण सुहावै ही नही–जुद्ध मे मारीजै तरै स्त्री लारै उण रै सत करै तद स्वरग मे पाछी स्त्री पुरष री नवीन 16-16 वरषा री उमर होय सुरग रा सुख भोगवै–(पडिया थण पहली पडै) सो आ पारख काही पडी मरने तौ पाछौ कोई आय सकै नही ने

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2687,
2 राजरूपक, पृष्ठ 193

आ कहै थरण पडिया पहला पड सो कोई वार मारनै पाछौ आयौक काई--उत्तर इणहीज उमर मे नही--सूरवीर रौ सुभाव चाहै जिण ही खौलिया मे होवौ सूर पणौ पलटै नही तिण सू आ कहै म्हरौ पती म्हारा वूढा पणा पहला मागीजसीइ सौ सूरमापणौ दीसै छै और हू लारै सत कर सुरग मे पाछा तरुग मोटियार होय रहसा ।।इ०।।

ककाणी चपै चरण, गीधाणी सिर गाह ।
मो विण सूतौ सेज री, रीत न छडै नाह ।।71।।

व्याख्या—हे सखी ! देख, रणशय्या पर मेरे विना अकेले सोए हुए भी मेरे पति सिर सहलवाने तथा पैर दबवाने की प्रणय-रीति को नही छोड रहे हैं। यथा, उनके पैरो मे चोच मारती हुई ककी ऐसी प्रतीत होती है मानो उनका पद-सवाहन कर रही हो तथा मिर मे चोच मारती हुई गृद्धिनी ऐसी लगती है मानो उनका मस्तक दवा रही हो। इस प्रकार मेरे वीर स्वामी रति-सेज की भाँति रण-सेज पर भी अपनी प्रणय-रीति को छोड नही रहे हे। [वीर पत्नी रणक्षेत्र मे सोए अपने पति के वीरगति-प्राप्त रूप पर मुग्ध हे। यह उसकी वीरोचित मनोभावना का सुन्दर ज्ञापक है। इसमे यह भी ध्वनि हे कि जव मृत दशा मे रणक्षेत्र मे लेटे-लेटे भी वे पक्षिणियो तक से प्रणय-रीति का यो पालन करवा रहे है, तो मरणान्तर स्वर्ग मे जाने पर तो वे अप्सरा का वरण कर उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाएगे ही। अत मुझे अविलम्व सती होकर उनमे पहले स्वर्ग पहुँचने दे ताकि वे अप्सरा का वरण करे, उससे पहले उनकी प्रणय-चर्यार्थ मै सेवा मे उपस्थित होजाऊँ।]

शब्दार्थ—कंकाणी = ककी, श्वेत चील। **चंपै** = दबाती है। शयनकाल के समय पद-सवाहन राजाओ की पुरानी रीति रही है। **गाह** = दबाती है, सहलाती है। **रीत** = प्रणय-रीति ।

विशेष--वीरगति-प्राप्त योद्धा के पैरो मे ककी द्वारा चोच मारने मे पैर दाबने आदि का वर्णन सूर्यमल्ल की अपनी मौलिक उद्भावना नही है। सूर्यमल्ल से पूर्व कविवर ईसरदास ने हालाँ-झालाँ-रा कुडलिया मे ठीक ऐसा ही वर्णन किया हे। यथा —

ग्रीझरिण दीयै दुडबडी, समली चपै सीस ।[1]
पख झपेटाँ पिउ सुवै, हू बलिहारि थईस ।।

अन्य कवियो ने भी ऐसा वर्णन किया है --
पखा करै अच्छर बिहू पासै, पखरिण सेव सचपै पाव ।[2]

---

1 हालाँ-झालाँ रा कुडलिया, पृ० 30

2 गीत सुरताण मानावत रौ ' रा वी ी, भाग 1, पृ० 11,
स श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

राजस्थानी टीका--एक वीर स्त्री (रौ) पती जुद्ध मे मारीजीयोडौ पडियौ छै तिणने देख सखी ने कह रही छै--हे सखी ! ककाणी (ढैक री स्त्री) पगा रौ मास खावै है तिणने तौ कहै भ्रा म्हारै पतीरा चरण चाप छै--भ्रने ग्रोध सिर रौ मास खावै है तिणनू कहै भ्रा सिर दबावै छै--सो हे सखी ! देख म्हारै विना एकलौ ही ज रिण मे सूतो है पण सेझरी रीत नही छोडै छै, सो भ्रठै ही सेझरी रीत नही भूलौ भ्रौर ग्रोधा सू काम लियौ तौ सायत सुरग मे भ्रपछर वरली तो म्हारै सोक होय जायला सो चाल, सीस ले, ताकीद सत कर हाजरी मे जाऊँ इति भावार्थ ।।इ०।।

नीला बलिहारी थई, हण टापाँ खल झुण्ड ।
पहली पडियौ टूक ह्वै, खडै धणी रै रुण्ड ।।72।।

प्रसंग--स्वामिभक्तिपरायण भ्रश्व के प्रति वीराङ्गना की उक्ति--

व्याख्या--हे भ्रश्व ! मैं तुझ पर बलिहारी हूँ, जो तू भ्रपनी टापो (पदाघातो) से शत्रुदल को ध्वस्त कर स्वामी के रुण्ड के धराशायी होने के पहले ही टूक-टूक होकर गिर पडा ! धन्य है तेरी स्वामिभक्ति, जो तूने स्वामी के पहले ही लडते-लडते भ्रपने प्राण दिए ।

[वीराङ्गना के कथन से यह व्यजित होता है कि उसका वीर पति सिर कटने पर भी कबन्ध-रूप मे लडता रहा तथा स्वामिभक्त भ्रश्व उसे धारण किए ही भ्र तिम क्षण तक युद्धस्थल मे भ्रनेक शत्रुभ्रो का सहार कर भ्रपने स्वामी के गिरने से पहले ही स्वय टूक-टूक होकर गिर पडा । भ्रपने से पहले स्वामी का गिरना मानो वह देख नही सकता था]

शब्दार्थ--**नीला** = भ्रश्व, (नीले रग का, लक्षणा से भ्रश्व) । **थई** = हुई, हूँ । **हण** = नष्ट कर । **टापां** = पदाघातो मे । **खल्** = शत्रु । **रुण्ड** = शरीर, कबन्ध ।

राजस्थानी टीका--एक वीर स्त्री सत करण री वेला पहली खेत मे जाय पती रै सव (भ्रतक मरीर) रा दरसण कर कहै छै--हे नीला ! पती रै सवारी रा भरोसादार तुरग ! हू थारी बलीहारी जाऊ । जठा ताई धणी रौ रुण्ड (सीस विना रौ धड) जुद्ध करतौ हौ ने पडियौ नही हो, उठा पैली थू वैरीया रा झुड ने टापा सू मार चिगद टूक-टूक होय धणी कबध हुवौ लडता धणी रा धड पहली पडियौ-इण मे प्रयोजन भ्रै छै धणी रौ तौ वीरपणौ, विना सिर (कबध) होय लडणौ, घोडा रौ सांमधरमौ--रजपूता नें उपदेस--पसू चारौ खाण वालै ही सामधरम पालियौ तो हे रजपूता ! थे नरदेह हौ, भ्र न धणी रौ खावौ । दुख मे सहायता धणी सू लौ, व्याव सावा भ्रादि मे ईजत धणी राखै है । भ्रैडा घणा कारण है सो थे राजपूती री राह चालणी चाहौ ने ताहरौ उद्धार चाहौ तो धणी री वूरी ने भ्रापरी न्यूनता जाणौ ।

धणी री कांई वुरी कहै तिण ने डड देवौ, नही देरीजै तो ऊठ जावौ । तन धन सीस धणी रौ है—कहण वाली स्त्री सती है सो घोड ही सरीर नही राखियौ तो हुतौ पतीरौ आधौ सरीर हू सो सत कर सुरग मे जाय मिलसू -इण आदि अनेक प्रयोजन है सो विसतार भय सू किंचित लिखिया है ।।इ०।।

नीला मो पहली पडे, कीध उतावल काय ।

वाल्हा कवला पालियौ, पडतौ मूझ पुगाय ।।73।।

व्याख्या—हे अश्व ! तूने मेरी क्या उतावली की जो तू मेरे पहले ही वीरगति को प्राप्त हुआ ! मैंने तुझे बड़े प्यार से ग्रास खिला-खिला कर पाला था । तू मुझे स्वर्ग पहुँचाकर तो गिरता !

इस दोहे मे अश्व की स्वामिभक्ति एव स्वामी के अश्व-प्रेम का एक साथ चित्रण हुआ है । अश्व ने स्वामी के पहले ही लडते हुए काम आकर अपने स्वामि-भक्ति धर्म का पालन किया । उधर उसका वीर स्वामी अत्यन्त लाड-प्यार से पोषित अपने प्यारे अश्व को अपने से पहले ही स्वर्गस्थ हुआ देख शोक मे भर जाता है । वह नही चाहता कि उसका प्यारा अश्व उसके देखते-देखते दम तोडे । अश्व तथा उसके स्वामी के पारस्परिक अनन्य एव निश्छल प्रेम का परिचायक यह दोहा राजस्थान की वीरोचित परपराओ के सर्वथा अनुरूप है, जहाँ अश्वो को उनके दुर्लभ गुणो के कारण मानवो से अधिक प्रीति, स्नेह और आदर दिया जाता रहा है । परिस्थितियो के साथ वह भावनात्मक साहचर्य और वे परपराए अब लुप्त होती जा रही है !

शब्दार्थ—**पड़े** = वीरगति को प्राप्त हुआ । **कीध** = की । **वाल्हा** = प्यार से, यदि अश्व का सम्बोधन माने तो हे प्यारे अश्व ! **कवला** = ग्रासो से । **पुगाय** = (स्वर्ग) पहुँचा कर, अर्थात् मेरे काम आने पर ।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर रौ घोडौ जुद्ध मे कट पडियौ तिण सारू कहै छै—हे नीला ! मो पहली जुद्ध मे कट पण री उतावल थने नही करणी ही । म्है थने घणा वाल्हा कवा खवाय पालियौ हो सो म्हनै मरण देनै पडियौ होवतौ—आ वात महाराणा प्रतापसिंहजी रै घोडा चेटक री भली फबै-महाराणोजी एक इका ने पातसा रा हाथी आगै वहता मार नीसरिया तठै इकारी तरवार घोडा रै फर मे पडी । आगलौ डावौ पग उठैहीज पडियौ ने महाराणा ने ले घोडौ चेटक अठारै कोश मेवाड रा भाखरा मे पूगौ । लारै सगतसीहजी राणाजी रा भाई पातसा साथे हा, वे चढ पूगा सो सगतसीहजी सू पहला इकौ पूगतौ तिण सगतसीहजी मार राँणाजी ने हेलौ पाड कयौ घोडौ तीना पगा है । तद देख जीण उतारता ही घोडो छूटौ । राणाजी महा विलाप कियौ । सत्रु भाई उपकार कर आपरौ घोडौ

दियौ–राणौ भाई रा गुना माफ किया। घोडा रो सोक पुत्र सू अधिक कियौ। सगतसीहजी पाछा गया। राणौजी उँमर भर घोडा ने भूला नही। घोडा जीव रा रुखाला, जमी रा दाबा है ।।इ०।।

हूँ पाछै आगै हुवै, आणी नाह घरेह ।
जे वाल्ही धण जीव हू, आगै मूझ करेह ।।74।।

व्याख्या—हे नाथ ! विवाह के अवसर पर आप स्वय आगे होकर तथा मुझे पीछे कर इस घर मे लाए थे। परन्तु, यदि मैं, आपकी प्रिया, आपको प्राणो से भी प्यारी हूँ, तो आप अबकी बार मुझे आगे कीजिए।

अर्थात् यदि आप रणक्षेत्र मे वीरतापूर्वक लडते हुए मृत्यु का वरण करे, तो मैं सती-धर्म का पालन करती हुई आपकी शवयात्रा मे आगे चलने का गौरव पाऊँ।

अथवा

यदि 'नाथ' को सम्बोधन न माने तो पत्नी का सामान्य कथन मानकर दोहे का अर्थ यो भी किया जा सकता हे–'विवाह के अवसर पर कत स्वय आगे होकर तथा मुझे पीछेकर इस घर मे लाए थे, किन्तु यदि मै, उनकी प्रिया, उन्हे प्राणो से भी प्यारी हूँ तो वे अब मुझे आगे करेगे (युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर सती होने का अवसर देगे ताकि मै नारियल उछालती हुई उनके शव के आगे चलने का गौरव पाऊँ)।

स्मरणीय है कि विवाह के पश्चात् गृह-प्रवेश के समय वर आगे तथा वधू पीछे रहती है एव सती होते समय शवयात्रा मे सती अपने पति के शव के आगे तथा शव उसके पीछे रहता है। यहाँ अपने सती-धर्म के पालन हेतु उत्कठित वीराङ्गना पति के आगे चलने के उसी क्षत्रियोचित गौरव की कामना करती है। वीर नारी की आकाक्षा एव साध भी वीरोचित परम्पराओ के ही अनुरूप होती हे।

शब्दार्थ—**हूँ** = मै, मुझे। **आणी** – लाए। **घरेह** = घर मे (पतिगृह से से तात्पर्य है)। **वाल्ही** - प्यारी। **धण** = प्रिया, पत्नी (अपने प्रति)। **जीव हूँ** = प्राणो से भी अधिक। **करेह** = करे या करेगे।

विशेष—इस दोहे के चतुर्थ चरण-'आगे मूझ करेह' की डा० सहलजी आदि सपादको ने एक व्याख्या यो भी की है–'इसलिए नाथ युद्धक्षेत्र मे प्राण देकर अपने स्वर्गवास से पहले ही मुझे सती होने का अवसर देगे, जिससे मैं उनके आगे रहूँ और वे मेरे पीछे।" यह अर्थ भ्रान्त व निराधार है क्योकि परम्परानुसार स्त्री का अपने पति के जीवित रहते ही सती होना निषिद्ध माना गया है। 'जौहर' की बात अलग है, जो युद्ध की परिस्थिति विशेष से प्रेरित सतीत्व की रक्षार्थ किया जाने वाला एक सामूहिक कृत्य था, किन्तु व्यक्तिगत रूप से किसी स्त्री का अपने पति के जीवित

रहते ही सती होना न शास्त्रसम्मत है न परम्परानुमोदित,जैसा कि स्वय सूर्यमल्ल ने वशभास्कर मे इस आशय का स्पष्ट उल्लेख किया है[1] —

"सो जाणि हालू 1८2/1 नरेन्द्र भी **पावक मे पत्नी रो पहिली प्रवेस प्रमाण थी बिरुद्ध बिचारि आपरा अनुज नूँ** उपालम्भ दीधो।

कहियो रण रो मरण तो दैवरै अनुकूल हुवाँ होइ जिको न बणसी तो ससार नूँ मुख दिखावण जिसडो रहसी नही।

अर वेद हूँ बहिर्गत बात बणाइ पतिव्रता पत्नी नूँ पहली प्रज्वालणरी प्रससा कोई भी कहसी नही।"

वशभास्कर मे स्वय कवि द्वारा व्यक्त उपर्युक्त अभिमत के सदर्भ मे विवेच्य चरण का डा० सहलजी आदि सपादको द्वारा किया गया अन्यार्थ स्वीकार नही किया जा सकता। इसी भाँति श्रीबीसेन जी का यह अर्थ कि 'पहले मै मर जाऊँ तब पीछे से तुम रणक्षेत्र मे कट कर मुझमे आ मिलो' हमे अपने प्रस्तावित अर्थ की तुलना मे कम सगत लगता है। वस्तुत 'आगे मूझ करेह' से वीराङ्गना का आशय अपने पति को परोक्षत वीरगति-वरण करने की प्रेरणा देकर स्वय सती होने का गौरव अर्जित करने से है—जो वीर नारी की एक सर्वोपरि साध है। एकाधिक अन्यार्थों का उल्लेख करने से भी कभी-कभी मूल अर्थ बाधित होजाया करता है।

राजस्थानी टीका —एक सूरवीर सुद्ध कुलवान सनी कहे छै–हे पती! म्हने आप लाया तद आगै आप नै लारै हू ही, पर आपरी जीव सू ही प्यारी आपरी धण आप जूझने काम आया तौ अबै छेलै पयाणै आगै हू नै लारै आप। प्रयोजन सतकरण नै वहीर हुई तठारी वात छै ॥इ०॥

इति सूरवीरा रौ प्रसग। अबै स्त्री वीर तिका कायर रै घरे आई तिण रौ प्रसग। कायर नीच प्रतै वीर स्त्री रा वचन ॥दोहार्थं॥

> कत घरे किम आविया, तेगा रौ घण त्रास।
> लहँगे मूझ लुकीजियै, वैरी रौ न विसास ॥75॥

प्रसंग—कायर पति के प्रति वीराङ्गना की व्यग्योक्ति—

व्याख्या—हे कत! आप घर कैसे लौट आए? क्या तलवारो का बहुत डर लगा? यदि ऐसा है, तो अब आप मेरे लँहगे मे छिप जाइए, क्योकि शत्रु का कुछ भरोसा नही है, वह यहाँ भी आपकी खबर लेता आ पहुँचेगा!

कायर पति पर वीराङ्गना का कैसा मार्मिक प्रहार है।

शब्दार्थ—किम = क्यो, कैसे। **तेगा** = तलवारो। **घण** = बहुत। **त्रास** = डर। **लहँगे** = घाघरे मे। **लुकीजियै** = छिप जाइए। **विसास** = विश्वास, भरोसा।

---

1 वशभास्कर, पचम राशि, एकादश मयूख, पृष्ठ 1812

राजस्थानी टीका—अरे कायर कथ ! झगडौ छोड भागने घरे क्यू आयौ ? नीच, तोने तरवारा री त्रास लागी—पण वे हीज तरवारा वाला सत्रु लारै आयने मार नाखैला। वा सत्रुग्रा रौ काइ विस[विसास ?]है। इण सारू म्हारा गाघरा रै ओलै लुकजाऔ नही तो वैरी रौ काही विसवास ? अठै आयने मार नाखै ।।ड०।।

काय दियै धण मेहणी, हूँ भड हूँत विसेस ।
मैं तो विण सब हाँसिया, उण भड हेक महेस ।।76।।

प्रसंग—निर्लज्ज पति उत्तर देता है —

व्याख्या—हे प्रिये ! क्यो ताना देती हो ? मैं तो [युद्ध मे वीरगति-प्राप्त] योद्धा से भी बढकर सूरमा हूँ, क्योकि उस योद्धा ने तो [युद्ध मे मरकर] अकेले महादेव को ही हँसाया है किन्तु मैंने [युद्ध से भागकर] सिवा तुम्हारे सारे लोक को हँसा दिया है !

डिगल-वाड्मय मे प्रसिद्ध है कि अप्रतिम शौर्य से लडकर वीरगति पाने वाले शूरवीर के मस्तक को अपनी मुण्डमाला का सुमेरु बनाने हेतु महादेव हर्षोन्मत्त हो अट्टहास करते है। यहाँ कायर पति उसीकी ओर सकेत करता हुआ कहता है कि शूरवीर ने तो मरकर अकेले महादेव को ही हँसाया है, परन्तु उसने युद्ध से भागकर, सिवा अपनी प्रिया के, सारे लोक को हँसा दिया है। अत. क्या वह उस शूरवीर से बढकर नही है ? यहाँ 'हाँसिया' शब्द द्वयर्थक है। महादेव के सदर्भ मे इसका अर्थ हर्षपूर्ण अट्टहास कराने तथा कायर के प्रसग मे लोक को उपहास की हँसी हँसाने से है। युद्ध से भागने वाले की सारा ससार हँसी उडाता ही है। निर्लज्ज पति अपने द्वारा अखिल लोक को हँसाए जाने को ही अपनी विशेषता मानकर शूरवीर की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है। केवल पत्नी का ही उस पर न हँसना यह सिद्ध करता है कि पत्नी वीराङ्गना है, जो पति के युद्ध से पलायन मे मरणान्तक पीडा व लज्जा का अनुभव करती है। इस दोहे मे कवि ने परोक्षत कायरता पर तीव्र व्यग्य किया है। स्वय कायर पति के मुख से यह व्यग्योक्ति कहलाने के कारण उसकी निर्लज्जता की भी व्यजना होगई है, जिससे व्यग्य की चोट और अधिक अरुतुद होगई है।

शब्दार्थ—**काय**=क्यो। **मेहणी**=ताना। **हूँ**=मैं। **भड़**=योद्धा। यहाँ वीरगति-प्राप्त योद्धा से आशय है, जिसकी तुलना मे कायर पति अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर रहा है। **हूँत**=से। **विसेस**=बढकर। **तो**=तुम्हारे। **हाँसिया**=हँसाया ; महादेव के प्रसग में हर्ष सूचक अट्टहास कराने तथा कायर के प्रसग मे लोक को उपहास की हँसी हँसाने से है। **उण भड़**=उस योद्धा ने (जिसने वीरता पूर्वक लडते हुए मृत्यु का आलिंगन किया है) **हेक**=एक।

विशेष—इस दोहे के टीका व वीर सतसई के प्रकाशित सस्करणो के पाठ मे एक अन्तर यह है कि टीका मे दोहे का जो पूर्वार्द्ध है, वह प्रकाशित सस्करणो मे उत्तरार्द्ध । हमने टीका के पाठ का ही अनुसरण करते हुए 'काय दियै" • • •
विसेस' को दोहे का पूर्वार्द्ध माना है । इससे दोहे की व्याख्या मे कोई तात्त्विक अन्तर नही आता ।

महादेव युद्ध मे कब हँसते है—इसका डा सहलजी आदि सपादको द्वारा सपादित सस्करण मे एक सुन्दर उदाहरण दिया गया है —

तेगाँ दल बादल तडिता सी, वरषा सी सर सोक वज ।
एकण पग नाचै अबणासी, कासी बासी कँवल कज ।।
भणिया दै माथो भूतेसुर, दुरजणियाँ मोटा दातार ।
रज रज होय सीस रण रसियो,ताली दे हँसियो त्रिपुरार ।।

सूर्यमल्ल द्वारा कायर को लक्ष्य कर कहे गए इन दोहो पर कविराजा बाँकीदास रचित 'कायर बावनी' का प्रभाव स्पष्टत देखा जा सकता है । इस दृष्टि से यह सूर्यमल्ल की मौलिक उद्भावना नही है । उदाहरणतः सूर्यमल्ल के उपर्युक्त दोहे को कविराजा बाँकीदास के निम्नाकित दोहे से मिलाइएः—

अधिक सूर कै हूँ अधिक, बनिता समझ विवेक ।[1]
जग सारो मोनू हँसै, उणसू नारद एक ।।50।।

राजस्थानी टीका—

निलज कायर वचन—

तरै कायर आपरी स्त्री ने कही-हे धण ! (स्त्री) मोनें क्यू मैहणी देवै-उण भड (म्हारा वैरी) सू हू वधनै हू । कीकर,—उणतौ झगडौ कर एक महादेव नै हीज हसाया ने म्हे एक थारै विना सब जगत ने हसायौ । प्रयोजन-झगडा मे भागौ तिणसू सारौ जगत इणने हसियौ ने एक वोर स्त्री न हसी सो उणरै पतीरा भागलपणारी मैहणी लागी तिण कारण हसी नही, सोक कीधो । महेस ने हसायौ सो वीरपणा सू रीझ महादेव हसै-आ रीत छै ।।इ०।।

कत सुपेती देखताँ, अब की जीवण आस ।
मो थण रहणौ हाथ हूँ, घातै मुँहडै घास ।।77।।

व्याख्या—हे कत ! आपके बालो की सफेदी (वृद्धावस्था) को देखते हुए अब आपके और अधिक जीने की क्या आशा की जा सकती है ? फिर भी आप मेरे स्तनो पर रहने वाले हाथो से मुँह मे तिनका लेते है ? अर्थात् जीवन के चतुर्थ आश्रम

---

1 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 3, पृष्ठ 29,

मे पहुँच कर भी आप अभी तक जीवन का मोह छोड नही सके है, जिसके फलस्वरूप, आप जिन हाथो से मेरा कुच-मर्दन करते है, उन्ही से शत्रु केसामने कायरतावश गिडगिडा-कर प्राणो की भीख माँगते हुए मुँह मे तिनका लेते है ! ऐसा करते हुए आपको लज्जा नही आती ! आपके इस कृत्य से मै तो अत्यन्त लज्जित हूँ, क्योकि मुझ जैसी वीराङ्गना के कुचो का स्पर्श करने वाले हाथो से आप तिनका ले-यह मै सह नही सकती ।

शब्दार्थ—**सुपेती** = सफेदी (बालो की, जो वृद्धावस्था की सूचक है) । **की** = क्या । **रहण** = रहने वाले, अर्थात् स्पर्श या मर्दन करने वाले । **घातै** = घालते, अर्थात् लेते या डालते है ।

राजस्थानी टीका—हे कथ ! आपरै मुहडै धोला खत रा केश देखता आपरै विशेष तौ जीवण री आस नही—चौथी पछेवडी आयोडा हौ—पण अ धोला नही, झगडौ छोड भागा तिण सू म्हे ललकारीया जद म्हारा स्थण पर रैण वाला हाथ सू जाणै मुहडै घास लेरया है कि अबै थारी गाय हा—म्हाने मत नीचौ देखाव ।।७०।।

धव जीवे भव खोवियौ, मो मन मरियौ आज ।
मोनूं ओछै कचुवै, हाथ दिखाता लाज ।।78।।

प्रसंग—कायर पति के प्रति वीराङ्गना का कथन—

व्याख्या—हे नाथ ! [युद्ध मे वीरगति पाने की बजाय पराजयजन्य कलक का टीका माथे पर लगा कर] यो जीते बच कर आपने अपना जन्म ही व्यर्थ खो दिया । आपके न मरने से आज मेरा मन मर गया ! अब, सौभाग्य का परिधान—यह ओछा कचुक पहन कर अपने हाथ दिखाते हुए मुझे लज्जा आती है । अर्थात् सुहाग की यह वेशभूषा तो आपकी वीरता से ही शोभा पाती है, परन्तु आपने युद्ध मे कायरता दिखला कर मेरे सौभाग्य को कलकित कर दिया । अब यह सौभाग्य-परिधान (ओछी बाहो का कचुक) धारण करने मे भी मुझे लज्जानुभव होता है । ओछी कचुकी पहन कर अब मैं किस मुँह से अपनी सहेलियो को अपने हाथ दिखलाऊँगी ! आपने जीवित रह कर मुझे वैधव्य का दु ख दे दिया !!

शब्दार्थ—**धव** = पति । **जीव** = जीवित रह कर । **भव खोवियौ** = जन्म व्यर्थ खो दिया । **मन मरियौ** = मन बुझ गया, निराश हो गया । **मोनूं** = मुझे । **कंचुवै** = कचुकी, कचुक ।

विशेष—राजस्थान मे सौभाग्यवती क्षत्रिय ललना ओछी बाँहो की कचुकी (काचली) पहनती है एव विधवा 'लाबी' अर्थात् पूरी आस्तीन की । ओछी बाँहो की कचुकी पहनने से उसके हाथ स्वभावत खुले रहते हैं, जिनमे अपने सौभाग्य का

गौरव-चिह्न--चूडा धारण कर वह गर्वानुभव करती है। परन्तु, पति ने युद्ध मे कायरता दिखला कर उसके सौभाग्य को लाछित कर दिया है। फलत ओछी कचुकी मे अपने हाथ तथा उनमे धारण किए हुए चूडे को दिखलाते हुए अब वह अत्यन्त लज्जित अनुभव करती है।

राजस्थानी टीका--इतरौही कहता इण वीर स्त्री री रीस बुझी नही, सो फेर कहे है—हे पती ! इण झगडा सू भागने जीवता रहता जनम खोय दीयौ ने थारा नँही मरणा सू आज म्हारौ मन मर गयौ--अबै सुहाग रै इण ओछै बाहा रै कचुवै (काचली) सू मोने बराबरी री स्त्रिया मे हाथ देखावती ने लाज आवै छै ॥ इ०॥

यो गहणो यो बेस अब, कीजै धारण कत ।
हूँ जोगण किण काम री, चूडा खरच मिटत ॥79॥

व्याख्या—हे कत ! मेरे ये आभूषण और मेरे ये वस्त्र अब आप धारण कीजिए। अर्थात् आपकी कायरता के कारण यह पुरुष-वेश अब आपको शोभा नही देता। तद्विपरीत, अपने कृत्यानुरूप आप यह स्त्री-वेशभूषा धारण करले (ओढनो ओढ ले और हाथो मे चूडियाँ पहन ले !)। मैं तो आपके जीते जी ही विधवा हो गई हूँ, अत आपके किस काम की ? [मुझसे अब सहवास की आशा न कीजिए !] चलिए, अच्छा ही हुआ, आपके चूडे का खर्च मिटा !

पति की कायरता पर वीराङ्गना की कितनी तीव्र व्यग्योक्ति है! कैसी मर्मान्तक प्रताडना !

शब्दार्थ—**बेस** = वस्त्र, पोशाक। राजस्थान मे सौभाग्यवती ललना की पोशाक को आदर से 'वेस' कहा जाता है। **जोगण** = विधवा। अभिधा मे इसका अर्थ सन्यासिनी या तपस्विनी है, परन्तु भावार्थ मे यह विधवा का वाचक है। वीर सतसई मे कवि ने अन्यत्र भी इसका विधवा के अर्थ मे प्रयोग किया है —

कीधी घर घर जोगणी, दीधी नर नर दाह ॥284॥

इसी भाँति 'पाबू प्रकाश' मे भी 'जोगण' विधवा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है —

सजण हार श्रृगार सुतन तो हुती सुहागण ।[1]
हुय **जोगण** दुत हीण, फिरत शोभू नहिं आगण ॥

राजस्थानी टीका—फेर भागल कायर ने वीर स्त्री कहै छै–हे कथा ! औ तौ थारौ घडायोडौ गहणौ, आ थारी करायोडी पौसाख अबे थे धारण करौ।

1 पाबू प्रकाश (वडा) आशिया मोडजी–कृत, पृ० 325,

म्हारौ तो सुहाग गयौ । हूँ भागल रौ सुहाग राखू नही ने हूँ हमैं विधवा (जोगण) किसै काम री ? आप जाणजो म्हारै हमै चूडा रौ खरच मिटियौ ।।इ०।।

की घर आवै थे कियौ, हणियाँ बलती हाय ।
धण थारै घण नेहडै, लीधौ वेग बुलाय ।।80।।

प्रसंग—युद्ध से भागकर आए हुए कायर पति को वीराङ्गना की प्रताडना—

व्याख्या—[हे कत !] घर आकर तुमने क्या किया ? हाय ! यदि तुम युद्ध मे काम आते तो मैं सती होती ! परन्तु तुम्हारी कायरता ने मेरी मन की साध मन मे ही रख दी ।

इस पर निर्लज्ज पति उत्तर देता है–प्रिये ! तुम्हारे अत्यधिक प्यार ने ही मुझे यो शीघ्र बुला लिया ।

शब्दार्थ—**की** = क्या । **हणियाँ** = मरने पर , वीरगति प्राप्त करने पर । **बलती** = जलती, अर्थात् सती होती । **धण** = प्रिये ! **घण** = अत्यधिक । **नेहडै** = प्रेम या प्यार ने (स० स्नेह) । **वेग** शीघ्र ।

विशेष--राजस्थानी टीका मे 'हणियाँ '' हाय' का अर्थ 'हाय हाय कर चिता मे जलते समय दोनो हाथ अपनी छाती मे पीट लिए'—किया गया है, जो असगत है । कारण, पति के (चाहे वह कायर ही क्यो न हो) जीते जी वीराङ्गना के सती होने का अर्थ परम्परासम्मत नही 'है, जैसा कि हम दोहा सख्या 74 की टिप्पणी मे बता आए है । अत. टीकाकार के अर्थ से हम सहमत नही । तद्विपरीत, डा० सहलजी आदि सपादको का अर्थ हमे समीचीन प्रतीत होता है, जैसा कि हमने भी तदनुसार अर्थ किया है ।

राजस्थानी टीका—हे कथ ! थे भागल वण जुद्ध सू जीवता काही कीधौ-इयू कह हाय हाय कर बलती थकी छाती मे दोनू हाथ हणिया–छाती मे मूकीया वाही । तद भागल कही–हे धण ! थारै इण घणौ हेत बुलाव लीधौ ।।इ०।।

धण पूछै की जीवियाँ, धणी न लग्गा धार ।
थारा सौगन था विना, सूनो मन संसार ।।81।।

व्याख्या—कायर पति को धिक्कारती हुई पत्नी पूछती है–हे स्वामी ! आप तलवारो की धारो न लग जो युद्ध से जीवित भाग आए- इस कलकित जीवन से क्या लाभ ? अर्थात् धारातीर्थ मे स्नान कर अक्षय कीर्ति अर्जित करने के स्थान पर आप कलक का टीका माथे पर लगा कर जो जीवित भाग आए है–आपके इस जीते रहने को धिक्कार है !

इस पर निर्लज्ज पति उत्तर देता है—प्रिये ! तेरी सौगन्ध, तेरे बिना मुझे सारा ससार सूना लगा । इसलिए प्राण बचाकर भाग आया ।

शब्दार्थ—की = क्या । **जीवियाँ** = जीने मे । **न लग्गा धार** = तलवारो के वार सहन करते हुए टुकडे-टुकडे न हुए । **मन** = मुझे, राजस्थानी मे मनै, म्हानै, मोने मोनू आदि 'मुझे' के अर्थ का द्योतन करते है । यहाँ 'मन' उसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, मन (हृदय) के अर्थ मे नही, जैसा कि डा० सहलजी आदि सपादको ने व्याख्या मे अर्थ किया है ।

विशेष—कायर पति व वीराङ्गना के बीच इन सवादमूलक दोहो के माध्यम से कवि ने परोक्षत कायरता पर मार्मिक व्यग्य किया है, जो पति की निर्लज्जता के कारण और अधिक तीव्र होगया है । इसे कविराजा बाँकीदास के निम्नाकित दोहे से मिलाइए —

धण सुण थारा धरम सूँ, मावत लायो सीस ।[1]
मोल अबार मँगावसू , पाघाँ बीस पचीस ॥36॥

राजस्थानी टीका—कायर ने वीर स्त्री पूछियौ—हे धणी ! थे झगडा सू भाग ने क्यू जीविया ने दूजा सूरवीर जू झ ने मारीजिया, ज्यू थे ही तरवारा री धारा रै क्यू नी लागा ? तद कायर कही—हे प्यारी ! थारी सौगन, थारै विना म्हाने सारौ ससार सू नौ लागै छै ॥इ०॥

टिप्पणी—टीका तथा वीर सतसई के प्रकाशित सस्करणो मे दोहा सख्या 81 व 82 के क्रम मे अन्तर है । टीका मे दोहा सख्या 81 (उपर्युक्त दोहा) पहले है तथा दोहा सख्या 82 बाद मे , जबकि प्रकाशित सस्करणो मे दोहा सख्या 82 (कत भला घर   भेटेस) पहले है । हमने दोहो के क्रम मे टीका का ही अनुसरण किया हे ।

कत भलाँ घर आविया, पहरीजै मो बेस ।
अब धण लाजी चूडियाँ, भव दूजै भेटेस ॥82॥

व्याख्या—हे कत ! [युद्ध से भागकर] खूब घर आए ! स्वागत है ! अब यह मेरी पोशाक आप धारण कीजिए । आप जैसे कायर को यह स्त्री-वेष ही शोभा देगा । आपके इस कायरतापूर्ण आचरण से पत्नी का चूडा (मेरा सुहाग) लज्जित हुआ है । फलत मेरा अब आपसे कोई सम्बन्ध नही । अब तो अगले जन्म मे ही भेट होगी ।

---

1 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 3, पृष्ठ 26

अर्थात् मैं आपके जीते जी ही वैधव्य का दु ख भोग लूँगी, किन्तु अब आप जैसे कायर पति के साथ सहवास नही करूँगी ।

शब्दार्थ—भलाँ = अच्छे, खूब; व्यग्य मे कथित । **अब** = इसे दोहे के चतुर्थ चरण से सबद्ध मानना चाहिए । अर्थात् 'अब भव दूजै भेटेस ।' **लाजी** = लज्जित हो गई । **चूडियाँ** = चूडा; सुहाग । **भव** = जन्म । **भेटेस** = भेट होगी ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर स्त्री भागल पती ने कहै छै–हे कथ ! आप भला भाग ने जीवता घरे आया । अबै म्हारौ वेस धारण करावौ । अबै म्हनै आ चूडीयाँ सू लाज आवै छै सो हू तो हमै चूडिया पैलै जनम भेट सू ।।इति।।

> दरजण लबी आगिया, आणीजै अब मूझ ।
> तव टोटै मोनूँ दया, दूण सिवाई तूझ ।।83।।

प्रसंग—पति की कायरता के फलस्वरूप दर्जिन के प्रति वीराङ्गना की उक्ति —

व्याख्या—हे दर्जिन ! मेरे पति युद्ध से भागकर आगए है । अत मेरे लिए तो वे जीवित ही मर चुके एव मैं विधवा होगई हूँ । अब तू मेरे लिए विधवा के पहनने योग्य लम्बी बाँहो की कचुकी (काचली) लाना । मेरी सुहाग की पोशाक सीने मे तुझे जो मनचाही सिलाई मिलती थी, उसमे तेरे कमी होगी, इस पर मुझे अवश्य दया आती है, किन्तु लम्बी कचुकी की सिलाई के दूने दाम देकर मै तेरी वह हानि पूरी कर दिया करूँगी । तथापि, जीवित–मृत कायर पति के सुहाग की अपेक्षा तो वैधव्य कही अच्छा !

शब्दार्थ—आंगिया = कचुकी । **आणीजै** = लाना । **टोटै** = कमी, हानि (स० त्रुटि) । **सिवाई** = सिलाई ।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री रौ भागल पती जुद्ध सू भाग आयौ जिण पर सुहाग छोड दरजण ने कहै–हे दरजण! आज सूँ ही म्हारै लबी बाहा री अ गिया (विधवा रौ पैर वेस) लावजे–ओछी बाह री काँचली री सीवाई थोडी है सो थारै तोटौ पडै जिण सू थारै तोटारी म्हने दया आई सो अब दूणी सीवाई देसू ।।इ०।।

टिप्पणी—टीकाकार के उपर्युक्त अर्थ से हम सहमत नही । ओछी बाँहो की कचुकी सधवा पहनती है, जिसकी वह मनचाही सिलाई देती है । तद्विपरीत, लम्बी बाँहो की कचुकी विधवा पहनती है, जिसकी सिलाई अपेक्षाकृत कम होती है क्योकि उसमे कोई विशेष कारीगरी नही की जाती तथा विधवा के लिए बनी होने से उस पर कोई अतिरिक्त पुरस्कार भी नही मिलता । अत लम्बी कचुकी से दर्जिन को सिलाई मे स्वभावत घाटा ही रहता है । इसलिए वीराङ्गना उसे दूनी सिलाई देकर कमी की पूरी करने का आश्वासन देती है । टीकाकार ने वीराङ्गना द्वारा लम्बी

कञ्चुकी पहनने के फलस्वरूप दर्जिन के प्रति जो दया-प्रदर्शन का कारण बतलाया है, वह हमे सगत नही प्रतीत होता । तद्विपरीत, उपर्युक्त दोहे का 'वीर सतसई' के प्रकाशित सस्करणो मे किया गया अर्थ ही हमे समीचीन प्रतीत होता है । हमने भी यही अर्थ किया है । वीर सतसई के इस दोहे को पाबू प्रकाश' की निम्नाकित पक्तियो से मिलाइए —

सिर वैणी साजती, कसू कालौ डोरो किम ।[1]
रग चूडौ राखती, लब कञ्चुक पहरू किम ।

मणिहारी जा री सखी, अब न हवेली आव ।
पीव मुवा घर आविया, विधवा कवण बणाव ।।84।।

व्याख्या—हे सखी मनिहारिन ! तू अपने घर लौट जा । आगे से कभी मेरी हवेली पर मत आना क्योकि मेरे पति मरे हुए घर आए है (युद्ध से पलायन जीवित-मृत्यु ही तो है ! अत मैं तो विधवा हो चुकी हूँ और विधवा का कैसा शृगार ?

[सौभाग्यवती क्षत्रिय ललनाओ को चूडा पहनाने हेतु मनिहारिनें प्राय उनके घर जाया करती है । पति के युद्ध से लौटने का समाचार सुन वीर पत्नी उमगित हुई नया चूडा धारण कर सुहाग-शृगार के लिए लालायित होती है । तदर्थ मनिहारिन नया चूडा लेकर हवेली पहुँचती है । किन्तु तभी पता चलता है कि पति तो युद्ध से भागकर आया है । बस, वीर पत्नी की क्रोधाग्नि भडक उठती है । पति का पलायन और मरण उसके लिए एक है । वह अपने को विधवा से भी अधिक अभागिन समझ कर क्षोभ और नैराश्य से दग्ध हुई मनिहारिन को आदेश देती है कि वह आगे से उसका शृगार करने हेतु हवेली न आए । वीर पत्नी के इस रोष, पश्चाताप एव नैराश्य के सदर्भ मे पति का कायरतापूर्ण आचरण और भी उभर गया है] ।

शब्दार्थ—मणिहारी = मनिहारिन (स मणिकार) । डा कन्हैयालालजी सहल 'मणिहार' के 'हार' प्रत्यय की व्युत्पत्ति स 'हृ' से होना सभव मानते है,[1] परन्तु हमारी समझ मे 'मणिहार' शब्द सस्कृत 'मणिकार' से ही व्युत्पन्न है, जैसा कि 'उक्ति-रत्नाकर' व 'वर्णक समुच्चय' मे निर्देश किया गया है ।[2] **हवेली** = मकान (अरबी)

---

1 पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत, पृ० 325

1 मरु भारती, जनवरी 1971, पृ० 62

2. उक्ति रत्नाकर', साधु सुन्दरगणि-कृत, पृ० 19 एव वर्णक समुच्चय, भाग 1, पृ० 21 स. श्री डा० भोगीलाल साडेसरा ।

राजस्थान मे क्षत्रिय सामन्तो के निजी आवास को 'कोटडी', 'हवेली' आदि शब्दो द्वारा अभिहित किया जाता है। **मुवा** = मृत। **कवण** = कैसा। **वणाव** = शृंगार। चूडा सुहागिनो के शृंगार का प्रमुख अंग है।

राजस्थानी टीका– हे सखी मिणिहारी ! शृंगार री चीजा ले थारै घरे जा। पती जुद्ध रा भागल मरियोडा घरे आया सो पती मरिया पछै विधवा रै काई वणाव ॥इ०॥

भूरै इम रगरेजणी, कूड़ा ठाकुर काय।
बसण सती धण रगता, दीधी आस छुडाय ॥85॥

व्याख्या––रगरेजिन रोती हुई यो धिक्कारती है––अरे कायर ठाकुर ! यह तूने क्या किया ? मैं तो तेरी वीराङ्गना के लिए सती होने की पोशाक रँगने जा रही थी किन्तु तूने युद्ध मे पीठ दिखाकर मेरी आशाओ पर पानी फेर दिया।

[सौभाग्यवती वीराङ्गना की नित्य नई व सजीली पोशाक रँगने से रँगरेजिन की रोजी चलती थी। पति के युद्ध मे चले जाने पर भी रँगरेजिन को आशा थी कि कम से कम अन्तिम बार–सती होते समय तो वीर वधू उससे नई पोशाक मगवाएगी या रँगवाएगी ही, जिसके फलस्वरूप मनचाही बख्शिश मिलने के साथ-साथ सती की पोशाक लाने या रँगने का भी गौरव प्राप्त होगा। परन्तु जब वीराङ्गना का पति युद्ध मे पीठ दिखाकर भाग आया तो रँगरेजिन की आशा पर पानी फिर गया, क्योकि रोषाहत हो वीराङ्गना ने वैधव्य के सूचक श्वेत वस्त्र धारण कर लिए। बेचारी रँगरेजिन अपने दुर्भाग्य पर रोती नही तो और क्या करती ! उसकी रोजी जो सदा के लिए चली गई। आज भी रँगरेजिने नई ओढनियाँ गठ्ठर मे लिए घूमती व बेचती देखी जा सकती है। रँगने का व्यवसाय तो वे करती ही है।]

शब्दार्थ—**भूरै** = रोती, विलखती है। **कूडा** = कायर। 'कूडा' राजस्थानी मे भूठे, मिथ्यावादी या दुष्ट का वाचक है, किन्तु यहाँ यह कायर के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। (स० कूट), **काय** = क्या। **दीधी** = दी।

राजस्थानी टीका—इसी विधवा पणा री प्रतग्या सुण उँण वीर स्त्री री अने रगरेजण कहै—अरे कायर, लपट, लोभी, कूडा ठाकर होवणा, रगरेजण ही भुर रही है। रे इण साक्षात् सती रूपी धण रा कपडा रगता आ [आ] सत करण मे पौसाक मंगावसी जद म्हारा दालद्र गमाव देसी सो इणाने जीवतै राड कर दी कायर ! ॥इ०॥

गयण कूकी रे गजब, भूँडा आगम भौण।
बलण कढायौ अतर धण, मुहँगौ लेसी कौण ॥86॥

व्याख्या---गंधिन यह कहती हुई चिल्लाई—रे गजब होगया ! इस कायर ने घर आकर बहुत बुरा किया। इसकी वीर भार्या ने सती होने हेतु बेशकीमती इत्र निकलवाया था, अब इस मँहगे इत्र को कौन मोल लेगा ?

[कायर ठाकुर ने युद्ध से पलायन कर वीराङ्गना को सती-धर्म-पालन से वंचित कर दिया, जिसके फलस्वरूप उसने जिस मँहगे इत्र की फरमाइश की थी, वह बिना लिये ही रह गया। इसकी कायरता के कारण मुझ गरीबनी की हानि होगई धिक्कार है इसे !]

अन्यार्थ—प्रथम पंक्ति मे 'भूँडा' को सम्बोधन मानकर व्याख्या यों भी की जा सकती है–रे नीच ! (कायर), तूने घर आकर गजब कर दिया। अथवा, रे गजब होगया ! इसका (कायर ठाकुर का) घर लौट आना बहुत बुरा हुआ।

शब्दार्थ—गंधण = गंधी या इत्रफरोश की स्त्री। **कूकी**=चिल्लाई, रोई। **भूँडा** = बुरा। **आगम** = आना, अथवा आकर। **भौण** = घर (स० भवन)। **बलण** = जलने अर्थात् सती होने हेतु (स० ज्वलन)। **कढायौ** = निकलवाया। **मुँहगौ** = बेश कीमती, मूल्यवान (स० महार्घ)।

राजस्थानी टीका—गाधण ही वीर स्त्री रौ विधवा पणा रौ प्रण सुणने कहै रे अँ घर मे भूंडी वाता री आगम हुवा–इण वीर स्त्री रै वासतै म्है बालण ने कढायो आ तौ मुहगौ ही ले लेती–हमैं वेचू तौ सु हगौ ही इण विना कुण लेवैं ॥८०॥

सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुल-खोय।
मूझ घडाई खोवणा, तूझ मडाई होय ॥87॥

व्याख्या—सोनारिन रोती और कलपती हुई कहती है–अरे कुलनाशी और मेरी गहनो की घडाई पर लात मारने वाले ठाकुर ! तेरा सत्यानाश हो।

[प्रसग वही है। वीराङ्गना ने सोनारिन से आभूषण घडवाये थे। वह सोचती थी कि पति विजयी होकर आएगे तब वह मोद मे भर नए स्वर्णाभूषण धारण करेगी एव यदि दैवयोग से वे वीरगति को प्राप्त हुए तो उन्हे पहन कर सती हो जाएगी। परन्तु कायर पति ने इन दोनो ही आशाओ पर पानी फेर दिया। वह युद्ध मे पीठ दिखाकर भाग आया, जिसके फलस्वरूप वीराङ्गना ने रोषाहत हो उसके जीते जी ही वैधव्य-वेश धारण कर लिया। सोनारिन के घडे हुए गहने यो ही धरे रह गए। उन्हे अब कौन पहने ? पुरस्कार तो दूर, बेचारी के घडाई के पैसो के भी लाले पड गये। फलत वह रोती कलपती हुई उस कायर ठाकुर को बारबर धिक्कारती है। उसके चुभते हुए शब्द वस्तुत उसके आन्तरिक आक्रोश के ही ज्ञापक है, जो प्रकारान्तर से कायर पति के प्रति कवि की तीव्रतम भर्त्सना को प्रतिच्छायित करते हैं]

शब्दार्थ—**कुल-खोय** = कुलनाशी, कुल की वीरोचित रीति एव मान-मर्यादा को नष्ट करने वाला । **घडाई** = आभूषण घडने की मजदूरी । **मडाई** = मृत्यु, सर्व-नाश । 'मडो' या 'मडा' राजस्थानी मे मृतक या मुर्दे को कहते है ।

यथा.—'तठै सीसम वृक्ष उर्परि एक **मडो** छै सु अठै आँणि दै ।'[1]

तथा—'राजा फिर जाइ **मडा** नु ले आवतउ हूवउ ।'

'मडा' से ही भाववाचक सज्ञा 'मडाई' होगया है । राजस्थानी टीका मे पाठ 'मढाई' है, जिसका अर्थ टीकाकार ने 'तस्वीर मे मढे जाना' किया है । स्त्रियो द्वारा पितरो को, जिनकी गति नही होती, फूल (सोने के चित्र) मे मढकर गले मे पहनने का रिवाज राजस्थान मे आज तक चला आरहा है, विशेषतः अ धविश्वास-ग्रस्त ग्रामीण स्त्रियो मे । टीकाकार ने उसी सदर्भ मे 'मढाई' का अर्थ 'मढा जाना' किया है, परन्तु हमे उक्त अर्थ सगत नही लगा । 'घडाई' के वजन पर 'मडाई' पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है जिसका सीधा-सादा अर्थ मृत्यु है । यहाँ सत्यानाश या सर्वनाश का अर्थ उद्दिष्ट है, जैसा कि किसी को गाली देते समय आज भी इसका प्रयोग किया जाता है ।

राजस्थानी टीका—सोनारी ही झुरने कहै रै मत हीणा कुठाकर ! कुल रै बिरदारा खोवण वाला ! म्हारी घडाई खोई तो थारी मढाई होवजो—मरिया पाछै पितर होवै तरै पितरा रा फूल घडीजै सो पितराँ रा फूला मैं मढाई होजो तथा मरने भूत होवै तरै प्रेत रौ जत्र मादलिया मैं तथा चौकी मे मडाईज जो ।।

इति कायर कुल कल क लक्षण । अथ वीर वरणण ।

विशेष—कवि ने दोहा सख्या 85, 86, व 87 मे समाज के विविध वर्गों की स्त्रियो द्वारा कायर पुरुष की जो भर्त्सना करवाई है—यह उसकी अपनी एक मौलिक उद्‌भावना हे । अब तक वीरत्व वर्णन का परिवेश प्राय· सामन्त वर्ग तक ही सीमित रहा है, परन्तु सूर्यमल्ल ने समाज के अन्य वर्गों को भी वीरोचित आदर्शों से जोडकर वीरत्व की परम्पराओ को एक व्यापक पीठिका पर प्रतिष्ठित किया है । कायर की कायरता केवल उसकी पत्नी को ही नही, समाज के अन्य वर्गो को भी प्रभावित करती है—इस तथ्य का भावनात्मक स्तर पर निरूपण करने वाले सूर्यमल्ल कदाचित् प्रथम डिंगल कवि है । वीर सतसई के 83 से 88 तक के दोहो मे हम यह देखकर निश्चय ही आनन्दित होते है कि 'वीर सतसई' मे चित्रित सारा समाज ही वीरत्व की उत्सर्ग मयी परम्पराओ से प्रेरित है । इसमे कायर ठाकुर के युद्ध से पलायन के कारण गधिन,

---

1. वैताल-पचीसी, देईदाननाइता-कृत, पृ० 5, स० श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया
2 वही, पृ० 90

स्पारेजिन, सोनारिन आदि को जो रोता-कलपता दिखलाया गया है—वह रोना-पीटना केवल उनकी अपनी आर्थिक हानि का ही नही है, अपितु वह तो समाज की मर्यादाओ एव गौरवमयी परम्पराओ के हनन के फलस्वरूप उमडता समष्टि का समवेत क्रन्दन है, जो कवि की आक्रोशमयी वाणी मे मुखरित हो हमे वीरत्व के चिरमान्य एव उच्चतम मूल्यो के प्रति अस्थावान बनाता है। कवि की इन कटूक्तियो का मर्म इसी भाव-सन्दर्भ मे ग्रहण किया जाना चाहिए।

देखीजै निज गोख थी, देवर री हथवाह।

भाभी ! थे गिणता खरच, सो सीलै मो नाह ।।88।।

प्रसंग—देवरानी अपने पति के उद्भट शौर्य पर मुग्ध हो अपनी जेठानी से कहती है—

व्याख्या—भाभी ! अपने झरोखे से तनिक अपने देवर के हाथ के वार तो देखिए ! किस त्वरा और वेग से वे अकेले ही शत्रु-सेना को काटने चले जारहे है। आप उन पर होने वाले जिस व्यय को व्यर्थ का खर्चा समझती थी, उसे ही मेरे वीर स्वामी आज पाई-पाई चुका रहे हे।

[भाव यह कि वीरो पर होने वाला अथवा उनके द्वारा किया जाने वाला खर्च, खर्च' नही होता। वह तो एक प्रकार का ऋण होता है, जिसे समय आने पर वीर अपने मस्तक के मोल पर चुकाते है। अत उनके खर्चीलेपन को मन मे लाना उनके वीरत्व का अपमान करना है, किंवा उनके प्रति कृतघ्नता है]

शब्दार्थ—देखीजै = देखा जाए, देखिए। **गोख** = (स० गवाक्ष) झरोखा। **हथवाह** = हस्त-प्रहार, असि-सचालन। उदाहरणः—'हल कर्यो **हथवाह** अरीदल गाह्यो।'[1] **गिणता** = समझती। **खर्च** = व्यर्थ का व्यय। **सीलै** = चुका रहे है, '**सीलणौ**' = चुकाना। यथा —

'एक आपरा आलय हू काढि देणरो उपकार करि जिकणरा **सीलणाँ मे** सहियो न जाइ इसडा अनेक अनर्थ कुमाइ मन मत्तौ बहे, तिकण रो अन्त तो इसडो खटावै।'[2]

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरप री वीर स्त्री आपरा पती नें जुद्ध करतौ देख कहै छै—एक पाटवी रै स्त्री लोभ री मूरत नें देवर रौ खरच करणौ सुहावतौ नही नें वीर पुरषा रौ खरच घोडौ रजपूत खाणौ पीणौ देणौ औ नेम सू हौवै है—हे वाभीजी सा ! आपरा गौखडा सू आपरा देवर री हथवाह (तरवार वाहती) देख

1 पद्मिनी-चरित्र-चौपई, लब्धोदय-कृत, पृ० 77, स० श्री भँवरलाल नाहटा।
2 वशभास्कर पचमराशि, त्रयोदशमयूख, पृष्ठ 1842

लेराओ। वाभीसा ! आप खरच गिणाता हा वौ म्हारौ पती सीलै छै—अर्थात् हाथी रै चैबचै (हौदे) पर तरवार वाहै छै ॥इ०॥

बाप गयो ले माहिरौ, काको जात कडूंब ।
तोहि मचाई छोकरै, बैरी रै घर बूंब ॥89 ।

प्रसंग—वीर बालक के पराक्रम का वर्णन है:—

व्याख्या—पिता तो कही 'माहिरा' लेकर गया हुआ था, एव चाचा कही जाति-बिरादरी मे मिलने चला गया था (अथवा, कुटुम्ब की जात देने चला गया था) तो भी उस अकेले वीर बालक ने आक्रान्ता शत्रुओ को मौत के घाट उतार कर उनके घर कुहराम मचा दिया ।

शब्दार्थ—माहिरौ = भात भरने की रस्म। पुत्री या बहिन के विवाह के अवसर पर पिता या भाई द्वारा उपहार-रूप मे वस्त्राभूषण लेकर जाने को 'भात भरना' या 'माहिरा ले जाना' कहते है । **जात कडूंब** = 1 जाति-बिरादरी अथवा 2 कुटुम्ब की ओर से किसी देवता की 'जात'। 'जात' राजस्थानी मे धार्मिक यात्रा या अभीष्ट पूर्ति पर किसी देवता की मनौती मनाने को कहते है । यथा —'अकबर पातिसाह **ख्वाजा री जात आयौ थौ** तरै मिलिया ।"[1]

तोहि = (स० तथापि) **छोकरै** = वीर बालक ने ।

बूंब = कुहराम , रोना-पीटना , हाय-तोबा ।

राजस्थानी टीका—एक वालक री वीर माता बालक पुत्र रौ आ पराक्रम देख मन मैं हरष लाय कह रही छै—देखौ सखी ! म्हारौ पती, इण कँवर रौ बाप, तौ माहेरौ लेनें गयो छै अने इण रौ काको भाइपा मे मिलण सारू गयौ छै । इसा समचा मे दुसमण ऊपर चढ आया तठै वीर माता कहै छै-साराई घरे नही तोई छोकरै वैरिया रै घरै बूब हाक मचायदी, अर्थात् घणा दुसमणा ने मार पाछा काढिया ॥इति०॥

गोठ गया सब गेहरा, बणी अचाणक आय ।
सीहण जाई सीहणी, लीधी तेग उठाय ॥90॥

व्याख्या—घर के सब लोग तो कही गोठ मे जीमने हेतु गए हुए थे कि इधर अचानक लडाई ठन गई (शत्रुओ ने मौका देखकर घर को आ घेरा) परन्तु सिंहनी के समान वीर क्षत्रिय जननी से उत्पन्न सिंहनी (वीराङ्गना) ने तत्काल तलवार उठा ली, आगत शत्रुओ से मुकाबले के लिए अकेली ही तलवार लेकर आ डटी ।

---

1. राव चद्रसेन री वात ।

भाव यह है कि अवसर आने पर वीर क्षत्रिय ललना तलवार लेकर अकेली ही युद्ध के मैदान मे उतर आती है। राजस्थान का इतिहास तलवार की धनी ऐसी अनेक वीराङ्गनाओ के शौर्य से समुज्ज्वल है। इनमे बूँदी नरेश राव शत्रुशाल की राजकुमारी और जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की रानी जसवन्तदे का नाम उल्लेखनीय है, जिसने महाराजा जसवन्तसिंह के निधनोपरान्त कुटिल बादशाह औरंगजेब द्वारा बालक राजा अजीतसिंह को पकडवाकर मरवाने के उद्देश्य से भेजी गई बादशाही फौज का स्वय तलवार लेकर ऐसी अप्रतिम वीरता से मुकाबला किया कि चारण कवियो ने उसके शौर्य पर मुग्ध हो उसे अपने गीतो मे अमर कर दिया। रानी जसवन्तदे (या जसमादे) पर लिखित एक गीत की कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है —

दिन माचै दूद खूदवै दमगल,[1]
पतसाही मे रोल पडै।
हाथी चढ हलकारै हाडी,
लाडी जसवँत तणी लडै॥

× × × ×

पख दहु निमल सासरौ पीहर।
जेठ अमर सत्रसाल जणौ।
राणी पाणी धरम राखियौ,
तागौ हिंदुसथान तणौ॥

शब्दार्थ—गोठ = दावत, प्रीतिभोज। **गेहरा** = घर के।
बणी'''' ''आय = आ बनी, अर्थात् लडाई ठन गई।
जाई = उत्पन। **लीधी** = ली।

राजस्थानी टीका—ऊपर कह्यिा हूवा तो वीर घराणा रा कँवर नें आ कँवरी ऊँण सिंघणी री बेटी—माता कहै-आज सारा घर रा तो गोठ मे गया ने अजाचक सत्रू ऊपर चढ आया पण म्हा सिंघणी री जायोडी सिंघणी (कँवरी) तरवार उठाई सो मार दुसमण भगाया-धिन है हिन्दसथान रै वीर घराणा रा रतना नें। अठै इण वीर स्त्री री समना मे माजी चापाउतजी रौ हुकम आछौ फबै, जिण तरै दोहा—

जू भारो जोधाण जद मधकर हौ अजमेर।
छलता के आयौ छतौ, दुरजण त्रबक देर॥1॥

पुन

1 डिंगल गीत, पृष्ठ 33, स० श्री रावत सारस्वत, कु० चडीदान साँदू।

मा चापाउत मेलिया, साम्हा निज भड सेर।
उरजण रा मत आणजौ,मैहणी जेसलमेर ।।2।।
हुकम लेर भड हालिया, साह करा समसेर।
जेझ न कीधी जादवा, वाजत्र दिया विखेर ।।3।।

इति मम पिता वारहट शक्तीदान विरचित वीर काव्ये। पुन मूल.—

भाभी ! हूँ डौढ्या खडी, लीधां खेटक रूक।
थे मनुहारौ पाहुणाँ, मेडी झाल बदूक ।।91।।

प्रसंग—घर के सब लोग बाहर गए हुए हैं तथा इधर शत्रु घर को आ घेरते है। इस पर देवरानी भाभी को अथवा ननद भावज को सम्बोधन करती हुई कहती है --

व्याख्या—भाभी ! मै ढाल और तलवार लेकर ड्योढी पर खडी होती हूँ (शत्रुओ से मोर्चा लेती हू) उधर आप बदूक लेकर मेडी पर से मेहमानो की खातिरी कीजिए (शत्रुओ को मौत के घाट उतार कर उन्हे यो सूने घर पर चढ आने का मजा चखाइए)।

शब्दार्थ—**डौढ्यां**= रावले (अ त पुर) का प्रवेश द्वार। **खेटक**=ढाल। **रूक**=तलवार। **थे**= आप। **मनुहारौ**=खातिरी या आतिथ्य-सत्कार करो भावार्थ मे घर आए शत्रुओ को आक्रमण करने का भली प्रकार मजा चखाओ। पाहुणाँ= मेहमान (शत्रु)। **मेड़ी**=ऊपर की मजिल पर बना कक्ष। **झाल**=लेकर।

राजस्थानी टीका—अजाचक सत्रु चढ आया तठै देराणी जेठाणी री वीरता -देराणी कहै हे बाभीसा ! अजाचक सत्रू आज हलौ कर आया ; आदमी घरे नही सो हू तौ डौढी ऊपरै खेटक (ढाल) ने रूक (तरवार) लेने ऊची हू ने आप आपोडा पामणा (सत्रू) आरी सनमान करौ अर्थात् जुद्ध करौ मेडी मै जाय बदू (क) झालौ ।।६०।।

घोड़ाँ चढणौ सीखिया, भाभी किसडै काम।
बब सुणीजै पारको, लीजै हात लगाम ।।92।।

व्याख्या—भाभी ! हमने घोडो पर चढना भला किसलिए सीखा था ? देखो, युद्ध का सूचक शत्रु का नगाडा सुनाई पड रहा है, आओ, घोडो की बाग उठाए और शत्रु दल से जा भिडे।

[भाव यह कि देवरानी व जेठानी अथवा ननद व भावज दोनो ही वीराङ्गनाए हैं, जिन्होने बचपन मे ही घुडसवारी का अभ्यास किया है। फलत अवसर आने पर पुरुषो के घर मे न रहने पर भी वे आगत शत्रुओ का सामना करने हेतु कटिबद्ध हो जाती हैं। हो भी क्यो न ? घोडो पर चढना उन्होने इसलिए तो सीखा है। कवि की

दृष्टि मे सच्ची वीराङ्गनाओ का यही स्वरूप है, जो सदा निर्भय होती है तथा अवसर आने पर घोडो पर चढ स्वयं शत्रु से लोहा लेने हेतु रणाङ्गण मे आ डटती है]

शब्दार्थ—किसडं = किस । **बब** = नगाडा । **पारको** = शत्रु का (पराया) ।

राजस्थानी टीका—देराँणी कहै वाभीजी! आज पुरख आपारा घरे नही ने वैरीयारौ नगारौ सामै काकड वाजतौ सुणीजै छै, सो आप घोडा चढणौ पछै किसा दिन सारू सीखिया? घोडा चढ साह्मा हाल जुद्ध करण सारू घोडा री वागा उठावौ, जुद्ध करसा, वैरी निंदव नें न जाय सकै ।।९०।।

टिप्पणी—वीर सतसई के प्राय सभी टीकाकारो ने प्रस्तुत दोहे के उत्तरार्द्ध को देवरानी या ननद के प्रति भावज का प्रेरणार्थक कथन मानकर अर्थ किया है, जबकि इसमे ध्वनि यह है कि अपनी भावज के साथ-साथ वह स्वय भी शत्रु पर घोडो की वाग उठाने हेतु प्रस्तुत रहती है । अत 'लीजै हाथ लगाम' का अर्थ 'लगाम हाथ मे लो' न कर 'लगाम हाथ मे ले या ली जाऐ' किया जाना चाहिए । तात्पर्य यह है कि विवेच्य चरण मे देवरानी या ननद केवल अपनी भावज को ही लगाम हाथ मे लेने की बात नही कहती वरन् उसके साथ स्वय भी रणाङ्गण मे चलने का प्रस्ताव करती है । अकेले भावज को लगाम हाथ में लेने का अर्थ करने से देवरानी या ननद का चरित्र परोक्षत. लाछित होता है, जो कवि का उद्दिष्ट नही है ।

भाभी जागड आपणा, छिपै न लाखा गान ।
सूनै घर सीधू थिया, आपा रा मिजमान ।।93।।

प्रसग—पुरुषो की अनुपस्थिति मे अचानक शत्रु से जूझने का सूचक रणराग-'सिंधू' सुनकर वीर देवरानी अपनी जेठानी से कहती है —

व्याख्या—भाभी ! ये अपने ही ढोली हैं, जिनका गाना लाखो मे भी छिपता नही है । सूने घर मे रणराग 'सिधू' मे दोहे गाए जारहे है । इससे जान पडता है अपने यहाँ ही कोई मेहमान (शत्रु) आगए है । [आओ, इनका यथोचित् सत्कार करे ताकि ये यो ही (बिना युद्ध किए ही) न लौट जाए । घर मे सप्रति पुरुष नही है तो क्या हुआ, वीर कुल की आतिथ्य-परम्परा निभाने हेतु हम तो विद्यमान है ।]

शब्दार्थ—जागड = ढोली । **सीधू** = सिंधु राग , युद्ध मे वीरो को उत्तेजित करने हेतु उच्च स्वर मे गाया जाने वाला एक राग विशेष । इसमे वीर रस परक दोहो या गीतो का गायन किया जाता था, जिसे सुन योद्धाओ पर सूरातन चढ जाता था तथा वे क्रुद्ध सिह-से शत्रुओ पर टूट पडते थे । डिंगल-काव्य मे वीरत्व के प्रेरक इस सिधू राग को 'रणराग', 'बडा राग' अथवा पाटवी राग' के नामो से अभिहित किया गया है, जिनसे इस राग विशेष के प्रति वीरता के वैतालिक डिंगल-कवियो के असीम आदर-भाव की व्यजना होती है । उदाहरणत —

1 करणक रणराग झलम पाखर झणक ।[1]
2. **वडो राग** सिंघूडो वागिनै रहीग्रौ छै ।[2]
3. झाड गिरदा अझाडा हाका **पाटवी राग** रा झलै ।[3]
बाका लोग ठल्ले डाका खाग रा बजेण ।

टैसीटरी ने सिंधु राग मे गाए जाने वाले एक दोहे का उदाहरण दिया है, जो निम्नोक्त हैः—

सार वहता साहिबो, मन मया म धरत ।[4]
जाणि खखेरी खालडी, तापस मढी तजत ।।

थिया = हुए । **आपारा** = अपने । **मिजमान** = मेहमान , शत्रु ।

विशेष—पुरुषो के बाहर गए हुए होने पर भी शत्रु द्वारा आक्रमण किये जाने पर ढोलियो का सिंधू राग छेडना यह सूचित करता है कि उन्हे अपनी स्वामिनी, वीर कुलाङ्गनाओ की वीरता पर भरोसा था । वे जानते थे कि अवसर आने पर वे भी शत्रु का सामना करने के लिए क्रुद्ध सिंहनी-सी रणाङ्गण मे उतर आती है । फलतः ढोलियो ने उन्हे प्रोत्साहित करने हेतु रणराग छेड दिया हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

राजस्थानी टीका—हे वाभी ! आज आदमी तौ घर नही ने सत्रू चढ आया है तिणरी पारख है आपारा जागड-गावण वाला ढोली , तिकारौ गावणौ छिपै नही नै अै सिंधू राग करै छै । घर सू नौ छै , आदमी कोई घरे नही जिणसू सू ने घर सिंधू हूवा सो अै अबै आपाँरा मिजमान है । भावारथ–क्यू कि घर होवै तिकै हीज मिजमान री आगत-स्वागत करै तिण वासतै मरदाना भेस सू सस्त्र ले जुद्ध पर तयार होय जावौ । आया है तिकारी स्वागत नही करसा तौ कहसी उठै कुछ नही, सो आछी तरै जावता कर जीमायने पाछा मेला–एक पाना मे म्हे लक्षण लक्षणा लिखी है । लक्षण लक्षणा मे उलटो अरथ होवै । इण कयौ है कै आपारा मिजमान-उलटो अरथ = आपारा सत्रू जीमावौ = मारौ , आगत-स्वागत करौ = निरादरकर काढौ आदि ।।इति भावार्थ।।

हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव ।
नालौ वाढण री छुरी, झपटै जणियौ साव ।।94।।

व्याख्या— कवि-वचन —

---

1 वशभास्कर, पृ० 2674
2 राजान राउत री वात वणाव, पृ० 38 रा. सा. स. भाग 1
3. गीत महाराव राजा रामसिंघ हाडा रौ रा वी. गी. स. भाग 2, पृ० 86
4. A Descriptive Catalogue of Bardic & Historical Manuscripts Section II, Part I, Pag॰ 85 Editor Dr L. P. Tessitovi

मैं उन वीर क्षत्राणियो पर बलिहारी हूँ, जो अपने गर्भस्थ बालको मे ही वीरत्व के ऐसे सस्कार भर देती है कि गर्भ से निकलते ही सद्य प्रसूत शिशु नाल काटने की छूरी को लेने के लिए झपटता है।

भाव यह है कि वीर क्षत्राणियो की कोख से उत्पन्न वीर पुत्रो मे वीरत्व के सस्कार सहजात होते है। युद्ध और शस्त्र-सचालन की ओर उनकी रुचि जन्म से ही होती है।

शब्दार्थ—राणियाँ = वीर क्षत्राणियाँ। **भ्रूण** = गर्भस्थ शिशु। **सिखावण भाव** = सिखाने की रीति ; वीरत्व के सस्कारो से आशय है जिन्हे वीराङ्गनाए गर्भावस्था मे ही अपने गर्भस्थ बालको मे भर देती है। **नालौ** = नाल ; आँवलनाल। **वाढण** = काटने की। जणियौ = उत्पन्न। **साव** = बालक (स० शावक)

विशेष—वीरत्व के सस्कार सहजात होते है–इस आशय का कविराजा बाँकीदास का एक दोहा अत्यन्त मार्मिक है। उसमे बताया गया है कि सिंहनी के जब गर्भ रहता है तो उसे अपने गर्भाधान का प्रथम सकेत पेट बढने से नही मिलता, जैसे गर्दभी, शूकरी आदि को मिलता है। प्रत्युत, उसे तो तब पता चलता है जब आकाश मे घन–गर्जन सुन उसका उदरस्थ शिशु उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी की ललकार समझ उदर मे ही अमर्ष से उछलने लगता है!—

माँनै बाघण उदर मझ, वाघ अंस कुल वाट।[1]
अमरष लीधाँ ऊछलै, घण हदै घरराट ॥30॥

ऐसे सिह-शिशु यदि जन्म लेते ही मत्त गजयूथो का हनन करने हेतु आकुल होते हो तो क्या आश्चर्य है!

राजस्थानी टीका—कवी वचन-हूँ आ वीर सूया (वीर माता) वा–राणिया री कूख नै बलिहारी जाऊँ और वा राणिया री बलिहारी भ्रूण (गरभ मे) हीज वा बालका मे काइ तरै सिखावण देवै है सो दाई रा हाथ री नालौ काटण री छुी नेर साव (जनमतै) हीज बालक झपटै। प्रयोजन—जुद्ध मे धारण करण [करण] रा सस्त्र, अज्ञान है, पण ले नै धारण करण चावै छै-तथा मनरी निज सौख हीज सस्त्रारी छै ॥३०॥

हूँ बलिहारी राणियाँ, साँचा गरभ सिखाय।
जच्चा हदै तापणै, हरखै धी हग लाय ॥95॥

व्याख्या—मैं उन वीर क्षत्राणियो पर न्योछावर हूँ जो अपनी गर्भस्थ बालिकाओ को ही (सती-धर्म-पालन की) ऐसी सच्ची शिक्षा दे देती हैं कि जन्म लेते ही

---

1. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृष्ठ 16;

कन्या प्रसूता के तापने हेतु रखी गई अ गीठी की ओर टकटकी लगाकर देखती हुई हर्षित होती है ।

भाव यह कि वीर क्षत्राणियो से उत्पन्न कन्याओ मे सती होने की उमग जन्म-जात होती है । ज्वाल-वसन्त मे क्रीडा करने की शिक्षा वे अपनी माँ के पेट से ही सीखकर आती है ।

शब्दार्थ—सांचा 'सिख य = गर्भस्थ बालिका को ऐसी सच्ची और अमिट शिक्षा देती है जो वे कभी भूलती नही ।

जच्चा = प्रसूता । **हुंदै** = (पजाबी) के । **तापणै** = तापने की अ गीठी । **धी** = बेटी (स० दुहितृ) । **द्रग लाय** = टकटकी लगाकर , एकटक ।

राजस्थानी टीका—फेर कवि कहे हूँ आ राणियाँ री वलिहारी ; आ राणियाँ रा गरभनै हीज साची सिखावण देवै सो सियाला मै राजकुमारी रौ जनम हुवौ है, जिण सूं जचा रै तापण ने तपणी लाया हैं—सो धी (राजकुंवरी) री द्रग -आखिया प्रफुलित होय । जचारै तापणैं (सिगडी) माथै पडै—प्रयोजन कँवर जुद्धरा शस्त्र लै ने कँवरी सतकरण री प्रिय वस्तू (चीज) ने देखै—कँवर तो कहै जुद्ध करसू-कँवरी कहै सत करसू ।।इति।।

विशेष—उपर्युक्त दोनो दोहो मे कवि ने क्रमश वीर पुत्र व वीर पुत्री के मनोगत सस्कारो की अतीव सहज एव स्वाभाविक व्यजना की है । वीर पुत्र जन्म से ही युद्ध व शस्त्र-सचालन की इच्छा करता है तो वीर पुत्री सती होने की । दोनो को ही वीरत्व के ये सस्कार अपनी वीर जननी से प्राप्त होते है । इसलिए कवि वीर रानियो पर न्योछावर है, जो ऐसे वीर पुत्रो व पुत्रियो को जन्म देती है ।

घर-घर वैर वसाविया, दिन-दिन लूंबै धाड ।
हेली ! मो धव टेकलो, जडै न धाम किंवाड ।।96।।

प्रसंग—वीर-पत्नी अपने पति के प्रचड पराक्रम एव निर्भीकता की प्रशसा करती हुई कहती है —

व्याख्या—हे सखी ! मेरे शूरवीर स्वामी ने घर-घर से बैर बाँध लिया है जिसके फलस्वरूप आए दिन शत्रुओ के आक्रमण होते रहते है, तो भी मेरे कत ऐसे हठीले है कि घर के किंवाड तक बन्द नही करते । शत्रु जब चाहे शौक से आए !

भाव यह है कि शूरवीर अपने बाहुबल के भरोसे सदा निर्भय और निश्शक रहता है । उसकी निर्भयता का प्रमाण अपने घर के किवाड सदा खुले रखकर सोना है-जो मानो शत्रुओ को आने का एक स्थायी निमन्त्रण है ।

शब्दार्थ—बैर वसाविया = बैर मोल ले लिए । 'बैर विसावणो' राजस्थानी मुहावरा है, जिसका अर्थ है बैर मोल लेना । सूर्यमल्ल से पहले कविराजा बाँकीदास ने इसी भाव को अपने एक दोहे मे यो व्यक्त किया है —

वैर हमेस विसावणा, वाड विना वसणौह ।[1]
वाघाँ रै क्यू कर वणै, आरण आलसणौह ।।18।।

लूँबै धाड = धाडे पडते है, आक्रमण होते है । **धाड लूंबणौ** = आक्रमण होना, 'धाडा' या डाका पडना । **हेली** = हे सखी ! । **धव** = पति । **टेकलो** = हठी, अपनी धुन का पक्का । **जड़ै न** = बद नही करता ।

विशेष—सूर्यमल्ल को वीर की निर्भीकता का चित्रण करने के प्रसग मे उसके किवाड खुले रखकर सोने का वर्णन बहुत ही प्रिय है, जिसका उल्लेख उन्होने वश-भास्कर मे भी किया है । यथा,—

कहियो हसि हाडै कँवर, गिणो न मोनिम गग ।[2]
आज निसा न जडो अरर, रपणो मोनू रग ।।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री वचन—हे हेली ! म्हारै पती घरोघर सू तों वैर बसाग्रा है, दिनोदिन—रोजीना दुसमण आय धाडरी धाड माथै लू बे है, पण म्हारा पतीरी टेक प्रतग्या और निवडक अभिमान देख रात मे सोवै जद नींद वस असावधान होवै तद सत्रुआरौ वार लागै पण आही बात तनक समझ गेह–घर री किमाड ही न जडै–आ सत्रू जाण लैला क म्हासू डरतौ दरवाजौ जडै है तिण कारण किमाड उघाडौ राख मोवै छै ।।९०।।

कन लखीजै दोय कुल, नथी फिरती छाँह ।
मुडिया मिलसी गीदवौ वलै न धणरी बाँह ।।97।।

प्रसंग— वीर पत्नी का अपने पति को प्रबोधन —

व्याख्या—हे कत ! आप अपने दोनो कुलो की लाज का ध्यान रखना–इस क्षणभगुर जीवन का नही, जो एक घिरती-फिरती छाया के समान है । याद रखिए, युद्ध मे पीठ दिखाकर भागने पर आपको सहारे के लिए सिरहाने तकिया ही मिलेगा-आपकी इस प्रिया की बाँह फिर नही मिलने की !

भाव यह है कि यदि आप अपने प्राणो के मोह के वशीभूत होकर अपने दोनो कुलो को लज्जित कर युद्ध से भाग आये तो मेरे साथ दाम्पत्य सुखोपभोग की आशा न करे । कायर पति के सहवास की अपेक्षा मै वैधव्य का जीवन व्यतीत करना अधिक श्रेयस्कर समझती हूँ ।

शब्दार्थ - **लखीजै** = देखना चाहिए, देखिए । **दोय कुल** = मातृकुल व पितृ कुल अथवा पतिकुल व पत्नीकुल । **नथी** = नही । फिरती छाँह - फिरती घिरती छाया अर्थात् क्षणभगुर जीवन । डा० सहलजी आदि सम्पादको ने इसका एक अर्थ

---

1 बाँकीदास ग्रथावली, पहला भाग, पृष्ठ 23
2 वशभास्कर, चतुर्थराशि, पचत्रिशमयूख, पृ० 1614

मे अमर कर दिया है। महाकवि केसोदास गाडण ने अकेले स्वामिधर्म को चार प्रकार के दानो के समकक्ष बताया है—

आतमा अभै-दान, किन्या-दान, द्योत मेदनी विद्या ।[1]
चत्वारि दान धरम, त तुल्य साम धरमय ।।

ऐसे स्वामिभक्त सेवको के लिए डिंगल-कवियो ने श्रद्धा-मुग्ध भाव से 'लूण उजालौ' उपाधि का प्रयोग करने मे आनन्दानुभव किया है। यथा—

उण मौसर पह लूण उजालौ ।[2]
पूछै स्याम ध्रमी विजयाळौ ।।

राजस्थानी टीका—कवी कहै हू आ राणिया री वलिहारी जाऊँ जिका राजपूता रा छतीस ही वस जाया है, जिके छतीस ही वशारा वीर किसाक है कि आपरा धणी रौ चून (आटौ) तौ सलूणौ एक सेर लै हे नै उण आटारा मोल मै आपरो सीस देवै है ।।१००।।

रुण्ड हुवा जीवै जिके, सदा न हेरै साथ ।
सीहाँ रै गल साकळै, वे भड़ घालै हाथ ।।101।।

व्याख्या—जो सदा इस तरह जीते है जैसे उनके सिर है ही नही (हर क्षण सिर हथेली पर लिए घूमते है, चाहे जब कट मरे) तथा कभी किसी का साथ नही खोजते (अपने ही बाहुबल पर भरोसा करते है)। ऐसे ही समर्थ शूरवीर अपने हाथो से सिंहो के गले मे साकल डाल सकते है।

जीवित सिंह के गले मे साँकल डालना खेल नही है। यह वही कर सकता है जिसे अपने प्राणो का रच मात्र भी मोह न हो तथा जो अपने बाहुवल पर भरोसा करता हो—सहायतार्थ किसी दूसरे का मुखापेक्षी न हो। भावार्थ मे, ऐसा समर्थ शूरवीर ही सिंह के सपान दुर्दम्य एव पराक्रमी सुभटो को पराभूत कर सकता है—अन्य नही।

अन्यार्थ—दोहे के प्रथम चरण का एक अभिधामूलक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है कि 'जो सिर कटने पर भी जीते रहते है, कबध रूप मे लडते हैं, परन्तु इस अर्थ की आगे वाले चरण—'सदा न हेरै साथ' के साथ सगति नही बैठती, क्योकि सिर कट जाने के बाद भी किसी का साथ खोजने का क्या अर्थ होगा ? अत हमे इसका लक्ष्यार्थ ही सगत व उद्दिष्ट प्रतीत होता है, जिसमे यह ध्वनि है कि सच्चा शूरवीर यह मानकर चलता है कि उसके सिर है ही नही। ऐसा हर क्षण मरणोद्यत

1, गजगुणरूपकबध, पृ० 177; स श्री सीतारामजी लालस ।

2. सूरजप्रकास, भाग २, पृ० 318, वही ।

एव जान हथेली पर रखकर घूमने वाला शूरवीर ही सिह के गले मे साँकल डालने की हिम्मत कर सकता है—दूसरा नही ।

विशेष—शूरवीर किसी का साथ नही खोजता, वह सदा अपने ही भरोसे रहता है । इस आशय का कविराजा बाँकीदास का दोहा है —

सूर भरोसै आपरै, आप भरोसै सीह ।[1]

शब्दार्थ—रुण्ड = सिर रहित शरीर, कबध, भावार्थ मे सिर की चिन्ता न कर जीने वाले । **जिकै** = जो । **सदा न** = कभी भी । यथा—'अतर अ ग न लावही सदा न कर ले केस ।'[2] राजस्थानी मे सदा न, 'कभी भी' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है । यह मात्र 'वैरण सगाई' के निर्वाह के लिए किया गया प्रयोग नही है, जैसा कि श्री डॉ कन्हैयालालजी सहल आदि सपादको ने समझा है (देखिए 'वीर सतसई' की भूमिका, पृष्ठ 96) । 'सदा न' का 'कदे न' के अर्थ मे प्रयोग का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है । **हेरै** = देखते या अपेक्षा करते है । **गल्** = गले मे । **सांकल्** = साँकल, (स शृङ्खला) । **घालै** = डालते है । **हाथ** = हाथो से ।

राजस्थानी टीका—कवी कहै–जिके वीर छत्री सदीव रूंड (कबध) विना माथा रा जिऊँ तौ जीवता फिरै (माथौ हे परा जाँरौ माहरै है ही नई) इरा तरै और सदीव सत्रु रै ऊपरै जाता किणरा ही साथ रो भरोसौ नही राखै–वा साथ री वाट न जोवै–आपरा भुजाआ रै भरोसै रहै-नै जोधार, सिघ रै गला मै सॉकलौ है, तौ कहै-म्हे काढ लेसा—वा सिंघ रै गला रा साकला नै हाथ नाखे जिसा वे वीर होवै ।।इ०।।

टिप्पणी—टीकाकार का 'सिह के गले मे से साकल निकाल लेने' का अर्थ हमे सगत नही लगता । तद्विपरीत, यहाँ गले मे साकल 'डालने' से आशय है, निकालने से नही । 'घालै' का अर्थ 'डालना' होता है, 'निकालना' नही । यथा—

कुरा सुरतरु थी ऊठिनइजी बावल **घालइ** बाथ ।[3]

भाभी देवर एकलौ, सोचीजै न लगार ।
मूझ भरोसौ नाहरौ, फौजाँ डोहणहार ।।102।।

व्याख्या—भाभी ! आपका देवर (युद्ध मे) अकेला है–यह सोचकर तनिक भी चिन्ता न करे । मुझे अपने कत का पूरा भरोसा है कि वह अकेला ही शत्रु-सेनाओ का विलोडन करने वाला है ।

शब्दार्थ—**सौचीजै न** = चिन्ता न करे । **लगार** = लेश मात्र, तनिक भी । **डोहणहार** = मथन या विलोडन करने वाला, तहस-नहस करने वाला ।

---

1 बाँकीदास ग्र थावली, भाग 1 पृ०5

2 कु वरसी साखला री वात, स डा मनोहर शर्मा, मरुवाणी, जून–अगस्त, 71 अ क, पृ० 32, स श्री रावत सारस्वत ।

3. जिनराजसूरि कृति–कुसुमाजंलि, पृ 9, स श्री अगरचद नाहटा ।

उपचार किया जाता था, जिससे वे प्रायः ठीक होजाते थे। फलतः नीम को यदि कवि ने (प्रकारान्तर से वीरागना ने) सुहाग का दाता कहा हो तो इसमे कोई अत्युक्ति नही है। डिगल कवियो ने नीम के इस असाधारण गुण पर रीझ कर उसकी प्रशसा मे स्वतन्त्र गीत तक रचे है। यथा, नीम की प्रशसा मे रचित एक डिगल-गीत का कुछ अ श देखिये—

वाइयै तिकौ घायला बेली,[1]
थित नित कर राखीजै थेली।
सूदौ सोरौ काज सहेली,
हालौ नीब सीचबा हेली ॥

× × × × ×

बाटे तन घावा बाधीजै,
जीवै पीव आप जीवीजै
काली अगर चनरण की कीजै,
सखी अम्हीरणौ नीव सिंचीजै ॥

युद्ध-वर्णन के प्रसग मे घावो पर नीम की पुल्टिश ('लापरी') लगाने का वर्णन 'विन्हैरासो' मे भी हुआ है—

किता घाव सेकीजै, किता घाव बाधीजै।[2]
बलै नीब वाधि, किता लापरिया लगीजै ॥

आदर्श वीर समाज का चित्रण करने के सन्दर्भ मे कवि वीरो के अनन्य उपकारक नीम का उल्लेख करना भी भूला नही है, जो उसकी गुणग्राहकता का ही परिचायक है।

राजस्थानी टीका—हे हेली! म्हारै पती रै सरीर मे तिल तिल माथै घाव लागा है। कोई सरीर घावा विना नही सो कोई कहै जीविया की करतौ? हूँ कहूँ-हूँ तौ नीवडा री वलीहारी जाऊँ सो इण नीव म्हने पाछौ सुहाग दीयौ छे-घाव ऊपरै नीबरौ पाटौ फायदौ करै छै।

इति श्री महाकवि मिश्रण चरण सूर्यमल्ल विरचित वीर सप्तसती प्रथम शतक टीका वारट किशोरदान कृत ॥अथ॥

हूँ बलिहारी राणियाँ, जाया वस छतीस।
चून सलूणौ सेर लै, मोल समप्पै सीस ॥100॥

---

1 गीत नीम री प्रससा रौ, डिगल–गीत, पृ० 77, स. श्री रावत सारस्वत; व कुँवर चण्डीदान साँदू।

2 विन्हैरासौ, पृ० 102, स. श्री सौभाग्यसिह शेखावत।

व्याख्या--मैं उन रानियो (वीर क्षत्राणियो) पर न्योछावर हूं, जिन्होंने क्षत्रियो के प्रसिद्ध छत्तीस वशो को जन्म दिया है, जिनमे उत्पन्न वीर अपने स्वामी से (जीवन-निर्वाह हेतु) मात्र सेर भर आटा ले, उसका नमक खाने के मोल मे अपना मस्तक अर्पित कर देते है।

अर्थात् वे क्षत्राणिया निश्चय ही धन्य है, जिनकी कोख से ऐसे स्वामिभक्त शूरवीर जन्म लेते हे, जो केवल मुट्ठी भर नून मे स्वामी का नमक खाने के बदले उसके लिए अपना सिर कटवा देते है।

शब्दार्थ—जाया = उत्पन्न किया, जन्म दया। **वस छतीस** = क्षत्रियो के प्रसिद्ध छत्तीस वश। क्षत्रियो के इन छत्तीस वशो के विषय मे पर्याप्त मतभेद है। अत निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि वे कौन-कौन से है। इस अनैश्चित्य के फलस्वरूप राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार कविराजा श्यामलदास ने इन्हे गिनाने के झमेले मे न पडना ही ठीक समझा। वे लिखते हे—"अलग-अलग जातिया काइम होने के दर्मियानी समय मे क्षत्रियो के कुल 36 वश नियत हुए, जिनमे 16 सूर्यवशी, 16 चन्द्रवशी, और 4 अग्निवशी थे। इन छत्तीस वशो मे से बहुत से तो नष्ट हो गए और कई वशो की प्रतिशाखाओ को लोगो ने जुदा वश समझ लिया। इस गडबड से छत्तीस वशो की गणना का क्रम भग होगया। कुमारपालचरित्र काव्य मे 36 वश की गणना लिखी हे, परन्तु उसम भी कई शाखाओ को जुदा वश मान लिया है। कर्नल टाड ने जो कइ ग्रन्थो मे चुन-चुन कर फिहरिस्ते वनवाई और उसके बाद अपने ख्याल के मुवाफिक एक नई लिस्ट यानी फिहरिस्त तय्यार की उसमे भी हमारे विचार मे गडवड है। इसलिए हमने ऐसे सन्देह मे पडना ठीक न जानकर उक्त 36 वशो का क्रम ढूढना छोड दिया।"[1]

सलूणो = नमक सहित। अर्थात् मात्र सेर भर नून मे स्वामी का नमक खाने का मूल्य वे अपना मस्तक देकर चुकाते है। **समप्पै** = समर्पित कर देते है।

विशेष—जैसा कि कह आए है, स्वामिभक्ति को राजस्थान मे वीरत्व के सर्वोपरि जीवनमूल्य के रूप मे स्वीकार किया गया है। अपने आश्रयदाता स्वामी के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देना ही वीरत्व का उत्कृष्टतम आदर्श रहा है। राजस्थानी वीरो के त्याग और उत्सर्ग की गौरवमयी परम्पराओ के मूल मे स्वामिभक्ति के निर्वाह की प्रेरणा ही प्रमुख रही है। राजस्थान का अधिकाश वीरतापरक साहित्य प्रकारान्तर से स्वामिभक्ति के एक से एक ऊँचे कीर्तिमानो का ही समुज्ज्वल आख्यान है। डिगल कवियो ने 'लूण उजालणे' वाले ऐसे स्वामिभक्त शूरवीरो को अपने गीतो

1. वीर विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ 186, कविराजा श्यामलदास।

'फिरते हुए अपनी छाया को देखने से तात्पर्य युद्ध से भागते समय पीछे देखने से है'— किया है, जो सभाव्य है, परन्तु इस अर्थ के मानने मे आपत्ति यह है कि छाया के आगे या पीछे पडने का सम्बन्ध तो सूर्य की स्थिति से है। कायर के भागते समय यदि सूर्य उसके पीछे हुआ तो उसकी छाया पीछे कैसे पडेगी ? उस स्थिति मे उक्त सम्पादको का अर्थ घटित नही होगा। अत हम इसे क्षणभगुर जीवन के लिए प्रयुक्त एक लाक्षणिक प्रयोग मानकर अर्थ करना अधिक समीचीन समझते है, जो राजस्थान मे बोलचाल मे भी अतिशय प्रचलित है। भक्त-कवि ओपा आढा ने मनुष्य-शरीर की नश्वरता का चित्रण करने के प्रसग मे ठीक यही उपमा दी है —

काचो कु भ मिनख-ची काया, [1]
फिरता घिरता फूटै ।।

मुडियां = युद्ध से पलायन करने पर या पीठ दिखाने पर ।

उदाहरण—मुडिया तूझ तणौ मेडतिया, [2]
दुवियण नहँ कहाडँ जगदीस ।

गीदवौ — छोटा तकिया । **वळे** = फिर, पुन ।

राजस्थानी टीका--वीर पतनी वचन —

हे पती ! आप तौ आपरा माता पिता रा दोनू कुल देखजौ पण घिरती छाया मत देखजो । इण रौ दोय सिरदार भाई, एकण रो बल घणौ एका रौ थोडौ । औ थोडा वलवाला रै सामल सो इण मे भागणौ तथा छलकर घणा वलवाला सू मिल जाणौ—इणमे फायदौ पण स्यामधरम और वीर पणौ नही तिण सू इण वीर पतनी (वीर स्त्री) रा वचन है कै वलती छाया देख भाग गया तौ रात रा सोवता सिराणै गीदवौ (तकियौ) रहसी पण धण-स्त्री कहै म्हारी बांहरौ सिराणौ नही हुसी, अर्थात् भागगा तौ आपसू घरवास राखू ला नही ।।इ०।।

हेली की अचरज कहूँ, कत परा बलिहार ।
घर मे देखूँ दोय कर, रण मे होय हजार ।। 98 ।।

व्याख्या—हे सखी ! कत के अद्भुत पराक्रम को देखकर ऐसा आश्चर्य होता है कि क्या कहूँ ! मै तो अपने स्वामी के शौर्य पर बलिहारी हूँ । देख तो सही, घर मे जहाँ उनके केवल दो ही हाथ देखती हूँ, वहाँ रण मे वे ही हजार होजाते हैं । [अर्थात् रणभूमि मे असख्य शत्रुओ को तलवार के घाट उतारते हुए मेरे शूरवीर स्वामी ऐसे प्रतीत होते है, मानो उनके दो नही, सहस्र हाथ है, जिनसे वे अपार शत्रु सैन्य को

---

1 ओपा आढा रौ गीत. राजस्थानी, भाग 2, पृ० 66 स० श्री नरोत्तमदास स्वामी ।
2 गीत गोपालसिह मेडतिया, जावला रौ · प्रा. रा गी.,भाग 1, पृ० 61

क्षणान्तर मे ही नि शेष कर देते हे। भाव यह है कि उनके दो हाथ सहस्रगुना पराक्रम दिखाते है !]

शब्दार्थ—हेली = हे सखी !। **परा** = ऊपर।

विशेष--दोहे के चतुर्थ चरण मे 'होय हजार' की जगह डा सहलजी आदि सम्पादको द्वारा सम्पादित सस्करण मे 'दोय हजार' पाठ है, जो 'दोय कर' के अनुसरण पर यद्यपि अधिक सगत प्रतीत होता है, तथापि टीका मे 'होय हजार' पाठ होने से हमने टीका के पाठ को ही स्वीकार किया है। इसका एक कारण यह भी हे कि डिगल काव्यो मे प्रचण्ड वीर के लिए 'द्विबाहु' 'चत्रबाहु' जैसे शब्दो के प्रयोग की परपरा रही है, जैसे —

दुबाहु—अखाडा जीत धाडा रामदूत ।[1]

तथा —

जसा चतरबा—गजगाह रचि तू जुड, विहू पतसाह सू नेत-बाधै ।[2]

अत उसी परपरा मे कदाचित् 'सहस्रबाहु' जसा प्रयोग कवि का उद्दिष्ट रहा हो।

मिलाइए—'केलपुरा वाला सिर कारण,[3]
कीनां संभू हजार कर।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री कहे—हे हेली ! पतीरा प्र(ा)क्रम री इचरज जैडी बात है, थनै काही कहूँ ? हूँ तौ औ पौरस देख बलिहारी जाऊ हू ! घर मे तौ काम करता देखू दोय हाथ है पण रिण मे सत्रुआ ऊपरै वहता तरवार सहत तो दीसै हे पूरा एक हजार हे ॥६०॥

हेली तिल–तिल कत रै, अग विलग्गा खाग ।
हूँ बलिहारी नीबडै, दीधौ फेर सुहाग ॥ 99 ॥

प्रसंग—नीम के प्रति वीराङ्गना की प्रशमोक्तिः—

व्याख्या—हे सखी ! कत के शरीर पर तिल-तिल भर जगह पर तलवारो के घाव लगे थे (शरीर छलनी होगया था), परन्तु इस नीम पर बलिहारी हूँ, जिसने मेरा खोया सुहाग फिर से दे दिया।

शब्दार्थ— विलग्गा = लगे (स विलग्न)। **खाग** = तलवार। **नीबडै** = नीम पर। **दीधौ** = दिया। **फेर** = फिर से, पुन ।

विशेष—नीम मे कीटाणु नष्ट करने व घाव भरने का विलक्षण गुण है। नीम के पत्तो को गरम पानी मे उबाल कर उससे घाव धोने तथा उन्हे पीस कर घाव पर पट्टी बाँधने से घातक से घातक घाव भी ठीक हो जाते है। प्राचीन काल मे युद्ध मे घायल सैनिको के घावो पर नीम के पत्तो की पुल्टिश बाँधकर ही उनका

1. रघुवरजसप्रकास, पृ० 320 स श्री सीतारामजी लालस।
2 गीत महाराजा जसवतसिह रौ।
3 गीत जग्गा चूडावत रौ, प्रा रा. गी, भाग 1, पृ. 24,

विशेष—वीर सतसई के प्रकाशित सस्करणों मे 'ढाहणहार' पाठ है, किन्तु टीका मे 'डोहणहार' है । हमने टीका के पाठ को ही ग्रहण किया है, क्योकि फौजो को 'डोहने' की उपमा कवि ने वीर सतसई मे अन्यत्र भी दी है ।

यथा—सागर मदर सारखो **डोहै** अनड अनेक ।।53।।

अत हमने टीका के पाठ को ही स्वीकार किया है । 'ढाहणहार' पाठ मानने पर अर्थ होगा – 'फौजो को ढाहने या गिरा देने वाला ।'

राजस्थानी टीका— देराणी कहे—बाभीसा ! आपरै देवर झगडा मे है। वारा एकला पणा रौ आप लिगार (थोडौ) ही सौच करासी नही—म्हने भरोसौ है म्हारै पतीरौ, एकलौ ही फौजाँ रौ डोहण हारो छै ।।३०।।

सीस कलगी सेहरौ, केसर बोल दुकूल ।
कीजै मूझ चलावणौ, मरियौ नावै मूल ।।103।।

प्रसंग—युद्ध मे केसरिया बाना धारण कर मरने-मारने के सकल्प से गए हुए अपने प्रियतम का वीरगति प्राप्त करना निश्चित समझ वीराङ्गना सती होने के लिए उद्यत हुई कहती है —

व्याख्या—मेरे वीर कत दूल्हे की पोशाक मे सिर पर कलगी और सेहरा धारण कर तथा केसरिया रग के वस्त्र पहनकर (मरने—मारने के सकल्प से) रण मे गए है । निश्चित है कि वे वीरगति को प्राप्त हुए है और अब कदापि नही आएगे ! अत अब मेरे सती होने हेतु प्रस्थान की तैयारी करो ।

शब्दार्थ—कलगी = पगडी मे ऊपर की ओर लगाने का एक आभूषण, जिसे दूल्हा बनते समय अब भी लगाया जाता है । **सेहरौ** = एक अलकरण जो पगडी पर इस तरह लगाया जाता है कि उसकी सुनहरी झालर मुखपार्श्व पर लटकती हुई एक विशेष शोभा के साथ उसे अर्द्ध-आवृत-सी किये रहती है । दूल्हा (बींद बनते समय इसे अनिवार्यत धारण किया जाता है । **बोल** = रग, उदाहरण—'आपरा अजेय बीरा रो इसडो अभीष्ट जाणि कुकुम रो कुण्ड घुलाइ हाडा रो अधीस हालू बासठि वर्ष रा वय मे पहली आपरा वस्त्राँ रै बोल दिवाइ उर्बसी रो बीद बणियो ।'[1] **दुकूल** = वस्त्र । **चलावणौ** = प्रस्थान; शव को दाह-सस्कार हेतु श्मशान-भूमि तक ले जाना । **मरियौ** = मारा गया, वीरगति को प्राप्त हुआ । **नावै** = न + आवे, नही आयेंगे । मध्यकालीन राजस्थानी मे शब्दो के इस प्रकार एकीकरण की यह प्रवृत्ति प्राय देखने मे आती है । यथा'—

1. वशभास्कर, पचम राशि, एकादशमयूख, पृ० '811

कुं वरजां, ग्रो तो नालेर कही रै दाय नावै ।[2]

मूल् = कदापि, निश्चय ही ।

विशेष—जैसा कि कह ग्राए है, डिगल काव्यो मे वीर की उपमा वर से तथा मेना की वधू से देकर ग्रनेक सुन्दर रूपक बाँधे गए है । ग्रछूती सेना से लडने वाले शूरवीर को 'कवारी घडा री लाडो' जैसी प्रशस्तिमूलक शब्दावली से ग्रभिनदित किया गया हे । वीर का दूल्हे की पोशाक मे सज्जित होकर रणाङ्गण मे जाना जहाँ एक ग्रोर उसके ग्रातरिक मनोल्लास का ज्ञापन करना था वहाँ दूसरी ग्रोर वह उसके मरने-मारने के ग्रटल सकल्प का भी सूचक था । वह एक प्रकार से स्वर्ग मे ग्रप्सरा-वरण हेतु वर का ग्रन्तिम ग्रौर सदा-सर्वदा के लिए किया गया गृह–प्रस्थान था, यही कारण हे कि मरण के मोद मे जीवन का मोह उसे तुच्छ प्रतीत होता था । धन्य था वह महत् विश्वास जिसने बलात् ग्रपहरण एव भोग के उस बर्बर व पाशविकतापूर्ण युग मे सतियो के सतीत्व एव वीरो के ग्रात्मसम्मान की रक्षा की !

राजस्थानी टीका—सूरवीर वचन--झगडा माथै वहीर होवता वनडौ बणियौ (ग्रागै राजपूत कोई फौज माथै मरणीक ह्वै जाता तद वीद वणता । ग्रागै ग्रपछरा परणीजसा तरै मोड ने वै कपडा उठै नही सो ग्रठा सू पहरने फौज उपरै जावता सो) सो माथा पर किलगी ग्रने सेवरौ केशर मे रगिया दकूल–कपडा–वागौ केसर मे रग दौ-ग्रापरा सिरदार ने कहे ग्रौ म्हारौ चलावणौ करदौ सो पछै मरिया ही पाछा नही ग्रावैला ग्रर्थात् मो साथे रहसी ।।इ०।।

कुसुम मौड, केसर बसण, नेह न देह लसाय ।
भाभी कत सकैक तो, ल्होडी सोक वसाय ।।104।।

व्याख्या—भाभी ! मेरे कत ने सिर पर फूलो का सेहरा बाँधा है; केसरिया वस्त्र धारण किए है तथा ग्रपनी देह के प्रति उनमे ग्रब किंचित् भी ममता दिखाई नही दे रही है । इन सब लक्षणो से प्रतीत होता है कि शायद उन्होने 'छोटी सौत' घर मे बसाने (स्वर्ग मे ग्रप्सरा-वरण करने) का इरादा कर लिया है ।

[ग्रर्थात् वीरवेश मे सज्जित मेरे प्रियतम के ये रग-ढग देखते हुए ऐसा लगता हे कि ग्राज य युद्ध मे मरण-सकल्प किए जा रहे है, जिसके फलस्वरूप वीर गति प्राप्त करने पर ये स्वर्ग मे निश्चय ही छोटी सौत (ग्रप्सरा) घर मे बसायेगे । ग्रत मुझे भी सहगमन की तैयारी करने दे, ताकि मेरे वरणोत्सुक कत ग्रप्सरा का ग्राँचल पकडे, उसके पहले ही मै वहाँ पहुँच जाऊँ] ।

---

1 मरुवाणी, कुँवर सी साखलो, स डॉ. मनोहर शर्मा, जून-ग्रगस्त 71 ग्र क, पृष्ठ 16, स श्री रावत सारस्वत ।

शब्दार्थ—मौड = सेहरा, (स मुकुटन्>प्रा० मउड>रा. मौड) । श्री डॉ सहलजी आदि सम्पादको ने इसे सस्कृत 'मौर' से व्युत्पन्न माना है, परन्तु इसका मूल रूप स 'मुकुटम्' है, जैसा कि उक्ति-रत्नाकार[1] व प्राकृत भाषाओ का रूपदर्शन[2] से प्रकट है। **नेह न** .... "**लसाय** = अपनी देह के प्रति तनिक भी मोह या ममता दिखाई नही देती । इसीलिए शूरवीरो को 'जोगीन्द्र' कह कर उपमित किया गया है । यथा —जडे सीलहा जोध जोगिंद्र हूआ ।[3] **सकैक तो** = सभवत , शायद , उदाहरण —"तद लालमण वीचारी जो **सकैक तो** केरडा अणी बावडी माहै पाणी पीवानै पैठा सो अठै अणी माहै अलोप हुवा है ।"[4] **ल्होडी सोक** = छोटी सौत अर्थात् अप्सरा । **वसाय** = बसाए गे, वरण करेगे ।

राजस्थानी टीका—देराणी वचन—आज भगडा ऊपरै जावता भेस करियो छै-कुसुम = फूलाँ रौ मौड अनै वमण = कपडा रगिया है केशर मैं । नेह न न देह = सदैव जो नेह म्हासू राखता हा सो भी आज न, अर्थात् म्हारा सू ही सनेह छोडियोडा होवै ज्यू सोह रहिया छै । इण वासतै म्हनै तौ तुलै है की वाभीजी साहव ! म्हारै पती लौडी मोक वसावैला, अर्थात् जुद्ध मे मारीज अपछरा वरसी । हूँ सत करने जासू जितरै लौडी सौक धकै मिलसी ।।इ०।।

देराणी कुल ऊपजी, दोही पख विण दाग ।
की मुख ल्होडी सौक रौ, थारौ लियण सुहाग ।।105।।

प्रसंग—देवरानी की बात सुनकर जेठानी प्रत्युत्तर मे कहती है —

व्याख्या—हे देवरानी ! तुम उच्च कुल मे उत्पन्न हुई हो तथा तुम्हारे मातृ और पितृपक्ष दोनो ही उज्ज्वल है । फिर भला छोटी सौत (अप्सरा) का क्या मुँह है जो तुम्हारा सुहाग ले ले ? अर्थात् अप्सरा स्वर्गमे देवर का वरण करेगी, उससे पहले ही तुम सती होकर वहाँ जा पहुँचोगी तथा पति का शाश्वत सौभाग्य प्राप्त करोगी ।

शब्दार्थ—कुल = सुकुल मे । **पख** = पक्ष । **विण दाग** = वेदाग, निष्कलक, उज्ज्वल । **की मुख** = क्या मजाल है ।

---

1. उक्ति–रत्नाकर साधु सुन्दरगणी-विरचित, पृष्ठ 9
2. प्राकृत भापाओ का रूपदर्शन, पृष्ठ 89, ले० आचार्य नरेन्द्रनाथ ।
3. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 197,
4. लालमण कुवर री वात; राजस्थानी वाताँ, भा ग 4, पृष्ठ 75,
   —स. श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

राजस्थानी टीका—जेठाणी कहै—है देराँणी ! तू उण कुल मे उपजी है जठे थारै माता पिता रा दोनू ही पख विना दागरा अर्थात् निकल क है, सो काई मू डौ सो वेश्या ही थारौ सुहाग खोस लेवै ।।इ०।।

भागौ कत लुकाय धण, ले खग आताँ धाड ।
पहर धणी चा पू गरण, जीती खोल किवाड ।।106।।

व्याख्या—आक्रमणकारी शत्रुओ के आने पर वीराङ्गना ने युद्ध से भागे हुए अपने कायर पति को छिपाकर, हाथ मे तलवार ले, अपने पति के वस्त्र पहन, घर के किवाड खोल उन पर विजय पाई ।

अन्यार्थ—दोहे की प्रथम पक्ति का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है-तलवारो से लैस धाडवियो (आक्रामक लुटेरो, शत्रुओ) को आते देख कायर पति अपनी पत्नी को-'मुझे कही छिपाले' ('लुकाय') कहता हुआ भाग खडा हुआ । उधर उस वीर पत्नी ने पति के वस्त्र पहन (मर्दाना वेश धारण कर) अपने घर के किंवाड खोल, शत्रुओ को मौत के घाट उतार उन पर विजय पाई ।

वीरागना द्वारा अपने पति के वस्त्र धारण करने मे यह ध्वनि भी निहित है कि उस कायर पति ने छिपने हेतु कदाचित् अपनी पत्नी की उतारी हुई पोशाक स्वय पहन ली थी !

शब्दार्थ—**भागौ** = 1 भागा हुआ, कायर 2 भाग खडा हुआ । **लुकाय** = 1. छिपाकर 2 'छिपाले'-ऐसा कहता हुआ । **धाड़** = (स. धाटी) धाडवी, आक्रामक लुटेरे, शत्रु । **चा** = के (मराठी) **पूंगरण** = वस्त्र । यथा—

पुंगरण जान सेन है साखति,[1]
अणवर गोयद किसन अगाह ।

'उक्ति-रत्नाकर' मे इसकी व्युत्पत्ति 'प्रावरणम्' से मानी है ।[2]
किवाड = (स कपाटम्) ।

राजस्थानी टीका—कवी वचन--किण ही वीर स्त्री रौ पती जुद्ध मैं हार अनै मरण सू डरतौ तरवार री ताप सू घर मे आय वडियौ तठै वीर स्त्री आपरा कपडा उतार पती ने पहराय घर मे आघौ धुसाय आप पती रा पूगरण--कपडा पहर तरवार सभाय घर रौ किमाड खोल सत्रुआ नै मार तडल कर झगडौ जीत गई ।।इ०।।

पला काकड़ पीव घर, बीच बुहारै खेत ।
पण पग पाछा देण रौ, हुलसै अच्छर हेत ।।107।।

---

1 राठौड रतनसिंघ री वेलि, पृष्ठ 52; स० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
2 उक्ति–रत्नाकर, पृष्ठ 32

व्याख्या–शत्रु सीमा पर है और प्रियतम घर पर। आगे वढती हुई उस शत्रु-सेना का प्रियतम बीच मे ही रणागण मे सफाया करते जारहे है। उनके, युद्ध मे पैर पीछे न हटाने का प्रण है, जिसके फलस्वरूप वे प्राणो की परवाह न कर अप्सरा–वरण हेतु उल्लसित होरहे है (युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर अप्सरा–वरण करन की उमग मे अकेले ही असख्य शत्रुओ से जूझ रहे है)।

अन्यार्थ—राजस्थानी टीका मे 'पैला काकड' पाठ है, जिसके अनुसार दोहै का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है–शत्रु की सीमा मे प्रियतम का घर है। फलतः अपने और शत्रु के घर के वीच मैदान (रणक्षेत्र) को वे प्राय. नित्य ही साफ करते रहते है, आये दिन युद्ध ठनता रहता है जिसमे वे रणक्षेत्र मे नित्य शत्रुओ का सफाया करते रहते है। [यद्यपि शत्रु सीमा मे रहने से शत्रुओ का प्रावल्य रहता है तथापि] उनके युद्ध मे पैर पीछे न हटाने का प्रण है, अत प्राणो की परवाह न कर वे सदा अप्सरा-वरण करने की उमग मे भरे शत्रुओ से जूझते रहते है [परतु शत्रु-सीमा मे रहना छोडते नही है।]

द्वितीयार्थ मे, शत्रु की सीमा मे रहते हुए भी उससे निर्भय होकर लोहा लेते रहने वाले वीर के शौर्य की व्यजना की गई है। अपने घर मे तो सभी निर्भीक होकर रहते है, परन्तु यह वीर तो शत्रु की सीमा मे रहता हुआ ही मैदान मे लडने हेतु डटा रहता है तथा सदा अप्सरा–वरण करने की उमग मे भरा रहता है। ऐसे निर्भीक वीर को भला शत्रु-भय क्या होगा ?

शब्दार्थ—**पैला** = शत्रु; [पैला (पाठा०) = शत्रुओ के]। **काकड़** = सीमा। **बुहारै खेत** = रणक्षेत्र मे शत्रुओ का सहार करना या खुले मैदान मे युद्ध की तैयारी करना अथवा लडना। 'खेत बुहारणौ' डिगल-काव्यो मे युद्ध–सदर्भ मे उपर्युक्त दोनो ही अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। शत्रु-सहार के अर्थ मे इसके निम्नलिखित प्रयोग द्रष्टव्य हैं- --

1. नीमजे वाणामा आयो अजारो विहूतो नाग[1]
   सार **बोहरतो खेत** भारथ रौ सीह।

2 **खेत बुहारै** नेत बध, धर तखत तणीहर।[2]

इसी भाँति निम्नाकित उदाहरणो मे 'खेत बुहारने' से तात्पर्य कदाचित् खुले मैदान मे लडने की तैयारी करने या लडने हेतु आ डटने से ही है.—1. 'या करता फोजा

---

1 गीत राजा उम्मेदसिंह सिसोदिया रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 1, पृष्ठ 117,
2 दयालदास री ख्यात, पृ० 184, स श्री डॉ० दशरथ शर्मा।

आय निजीक लागी । वीच **खेत बुहाराणों** । खभो रोपियो । रावजी री फोज लडाई नू खरी आगमनी, दीवाण री फोज पाछमनी ।[1]

2 'ताहरा पाबूजी **खेत बुहारनै** लडाई कीवी ।[2]

3 दूजै दिन प्रीथीराज चहुवाण नै नाहडराव **मैदान बुहार** लडीया ।[3]

4 पछै हरमाडा नजीक बेऊ तरफा सु बेऊ फौजा आई । तठै हरमाडै **खेत बुहारीयौ**।[4]

पण = प्रण । **देण रौ** = देने का । **अच्छर** = अप्सरा ।

विशेष--मध्ययुगीन क्षत्रिय वीर यह विश्वास करते थे कि युद्ध मे वीरतापूर्वक लडते हुए प्राणत्याग करने से स्वर्ग मे अप्सराएँ उनका वरण करती है। इस विश्वास से प्रेरित होकर वे हर क्षण अपने प्राण न्योछावर करने हेतु आकुल रहते थे। कर्नल जेम्स टॉड ने सलूबर के एक ऐसे ही युवा क्षत्रिय वीर का उल्लेख किया है, जिसमे यह पूछा जाने पर कि क्या वह मरणोत्तर सचमुच अप्सराओ द्वारा वरण किए जाने मे विश्वास करता है, उसने तुरन्त मूँछो पर हाथ रखते हुए कहा-'इसमे अविश्वास करने का साहस ही कौन कर सकता है ?' मध्ययुगीन डिंगल-काव्य के अध्येता को इन वीरोचित विश्वासो को श्रद्धा व आदर के साथ देखना चाहिए अन्यथा वे कवि के इन वीरतापूर्ण उद्‌गारो के साथ न्याय नही कर सकेगे। यही कारण है कि जब महाराजा जसवतसिंह उज्जैन-युद्ध से पलायन कर आए तो डिंगल कवियो ने उनको बख्शा नही एव उनकी भर्त्सना करते हुए लिखा कि जो अप्सराएँ उनका वरण करने की आशा से आई थी, वे निश्वास डालती चली गई '--

किया काचा समर 'सूर' हर कलोधर, डरत गत न पीधौ फूल दारू ।[5]
वडा री भौलवी हूर आवी वरण, मेलनी गई नीसास मारू ॥

राजस्थानी टीका--वीर स्त्री वचन--पैला रा कॉकड रै माहै-

हे सखी ! म्हारै पती रौ घर अने झगडा रौ खेत बीच मे बुहारीजै है-सो पती रै पण है पग पाछौ नही देण रौ ने झगडा मे अठा सू पाछौ जाणौ पडसी सो जावतौ नही पण अपछरा वरण वासतै आगै हुलसै है ॥इ०॥

टिप्पणी—राजस्थानी टीका मे 'खेत' को कदाचित् अपने प्रचलित अभिधार्थ (जिसमे खेती होती है वह भूक्षेत्र) मे ग्रहण किया गया है, जैसा कि टीकाकार की

---

1 नैणसी री ख्यात, भाग 3, पृष्ठ 10, स० श्री बदरीप्रसाद साकरिया ।
2 वही, पृष्ठ 78
3 मारवाड रा परगना री विगत, पृष्ठ 2-3, स० डा. नारायणसिंह भाटी ।
4. राव मालदे री वात, ऐतिहासिक बाता, पृष्ठ 67, स वही ।
5 गीत महाराजा जसवतसिंह रौ ।

व्याख्या 'झगडा रौ खेत' (Disputed Field) से प्रकट है। परन्तु यहाँ यह अर्थ उद्दिष्ट नही है। 'खेत' यहाँ रणक्षेत्र या युद्धभूमि का वाचक है। इस अर्थ मे 'खेत' का डिंगल–काव्यो मे प्रचुर प्रयोग हुआ है। यथा --

पदै पख वड्जा बोम वज्रपात,[1]

खला थाट दूजै 'दलै' वभाडिया **खेत**।

अत 'खेत बुहारणौ' मुहावरे का अर्थ युद्ध-सदर्भ मे ही ग्रहण किया जाना चाहिए।

भाभी कुल खेती विचा, भै न हुवा धव भग।
चित्त खटक्कै मास चव, कुलटा सोक कुसग ।।108।।

प्रसंग--देवरानी की उक्ति जेठानी के प्रति--

व्याख्या--हे भाभी! रणक्षेत्र मे मरने-मारने के अपने कुलधर्म का पालन करते हुए यदि पति धराशायी होजाते है तो इसकी मुझे कोई चिन्ता नही (क्योकि रणखेती तो राजपूतो का व्यवसाय ही है, जिसमे वीरगति पाने पर पर ही स्वर्गिक सुखो के रूप मे दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है) परन्तु मेरे मन मे केवल एक ही वात खटकती है और वह यह कि मेरे कत चार महीनो तक कुलटा सौत (अप्सरा) का कुसग करेगे। [अर्थात् पॉच महीने की गर्भवती होने के कारण पति के मरने पर भी मैं चार महीनो तक सती नही हो सकूँगी। इस बीच दुष्टा अप्सरा निश्चय ही कत का वरण कर चार महीनो तक उन्हे अपने कुसग मे रखेगी। बस एक यही बात मेरे चित्त मे खटकती है। पीछे तो मैं सहगमन कर अपने दिवगत पति से स्वर्ग मे जा मिलूँगी एव कुलटा सौत के चगुल से उन्हे छुडा लूँगी!]

शब्दार्थ--**कुल खेती** = युद्ध, जिसमे मरना-मारना ही वीरकुल का व्यवसाय है। **विचा** = बीच मे, अर्थात् मे। **भै** = (पाठा भय) भय, चिन्ता। **हुवा** = होने पर। **धव भंग** = पति मरण। **मास चव** = (पाठा० चो, चौ) चार मास का। इससे ध्वनित होता है कि पत्नी पॉच मास की गर्भवती है। **कुलटा** = दुष्टा, क्योकि वह सदा दूसरो के स्वर्गस्थ पतियो को ही वरण करने की ताक मे रहती हे। **सोक** = (भावार्थ मे) अप्सरा।

विशेष—गर्भकाल मे स्त्री के लिए सती होना निषिद्ध है। प्रसवोपरान्त ही वह सती हो सकती है। यहाँ तृतीय चरण मे 'मास चो' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ 'मास का' अर्थात् 'एक महीने का' भी किया जा सकता है, जिसके अनुसार

---

1. गीत हुक्मीचन्द खिडिया रौ।

पत्नी के आठ महीने की गर्भवती होने की ध्वनि होती है। हमने टीका का पाठ 'मास चव' ही स्वीकार किया है।

राजस्थानी टीका—जेठाणी प्रतै वीर स्त्री वचन—

हे वाभीजीसा ! झगडा मैं पती मारीज जाय औ तौ म्हनैं भय नही, क्यूकि कुल खेती हीज जुद्ध करणौ, मारणौ–मरणौइज है, जिणसू पण पती वाज नें काम आवसी तद अपछरा वरसी सो वा सुरग री वेस्या तिकण सौकरौ चार महीना कुमग रहसी। 4 महीना क्यूकि पेट मे आधान है सो च्यारा मईना जनमिया पछै सत कर सुरग मे जाय पती ने पाछो लेमूं, जिनरैं कुलटा आदत विगाड देसी ॥इ०॥

धीरपिया सूतौ धणी, कुरलै चकवी काय।
देखीजै मुख दीहरै, मुख दो जाम सिवाय ॥109॥

व्याख्या—हे चकवी ! मेरे स्वामी बहुत समझाने-बुझाने से किसी तरह सोए है (ये मानते ही न थे, रात को ही शत्रु से जूझने के लिए व्यग्र हो रहे थे)—फिर भला तू कातर स्वर मे यो क्यो चीख रही है ? (तेरी चीख सुनकर ये जग जाए गे और फिर युद्ध मे जाने से किसी के रोके न रुकेगे। अत तू चुप हो जा)। हाँ, प्रात काल होने पर तू अपने प्रिय के साथ दो पहर अधिक सुख देख लेना। [अर्थात् मेरे पति ऐसा भयकर युद्ध करेगे कि भगवान सूर्य भी उसे देखने हेतु दो पहर तक अपना रथ रोक लेगे, जिसके फलस्वरूप दिन दो पहर अधिक लम्बा होजाएगा, जो तेरे लिए प्रिय-सयोग-काल मे वृद्धि करने के कारण सुखदायी होगा। कवि प्रसिद्धि है कि चक्रवाक युगल का रात्रि मे वियोग हो जाता है। फलत रात्रि उसके लिए दुखदायी होती है। वीर के अद्भुत युद्ध को देखने हेतु जब सूर्य अपना रथ रोक देगे तो स्वभावत दिन लम्बा होजाएगा, जो चकवी के लिए प्रिय-सयोगमे वृद्धिकारक होने के कारण सुखदायी होगा।]

शब्दार्थ—**धीरपिया** = सात्वना देने या समझाने-बुझाने से। **कुरलै** = कातर स्वर मे चीखती है। **काय** = क्यो। **दीहरै** = दिन को। **जाम** = पहर।

विशेष—इस दोहे मे वीर की युयुत्सा की व्यजना हुई है। सच्चा शूरवीर युद्ध मे जाने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, यहाँ तक कि उसे विश्राम देने के लिए भी जबरदस्ती रोक कर रखना पडता है। साथ ही, इसमे वीर का अद्भुत पराक्रम देखने हेतु सूर्य द्वारा अपना रथ रोक देने विषयक कवि प्रसिद्धि का भी परोक्ष उल्लेख हुआ है। डिगल काव्यो मे युद्ध-वर्णन के प्रसग मे इस काव्य-रूढि का वहुश प्रयोग हुआ है। यथा —

1 सावासै सूर सपेखै सूरिज[1]

---

1 Bardic & Historical Manuscripts, Section II Part I, Page 11 Ed Dr L P. Tessitori.

2. यक पोहर बजी कोवाण भाण, भारथ देप थम्यो क भान ।[1]

3 तुरग रथ थाभ जोग्रे ग्ररक तमासा,[2]
रीभ वाखाणियो दहू राहे ।

4 रवि रथ पहर थकत हुय रहियौ,[3]
नमो नमो चितरग नरेस ।

5. मचत ग्रचानक तुमुल, रक्कि पिक्खन लग्गो रवि ।[4]

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरुष री स्त्री कहै—

हे चकवी ? तू क्यू इतरी जोर जोर सू कूकै है ? दुसमणा री फौज गढ घेरियौ तठै गढ रै धणी साकौ कर मरण री विचारी तद स्त्री बोहत समभायने सुवाणीया कि सुहार रा लडजो । धणी स्त्री रै कहणै रात भर सूतौ ने चकवी रात री विरहातुर जोर जोर बोलै तिण पर स्त्री कहै-धणी ने घणी धीरप दी तद सूतौ छै, तू जोर कूकै छै सो म्हारै तौ सुख दोय पौहर रात रौ है । सवाय तौ सूरज ऊगा पछै जीता तौ सवाय सुख छै नई तौ दोय पौहर तौ सुख सू वीतण दै ।।इ०।।

ग्राघा चारण खावका, बीडी मौज बटत ।
दूरा केम दकालणा, हूचकतॉ भड हत ।।110।।

प्रसंग—किसी योद्धा की चारणो के प्रति व्यग्योक्ति —

व्याख्या— हे चरणो ! भोजनोत्सवो एव रीभ-मौज के ग्रवसर पर ताम्बूल-वितरण के समय तो तुम सबसे ग्रागे रहते हो, परन्तु धिक्कार है, ग्राज जब योद्धा परस्पर जूभ रहे है, तब हे प्रोत्साहन देने वालो ! तुम दूर-दूर कैसे होरहे हो ?

ग्रर्थात् दावत-मजलिसो एव रीभ-मौज के ग्रवसर पर जैसे तुम सदा ग्रागे ग्रागे रहते हो, वैसे ही युद्ध मे भी वीरो को जोश दिलाने के लिए तुम ग्रागे क्यो नही ग्राते ? प्राणो के भय से इस समय पीछे रहना तुम्हे शोभा नही देता ।

इस दोहे मे किसी योद्धा ने चरणो को ग्रपने परम्परागत कर्तव्य के प्रति सचेत किया है । हमे स्मरण रखना चाहिये कि राजस्थान के चरण कवियो ने क्षत्रियो को दूर से ही प्रबोधन नही दिया है–स्वय भी शस्त्र लेकर रणक्षेत्र मे जूभते हुए स्वामि-भक्ति ग्रौर वीरत्व का ग्रादर्श रखा है । इसीलिए उनकी वाणी मे वह तेज था जो कायर से कायर क्षत्रिय को भी मरने-मारने के लिए प्रेरित कर देता था । क्यो न हो,

1. बात बगसीराम जी प्रोहित हीरा की; पाच राज० प्रमाख्यान, पृ० 38
2. गीत रघुनाथसिह राणावत रौ; प्रा० रा० गी०, भाग 1, पृ० 206
3 गीत ग्ररिसिह रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 3, पृष्ठ 5;
4. वशभास्कर, पचमराशि, पचम मयूख, पृ० 1733,

वे वाणी के ही वरद् पुत्र नही, शक्ति के भी पुत्र है। परन्तु, कालान्तर मे क्षत्रियो के समान कुछ चरण लोग भी अपने परम्परागत चारित्र्य को भुला बैठे। इसीलिए प्रस्तुत दोहे मे उन्हे प्रबोधन दिया गया है।

शब्दार्थ—आवा = आगे, आतुर। **खाबका** = 'राजा–रानी की खानगी मजलिस जिसमे उसके विशिष्ट कृपापात्र ही सम्मिलित हो सकते है,' विशिष्ट भोजनोत्सव। यह सामान्य भोजन के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है। यथा —

"आप फुरमायौ–खाऊका री कामू खवर ?[1]

खावको तयार है, माहिब ! आप फुरमायौ–पाँतिया नाखौ !"

तथा—

खावैको फेरे जगावियौ है, अमल भेवाडिया है।[2]

बीडी = ताबूल। **मौज** = रीझ या दान। 'मोज' शब्द डिगल-काव्यो मे प्राय दान, विशेषत प्रसन्न होकर की जाने वाली बख्शिश के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा,—

1 वप श्रीमल नीअल सुध वाजै, आठ पहर मौजा उदार।[3]

2. मैगल तणी समापण मौजा[4]
सकवा रह्यौ नही ससार।

3 यहतै सत डोर जगा छत्रिया गुर,[5]
वोह मोजा विध अतुल वर।

केम = क्यो, कैसे। **दकालणा** = ललकारने वालो या प्रोत्साहन देने वालो। **हूचकतां** = भिडते, टकराते या जूझते हुए। 'वीर सतसई' के प्रकाशित सस्करणो मे इसका अर्थ 'हिचकिचाते हुए' कर दिया गया है, जो सर्वथा भ्रान्त है। वस्तुत 'हूचकनाँ' का अर्थ है, भिडते या लडते हुए। इस अर्थ मे यह डिंगल–काव्यो मे बहुश प्रयुक्त हुआ है। 'हूचक' डिंगल मे युद्ध या लडाई का वाचक है। यथा —

हैवैपति हाडा माडी **हुचक**, जागी खभ उजेण।[6]

---

1. वात प्रतापमल देवडा री, रा वाता, भाग 1, पृ० 96 स श्री न स्वामी,
2. वही, पृ० 102,
3. गीत गोरधन कल्याणोत री, रा० वी० गी० स० भाग 1 पृ० 77 स० श्री सौ० शेखावत,
4. दयालदास री ख्यात . पृ० 239
5. महाराणायशप्रकाश, पृ० 152, स० श्री भूरसिह शेखावत।
6. बिन्हैरासो, पृ० 87।

इसी का क्रियारूप 'हुचक्कै' युद्ध करने या भिडने के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है —

1. भुटक्कै अकारौ सेन वैढेगारौ क्रोधा भाय,[1]
जोधारौ **हुचक्कै** अजारौ महाजोध ।

तथा —

2 किरीटी कुरिन्द्र रोस हक्कै कैरवेस किना,[2]
हुचक्कै वज्रगी बीस भुजा डडा हूत ।।

3. घाट सेल वार घोल, हूचकै गजा हरोल ।[3]

4 झुके झूल बारगा थरक्कै गजा पीठ झडा,[4]
केहरी **हुचक्कै** जठै ऊवक्कै क्रोधार ।

अत 'हूचकताँ' का अर्थ लडते, भिडते या क्रुद्ध होकर आक्रमण करते हुए किया जाना चाहिए । डा० सहलजी व श्री स्वामीजी आदि सपादको ने जो इसका 'हिचकिचाते हुए' अर्थ किया है, वह निराधार है । **भड** = योद्धा । **हंत** = दुख है, धिक्कार है ।

राजस्थानी टीका—कोई ठाठाबाज जोधार कहै है—हे चारणा ! रीझ मौज अतर पान बटै जठै तो सभा मे अलगा अलगा वडौ, अर्थात् भालक रै पास जाता रहौ हौ ने आज झगडौ हुसी जठै दूर दूर क्यू ऊभा हौ ? थे कहौ हौ कै म्हे राजपूता ने पौरष चढाय दकालण वाला हा—तो साथे रहौ—भड हूचकै—लडै तठै हन्त आवौ—मरौ—मारौ ।।इ०।।

रण हालीजै चारणां, चाहे अब लग चैन ।
करै सुहड जिसडी कहौ, विध सो दूर वणै न ।।111।।

व्याख्या—हे चरणो ! युद्ध मे चलो, अब तक तो चैन करते रहे हो । वहाँ योद्धा जैसी करनी करे (वीरता दिखलाएँ), वैसा ही बखान करो । यह काम दूर रहते नहीं बनेगा ।

शब्दार्थ— **हालीजै** = चलना चाहिए, चलिए । **चाहे** = देखा किए । **सुहड** = सुभट, योद्धा । **जिसड़ी** = जैसी । **विध** = (स० विधि) वर्णन या कथन विधि, काम ।

---

1 गीत राजाधिराज बखतसिंघ नागौर रौ०, रा० वी० गी० स० भाग 1, पृ० 49

2. गीत महाराव प्रतापसिघ अलवर रौ रा० वी० गी० स० भाग 2, पृ० 203 स० श्री सौभाग्यसिह शेखावत ।

3 सूरजप्रकास, भाग 1, पृ० 272 स० श्री सीताराम जी लालस ।

4 रा० वी० गी० स० भाग 2, पृ 56। सं० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

राजस्थानी टीका—कोइ दूसरौ जोधार फेर कहण लागौ—हे चारणा ! रिण मे चालौ । आज दिन ताई चैन मै रहिया हौ अने जुद्ध मे चालौ सो सोहड राजपूत करै मो देख जैडी ह्वै इमी कहजो । आगा सू विना दीठा कहणौ साचौ वणौला नही ।।६०।।

भोला की चहरौ भडा, ईखौ चारण अैण ।
के ही कढता कायरॉ, बाढा चाबुक बैण ।।112।।

प्रसंग--उपर्युक्त दोनो दोहो के प्रत्युत्तर मे चारण–कवियो की उक्ति:—

व्याख्या—हे भोले ठाकुरो ! क्या निंदा करते हो ? जरा चारणो की रीति-नीति तो देखो । हमारा पराक्रम तुमसे कही बढकर है । तुम तो तलवार से केवल कुछ ही शत्रुओ का महार करते हो, किन्तु हम युद्ध से भागते हुए कितने ही कायरो को अपने वचनो (व्यग्योक्तियो) के चाबुक से ही काट गिराते है !

अर्थात् कायर जब युद्ध से भयभीत हो भागने लगते है, तब हमी उन्हे ऐसी प्रताडना देते हे कि उसका मरण हो जाता हे । हमारे तीव्र व्यग्यो के चाबुक की चोट से वे ऐसे कट जाते है कि फिर कभी सिर नही उठा सकते । अत शौर्य का सचार करने वाले एव वीरत्व की प्रेरणा देने वाले हम चारणो पर तुम्हारा व्यग्य करना उचित नही ।

शब्दार्थ—चहरो=निंदा या व्यग्य करते हो ।

उदाहरण —

चढिया ज्यॉं रूँ **चहरजे**, लालच गरधभ लोक ।[1]

भड़ा=योद्धाओ, ठाकुरो । **ईखो**=देखो । **ऐण**=गति , रीति–नीति । **केही**–कितने ही । **कढता**=निकलते , भागते हुए । **बाढां**=काट गिराते है । **चाबुक बैण**=वचन रूपी चाबुक (की चोट) से ।

राजस्थानी टीका—हे भडा ! थे अै काई चहरा करौ छौ ? चारणा ने देखजो, थे,[थे]तौ कोई एक ने कोई 2 त 4 ने वाढसौ ने म्हे चारण जुद्ध रा भागल हजारा कायरा ने वावक (चावकिया) जिसा वचना सू काट न्हाकसा ।।६०।।

आघा पडवाँ ओलगण, जागड जीमण जाग ।
रण झडता भड दूर को, सुणसी सीधू राग ।।113।।

व्याख्या—हे ढोलियो ! दपति के शयनागार (रगमहल) के पास रात भर गाना–वजाना करने तथा विवाह (या अधरातिये) की जेवनार के लिए तो तुम सदा आगे-आगे रहते हो, परन्तु इस समय जबकि युद्ध मे वीर एक के बाद एक धराशायी होरहे है-तब दूर से तुम्हारा यह सिंधूराग कौन सुनेगा ?

---

1 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 3, पृष्ठ 56

अर्थात् जैसे गीत-गान, रीझ-मोज व दावत-जेमनार आदि के अवसर पर तुम सदा लालायित हुए आगे बने रहते हो, वैसे ही युद्ध छिड़ने पर भी तुम्हे चाहिए कि रणक्षेत्र मे सबसे आगे होकर अपना सिंधू राग सुनाओ ताकि वीरो पर सूरातन चढे । यो दूर-दूर से ही सिंधू राग अलापने से काम नही चलेगा ।

शब्दार्थ—आघा = आगे (आतुरता से) । **पडवाँ** = दपति का शयनगार या रगमहल । उदाहरण —

1. ऊँडै **पडवै** पैस, पिवसु पैजा मारती ।[1]
   सु माणसीया एह, घू घै लागा धोनउत ।

तथा·—

2 **पडवै** पोढताँह, करडावण सै कोइ करै ।[2]
   धोरा मे घँसताँह, आँसू आवै ईलिया ।।

3. पढ पढ ठीक सीख **पड्वा** मा,[3]
   कडवा वचना दगध करै ।
   जीभे घा गोहू जोडायत,
   मा तोडायत भूख मरै ।।

डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका एक अन्यार्थ 'अतिथि को ठहराने का शामलाती स्थान' भी किया है परन्तु यहाँ प्रसगत यह अर्थ उद्दिष्ट नही है । 'पडवौ' यहाँ दपति के शयनागार या रगमहल का ही वाचक है, जैसाकि उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है ।

ओल्गण = गाने-बजाने हेतु । दम्पति के मनोरजनार्थ शयनागार के बाहर राणो-ढोलियो आदि के द्वारा जो रात भर गाना-बजाना किया जाता हे, उसे 'पडवौ ओल्गणो' कहते है, जो आज दिन तक प्रचलित है तथा ऐसे गीतो को 'ओलग गीत' । यथा —

खुसी वधास्याँ रीझकर, गास्याँ **ओल्ग गीत** ।[4]

डा० सहलजी आदि सपादको ने शब्दार्थ मे 'ओलगण' का अर्थ जो 'उल्लघन, 'अतिक्रमण' किया है–वह सर्वथा भ्रान्त है । 'ओलगने' का 'उल्लघन' या 'अतिक्रमण' से कोई सम्वन्ध नही है । ओलगना' प्राचीन व मध्यकालीन साहित्य का एक बहुश·

---

1. वात नागजी–नागवन्ती री, पाँच रा० प्रे०, पृष्ठ 162
2. राजस्थान रा दूहा, पृ० 40 स० नरोत्तमदास स्वामी ।
3. गीत कपूत रौ, कविया हिंगलाजदानजी रौ कह्यौ, डिंगल गीत, पृ० 119 स० श्री रावत सारस्वत व कुँ चडीदान साँदू ।
4. पना वीरमदेव की वार्ता, पृ० 133,

प्रयुक्त एव अनेकार्थक शब्द है, जो प्रवास–सेवा, रात्रि–गायन आदि अर्थो मे रूढ होगया है, एव ओलगियो' (प्रवास–सेवी) 'प्रियतम' के अर्थ मे ।

यथा—'म्हारा ओलगिया घर आज्यो जी' (मीरॉ) ।

जागड़ = ढोली, दमामी । **जीमण** = जेवनार , भोजनोत्सव । **जाग** = (स० याग) विवाह, यथा —

> महा मडियौ **जाग** उज्जैण लागा मवै,[1]
> रुदन बिलखावती रही रोती ।
> हेलवी 'अमर' री हीय करती हरप ।
> 'जसा' अपछर रही बाट जोती ।।

'जाग' को यदि 'जागरण' का वाचक माना जाए तो अन्यार्थ 'जागरण का जीमण' अर्थात् 'अधरातिये या रातीजगे की जेवनार' भी किया जा सकता है । डा० सहलजी आदि सपादको ने 'जाग' का एक अन्यार्थ (कोटा–बून्दी की तरफ) 'जगह या मकान' भी सुझाया है, परन्तु यहाँ वह अर्थ उद्दिष्ट नही है । कोटा–बून्दी की तरफ ही क्यो - ढूँढाड मे भी जागाँ' शब्द प्राय दादूपथी साधुओ के निवास-स्थान के लिए प्रयुक्त होता है । **झडता** = धराशायी होते ; वीरगति प्राप्त करते । **भड**-योद्धा, वीर । **की** = क्या, कैसे ।

राजस्थानी टीका—कोई जोधार दमामिया नै कहै छै–रे दमामिया ! पडवै गावण ने अने ओलगण ने तौ आघा पडौ हौ और जीमण रै वासतै (अधरातिया साम्ह) रात जागौ हौ सो सिंधू राग सुणसा ।।इ०।।

टिप्पणी—टीकाकार द्वारा, अन्तिम चरण का किया गया अर्थ 'सो सिंधू राग सुणसा' असगत और असम्बद्ध है ।

> भाट घणा दिन भाखता, कुल भूला भूकत ।
> रहिया नीडै बीर ही, जाणा विरुद जपत ।।114।।

प्रसंग—किसी योद्धा का भाटो के प्रति कथन —

व्याख्या—हे भाटो ! तुम बहुत दिनो से कहा करते थे न कि भूमि के अधिपति (राजा) अपने कुलमार्ग (युद्ध मे मरने-मारने के क्षत्रियोचित कुलधर्म) को भूल गए है । लो, अब युद्ध छिड गया है, अत वीरो के निकट रहने से ही हम जानेगे कि तुम सच्चे विरुद-गायक हो । अर्थात् तुम कैसे विरुदाने वाले हो,इसका पता तभी चलेगा जब तुम वीरो के साथ स्वय युद्ध मे उपस्थित रहोगे ।

तात्पर्य यह है कि थोथे उलाहने देते या युद्ध से दूर-दूर रहकर वीरो को विरुदाते तुम्हे क्या जोर आया ? तुम्हारी बहादुरी तो तब जानेगे जब तुम युद्ध के

1.

मैदान मे स्वय वीरो के साथ रहकर विरुदगान करोगे ; अन्यथा तुम भी अपने कुल मार्ग से च्युत समझे जाओगे ।

'भाट' शब्द को सबोधन न मानने पर अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है कि 'भाट लोग बहुत दिनो से यह कहा करते थे कि पृथ्वीपति (राजागण) अपना क्षत्रियोचित कुलधर्म भूल गए है, परन्तु अब युद्ध मे वीरो के साथ रहने से उनकी बहादुरी का पता चलेगा कि वे सच्चे विरुद-गायक है ।

अर्थ—व्यजना की दृष्टि से प्रथम अर्थ अधिक सगत है ।

शब्दार्थ—भाखता = कहते या कहा करते थे । **कुल** = कुलधर्म या कुल रीति । **भूकन्त** = राजा, भूमि के अधिपति । यथा —

उच्छाह सदा राखै अनन्त ।[1]
कामणि जिम भुगतै भूमिकत ।।

रहिया = रहने से । **नीडै** = निकट, पास । **बीर** = वीरो के । **जाणा** = जानेगे । **विरुद** = विरुद, यश । **जपत** = कहते या गाते हो ।

राजस्थानी टीका—तद कोई जोधार भाटा ने कही—

रे भाटाँ ! थे घणा दिन हुवा कहता हा कै भू = जमीरा, कत = मालका (राजावा) थे थारा कुल नै भूलगा, सो आज जुद्ध मे नेडा रहिया बीर ही जाणसी कै म्हारा बिरद जपै छै, सौ थारा कुल अनुसार आपाण करै, इण सारू नैडा रहजो ।।इ०।।

टिप्पणी—टीका मे दिये गये पाठ मे 'जाणै' है ।

पूत महा दुख पालियौ, वय खोवण थण पाय ।
एम न जाणी आवसौ, जामण दूध लजाय ।।115।।

प्रसंग—एक कायर पुत्र को वीर माता की प्रताडनाः—

व्याख्या—हे पुत्र ! मैंने तुझे अपने स्तनो का दूध पिला कर, जिसके कारण मैंने अपना यौवन खोया, महा कष्ट से तेरा पालन किया था । हाय ! मै यह नही जानती थी कि तू माँ के दूध को लज्जित कर यो युद्ध से भाग आएगा । धिक्, तूने मेरी आशाओ पर पानी फेर दिया ।

शब्दार्थ—पालियौ = पालन किया । **वय खोवण** = आयु क्षीण करने वाला, यौवन हरने वाला (स्तनपान) । वालक के स्तनपान करने से माँ के यौवन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है । पुत्र यदि वीर हो तो माँ अपने स्तनपान कराने को सार्थक समझती है परन्तु पुत्र कायर होने पर तो वह माँ के लिए 'यौवनहर' ही होता है, जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है.—

---

1. सूरज प्रकास, भाग 2, पृ० 45;

मातु केवलमेवयौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ।

थण पाय = स्तनपान कराके । **एम** -- ऐसा, यह । **जाणी** = जाना । **आवसी** = आगे (पाठा० 'जाण्यौ आवही') **जामण** = जननी, माँ ।

राजस्थानी टीका—कोई एक वीर सूया (वीर री माँ) भागल पुत्र ने ललकारै छै—

अरे पूत ! म्हारी ऊमर खोय आँ थणा रो दूध पाय घणा दुःख सूं पाल मोटौ कियौ-सो आ आस ही कै माता-पिता रौ पख ऊजलौ देखावसी—पण भागने आयौ सो हे कायर ! आ नही जाणी ही कपूत जामण रौ दूध लजाय ने आवसी ।।इ०।।

भोला की डर भागियौ, अंत न पहडै अैण ।
वीजी दीठा कुल बहू, नीचा करसी नैण ।।116।।

प्रसग—वीर माता की कायर पुत्र को प्रताडना अथवा किसी कायर की भर्त्सना —

व्याख्या—अरे नासमझ ! तू किस डर से युद्ध से भाग आया ? काल तो घर पर भी नही छोडता ! मौत तो घर पर भी नही टलती ! वह तुझे यहाँ भी आ दबोचेगी, फिर तू कहाँ बचकर जाएगा ? तेरे इस कायरतापूर्ण आचरण से तेरी उच्च कुलोत्पन्ना वधू को कितना लज्जित होना पडेगा—इसका भी तूने विचार नही किया । जब वह अन्य स्त्रियो को देखेगी, जिनके पति युद्ध मे वीरतापूर्वक लडे है, तथा उन्हे अपने पति की वीरता का सगर्व बखान करते सुनेगी तो उस बेचारी उच्च कुल की बहू (तेरी स्त्री) को आँखें शर्म से नीची होजाएँगी—यह सोचकर कि मुझे ऐसा कायर पति मिला !

शब्दार्थ - भोला = नासमझ, मूर्ख । **की** = किस । **अंत** = काल, मृत्यु । **पहडै** = छोडता, टलना । 'पहडणौ' या 'पहडवौ' का अर्थ है छोडना, टलना या विचलित होना । यथा —

1 पोह पतसाह पाल-कुल पैहडै,[2]
कीधो पग तल राज करै ।

2 हिरणाकुस खहडे, पुत्र न पहडे[3]
मौ पर उरडे, खग सुरडे ।

---

1 वैराग्यशतक, भर्तृहरि ।

2 नैणसी री ख्यात, भाग–2, पृष्ठ 63, स० श्री बदरीप्रसाद साकरिया ।

3. भगतमाल, चारण ब्रह्मदासजी दादूपथी-विरचित, पृ० 17, स० श्री उदयराज जी उज्ज्वल ।

श्री डा० सहलजी व श्री स्वामीजी आदि सपादको ने अपने द्वारा सपादित 'वीर सतसई' के दोनो ही सस्करणो मे 'पहुडै' (जो 'पहडै' का ही रूपभेद है) का अर्थ 'पहुँचती' या पहुँचता' किया है, जो आनुमानिक प्रतीत होता है। वस्तुतः शब्द के प्रयोगगत आधार पर 'अ त म पहुडै'' का अर्थ 'अन्त (मुत्यु) टलता नही' किया जाना चहिए, जैसा कि ऊपर दिए गए उद्धरण मे प्रयोग से स्पष्ट है। हिरणाकुस पहडे' अर्थात् हिरण्यकशिपु ने लाख डाँटा परन्तु पुत्र (प्रहलाद) भक्तिमार्ग से तनिक भी टला नही, उसे छोडा नही। यहाँ भी कदाचित् यही अर्थ उद्दिष्ट हे। **अँण**=घर (स. अयन]। **बीजी**=दूसरी (वीर पुरुषो की स्त्रियाँ)। **दीठां**=देखने पर। **कुलबहू**=उच्च कुलोत्पन्ना बहू (तेरी पत्नी)।

राजस्थानी टीका—फेर माता भागल पूत नै कहण लागी—

अरे भोला! काही डर सू भागौ? देख अन्त (काल) सेवट ही छोडण वालौ नही—अर्थात् जो जनमै है तै मरै (जातस्य ही ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च) जातस्य=जनमै है ए ही जे त्यूँ मरै है, ध्रुवो=निश्चै, ध्रुव=निश्चै, मृत्यु=मरै है, तिकै जातस्य=जन्मै है' इति गीताया। ऊपर के अर्थ मे भूल है (जातस्य ही ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च)। जातस्य=जनमे, एहि=तिके, ध्रुवो=निश्चै, मृत्यु=मरै है, ध्रुव=निश्चै, जन्म=जनमै, तिके च=फेर मृत्यु=मरै है, इति भगवद्गीता। पुन दोहार्थ—

अ त=काल हे सो अँण (अँन) निश्चै, न=नही। पहडै=मिटै (नही), सो जुद्ध मे मरतौ तो मैहगी नही लागती, नही तौ हमै वीजी स्त्रियाँ नें देखने आ कुलवहू=सुद्ध कुल री वीर स्त्री (थारी स्त्री) वीर पुरुषा री स्त्रियाँ कनै जुद्ध री वात होवता ही लाजसू आँख नीची करसी (नीचौ जोवसी) ॥३०॥

ढोल बरज, सब भेज घर, धर नालेर सुधाम।
घावा कत पधारिया, पावाँ हू त प्रणाम ॥117॥

प्रसंग—वीराङ्गना का पति युद्ध मे गया हुआ है। इस विश्वास से कि वह वीरगति प्राप्त करेगा, वह सोल्लास सती होने का उपक्रम करती है, किन्तु तभी घावो से क्षत-विक्षत पति विजयी होकर लौट आता है। इस पर हर्ष-विमुग्ध हो वीराङ्गना कहती है—

व्याख्या—हे सखी! ढोल वजाने वालो को मना कर दे, सबको अपने-अपने घर भेजदे तथा नारियल को कही ठीक जगह सहेज कर रखदे। देख तो, मेरे क्त घावो से छके हुए ('जीवित शभु' हो) घर पधार आए है। उनके चरणो मे मेरा प्रणाम निवेदित हो!

शब्दार्थ—**बरज**=मना करदे (स. वर्जन)। **धर**=रखदे। **सुधाम**=ठीक जगह (ध्वनि यह है कि आगे फिर कभी आवश्यकता होने पर शीघ्र मिल जाए।

इससे वीराङ्गना की सती होने की उमग का ज्ञापन होता हे) । **घावां**= घावो से छके हुए । रा० टीका मे 'धावा' पाठ है, जिसके अनुसार युद्ध या लडाई से । **पावाँ हू'त** =चरणो मे, अत्यधिक आदर का व्यजक । (हू त=से), चरणो से अर्थात् चरणो को या चरणो मे) ।

विशेष— इस दोहे को वीर सतसई के प्रकाशित सस्करणो (डॉ सहलजी व स्वामीजी आदि सपादकों द्वारा सपादित) मे एक वीर पति पर घटित कर अर्थ किया गया है, जबकि टीका मे इसे एक कायर पति पर घटित कर व्याख्या की गई है । टीका मे टीकाकार ने यह टिप्पणी की है कि कोई भी स्त्री अपने पति का स्वागत-अभिनन्दन ही करती है, चरणो मे प्रणाम नही, जो पूज्यजनो अर्थात् साधु-सन्यासियो को ही किया जाता है । टीकाकार का आशय यह है कि वीराङ्गना अपने कायर पति के साथ अब प्रणय-सबन्ध न रखकर उसे एक सन्यासी की दृष्टि से देखेगी—इसीलिए वह 'पावाँ हू त प्रणाम' कहती है । टीका मे पाठ भी 'धाना' है, अर्थात् 'धावे, आक्रमण या युद्ध करके ।

इस सम्बन्ध मे, हमार विचार से प्रस्तुत दोहे को वीर एव कायर पति-दोनो पर ही घटित कर अर्थ किया जा सकता है । जहाँ तक टीकाकार की 'पावाँ हूत प्रणाम' पर टिप्पणी का प्रश्न हे, उसके उत्तर मे हम यह तर्क प्रस्तुत करते है कि युद्ध मे घायल (यद्यपि टीका मे 'घावा' पाठ नही है) होकर जीने वाले वीर को डिगल-काव्यो मे 'जीवन सभु' की उपाधि से विभूपित किया गया हे । यथा —

1 हुवो रिणथभ दिखणाद भारथ हुवै, बाप जिम **जीवतौ संभ** बेटो ।[1]

2 वरै तू केम रभ, उचारै विधाता, लेख मै **जीवतौ संभ** लिखियौ ।[2]

युद्ध मे 'जीवित सभु' होने के लिए वीर स्वय भी लालायित होते देखे गए है—

अँग झकबौल रुधर हुय आऊ ।[3]
कायम जीवत सिंभ कहाऊ ।।

इससे स्पष्ट हे कि युद्ध मे घायल होने वाला वीर भी समाज मे प्रशस्य रहा है ।

अत 'घावा' पाठ के आधार पर, जो सगत प्रतीत होता है, यदि इस दोहे को युद्ध मे घायल होकर आने वाले वीर पर घटित कर अर्थ किया जाय तो ऐसे 'जीवित सभु' पति के चरणो मे वीराङ्गना का उसके प्रति असीम आदरभाव से प्रणाम निवेदन करना कुछ असगत या अनुचित नही कहा जा सकता ।

---

1. गीत राजसिंघ बिसनदासौत रौ, रा० वी० गी० स. भाग 2, पृष्ठ 170
2. गीत सत्रमाल रतनौत रौ, दयालदास री ख्यात, पृष्ठ 240
3. सूरज प्रकास, भाग-2, पृ० 315, स श्री सीताराम जी लालस ।

तथापि, यदि टीका का पाठ 'धावा' (युद्ध से) माना जाय तथा पूर्व दोहे के अनुक्रम मे इसे भी कायर पति पर घटित कर अर्थ करना चाहे तो 'पावाँ 'प्रणाम' को वीराङ्गना की व्यंग्योक्ति मानते हुए व्याख्या यो भी जी जा सकती है —

अन्यार्थ—हे सखी ! मागलिक ढोल बजवाना बद करदे, सबको अपने-अपने घर भेजदे तथा नारियल को किसी सुरक्षित जगह पर रखदे (अब यह काम तो आने का नही !) । मेरे पतिदेव तो धावे से (शत्रु पर चढाई करके) पधार आए है ! (अथवा, घाव लगते ही भाग आए है) । इनके चरणो मे मेरा प्रणाम ! धन्य है ये !

यहाँ 'हूत' शब्द भी विचारणीय है । 'हूत' का अर्थ 'से' होता है, 'मे' नही । जैसे—

वाका राखै बाणियो, सारा हूंत सनूक ।[1]

कायर पति के अर्थ मे घटित किए जाने पर वीराङ्गना की व्यग्योक्ति मानकर—'पावाँ, हूत प्रणाम' का अर्थ यो भी किया जा सकता है—'इन्हे चरणो से प्रणाम !' अर्थात् ऐसे कायर पति का मैं तिरस्कार करती हूँ ।'

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री वचन --

जुद्ध मे पती आयौ तिण सू जुद्ध समाचार आया कि घणा जोद्धार मारी-जिया तद वीर सती जाणीयौ म्हारौ खामन्द काम आयौ हूसी-इसौ उमग आण सत करण ने नाल`र मगायौ, ढोल मगायौ । इतरै पती भागल आय फटकियौ तद कहै–हे सखी ! ढोल वाला ने अबै घरै मेल दै । धावा (सत्रुआँ पर) चढाई कर पाछा भागनें पीवजी पधारिया है सो अबै पति सू स्त्री-पुरुष रौ मिलणौ होवै है तिण तरह नही मिलसू अर पगा मे नमस्कार करसू । प्रयोजन—स्त्री पती रै पगा माथौ दे प्रणाम नही करै–पावा प्रणाम तौ साभी सन्यासी रै करै है–सो आज ताई कै आज सू ई पतीने पती-भाव सू न जाण सामी-सन्यासी सम जाणसू ॥इ०॥

रण खेती रजपूत री, बीर न भूलै बाल ।
बारह बरसा बापरौ, लहै बैर लकाल ॥118॥

व्याख्या--युद्ध ही राजपूत का व्यवसाय (कुल कर्म) है–इस बात को वीर बालक भूलता नही । यही कारण है कि वह सिंह के समान पराक्रमी किशोर, बारह वर्ष की बाल वय मे भी बाप के बैर का बदला लेता है । [अथवा जिस शत्रु ने उसके पिता को मारा है, उसे बारह वर्ष निकल जाने के बाद भी मार कर वह अपने बाप के बैर का बदला लेता है]

शब्दार्थ--**रण** = युद्ध । **खेती** = व्यवसाय, कुल-कर्म । **बाल़** = बालक । **लहै** = लेता है । **बैर** = बदला, प्रतिशोध । **लंकाल़** = सिंह ।

---

1 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 2, 74,

विशेष—यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिशोध को वीर-चरित्र के एक उत्कृष्ट एवं अनिवार्य गुण के रूप मे देखा गया है। जो अपने बाप के बैर का बदला न ले सके, उसे कपूत की सज्ञा दी गई है। कहा गया है —

जणणी जणै कपूत मत, चगो जोबन खोय।
कै जण वैर विहडणो, कै कुलमडण होय ।।

आज हम गाँधीवाद या आदर्शवाद के सिद्धान्तो के आधार पर चाहे प्रतिशोध को एक उच्च जीवनमूल्य के रूप मे स्वीकार न करे (बल्कि इसे सम्भवत गर्हित या त्याज्य समझे) परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि यह जीवन की कठोर वास्तविकता पर आधारित तथा मानव-मन की सहज एव शाश्वत अतर्वृत्तियो से परिचालित है। साथ ही, वैयक्तिक स्तर पर अन्याय के प्रतिकार की वाछनीयता की दृष्टि से देखने पर इसका नैतिक पक्ष भी उपेक्षणीय नही हे। जो हो, डिंगल-काव्य का मूल्याकन करते समय तो हमे अपने थोथे आदर्शवाद को ताक पर रख कर प्रतिशोध को एक उच्च जीवन-मूल्य के रूप मे स्वीकार करना होगा। मध्ययुग युद्धो और सघर्षो का युग था। तलवार की धार ही तब न्याय का निर्णय और अन्याय का प्रतिकार करती थी। उन जीवन-स्थितियो मे विकसित एव स्वीकृत जीवन-मूल्यो को हमे आज के मानदण्डो से परखने का कोई अधिकार नही हे। डिगल-काव्य जीवन सघर्षो के उसी युग का जीवत उद्गार है, जिसका सम्यक् मूल्याकन मध्ययुगीन जीवन-स्थितियो के सदर्भ मे ही सम्भव है। सूर्यमल्ल का यह दोहा 'पाबू प्रकाश' के निम्नलिखित दोहे से तुलनीय है.—

बारै वरसा बाप रौ लडने बैर लियौह।[1]
झरडा मारै जीद रौ करडो काम कियौह ।।

राजस्थानी टीका—कवी कहै है कि वीर घराणा रा बालक ही, रिण = झगडा रूपी खेती है रजपूता री सो देखौ—बालक थका ही भूलै नही—बारै वरष रौ ही सिंघ जिसौ बालक बाप रौ वैर लेवै। अर्थात् बाप रा मारणहार सत्रू ने मार पिता रौ वैर उग्रावै ।।इ०।।

मन सोचे, जाणै मती, मोनूं बालक माय।
बैर पराया बाहुडै, जठै न घर रा जाय ।।119।।

व्याख्या—हे माँ! मुझे बालक समझकर मन मे चिन्ता न कर। देख, (इस घर मे) जहाँ औरो के बैर का भी बदला लिया जाता है, वहाँ घर के बैर विना बदला लिए नही छोडे जाएँगे। [ध्वनि यह कि मैं बालक हूँ तो क्या, घर के (पिता के) बैर का बदला लेकर ही रहूँगा—तू निश्चिन्त रह!]

---

1. पाबू प्रकाश (बडा), आशिया मोडजी—कृत, पृ० 388

शब्दार्थ—**मन सोचे मती** = मन मे चिन्ता न कर। **जाणै मोनूं बालक** = मुझे बालक समझ कर। **बाहुडै** = लिए जाते है। **घर रा** = अपने। चूं कि कथन बालक का है, अत इससे ध्वनित है कि उसके पिता नही है। सम्भवत. किसी शत्रु के हाथो मारे गए है, एव वह पिता के बैर का बदला लेने का सकल्प कर मां को आश्वस्त कर रहा है।

विशेष—इसी भाव का, आधुनिक डिंगल-कवि श्री नाथूसिंह जी महियारिया का एक अत्यन्त मार्मिक दोहा है, जिसमे वीर पुत्र की बाप के बैर का बदला लेने की आन्तरिक मनोवृत्ति एव आकुलता का सुन्दर ज्ञापन हुआ है —

धन नहँ पूछै गाडियौ सुत सूरौ बलिहार।[1]
सीस बाप रौ किण लियो, पूछै बारमबार ॥274॥

राजस्थानी टीका—कोई वीर बालक आपरी माता ने कहै छै–हे माता ! तू मन मे म्हने छोटो देख सोच मत आणे, आ जाण जे जिण घर सू पैला रा ही वैर वाहुडै = लेरीजै-जठै घर रा वैर किण तरै बाकी रह जासी ? अर्थात् हूँ पैला री सहायता कर वैर लेण वालौ होवसू तौ घर रा बैर कद छोडू ? ॥इ०॥

आंटो सासू आप रौ, सो लेबो कुलसार।
जायो बरजौ जगत रा, आंटा लियण उधार ॥120॥

प्रसंग—पुत्रवधू की अपने वीर पति के सम्बन्ध मे सास को शिकायत —

व्याख्या—सासूजी ! अपना कोई बैर हो, उसका बदला लेना तो अपने कुल का मुख्य धर्म है परन्तु आपका बेटा तो जगत के वैर उधार लेता फिरता है, अत कृपा कर उसे दुनिया भर के बैर उधार ले उनका बदला लेने से तो मना कर दीजिए।

इसमे परोक्षत वीर के शौर्य व साहस की व्यजना की गई है।

शब्दार्थ—**आंटो** = वैर। **आप रौ** = अपना। **कुलसार** = कुल का मुख्य धर्म, अनिवार्य कुलरीति। **जायौ** = पुत्र को (स० जात)। **बरजौ** = मना करो। **आंटा** · · **उधार** = दूसरो के बैर का बदला लेने से। इस वीर के पास अपना तो कोई बैर वकाया है नही (सब ले चुका है !) और लडने की आकुलता पूरी है। ऐसी स्थिति मे औरो के बैर उधार लेकर अपनी आकुलता न मिटाए तो और क्या करे ?

विशेष—डिंगल-काव्यो मे उधारे बैरो का बदला लेने वाला या चलती लडाई मोल लेने वाला सच्चे शूरवीर की सज्ञा से विभूषित किया गया है। अपने बैर का बदला तो दुनिया लेती है, परन्तु शूरवीर वह है जो दुर्बल और असहाय लोगो के

---

1 वीर सतसई : पृष्ठ 125 . श्री नाथूसिंहजी महियारिया-रचित।

बैरो का वदला लेने के लिए हर क्षरण अपनी जान झोकने को तैयार रहे। ऐसे साहसी शूरवीर की पत्नी यदि हर क्षरण अपने सुहाग के लिए चिन्तित रहे तो क्या आश्चर्य है? डिंगल-काव्यो मे ऐसे 'आटे' उधार लेने वाले वीर की वहुत प्रशसा की गई है। वीरत्व-वर्णन की यह एक काव्य-रूढि होगई है। यथाः—

1. 'लाखा वाता रहै नही, ऊ ईमोईज छै। **उधारा झगडा को लेबो वालो छै**।[1]
2. नडर सधर नरलोभ, **वैर जूना उधरावै**।
3 **आट रा उधारा** चठी पराई जागता आया,[3]
   मधाई वागता आया सीमन्ता सँगार।
4 **राड रा लेयण उधारा** रावत, केविया हरण कोप।[4]
5 अर जिकरण रै वीराधिवीर **उधारा आँटाँरो लेणहार** जगमाल नामक कुमार जन्म लियो।[5]

राजस्थानी टीका—इरण माता रै पुत्र री वहू कहै है–हे सासूजी! आपरा कुल रौ वैर होवै तिरणरौ तो आटौ तौ सारा ही लेवै है, परण आपरै बेटौ सारा जगत रा आटा उधार ले है, सो आप वरज देओ–अँ वचन पती रौ वीर परणौ चौडे कररण रा छै॥इ०॥

पथ निहारै पाहरणा, गीध विहारै गैरण।
अमल कचोला ऊझलै, नीद विछोडौ नैरण॥121॥

व्याख्या—हे प्रियतम! वाहर अतिथि (शत्रु) आपकी बाट जोह रहे है (लडने हेतु आपकी प्रतीक्षा कर रहे हे) तथा आकाश मे (मास-भक्षरण की आशा से) गीध मँडरा रहे हे। उधर कटोरो से अफीम छलक रही हे–अब तो आँखो से नीद त्यागकर युद्ध के लिए प्रस्तुत होजाइए।

शब्दार्थ—**पाहुणा** = शत्रु, उदा० खरै खेत खुरसारण रा पिसरण हूय **पांहूणा**[6] **विहारै** = मँडरा रहे है। **गैण**-आकाश (स० गगन)।**कचोला**=कटोरो, (कच्चोलक)[7]। **ऊझलै** = छलक रहा है (अफीम का घोल, जिसे पीकर मस्त हो योद्धा ररण मे लडने जाते थे। इसे 'कसूबा' भी कहते है)

---

1. वात बगमीरामजी प्रोहित हीरा की, पाँच गा० प्रेमाख्यान, पृ० 32,
2 पाबू प्रकाश (वडा) पृ. 20, आशिया मोडजी-कृत।
3 प्राचीन राजस्थानी गीत भाग 4, पृ० 33, स० कविराव मोहनसिंह
4 वही, भाग 1, पृ० 158
5 वशभास्कर पचमराशि, अष्टममयूख, पृ० 1769,
6 A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Sect II, Part I Page 27, Ed, Dr L P Tessitori
7. उक्ति-रत्नाकर, साधुसुन्दरगरणी-कृत. पृ० 16;

राजस्थानी टीका—कोई एक वीर स्त्री आपरा जोद्धार पती ने कह रही छै—आपरा पाम्हरणा (दुसमण) तो पथ निहारै-झगडा री वाट जोवै अने रिण खेत मे मास रुधिर भखण वाली ग्रीधाँ गैण = आकास मे विहारै = उड रही हे। अमल रा कचोला = प्याला भरीयोडा उफल रहिया छै-अर्थात् आपरी राजपूत वाट जोय रहिया छै सो हे पती! अबै नीद विछोडौ (गढ रै घेरौ छै तिणरी रोजीना लडाई रो हाल हौ) अने जुद्ध सारू बारै पधारौ ॥इ०॥

कॉंकड त्रबक त्रहकिया, ऊठौ खुलियौ कोट।
सुणताँ नाहर आलसी सूतौ बदल करौट। 122॥

प्रसंग—नीद मे सोए शूरवीर पति को वीराङ्गना जगाती हुई कहती हे—

व्याख्या—प्रियतम! सीमा पर युद्ध के नगाडे बज उठे है तथा किले का दरवाजा खोल दिया गया है (शत्रु पर आक्रमण होने ही वाला है)। अब तो उठिए।

यह सुन, नीद की खुमारी मे डूबा वह सिंह (शूरवीर) करवट बदल कर सो गया। [इस भाव से कि इसमे उद्विग्न होने की क्या बात है? शत्रु को जब चाहेगे मार भगाएँगे। अभी से क्यो नीद खराब करती हो!]

शब्दार्थ-- **त्रबक** = नगाडे। **त्रहकिया**-त्रह-त्रह ध्वनि करते हुए वजने लगे। उदाहरण—मन द्रढ रह धडके मती, **त्रहत्रहियां** त्रबाल।[1] **कोट** = किला, गढ। **नाहर** = सिंह (शूरवीर)। **आलसी** = खुमारी मे डूबा, मस्त। **करौट** = करवट।

विशेष—डिंगल-काव्यो मे निर्भय और निश्चिन्त होकर सोने वाले शूरवीर की उपमा निद्रालु सिंह से दी गई है, जो किसी भी शत्रु की रच मात्र भी चिन्ता किए बिना मस्त होकर सोता है। यथा,—

विडगा खड सात्रव आय वगौ,[1]
निअद्रालुअ नाहर नीद लगौ।'

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरा पती ने दुसमण ऊपर आवता जाण जगावै छै—हे पती! नगर रै काकड माथै त्रवक-नगारा त्रहकिया-त्रह-त्रह-- इसौ नगाराँ रौ सब्द होवै छै, जिण सू कहै त्रहकिया, वाजिया छै, अने कोट खुलौ छै, वा जोधारा सामा जाण सारू कोट खोलियो छै। स्त्रीरा वचन सुण वो आलसी सिंह सत्रुआ ने तिलमात्र गिण ने पसवाडौ फेरियौ। व्यग औ छै कि ऊठसू जद ही दुसमणा नै मार भगाय देसू ॥इ०॥

औराँ की फल जागियाँ, लडणौ जाग लँकाल।[2]
गुडै धणी चा गाजणा, तो माथै त्रवाल ॥123॥

---

1. लिखमीदान बारहठ।
2 पाबू प्रकाश (बडा) पृ० 245, मोडजी आशिया-कृत।

प्रसंग—पूर्व दोहे के सन्दर्भ मे, वीर का प्रत्युत्तर सुन वीराङ्गना पुनः कहती है:—

व्याख्या—औरो के जागने से क्या होता है ? उनका जागना न जागना बराबर है । हे नरशार्दूल ! तुम्ही जागो; युद्ध करना है । क्या तुम जानते नही, स्वामी के ये गरजते हुए नगाडे तुम्हारे ही भुजबल पर बजते है ! अर्थात् तुम्हारे पराक्रम के फलस्वरूप ही स्वामी के ये विजय-वाद्य गूँजते है ।

शब्दार्थ—**की** = क्या । **फल** = लाभ । **लड़णौ** = लडना है । **गुड़ै** = बजते है । उदाहरण —

रिण तूर नफेरिय भेर रुडं ।[1]
गहरै स्वर ताम दमाम **गुडै** ।।

धणी चा = स्वामी के । **गाजणा** = गरजने वाले । **तो माथै** = तेरे ही भुजबल पर । **त्रंबाल** = नगाडे ।

राजस्थानी टीका— तद फेर इण स्त्री आपरा पती नै अरज करी–हे पती! आप सुण ने पसवाडौ फेरियौ है नै दूजा सौह जागरण है पण दूजा रै जागण रौ फल काही हुवौ-लडणौ तौ हे सिंह ! आपहीज जागीया हूसी-धणीरा गाजणा त्रबाल = नगारा तौ आपरै हीज पाण वाजै है । आपरै पाण फतै है ।।इ०।।

आ घर खेती ऊजली, रजपूता कुल-राह ।
चढणौ धव लारा चिता, बढणौ धारा बाह ।।124।।

व्याख्या – क्षत्रियो का यही उज्ज्वल गृह-व्यवसाय है, कुलधर्म है कि स्त्री तो अपने पति के साथ चितारोहण करे एव पुरुप धारातीर्थ मे स्नान करे, तलवार चलाता हुआ कट मरे ।

शब्दार्थ—**ऊजली** = उज्ज्वल, यशस्वी । **धव** = पति । **लारां** = साथ । **बढणौ** = कटना । **धारा** = तलवारो, धार = तलवार । उदाहरण—

धडद्धड बेघड वज्जहि **धार** ।[1]
कडक्कड आठकि काठ कुठार ।।

बाह = चलाकर, बाहणौ = चलाना (क्रिया) ।

विशेष—तुलनीय–

सूरातन सूराँ चढै, सत सतियाँ सम दोय ।[2]
आडी धारा ऊतरै, गणै अनल नू तोय ।।13।।

---

1 राजरूपक,

2 बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, पृष्ठ 3,

श्री डा सहलजी आदि सम्पादको ने इस दोहे को उद्धृत करते हुए इसे भूल से 'हाला झाला रा कुण्डलिया' का बता दिया है, जबकि वह कविराजा बाँकीदास का है। इसी भाँति मिलाइए.–

रजपूता ए गीत सदाई, मरणै मगल हरखित थाइ ।[1]

राजस्थानी टीका—फेर आपरा पतीने समझाय ने कहै छै। फेर स्त्री आपरा पती ने समझाय ने कहे छै–हे पती ! आ आपा रा घर री ऊजली खेती कदीम सू है-अन रजपूता रै कुल रौ मारग ही औ हीज है–रजपूताँ रै स्त्रिया गे तौ धरम पती रै लारै काठा चढ जाणौ ने रजपूता रौ धरम निज कुल सारू तरवारा री धारा वढ जावणौ-काम आवणौ ऊजली धारा ।।इ॰।।

पूरा आकुल पाठडा, भालाँ पडता भार ।
हेकरण कवला बाहरी, झाडा झाडा डार ।।125।।

प्रसंग—यूथपति वराह के माध्यम से किसी वीरगति-प्राप्त शूरवीर के शौर्य की व्यजना—

व्याख्या—शिकारियो के भालो की मार से जवान पट्ठे (शूकरशावक) बुरी तरह व्याकुल होरहे है। हाय ! एक उस यूथपति वराह के बिना आज शूकर-समूह प्राण रक्षा के लिए झाड-झाड मे भागता फिर रहा है।

ध्वनि यह कि शूरवीर सेनानायक के मरते ही सेना मे भगदड मच गई। वह अकेला ही सारे क्षत्रुओ से सेना की रक्षा करने मे समर्थ था।

शब्दार्थ—**पूरा** = पूरी तरह। **पाठड़ा** = पट्ठे, शूकर–शावक, 'चेलर'। **भाला** = भालो की। **हेकण** = अकेले, एक। **कवला** = यूथपति वराह। **बाहरी** = बिना, उदाहरण –

ढोला, हूँ तुझ **बाहिरी**, झीलण गइय तलाइ ।[2]

झाड़ां-झाड़ां = झाड-झाड मे, तितर-बितर। **डार** = समूह, टोली या झुण्ड।

राजस्थानी टीका—एक कोइ सूरवीर मारीजगौ–तिणरा कुटुम्ब सारू कवी कहै छै-पाठडा नवीन चैबरा पूरा आज भाला रौ भार पडता आकुल दु खी है–एक उण कवला (मोटोडा सूर) विना डार झाड-झाड होगई। तात्पर्य सूर वडौ माझी जोधार, डार उण रौ कुल, भाला रौ भार = दुसमणा रा भाला रौ भार, झाड घर-घर रा होय गया। 1०।।

सुहडा और सिकारसी, मन मे या न समाय ।
भाला ऊ गिड भाजसी, डाढा प्रलय दिखाय ।।126।।

---

1. खुमाणरासो, पृष्ठ 180 कवि दलपतविजय-कृत, स॰ श्री भँवरलाल नाहटा।
2. ढोला–मारू रा दूहा, ना॰ प्र॰ सस्करण, पृ॰ 91,

व्याख्या—ये योद्धागण, शूकर–समूह मे से अब और किसी का शिकार कर लेगे, यह बात तो उस महाबली यूथपति वराह के मन मे ही नही आती। कारण, उसे अपने प्रचड बल–पराक्रम पर इतना विश्वास है कि वह अपनी प्रलयकर दाढो की टक्कर से (अथवा अपनी दाढो मे प्रलयकर दृश्य उपस्थित कर) शिकारियो के भालो को टूक-टूक कर डालेगा।

ध्वनि यह कि यूथपति वराह की अनुपस्थिति मे शिकारियो ने जो मार लया सो मार लिया, अब एक का भी शिकार करना उनके लिए सभव नही है। भावार्थ मे–शूरवीर सेनानायक की अनुपस्थिति मे चाहे शत्रुओ ने कुछ योद्धाओ को मौत के घाट उतार दिया हो, अब उसके आने पर उनकी एक नही चलेगी।

शब्दार्थ—सुहडा=सुभट या योद्धागण। **सिकारसी**=शिकार कर लेगे। ऊ=वह। **गिड**=शूकर, वीरत्व का प्रतीक यूथपति वराह। **भाजसी**=तोड डालेगा, टूक-टूक कर देगा।

राजस्थानी टीका—कवी कहै–कुल मे माभी डाढाल वासतै–आपरा सोहडा (राजपूता) नें छोटा सूर रा वचा जाण नें कोई सिकार कर न्हाकसी—आ तौ उण डाढाला नें मन मे सुहावै नही। वे वारा भाला तौ ऊ गिड–सूर वडोडौ आपरी डाढा प्रला रूपी दिखाय भाज न्हाकसी ॥इ०॥

रुख–रुख तीरा–रुकडा, मुख-मुख वीरा मौल।
पू चाला हेकण पखै, दल मे प्रबल दरौल ॥127॥

व्याख्या—उस एक महाबली योद्धा के बिना सारी सेना मे ऐसी भयकर खलबली मच गई कि तीर और तलवारे लक्ष्यहीन-सी बेतहाशा चल रही है तथा हर वीर के मुँह पर मुर्दनी छाई हुई है।

शब्दार्थ— **रुख-रुख**=दिशा-दिशा मे, व्याकुलता के कारण लक्ष्यहीन-सी। **रुकडां**=तलवारे। **मौल**=मलिनता, मुर्दनी। **पूंचाला**–योद्धा, पुष्ट कलाई वाला; अतुल भुजबली। **पखै**=विना। **दल**=सेना। **प्रबल**=भयकर। **दरौल**=भगदड, उपद्रव, खलबली। उदाहरण—'दिल्ली रा दल मे दरोल देखता ही साहजादा री सेना वडे जोर वधी थकी आगै आइ उछाह रै उफाण महाप्रलै मचायौ।'[1]

राजस्थानी टीका—कवी कहै–एकण वीर रै प्रभाव सूं तीर और रुकडा–तरवारिया नें रुख-रुख (न्यारी-न्यारी कर न्हाकदी है, कानी-कानी वीरा री मौल पड गई। एक इण पू चाला—जोधार रै आवण सू दल मै पूरौ दरौल पडगौ ॥इ०॥

---

1. वशभास्कर।

आसा बासा याद कर, जीव निसासा जाय।
बिरा एकण बानैत रै, मुख-मुख फौज मुडाय ॥128॥

व्याख्या—अपने आशास्थलो एव वासस्थानो (प्रतापी सहायको, शूरवीर आश्रयदाताओ तथा अपने शरणस्थलो) को याद कर सेना के प्राण नि श्वासो के साथ निकले जारहे है। उस एक महा शूरवीर के बिना सारी फौज मारे डरके जिधर देखो, भाग रही है।

शब्दार्थ—आसां-बासां = अपने आशास्थलो व शरण-स्थानो को। सकट मे व्यक्ति को अपना वह प्रतापी सहायक या शूरवीर आश्रयदाता याद आता है, जिससे उसे सहायता की कुछ आशा होती है। साथ ही, उसे अपने उन शरणस्थानो का भी स्मरण हो आता है, जहाँ वह सुरक्षित था। यहाँ एक ऐसे ही शूरवीर के बिना शत्रुओ की मार से त्रस्त सेना को इन सब की याद आ रही है।

उपर्युक्त अर्थ 'आसा-बासा' को अलग-अलग मानकर किया गया है। हमे एक 'आसबासी' शब्द का प्रयोग भी एक डिंगल-गीत मे मिला है, जो कदाचित् प्रतापी, पराक्रमी या आश्रयदाता शूरवीर के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा—

वडा **आसवासी** जिके बाकी ठोड तरणा वासी,[1]
मीरणा खासी रेत किया मेवासी अमान।

'अर्थात् जो बडे प्रतापी, पराक्रमी या शूरवीर थे तथा विकट या दुर्गम स्थानो मे निवास करते थे · ···· ।'

यहाँ 'आसवासी' शब्द एकात्मक प्रतीक होता है, जो सभवत· प्रतापी या शूरवीर का वाचकत्व करता है। इस दृष्टि से यदि 'आसा-बासा' को भी इसी का रूपभेद, एक एकात्मक शब्द माने, तो अर्थ यो भी किया जा सकता है—'अपने सहायक शूरवीरो या आश्रय दाताओ को बारम्बार याद कर सेना के प्राण नि·श्वासो के साथ निकले जारहे है। वस्तुत उस एक वीर ('बानैत') सेनानायक के बिना शत्रुओ से प्रताडित सेना, जिधर मुँह हुआ, उधर ही भागी जारही है।'

हमे व्याख्यान्तर्गत, प्रथम अर्थ अधिक सगत प्रतीत होता है।

निसासा = नि श्वासो (के साथ)। **एकण** = एक। **बानैत** = शूरवीर, योद्धा। डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'धनुर्धर' किया है, जो प्रसगानुसार अयुक्त है। यहाँ 'बानैत' शब्द शूरवीर या योद्धा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है (बाना या वीरता का प्रतीकचिह्न धारण करने वाला, अर्थात् शूरवीर, योद्धा)। इस अर्थ मे 'बानैत' शब्द डिंगल-काव्यो मे बहुश प्रयुक्त हुआ है।

---

1. गीत, राजा उम्मेदसिंह शीशोदिया शाहपुरा रौ प्रा० रा० गी०, भाग 1: पृ० 122;

यथा:—

1 हिंदवा तुरका दला आगल हुवै,[1]
लियो जस-जैत बानैत लोधे ।
2 वागो खग वानैत, लाज ऊदा जग लेखे ।[2]

द्वितीय उद्धरण में प्रयुक्त 'वागौ खग वानैत' से इस शब्द का 'शूरवीर' अर्थ ही ध्वनित होता है, 'धनुर्धर' नही । स्वय कवि ने भी 'वश भास्कर' मे इसका प्राय: इमी अर्थ मे प्रयोग किया है । यथा —

1. 'अर वाकीरा वीर दो ही तरफ आपस मे असिबर चलाइ **बानैतपणाँ** रा बिरुद बहे ।

2 'अर बीच-बीच बैडी रा बैहडा वज्रवेग **बानैत** वीराँ रै सस्त्रा रो सपात मचियो ।'[4]

3. दुहुँ ओर के बीर **बानैत** तडै ।[5]

'आईने अकबरी' मे खग से नाना प्रकार के खेल दिखाने वालो के लिए'बाना-इत' का प्रयोग हुआ है[6], परन्तु वह डिंगल-काव्यो मे प्रयुक्त 'बानैत' का पर्याय नही है, जिसका अर्थ है योद्धा या शूरवीर ।

मुख-मुख = जिधर-तिधर ।

राजस्थानी टीका—कवी कहे एकण जोधार विना फौजारा आदमी उँण आदमी री आस उणरा वसरणा याद करै हे तो नेसासा न्हाकता जीव जावै है, उण एक वानैत-जोधार रै विना जठी-जठी फौज री अणी पाछी मुडै है ।।इ०।।

रखे पधारौ रावता, नमक धणी रौ नाख ।
जम री पडमी पास जद, ऊघडसी तद आँख ।।129।।

व्याख्या—हे सरदारो ! (योद्धाओ) कही ऐसा न हो कि स्वामी के साथ निपट नमकहरामी कर युद्ध से भाग आओ (अथवा, हे योद्धाओ ! स्वामी के

---

1. गीत राव जगन्नाथ, जसवन्तौत आमभरा रौ रा वी गी स.,भाग 2, पृ० 61
2. राजरूपक, पृ० 250
3 वशभास्कर, षष्ठ राशि, एकादशमयूख, पृ० 2335
4 वही, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2666
5. वही, पृ 2967
6. आईने अकबरी, आईन 6, पृ. 186; अनु. श्री हरिवशराय शर्मा ।

खाए नमक की लाज को दूर फैंक युद्ध से भागकर न आओ) । याद रखो, जब यमराज का पाश तुम्हारे गले मे पड़ेगा, तब तुम्हारी आँख खुलेगी ।

अर्थात् जब मृत्यु तुम्हारा कठ पकडेगी, तब तुम्हे यह सोचकर घोर मनस्ताप एव पश्चाताप होगा कि अ तत मरना तो था ही, उस दिन युद्ध से भाग आए तो भी मृत्यु तो आ पहुँची, किन्तु स्वामी के साथ जो कृतघ्नता की, उसके कलक का टीका हमेशा के लिए हमारे सिर पर लगा रह गया । अत उस दिन की याद कर स्वामी के साथ नमकहरामी न करो ।

डा० सहलजी व स्वामीजी आदि सपादको ने दोहे की दूसरी पक्ति की व्याख्या यो की है कि जब तुम्हे नरक-यातना भोगनी पडेगी, तब तुम्हे अपनी नमक-हरामी का पता चलेगा । परन्तु हमारी समझ मे 'जम री पास' का अर्थ 'मृत्यु' या 'मृत्युबधन' है, न कि मृत्यु के अनन्तर प्राप्त नरक-यातना । इसी भाँति 'आँख उघडने' का सम्बन्ध भी इसी लोक मे मरण काल मे होने वाले कृतघ्नताजन्य सताप या पश्चाताप से है—मृत्यु के पश्चात् मिलने वाली नारकीय यत्रणा या उसके फलस्वरूप उत्पन्न बोध से नही ।

शब्दार्थ—रखे = ऐसा न हो कि । यथा —

1 पीदे किसडी सी, अटकली, आ तो मजूरणी न हुवै । **रखै** नरसिंघ वाली साथली हुवै ।[1]

2. वडौ धिणी नॉ **रखै** बिसारै, आप तणौ जे प्राण उधारै ।[2]

रावतां = शूरवीर सरदारो । सरदारो व सामतो के लिए प्रयुक्त आदरसूचक उपाधि, भावार्थ मे योद्धाओ । । **नमक नाख** = स्वामी के नमक की लाज को फैककर; अर्थात् स्वामी के साथ नमकहरामी कर । **जम री पास** = मृत्यु, मृत्यु कष्ट या मृत्युबधन । डिंगल-कवियो ने 'जम री पास' या 'जमपास' (यम-पाश) को प्राय मृत्यु या मृत्यु-बधन (आवागमन-जन्य दु ख) के अर्थ मे प्रयोग किया है । यथा —

1 ग्रभवास टाळै परा **जम वाळा प्रास** ग्यान,[3]
आपरा पगा री राखै पीरदास आस ।

2 साहिबा रै सहि थारौ सारौ, वडा धिणी **जंम प्रासै** वारौ ।[4]

---

1. मारवाड रा परगना री विगत, पृ० 493: स० डा० नरायणसिंह भाटी ।
2 पीरदान लालस ग्रन्थावली, पृ० 1· स० श्री अगरचन्द नाहटा ।
3. पीरदान लालस ग्रन्थावली, पृ० 99
4. वही, पृ० 100

'जम पाश' (मृत्यु) के समान डिंगल-कवियों ने 'जामण पास' का भी प्रयोग किया है, जो जन्म-बंधन का वाचक है —'प्रमेसर टालिजै जामण पास'[1]

'यम-यातना' के लिए कवि ने 'जम्म प्रहार' का प्रयोग किया है —

प्रभूजी ! टालिजै **जम्म प्रहार** ।[2]

अत 'जम री पास' का अर्थ 'मृत्यु या मृत्यु-बंधन ही' उपयुक्त प्रतीत होता है ।

जद = जब । **ऊघडसी** = खुलेगी (स० उद्घाटित) । **तद** = तब ।

राजस्थानी टीका—एक कोई जोधार घावा पडियौ फौज ने भलावण देवै है–रावता ! धणी रा लूण खाया री लाज झगडा मे न्हाक ने भाग आवौ हौ , देखजो, मरणौ तो है इज, पछै मरता जमराज री पासी पडसी तद याद आवैला कै जिण दिन नही मारीजिया तो ही मरणौ तौ ऊपरै ऊभौ हौ सो आयगयौ ने भागा तिण रौ कुजस रौ टीकौ सिर पर लागगौ सो रह गयौ–आ मरसौ जद आख उघडसी ॥इ०॥

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरिया आय ।
मरणौ घर रै माझिया, जम नरका ले जाय ॥130॥

व्याख्या—जो अवसर आने पर मृत्यु का आलिंगन करते है, वे इस लोक मे सुयश और परलोक मे प्रभुत्व के भागी होते हे । तद्विपरीत, घर मे मरने वालो को यमराज नरक मे ले जाता हे ।

शब्दार्थ—अठै = यहाँ, इस लोक मे (स० अत्र) । **उठै** = वहाँ, परलोक मे । **अवसर आय मरिया** = अवसर आने पर मरने से । **माझिया** = मे (स० मध्य) ।

विशेष—तुलनीय —

हतो वा प्रप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।[3]

राजस्थानी टीका—फेर वोहीज घावा मे पडियौ वीर फौजरा जोधारा ने सिक्षा देवै छै —

हे जोधारा ! जुद्ध मे काम आवै स्यामधम्म सू तथा घर रा वा कोई और तरह सू तौ अठै जगत मे तो सुयस अर उठै सुरग मे प्रभुता—वडाई, अवसर माथै मारिया थका, अने हे माझिया ! घर मे मरिया सूं नौ अवस ही जमराज हीज नरकाँ

1. हरिरस, महात्मा ईसरदास-रचित, पृ० 54 स० श्री ब० प्र० साकरिया ।
2. वही ।
3. श्रीमद्भागवद्गीता,

मे लेजासी । कारण, कै सरीर सू अनेक प्राचत वण आवै तिकै और कोई तरै सूं उतरै नही ने जुद्ध रै धारा तीरथ मे सह पाप धुप जावै अनें सरीर निकलक होय जावैं छै–इण मे गीतारो भी एक श्लोक है—

(यद्रच्छया चोपपन्न, स्वर्ग द्वारा मुपावृत ।
सुखीन क्षत्रिया पार्थ लभन्ते युद्धमिदृश ।।

।विना ही इच्छा जो युँद्ध उत्पन्न हो, मारीजै तो स्वर्ग रा दरवाजा पास पहुचै सो हे अर्जुन ! क्षत्रिया ने तौ सुख युद्ध जिसौ दूजी कोई तपमा मे नही मिलै) ।

इण वासतै स्यामध्रम पाल जुद्ध मे मरजो और सत्रुआ ने मारजो ।।इ०।।

भल बाहौ, वाहौ भडा, आय खडो हूँ एक,
आवध म्हारौ ओडिया, वणै न वार विवेक ।।131।।

प्रसंग—किसी युद्धरत शूरवीर की प्रतिपक्षी योद्धाओ को चुनौती –

व्याख्या—हे सुभटो ! वार करो और खूब जी भर कर वार करो, मैं अकेला तुम्हारे सामने आ खडा हूँ । याद रखो, जब मै प्रहार करूँगा तो मेरे शस्त्र को झेल लेने पर तुम्हे पुन वार करने का कुछ भी विवेक नही रहेगा । अर्थात् मेरे एक ही वार से तुम सज्ञा-शून्य हो धराशायी हो जाओगे, अत पहले स्वय वार कर अपने मन की निकाल लो ।

शब्दार्थ—**भल** = भली प्रकार, खूब । **बाहौ** = वार करो, तलवार चलाओ । **भडां** = हे सुभटो ! योद्धाओ ! **आवध** = शस्त्र (स आयुध) । **ओडियां**= झेल लेने पर । ओडणौ = झेलना, सहन करना । उदा० –

अचलेस भुजै **ओडवै** भार ।[1]

वणै न...... **विवेक** = जवाबी वार करने का विवेक नही रहेगा । अर्थात् निस्सज्ञ हो धराशायी हो जाओगे । अथवा, उस समय कुछ सोचते नही वनेगा ।

राजस्थानी टीका—कोई एक जोद्धार जुद्ध करता सत्रुआ ने कहै छै–हे भडा !–जोधारा ! थाने माहरी दुआइती है, सो थारा ससतर भलाई वाह्यलो, अने औ हूं एकलौ थारै सामने आयने खडौ हू–अने थे कहौ कै थू वाह कर तो म्हारौ सस्तर लागा पछै दुजी वेळा पाछौ वार करण रौ विवेक थाने होसी नही ।।इ०।।

केथ पधारौ ठाकुरा, मरदा नैण मिलाय ।
फरती रा लीधा फिरै, धरती रा धन खाय ।।132।।

व्याख्या—हे ठाकुरो ! मर्दों से आँखे मिलाकर अब कहाँ जारहे हो ? अर्थात् शूरवीरो के सामने पडकर अब तुम विना युद्ध किए क्यो खिसक रहे हो ?

---

1 गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 224

क्या तुम जानते नही हो कि वेश्या से उत्पन्न वर्णसकर ही इस प्रकार दुनिया भर का माल खाकर युद्ध से मुँह मोडते है। [शुद्ध कुलोत्पन्न क्षत्रियो का यह लक्षण नही है' वे जिसका अन्न खाते है, उसके लिए अपने प्राण देकर ही उऋण होते है] ।

अन्यार्थ—दोहे की दूसरी पक्ति का टीका मे– 'फर तीरा लीधाँ फिरै, धरती रा धन खाय' पाठ मानते हुए यो अर्थ किया गया है —

[हमारा पीछा करने आये हुए] हे ठाकुरो ! मर्दो से आँखे मिलाकर कहाँ जा रहे हो ? जानते नही हो, जो सदा ढाल ('फर') और तीर लिए घूमते है, सतत रणोद्यत रहते है, वे ही इस पृथ्वी की सपदा का उपभोग करते है—कायर नही ।

टीका के अर्थ मे 'फर तीरा' को विभक्त कर, 'फर' का अर्थ 'ढाल' किया गया है । टीका के उक्त पाठ की दृष्टि से यह अर्थ भी सगत है, क्योकि 'फर' या 'वडफर' ढाल का वाचक है । यथा —

आणी असह जडाली आहुव, फूटती धोह मे **फर** ।[1]
तथा– वेफर जाणि **वडफर** बध ।[2]

परन्तु हमारे विचार से 'फरती रा लीधा' पाठ ग्रहण करते हुए 'फरती' को एकात्मक शब्द मानकर अर्थ करना अधिक सगत है, जैसाकि 'वीर सतसई' के प्रकाशित सस्करणो मे किया गया है ।

शब्दार्थ—केथ = कहाँ । **फरती** वेश्या, फरती रा लीधा = वेश्या द्वारा धारण किए हुए अर्थात् वर्णसकर । **फिरै** = मुडते, लौटते या भागते है ।

राजस्थानी टीका—कोई धाडायती सूरवीर आपरै दुसमणा नै कहै है—हे वाहर कर आयने पूगोडा जोधारा ! पाछा कठै पधारो ? मरदा सू चौनिजर हुवोडा कोई विना घावा जाय सकै नही, नै थे मो पासे धन देख वाहर कर आया सो फर (ढाल' ने तीरा—तीर लीधा आपरै भुजाआ रै भरोसै हा जकण रै हीज पाण धरती रा धन खावा हा ने जके ढाल तीर लीधा फिरै तिकै धरती रा धन खामी, कायरा रै हाथै न आवै ।।६०।।

बन्न सुणायौ बीद नूं, पैसना घर आय ।
चचल साम्है चालियौ, अंचल बध छुडाय ।।133।।

व्याख्या—विवाह के अवसर पर मडप-गृह मे प्रवेश हेतु पैर रखते ही वर को युद्ध का नगाडा सुनाई पडा । फिर क्या था, एक क्षण का भी विलम्ब किए विना वह शूरवीर अपनी प्रिया का अचल-बध छुडा कर अश्व की ओर बढ गया, युद्ध के लिए चल पडा ।

---

1. महाराणा कुभा रौ गीत ।
2. बिन्हैरासो, पृष्ठ 46

विशेष—भाव यह है कि सामान्य व्यक्ति प्राय नारी-सौन्दर्य, अथवा नारी-आसक्ति के वशीभूत हो युद्ध छोडकर भाग आया करता है, परन्तु सच्चा शूरवीर, नारी के मोह की बात तो दूर, उसका मुँह देखे बिना ही, यहाँ तक कि पाणिग्रहण के अवसर पर भी युद्ध का आह्वान सुन चल पडता है। उपर्युक्त दोहे को अक्षरश· चरितार्थ किया था वीरवर पाबू राठौड ने, जिसका दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है। रा० टीकाकार ने तो इस दोहे को पाबू राठौड पर हो घटित कर अर्थ किया है, जो सर्वथा सभाव्य है। डिंगल-कवियो ने वचन-धनी पाबू राठौड की अप्रतिम वीरता पर मुग्ध हो एक से एक अनूठे गीत और प्रबन्ध काव्य रचे है। उनमे से कुछ गीत-पक्तियो के उदाहरण प्रस्तुत करने का लोभ मै सवरण नही कर सकता—

1. नेह निज रीझ री बात चित ना धरी,
   प्रेम गवरी तणो नाहि पायौ।
   राजकँवरी जिका चढी चवरी रही,
   आप भँवरी तणी पीठ आयो ॥

2 प्रथम नेह भीनो, महाक्रोध भीनो पछै,[1]
   लाभ चमरी समर झोक लागै।
   रायकवरी वरी जेण वागै रसिक,
   बरी घड कँवारी तेण बागै ॥
   हुवै मगल धमल दमगल बीर हक,
   रग तूठो कमध जग रूठो।
   सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड सिर,
   विपम उण मोड सिर लोह बूठो ॥

3. [देवल वायक—]
   1. अलगौ पड उतमग, धड अलगौ पडियौ धरण।[2]
      जबरौ कीन्हौ जग, भालाला ल्यू भामणा ॥
   2. समप्यौ मोनू सीस, तैं पाबू धाधल तणा।
      वसुधा कोड वरीस, कुण थारी समवड करै ॥

वीरवर पाबू राठौड के साथ-साथ, धन्य है वह ऊमरकोट की राजकुमारी सोढी जिसने अपने पति का मुँह देखना तो दूर, केवल कुछ ही क्षणो के कर-स्पर्श से उसके साथ सती हो अपने प्रणय को अमर कर दिया! डिंगल-कवि ने उसे भी अपनी सिर आँखों पर उठा लिया —

---

1. कविराजा बाँकीदास, बॉकीदास ग्रन्थावली, भाग 3, पृ० 99,
2 पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत, 287-289

सोढी तन मन सेर, अगन जलण री आदरी ।[1]
ले हाथा नालेर, पाल लार दे पामडा ।।
पत सू जौडण पाण, चवरी दे सहको चलै ।
स्रग जावण सुरताण, काठा दिश तू हिज क्रमै ।।

सूर्यमल्ल के उपर्युक्त दोहे का मर्म समझने के लिए वीरवर पाबू राठौड के जीवन-वृत्त से बढकर कोई सुन्दर टीका हो नही सकती !

शब्दार्थ—बंब = नगाडा । **सुणायौ** = सुन पडा । **बींद नूं** = वर को । **पैसंता** = प्रवेश करते समय । **चंचल** = अश्व । यथा—

अंतरीख मग उरस **चंचल** सातहमुख चालै ।[2]

साम्है = सामने । **अंचल-बंध** = पाणिग्रहण के अवसर पर वर के वस्त्र-छोर को वधू के आचल से गाँठ लगा कर बॉध दिया जाता है, जिसे 'गठजोडो' कहते है । परिणय के साथ होने वाले वर-वधू के मनोमिलन का यह वाह्य प्रतीक है !

राजस्थानी टीका—पाबूजी री वीरता रै विषै कवी कहै है कि उँण महावीर पाबू ने पार–दुसमणा रौ बब बीद ने घर मे पग पैसता–वडता सुणीजियौ, उण हीज वेला अचल–कपडा रै गॉठ ही, तिका छूडायनै चचल–घोडा ने दुसमणा री फौज ऊपरै सबाह्यौ । इण मे वीरता आ है कै स्त्रीया रा मोह वासतै घणा घणा जुद्ध छोड भाग आवै, पण पाबू स्त्री रौ मुख ही न दीठौ नै तरवार रै धारा तीरथ मे स्नान कर सती सहेता सुरगवास कीधौ ।।इ०।।

बाज कुमैत बिसासतौ, धीमै बेग धपाय ।
वाभी तोरण वीद तिम, जोवौ देवर जाय ।।134।।

व्याख्या—देवरानी का जेठानी के प्रति उक्ति—

हे भाभी ! देखो, अपने कुमैत रग के अश्व को प्यार से थपथपाते हुए तथा उसे मद-मस्त गति से चलाते हुए आपके देवर रणभूमि की ओर इस शान से जारहे है, जैसे दूल्हा तोरण मारने जाता है ।

शब्दार्थ—बाज = अश्व (स० वाजि) । **कुमैत** = स्याही लिए लाल रग का घोडा । **बिसासतौ** = विश्वास या धीरज बँधाते हुए, अर्थात् प्यार से थपथपा कर उसे आश्वस्त करते हुए । **बेग** = गति, चाल । **धपाय** = चलाकर । यहाँ धपाय का अर्थ 'तृप्त करके या सन्तुष्ट करके' नही है, जैसा कि श्री डा० सहलजी आदि सपादको ने अन्यार्थ मे तथा श्री स्वामीजी ने मुख्यार्थ मे किया है । प्रत्युत, 'धपाय' का अर्थ यहाँ 'चलाकर' है । 'धपाणौ' का 'चलाने' के अर्थ मे डिंगल–काव्यो मे प्रचुर प्रयोग हुआ है । यथा —

---

1. पाबू प्रकाश, पृष्ठ 333
2. सूरजप्रकास ।

नीडा रहात गोगादेव हु'ता घपाई इत धार ।[1]
रतधार जी रतधार घापी रलतली रत धार ।

स्वय सूर्यमल्ल ने 'तलवार चलाने' के अर्थ मे' धपाई असि' का प्रयोग किया है –
'सभर नरेस ककन सहित अभिमुख झेलि धपाइ असि ।[2]

जोवौ = देखो ।

विशेष— डिंगल-काव्यो मे युद्धार्थ प्रस्थान करते शूरवीर की उपमा तोरण पर जाते हुए बीद (दूल्हे) से दी गई है, जो मन मे उमग लिए मस्ती मे झूमता, इठलाता जाता है ।

राजस्थानी टीका—जिण वखत पाबू जी जुद्ध सारू वहीर हुवा तठै निसक जावता देख सोढीजी (डोडगहेली, बूडाजी रै स्त्री नै कहै छै) देखो ! वाभीजीसाह ! ताहरै देवर कुमैत वाजराज नै बिसासता, धीमे वेग निसक सत्रुआं पर धकाया है सौ जाणै वभीसा ! तोरण माथै वीद ज्यू' थारौ देवर सोलौ चढियोडा जाय रया छै—औ दोहौ कोई जोधार रो छै, पण पाबू जी रौ उदाहरण ठीक फबै जिण सू नाम लिखीयौ छै ।।इति।।

होवै घर घर हाय रे, रोवै बर बर नार ।
वाभी ! देवर नू' कहौ, अब तो रोस उतार ।।135।।

प्रसंग—वीराङ्गना (देवरानी) की जेठानी के प्रति उक्ति.—

व्याख्या—हे भाभी ! आपके देवर द्वारा युद्ध मे किए गए भयकर नर-सहार के कारण घर-घर मे हाहाकार मच गया है तथा बिलख-बिलख कर नारियाँ दिवंगतों के शोक मे क्रन्दन कर रही है । अपने देवर को समझाइये कि अब तो वे अपना क्रोध शान्त करे ।

शब्दार्थ—**बर बर** = (क्रिया वि) बिलख बिलख-कर रोना; विलाप करना ।
उदाहरण—

अगणित अबलावा छावां जुत आई,[3]
निरमल नैणा जल बलबल बिललाई ।

यदि इसे 'नार' का विशेषण माने तो अर्थ यो भी किया जा सकता है कि भली-भली कुलाङ्गनाएँ विधवा होने के कारण रो रही है । परन्तु ऊपर दिये गए इस शब्द के प्रयोग के उदाहरण को देखते हुए इसे क्रियाविशेषण मान कर अर्थ करना अधिक सगत होगा, जैसाकि श्री स्वामीजी ने किया है । डा० सहलजी आदि सपादकों ने द्वितीयार्थ ग्रहण किया है । राजस्थानी टीकाकार द्वारा किया गया इस शब्द का अर्थ तो बिल्कुल असगत है ।

---

1 वीरवाण, पृ० 60, सपादिका श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूँडावत ।

2, वशभास्कर, पचम राशि, नवम मयूख, पृ० 1787,

3. ऊमर काव्य (छपना रो छद) पृ० 373,

नर-नारिया ।

विशेष—इसमे शत्रु-स्त्रियो के अनवरत चीत्कार द्वारा परोक्षत. वीर के शौर्य की व्यजना हुई है । ध्वनि यह है कि वीर द्वारा निरन्तर शत्रु–सेना का सहार किए जाने के कारण घर-घर मे स्त्रियाँ विधवा होगई है ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर री स्त्री पती री पौरप देख आपरै जेठाणी ने कहै छै–हे बाभीजीसा ! अब आपरा देवर नै पाल देरावौ जिका सत्रुआ सू वैर हौ बाने मार नाखिया अने दुसमणा रै घरोघर अबै हाय हाय शबद होय रहियौ छै अने वर घर रा धणी नै वरवा वरा री नार-लुगायां सब रौवै तिणरी म्हनै दया आवै छै, सो आपरै देवर नें कहौ अबै रोस छोड दै ।।ई०।।

ईखौ घर घर ऊतरै, चूडा भूखण चीर ।
दया न मानै दोयणा, बाई ! थारौ बीर ।।136।।

प्रसग—वीर-पत्नी अपनी ननद से कहती है—

व्याख्या—देखिए, घर-घर मे सौभाग्य-चिह्न चूडा, आभूषण एव सुरगे वस्त्र स्त्रियो के शरीर पर से उत्तर रहे है (घर-घर मे शत्रु-स्त्रियाँ विधवा होगई है) तो भी, बाईजी ! आपके भाई शत्रुओ पर दया नही करते । [ध्वनि यह कि शत्रु-पत्नियो के वैधव्य का यह दु ख मुझसे देखा नही जाता । कृपा कर अपने भाई को समझाइए कि कम से कम इन पर तो दया कर यह नरसहार बन्द करे ।]

शब्दार्थ—**ईखौ**=देखो (स ईक्षण) । **भूखण**=आभूषण । **चीर**=वस्त्र, सौभाग्य के परिधान । **दोयणा**=शत्रुओ पर । (स दुर्जनो) । उदा –

फौजा देख न कीधी फौजा,[1]
दोयण किया न खला डला ।

थांरौ=आपका । **बीर**=भाई ।

राजस्थानी टीका—और आपरी नणद ने ही कह रही छै–घरोघर सत्रुवारी स्त्रिया रा चूडा गैहणा चीर ऊतरै छै सो मोने दया ही न आवै छै – बाईजी साहब आपरै भाई नें दया ही न आवै, सो आप अबै वरज देवौ, अबै आने नही मारैज्यू ।।इ।।

बाभी ! हेकण वैर मे, बोलविया दस बीस ।
अब तो देवर ओहडौ, सचै भार न सीस ।।137।।

व्याख्या—हे भाभी ! आपके देवर ने एक बैर का बदला लेने के साथ-साथ दस-बीस और भी शत्रुओ को मार गिराया है । कृपा कर अब तो अपने देवर को रोकिए कि सिर पर और अधिक (नर-सहार का) बोझ न बढाएँ ।

---

1. कविराजा बाँकीदास, बाँकीदास ग्रथावली, भाग ३, पृ. 105,

शब्दार्थ—हेकण = एक । उदा —

ईषे तूंभ कमल ऊदावत,[1]
जनम तणो गो पाप जुवौ ।
हेकण बार ऊजला हीदू
हर मूं जाण जुहार हुवो ।।

बोलविया=मार गिराए ? (संभवत 'वोलावण' से) यथा— 'पचासां **बोलावियां** आघे आध वाढ उतारिया[2], अथवा पहुँचा दिए ? या 'बैर' के सदर्भ मे ले लिए । **ओहडौ**=रोको, **ओहडणौ**=रोकना, टोकना । **सचै**=संचय करे । भार=व्यर्थ के नर-सहार का बोझ ।

राजस्थानी टीका—देवर आपरै वाभी ने कहै छै,–हे वाभी ! म्हे एकण वैर मे म्हे म्हारै जोधारा वैर मे दस बीस 200(10 × 20), वा लोकीक रा कथन सू, दशवीश सत्रुआ रा सीस ले लीधा है—और हाल वलै छोडूं नही—तद वाभी ने देया आई, सत्रुआ रीं, सो कयौ–देवर अवै तो मत मारौ, म्हे जाण लीधा । सत्रुआ रा सिर ले सचौ करता थाने कोई भार नही ।। इ० ।।

टिप्पणी—दोहे के अतिम चरण का टीकाकार द्वारा किया गया अर्थ हमे असगत प्रतीत होता है ।

कह पथी जिण गाम धण, फाटक घर न जुडाय ।
अब तो चूडौ ऊबरै, सूर धणी समभाय ।। १३८ ।।

व्याख्या—हे पथिक ! सुनो, जिस गॉव मे कोई वीर-प्रिया अपने घर का फाटक बद न करती हो (अर्थात सदा खुला रखे हुए ही निर्भय, निश्शक सोती हो) उससे मेरा यह निवेदन करना कि अब तो कृपा कर अपने शूरवीर पति को समभाए ताकि मेरा चूडा (सुहाग) बच जाए ।

ध्वनि यह कि जो स्त्री अपने घर का द्वार खुला रख कर सोती होगी, उसका पति निश्चय ही पराक्रमी होगा । ऐसे ही समर्थ शूरवीर की पत्नी को शत्रु-स्त्री यह सदेश कहलाती है, ताकि उसका पति युद्ध मे मारा न जाए ।

शब्दार्थ—**धण**=स्त्री, वीर-पत्नी । **ऊबरै**=बच जाए; चूडौ ऊबरै अर्थात् सुहाग बना रह जाए ।

विशेष—अपने घर का फाटक खुला रखकर सोना वीर की निर्भयता

---

1. महाराणा प्रताप के प्रति, महाराणायशप्रकाश, पृ० 84
2. खीची गगेव नीबावत रो दो-पहरो, रा० सा० स० भाग1, पृ० 13, स० श्री नरोत्तमदास स्वामी ।

का प्रमाण है । सूर्यमल्ल वीर के इस आचरण पर मुग्ध हैं, जिसका उन्होने वश-भास्कर मे भी उल्लेख किया है । यथाः—

आज निसा न जडो अरर, रुपणो मोनूँ रग[1]

राजस्थानी टीका—एक कोई सूरवीर री स्त्री आपरै पती नै समझास करण सारू कोई पथी ने पूछै है—हे पथी ! मोनै आ बात कह जिण गाम रै माहै कोई अँडी सूरवीर री स्त्री है, जो रातरा डर सू घर री फाटक (किमाड) नही जडै अनै आपरा पतीरा आपाण रै भरोसै निरभै रहै तो अबै ही तौ चूडौ ऊबरै अनै हू ही इण म्हारे सूरवीर धणी ने कहूँ की जगत मे वले ही सूरवीर है सो आपने अबै मानणो वाजब है ।।ई०।।

> भीडै पलटाणा भिडज, नीडै धण नालेर ।
> नाह ! इसा घर नू तणा, आप घरॉ जल देर ।।139।।

व्याख्या—हे नाथ ! जहाँ पुरुष तो बारी-बारी से बदले हुए— नए और ताजे घोडो पर जीन कसते हो (लडने हेतु सतत उद्यत रहते हो) तथा स्त्रियाँ नित्य नारियल अपने समीप रखती हो (सती होने हेतु सदा उत्कठित रहती हो)—ऐसे घरो को यदि युद्ध का निमत्रण देना हो तो पहले अपने घर को जलाजलि दे देनी चाहिए ।

भाव यह कि जिस घर मे वीर और वीराङ्गनाएँ, दोनो ही हर क्षण मरने हेतु उद्यत रहते हो, ऐसे घरो को युद्ध की चुनौती देना अपने घर का सर्वनाश करवाना है । वीरता और शौर्य के आश्रय, ऐसे घरो को छेडने से पहले अपने घर को जलाजलि दे देनी चाहिए, क्योकि बाद मे तो कोई जलाजलि देने वाला बचेगा नही ! अत अपने हाथो पहले ही जलाजलि देकर पितृ-तर्पण के दायित्व से उऋण हो लेना चाहिए ।

शब्दार्थ--**भीडै** = कसते है (जीन) । **पलटाणा**=बारी–बारी से बदले हुए । जब युद्ध मे एक घोडा थक जाता है तो उसे बदल कर दूसरे–नए और ताजे ('आसूदे') घोडे पर जीन कस ली जाती है । इस प्रकार योद्धा बारी-बारी से घोडा बदलता रहता है । भावार्थ मे यह योद्धा के लडने हेतु हर क्षण उद्यत रहने का ज्ञापक है । **भिडज**=घोडे । **नीडै**=निकट रखती है (क्रिया-रूप मे प्रयुक्त) । **नूंतणा**=निमत्रण देना । **जल**=जलाञ्जलि । **देर**=देकर ।

राजस्थानी टीका—फेर आहीज स्त्री आपरै पती नै समुझाय नै कहै छै—हे पती ! जको पुरष पलटियोडौ आपरा घोडा ने भीडै—घोडै पिलाण करै और घर रा धणी ते जुद्ध सारू न्याले र नीडै जोयने लेवै है, सो हे धणी ! इसा सूरवीर

1. वशभास्कर, चतुर्थराशि, पचत्रिंश मयूख, पृ० 1614,

घरा ने छेड़णा ठीक नही क्यू कि अैडा घर ने जुद्ध रौ निवतौ देवणौ आपरा घर मै जल (पाणी) देणौ है—इण कारण अरज मान घणौ वैर वसावणौ आछौ नही ।।इ०।।

सुत धारा रज रज थियौ, बहू बळबा जाय ।
लखिया डूगर लाज रा, सासू उर न समाय ।। 140 ।।

व्याख्या--बेटा तो तलवारो से कटकर टुकडे–टुकडे होगया तथा बहू सती होने जारही है । लाज के पर्वतरूप--अपने वीर पुत्र और पुत्रवधू को देखकर सास गर्व से फूली नही समाती ।

शब्दार्थ—धारां=तलवारो । **रज रज**=कण-कण, टुकडे–टुकडे । मिला–इए--रण कटिया **रज–रज** हुवा, रज मह मिल्या बहूत ।[1]
हेली ! कीकर ओलखा, रज है कै रजपूत ।।

थियौ=होगया । **बळबा**=जलने अर्थात् सती होने हेतु । **लाखिया**=देखने पर, देखकर । **लाज रा डूगर**=लाज के पर्वतरूप, अर्थात् कुलमर्यादा या कुलगौरव की रक्षा करने मे जो पर्वत के समान अटल व अजेय है । अथवा जो कुलगौरव के विराट् और मूर्त पर्वत है । डिगल–काव्यो मे कुलमर्यादा के रक्षक ऐसे वीरो के लिए 'लाज रा डूगर' या 'लाज रा कोट' आदि प्रशस्तिमूलक उपाधियो का बहुधा प्रयोग हुआ है । यथा —

बडे मन मोट मेवा–धरा चोट वलि,[2]
लाज रै कोटि डू ढाडि लाई ।

श्री स्वामीजी ने इस पक्ति मे निहित सास के हर्ष–गर्वित भाव को न समझ इसका अर्थ यो कर दिया है "यह देखकर सास के हृदय मे लज्जा के पहाड उत्पन्न होते हैं, जो हृदय मे नही समाते (यह देखकर कि सती होने का सौभाग्य अभी तक उसे नही मिला, सास के हृदय मे अपार लज्जा उदित होती है)" । यह अर्थ भ्रान्त है । यहाँ सास के हृदय मे लज्जा-भाव का उत्कर्ष दिखाना कवि का उद्दिष्ट नही है । अपितु, अपने पुत्र व पुत्रवधू के वीरोचित आचरण के फलस्वरूप सास के हृदय मे उमडते गर्व एव असीम मनोल्लास की व्यजना ही कवि का अभिप्रेत है ।

राजस्थानी टीका—कवी एक वीर माता रौ वरणण कर कहै छै कि जिण रौ पुत्र तौ जुद्ध मे रज-रज होय कट पडियौ छै ते लारै वहू वलण (सत करण) नै जावै छै सो सासू वहूरी ने बेटारी वीरता लाज रा डूगर देखै है, तिणरौ हरष

---

1 वीर सतसई श्री नाथूसिहजी महियारिया पृ० 210 ;

1 गीत रावराजा फतैसिघ नरूका, उणियारा रौ, रा वी गी स. भाग 2, पृ० 39

हियां मैं समाव नही छै-अर्थात घर सारौ पूरौ होवै तरै हर मिनष घबरावै पण आ वीर माता आप रा घर मे इसा कुल सुद्ध सूरवीर देख राजी होवै छै ॥इ०॥

खाटी कुल री खोवणा, नेपै घर घर नीद ।
रसा कँवारी रावता, बीर तिकोही बीद ॥141॥

व्याख्या—अपने कुल की अर्जित भूमि को खोने वालो! तुम्हारे यहाँ तो आजकल घर-घर मे नीद की ही पैदावार बढ रही है (अर्थात् अपने पूर्वजो की बाहुबल से अर्जित भूमि को रणखेती द्वारा निरन्तर समृद्ध करने की अपेक्षा तुम आलस्य और प्रमाद मे लीन रह कर केवल नीद की ही उपज बढा रहे हो.) । परन्तु हे सरदारो ! यह पृथ्वी तो चिर कुमारी है, जो वीर होता है, वही इसका वरण करता है । (अत यदि तुम यह सोचते हो कि विषय-वासना और आलस्य मे लीन रहकर भी तुम इसके स्वामी बने रहोगे, तो तुम भ्राति मे हो । याद रखो, इस पृथ्वी का कोई स्थायी स्वामी नही होता । जिस प्रकार कुमारी कन्या का कोई भी वरण कर सकता है, उसी भाँति बाहुबल का धनी कोई भी वीर और पराक्रमी इस पृथ्वी को बलात् अधिकृत कर इसका उपभोग करता है । केवल 'भूपति' होने मात्र से तुम इसके 'पति' नही रहोगे । यह पृथ्वी तो केवल वीरो की भोग्य है, आलसी, अकर्मण्य और कायरो की नही) ।

शब्दार्थ—खाटी=अर्जित या अधिकृत की हुई (भूमि, सपदा) । अपने बाहुबल से भूमि जीतने या अधिकृत करने को मध्ययुगीन डिगल-शब्दावली मे 'धरती खाटणो' कहा जाता था । यथा— 1 "आज तो काकै भतीजै रै सला हुवै है सू इसी दीसै है कोई नवी धरती खाटै [1]

2 खागरौ **खाटियौ** आप खाय ।[2]

3 तरै इणै कह्यौ—आगली धरती थे **खाटी** थी, नै अठा वासली धरती थारै मायत नै म्हारै मायत भेली खाटी थी, म्हे अठा थी खिसा नही ।[3]

नेपै=1 उपज या पैदावार (सज्ञा) 2. उत्पन्न करते है, लेते हैं (क्रिया) उपज या पैदावार के अर्थ मे इसके प्रयोग की एक राजस्थानी लोकोक्ति है—गाँव की नेपै तो बाडा ही बतादे । **रसा**=पृथ्वी । **रावतां**=सरदारो । विद्वद्वर श्री डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस शब्द पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"राजा के

1, दयालदास री ख्यात, पृष्ठ 1
2 पाबू प्रकाश (बडा), आशिया मोडजी-कृत, पृ० 51
3 राव मालदे री बात, ऐतिहासिक बाता, पृ० 42, स० डा० नारायण-सिंह भाटी ।

अति निकट सम्बन्धी और विश्वासपात्र सरदार 'रावत' कहे जाते थे।" [1]
तिकोही=वही। **बीद**=पति, स्वामी।

विशेष--डा सहलजी आदि द्वारा सपादित वीर सतसई मे इस दोहे के अ तिम चरण का पाठ 'बरती को ही बीद' है, जो अशुद्ध है। तद्विपरीत, इस चरण का शुद्ध पाठ 'बीर तिकोही बीद' है, जैसा कि टीका मे है तथा जिसे हमने स्वीकार किया है।

पृथ्वी चिर कुमारी है, इस आशय के प्रयोग डिंगल-काव्यो मे प्रचुर हुए हैं। यथा--

1 वर केता वौलिया, कलह केताइ कुनारी।
पुरख न परणी किणिह, आद जुग्गादि कुआरी।[2]

2 धूतारी कु आरी नारी सदारी ठगारी धरा
तिका ताबा पत्रा पाता समापी अजीत।[3]

मुस्लिम कवि जान ने भी दिल्ली को लक्ष्य कर कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त किया है --

अनत भतारहि भख गई, नैंकु न आई लाज।
येक मरै दूजै धरै, यहै दिल्ली को काज॥[4]

तथा वीर ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं—यह 'वीर भोग्या वसु धरा' से स्पष्ट है।

राजस्थानी टीका—एक वीर माता आपरा पुत्ररौ आलस देखनें कहै है अरे पुत्र! थारा सूरवीर माईत हुवा तिका कुल वाला री खाटियोडी जमी तिणरी नेपे—बेटा थारी आलसपणा री नीद है सो खोय देसी ने रसा- प्रथी सदा कवारी है, सो वीर हुवै जिकोई इणरौ वीद – धणी है। थू' जाणै हू धरती रौ धणी हू सो धणी री परणेता लुगाई न जावै ज्यू धरती न जावै, पण धरती तौ कवारीज है, सो सूरवीर होवै वो धरती रौ धणी -इण वासतै पुत्र आलस नीद आद कुविष्ण मत राख॥ इति भावार्थ॥

टिप्पणी—टीका मे इसे एक वीर माता का अपने आलसी और अकर्मण्य पुत्र

---

1 कीर्तिलता, विद्यापति, स० श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 127,
2. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 107
3 गीत महाराजा अजीतसिंह जोधपुर रौः प्रा० रा० गी०, भाग 10, पृ० 11.
4. क्यामखा रासा, पृ० 17, स० डा० दशरथ शर्मा व श्री अगरचद, भँवरलाल नाहटा।

को प्रबोधन मान कर जो अर्थ किया गया है, उससे हम सहमत नही। कारण, दोहे के उत्तरार्द्ध मे 'रावता' शब्द से स्पष्ट है कि यह दोहा कवि द्वारा आलसी और अकर्मण्य सरदारो को सम्बोधन करके कहा गया है, माता द्वारा पुत्र को नही।

सा्म्है भालै फूटतौ, पृग उपाडै दंत ।
हूँ बलिहारी जेठ री, हाथी हाथ करंत ॥142॥

प्रसग—देवरानी अपने जेठ के शौर्य पर मुग्ध हुई जेठानी से कहती है :—

व्याख्या—मैं जेठजी के अप्रतिम शौर्य पर बलिहारी हूँ, जो सामने (सीने मे) हुए भाले के वार से बिंधते हुए ही उसके आर-पार निकल जाते हैं तथा हाथी के पास पहुँच उसके दाँत उखाड कर अपने हाथ के प्रचड प्रहार से उसे ढेर कर देते है।

[देवरानी का अपने जेठ की विलक्षण वीरता पर मुग्ध होना उचित ही है, जो अपने सीने मे धँसे भाले के भी आर-पार निकल कर हाथी के पास जा पहुँचता है, तथा उसके दाँत उखाड कर अपने हाथ की प्रचड थाप से उसे धराशायी कर देता है। वीरता के इस अद्भुत व्यापार को तनिक अपनी कल्पना मे मूर्त कीजिए!]

शब्दार्थ—**फूटतौ** = आर-पार बिंधता हुआ। यथा :—

1 आ कहता ही पातसाह री सैन सू वजीर रौ तीर मकवाण री छाती रै पार **फूटौ**।[1]

2 धडधवै धीर सीगी धमोड, [2]
फूटंत अणी सर जिरह फोड।

3. जसवतजी उणरै छाती माहै बरछी री दीधी सो उणरै चौक मा हाथ एक जाती बाहिर **फूटी**।[3]

पृग = पहुँच कर। **उपाड़ै** = उखाडते है। **हाथ करंत**=हाथ का प्रचड वार या प्रहार करते हैं। उदाहरण —

"गौड अर्जुनसिंघ, राठोड रत्नसिंह जिसडा जोधार कालीरा कलस, रण गलियार होइ **हाथियां रै माथै** हाथ **करता** साथिया रै सूरतां रौ साण लगावता साहजादा रै समीप हालिया॥"[4]

---

1 वशभास्कर।

2 गजगुणरूपकबध, पृ॰ 222।

3 राव मालदे री बात, ऐतिहासिक बाता, पृ॰ 70, स॰ डा॰ नारायणसिंह भाटी।

4. वंशभास्कर, सप्तम राशि, दशममयूख, पृ॰ 2617,

डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'हथिया लेते है' किया है, परन्तु इसका अर्थ यहाँ हाथ करने, या प्रहार करने से है ।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरुष री स्त्री आपरा पती नै रिण मे जूझतौ देख हरष सू साथणिया नै कह रही छै – हे सखी ! म्हारौ पती जुद्ध मे दीठौ सो सामा भाला सू फूटनै भालै भालै साहमौ जाय हाथी ने पूग नें हाथी रौ दात उखेल ने हाथी माथै हाथ कीवौ , अरथात हाथीरा माथा में हाथी रा दात री दे भ्रसु ड (हाथी रौ माथौ) फाड न्हाकियौ उण वेला हू तौ पती रा प्राक्रम माथै वलीहारी जाऊँ छूँ ।। इ० ।।

टिप्पणी—रा० टीका मे दोहे के तृतीय चरण मे 'जेठ री' की जगह 'कत री' पाठ है । आगे के दोहे को देखते हुए 'जेठ री' पाठ ही सगत प्रतीत होता है ।

पहली झेलै पार री, बाहै अ स उतार ।
जोवौ भाभी जेठ री, बलिहारी सौ बार ।।143।।

व्याख्या—हे भाभी ! जेठ जी की तलवार का वार तो देखो, मै तो इन पर सौ बार बलिहारी हूँ ! वे पहले तो शत्रु का प्रहार झेल लेते है और फिर ऐसा अचूक वार करते है कि तलवार एक कधे से दूसरे पार्श्व तक चीरती हुई निकल जाती है ।

जेठ पहले वार नही करता—इससे उसकी वीरता और आत्मविश्वास की व्य जना होती है ।

शब्दार्थ—**पार री**=शत्रु की (तलवार या उसका प्रहार) । **अंस उतार**= 'अंस उतार' तलवार के उस प्रहार को कहते हैं, जो एक कधे पर लगकर दूसरी बगल (पार्श्व) से निकलता हुआ शरीर के दो टुकडे कर देता है—एक मे दोनो कंधे और शिर तथा दूसरे मे तिरछे कटे हुए शरीर के शेष अवयव । इसे 'जनेऊ उतार' भी कहते है, क्योंकि जिस रीति से शरीर पर जनेउ पडी रहती है, यह उसी रीति से शरीर के दो टुकडे कर देता है । वशभास्कर मे भी सूर्यमल्ल ने इस प्रकार के प्रहार का उल्लेख किया है:—

१. प्रतापसिंघ तो **उपवीत उतार** दोय टूक हुवो ।[1]

तथा —

2 धीर मेररा खड्ग प्रहार सूं कन्ह महर रो **अ स पंसुली सूधो झड़ियो** ।[2]

'दयालदास री ख्यात' मे भी इसका उल्लेख हुआ है'—

---

1. वंशभास्कर, चतुर्थराशि, पचदशमयूख, पृष्ठ 1344
2. वही, पृष्ठ 1350

कध बुसंधा ऊतरै [1]
वहते खग भट्टे ।

श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसके विशिष्टार्थक प्रयोग को न समझ अर्थ यो कर दिया है—"ऐसा वार जिससे सिर कधे से अलग होजाय' तथा व्याख्या मे "शत्रुओ के सिर उनके कधो से अलग होजाते है।"[2] यह अर्थ भ्रान्त है। **जोवौ**=देखो।

राजस्थानी टीका—देराणी जेठ रौ प्राक्रम देख जेठाणी नें कहै छै-हे जेठाणी! जेठ रौ धरमजुद्ध देखौ। पहला तौ पार वैरी ने कहै–थू वाह लै सो वैरी तो सस्त्र सरीर माथै झेलने पाछी आप वावै सो एक ही वार मे असु उतार–अ सु (खँवा) सू उतार नीची आवै। तरवार–जिनोई उतार वहै छै, सो जोवौ। जेठाणी! इसा जेठरा हाथा री सौ वेला बलिहारी जावा ॥इ०॥

सतियाँ भड पूगा सुरग, एकौ रहियौ आय।
बीजा सौ कुलवाल नू, भोलौ देर भुलाय ॥144॥

व्याख्या—सतियाँ और सुभट तो सब स्वर्ग चले गए (सुभट युद्ध मे वीर गति प्राप्त कर तथा सतियाँ सहगमन कर) अब घर मे केवल एक बालक बचा रह गया है। दूसरे सब हितैषी जन उस कुल-वालक को नाना प्रकार से भुलावा देकर बहला रहे है, माता-पिता की याद भुला रहे है।

शब्दार्थ **पूगा**=पहुँच गए। **एकौ**=एक, अकेला। **बीजा**=दूसरे। **सौ**=सब। **भौलौ**=भुलावा। **देर**=देकर। **भुलाय**=भुलाते या बहलाते है।

विशेष—इसी भाव का श्री नाथूसिहजी महियारिया का दोहा द्रष्टव्य है—

सग वल जावै नारिया, नर मर जावै कट्ट।
घर बालक सूना रमै, उण घर में रजवट्ट ॥448॥

राजस्थानी टीका—एक वीर बालक री माता आपरा पुत्र रा'खवास नें कहै छै–हे बीजा! पुत्र रा खवास मरजीदान! देख, म्हारै कुल रा, घर रा, सारा सूरवीर कु वर आदि अने वारी बहूवा सारी सतिया हुई। भड सारा मारीज नें सुरग पूगा। हमैं तौ एक बालक रहियो है। जुद्ध ने तियार होवै है, वैर लेवण हारु-सारू, सो हे बीजा! कुल रौ एक ही बालक है ने एक ही जुद्ध सारू ऊससे है सो इणनें थू कोई तरै भोलौ देर–थथोपो वा पोटाय ने अबार जुद्ध न करै, इण तरह सू भूलाव सो इण रौ वश रहै, नई तौ औ सूरवीर बालक जुद्ध सारू रुकै नही। (इति भावारथ)

---

1 दयालदास री ख्यात, पृष्ठ 185

2 वीर सतसई, पृष्ठ 96 (श्री स्वामीजी आदि द्वारा सपादित)।

3 वीर सतसई, श्री नाथूसिहजी महियारिया, पृष्ठ 203

टिप्पणी—टीकाकार ने इस दोहे को किसी खवास विशेष के प्रति एक वीर बालक की माता का सम्बोधन मान कर जो व्याख्या की है, वह हमे असगत और निराधार प्रतीत होती है । यहाँ कवि का अभिप्राय यह बताना है कि वीर कुल उसे मानना चाहिए जहाँ वयस्क स्त्री-पुरुष तो अपने-अपने वीर-धर्म का आचरण करते हुए स्वर्गगामी हो एव घर मे केवल बालक बचा रह जाए ! टीकाकार द्वारा कल्पित प्रसग मे माता का होना दोहें मे व्यजित इस मूल भाव के सर्वथा विपरीत पडता है । साथ ही, कवि-कथन के भी, जिसके अनुसार 'घर मे केवल एक बालक बचा रहा गया है' (एकौ रहियो आय) । टीकाकार ने ऐसी प्रसगोद्भावनाएँ कई जगह की हैं ।

पूगौ नीठ पिछाणियौ, किसू बुलायौ काल ।
कै पग मडो ठाकुरे, कै छडो करवाल ॥145॥

व्याख्या—हे ठाकुरो ! बडी मुश्किल से उन प्रबल शत्रुओ से अपने प्राण बचाकर यहाँ पहुँच सका हूँ । मैंने उन्हे भलीभाँति जान लिया है । (अर्थात वे हमे बिना मारे नहीं छोडेंगे) । तुमने भला किस काल को निमत्रण दिया है ? अब यदि हिम्मत हो तब तो इनका डटकर मुकाबला करो, अन्यथा तलवार रख दो, हथियार डाल दो (आत्मसमर्पण कर दो) । इसी मे भला है ।

इसमे शत्रु-पक्ष की प्रबलता के चित्रण द्वारा परोक्षत वीरो के प्रचड शौर्य तथा उनके आतक की व्यजना करना ही उद्दिष्ट है ।

अन्यार्थ—कोई शूरवीर, चुनौती दिए जाने पर शत्रुओ का पीछा करता हुआ उनके पास जा पहुँचा । अचानक उसे वहाँ आया देख शत्रु स्तभित रह गए । भय के मारे उनकी आँखो के आगे अँधेरी-सी छाने के कारण वे उसे बडी मुश्किल से पहचान पाए । वीर ने उन्हे ललकारते हुए कहा—'बोलो, अपने काल को क्यो बुलाया है ? ठाकुरो ! अब या तो मुकाबले के लिए खडे हो या तलवार रख दो (आत्मसमर्पण कर दो) ।

श्री डा० सहलजी आदि स पादको ने 'पूगौ नीठ पिछाणियौ' मे 'पिछाणियौ' को अपने प्रति प्रश्नवाचक शब्द मानते हुए यो अर्थ किया है—"ठाकुरो ! बडी मुश्किल से पहुँच पाया हूँ । पहचान तो लिया न ?' यहाँ ठाकुरो द्वारा युद्ध से भाग कर या प्रबल शत्रुओ से आत कित होकर आए हुए अपने साथी को न पहचानने का क्या स गत कारण हो सकता है ? यदि वह घावो से क्षतविक्षत होकर आता तो न पहचानने का कोई हेतु भी होता परन्तु वह तो अक्षत और सही सलामत लौटा है । अत 'पिछाणियौ' की अपने प्रति प्रश्नवाचक कथन की कोई अर्थ-संगति नहीं दिखाई देती ।

टीका के अर्थ मे भी प्रस गोद्भवना कदाचित् टीकाकार की अपनी है, जबकि हमारी प्रस्तावित व्याख्या मे प्रसग स्वय कवि के दोहे से ही स्पष्ट है ।

शब्दार्थ—**पूगौ**=पहुँचा। **नीठ**=मुश्किल से । **किसूं**=किस, कौनसे। **कै**=या तो। **पग मंडौ**=मुकाबले के लिए खड़े हो। 'पग माडणौ' मुहावरा है। उदाहरण :—

१ **पग मंडै** रहिया सपौह अरणभग अस का।[1]

२ **पग मांडो** जैमल पता, हूँ अकबर जग जीत।[2]

ठाकुरे=ठाकुरो। उदा०—

'सारै वडे **ठाकुरे** कह्यो—डेरा करो, सवारै गाडा रो घस लेस्या, वासै जास्या।[3]

करवाल=तलवार।

राजस्थानी टीका—माता रै वरजता ही बालक वीर सत्रुआ नें पूग ने बोलियौ—भागा क्यू जावौ हौ ? कै तो जुद्ध करण सारु पग रोपौ, नै कै कटकर तलवार न्हाक दौ ॥ इ० ॥

बरस पाँच बोलाविया, जाण छठै नहँ जेज ।
धण माता, मामै पिता, भोलवियौ भाणेज ॥146॥

व्याख्या—पाँच वर्ष तो बीत गए और छठे के जाने मे देर नही है। इतने दिनो तक उस छै वर्षीय वीर बालक को मामी ने माता तथा मामा ने पिता बनकर ननिहाल मे भुलाए रखा। अर्थात् उसे यह ज्ञात नही होने दिया कि उसका पिता शत्रु के हाथो मारा गया था तथा माँ सती होगई थी। बालक को यदि इसकी तनिक भी भनक पड जाती तो वह तुरन्त अपने बाप के बैर का बदला लेने के लिए निकल पडता।

भाव यह कि सुपुत्र कहलाने का अधिकारी वही है जो अपने बाप के बैर का बदला लिए बिना नही रहता। मिलाइए —

पितृ वैरि उद्धरि, साहि करि मनोरथ पूरेओ।[4]

बोलाविया=बिताए; बीत गए।

उदाहरण— 1 बरस तीस **बोलावै** बासे ।[5]
आवे तद राजा अगर।

---

1 बिन्है रासौ, पृ० 83

2 बाँकीदास-ग्र थावली, भाग 2, पृ० 103

नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृ० 281–282, स० श्री बदरीप्रसाद साकरिया

4 कीर्तिलता, विद्यापति, पृ० 33; स० श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

5 विविध सग्रह, पृ० 55, स० श्री ठा० भूरसिंह शेखावत।

2. ऊ नालौ **बौलावीयौ,** आयौ सावरण मास ।[1]

शब्दार्थ—**बोलाविया**=बिताए, बीत गए । **जारण**=जाने मे । **जेज**=देर । **धरण**=पत्नी ने (मामा की), अर्थात् मामी ने । **भोलावियौ**=भुलाए रखा । **भारणेज**=भानजा ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर बालक आपरै पिता रौ वैर लेरण सारू सभियौ, सो उरण बालक वीर ने समभावै कि वरष पाँच तौ वौल्हाया अने छटौ जारण री अवै जेभ नही । इरण छट्ठै वरष पछै सातमौ वरष लागसी तद थू घोडै असवार होजासी तद थारा पितारौ वैर लेजे । इरण तरै धरण (धरण) आपरी पितारी स्त्री ने आपरै माता तिरणरी माँ–नानी अने मामा रै पिता–नानै (नानी–नानै) वीर बालक नें वैर लेरण रौ हठ करता भौलवीयौ (पोटायौ) नानै नानी समभायौ तिरणरौ काररण पिता जुद्ध मे काम आयौ ने माता सत कियौ, तरै नानेरै मोटौ हुवौ ।।इ०।।

टिप्पणी—टीकाकार ने नाना-नानी का जो अर्थ निकाला है, उससे हम सहमत नही । यहाँ स्पष्टतया मामा-मामी से ही आशय है, जैसा कि अन्य सम्पादको ने भी अर्थ किया है ।

धीमा धीमा ठाकुरे, इती उतावल काय ।
लीजै खोबा गालमा, जमी कठै घुस जाय ।।147।।

प्रसग—आक्रान्ता शत्रुओ को किसी निर्भय और आत्मविश्वासी शूरवीर का कथन—

व्याख्या—हे ठाकुरो ! जरा धीरज रखो, धीरज । लडने की ऐसी क्या जल्दी है ? आओ, पहले जरा चूल्लू भर अफीम के रस का तो पान करले, जमीन कही घुस थोडे ही जाएगी । [अर्थात अभी तो छक कर अमल का नशा कर लो, जमीन तो कही भाग जानेसे रही । बल हो तो पीछे भी ले लेना ।]

शब्दार्थ— **उतावल्**=जल्दी । **काय**=क्या । **खोबां**=चूल्लू भर । उदाहरण—

कर कर केसरियाह, भर भर **खोबा** भूपती ।[2]
सूका बन हरियाह, यू बाका भड ऊठिया ।। ।।

गाल्मा=गला हुआ अफीम, कसू बा, अफीम का घोल । मिलाइए—

१ "निपट आगराई नेस अमल कालीनाग रै रग, तिकौ देवगिरी प्याली माहे

---

1 बात रिड़मल राठौड़ खाबडियै री; वरदा, अक्टूबर - दिसम्बर, 1968, पृ० 10

2 जयमलवशप्रकाश, पृ० 140; ले० ठा० गोपालसिंह राठौड, मेडतिया ।

घाल अमल फेरीजै छै, तिकौ **गालीयौ** पावै छै ।"[1]

तथा—२ **गाल्मा** तणा भर पिया खोबा गरक,[2]
उडैगिर अूपरा जाण अूगो अरक ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर ऊपरै सत्रू चढ आया, तिकानै निसक थकौ कहै छै —धीमा रहौ, धीमा रहौ ठाकुरा ! इतरी उतावल काणरी है ? अमल गालियोडो है, सो छेली वखत रौ ले लौ । पछै जुद्ध करसा । जमी अठै इज है, कठै ई जावै नही । टणका होसी वे अपणाय लेसी ॥इ०॥

मिलता ऊतरिया मरद, साकुर बाधा सेल ।
मिजमाना जिम मडिया, खोबाबाजी खेल ॥148॥

व्याख्या—दोनो ओर के शूरवीर एक दूसरे से मिलते ही घोडो पर से उतर पडे तथा अपने भाले जमीन मे गाड कर उनसे घोडो को बाँध दिया । तदनन्तर चुल्लू मे अफीम का रस भर-भर कर मेहमानो की तरह एक दूसरे को प्रेम से पिलाने का खेल शुरू कर दिया ।

शब्दार्थ—**साकुर**=घोडे । उदा०-**साकुर** सझिया साज, रगरसिया ठाकुर लिया ।[3] **बाधा**=बाँध दिए । **सेल**=भालो से, भालों को गाड कर उनसे । **मिजमानां**=मेहमानो या अतिथियो (की भाँति) । श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसका अर्थ 'मेजबानो' कर दिया है, जो गलत है । 'मिजमान' शब्द यद्यपि 'मेजबान' से व्युत्पन्न है, तथापि रूढि मे इसका अर्थ मेहमान या अतिथि है, न कि मेज़बान या आतिथेय । उदाहरणत —

१ आजौ म्हारै सावडला थे **मिजमांन** आज ।[4]

२ पना मारू चालौ म्हारै घर **मिजमान** ।[5]
तन मन करस्या अजी वारणौ रे ।

३ सावलडा थे आज्यो जी **मिजमांन** ।[6]

---

1 राव रिणमल री बात, ऐतिहासिक बाता, पृ० 21, सं० डा० नारायणसिंह भाटी ।

2 गीत अमल री सोभारौ, डिंगल गीत, पृष्ठ 104, स० श्री रावत सारस्वत ।

3 पना-वीरमदेव की वार्ता, पृ० 66

4 रसीलैराज रा गीत, महाराजा मानसिंहजी जोधपुर, पृ० 101 स० डा० नारायणसिंह भाटी ।

5 वही, पृ० 149

6 वही, पृ० 199

वशभास्कर मे भी कवि ने '**मभमानी**' का, इसी भाव से, 'मेहमानी' के अर्थ मे ही प्रयोग किया है--

'अर सूर् हूँता तिके कँवर दूदै **मभभानी** मिलाइ निहाल किया ।[1]

राजस्थानी साहित्य के सुविज्ञ, श्री स्वामीजी से ऐसी अर्थ-भ्रान्ति होना आश्चर्यजनक है ।

मंडिया=रच दिया, शुरू कर दिया । **खोबाबाजी**=चूल्लू मे अफीम का रस भर-भर कर अपने हाथो से मेहमानो को पिलाना तथा उनके हाथो से पीना । विवाह के अवसर पर क्षत्रियो मे यह प्रथा अभी तक प्रचलित है ।

विशेष—युद्धस्थल मे भी पारस्परिक सौहार्द एव आतिथ्यादर्श का परिचायक यह दोहा राजस्थान की उच्च सास्कृतिक परम्पराओ का अन्यतम प्रमाण है । मेहमान के रूप मे आने पर शत्रु के साथ भी कैसा प्रीतिपूर्ण व्यवहार किया जाता था, यह इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, जो प्राचीन ग्र थो मे वर्णित धर्मयुद्ध का स्मरण दिला देता है । 'खोबाबाजी' के इस खेल के वर्णन की कविराजा बॉकीदास द्वारा अपने एक दोहे मे किए गए वर्णन से तुलना कीजिए :—

अमला खोबा बाजिया, मचै भडा मनुवार ।[2]
जागडिया दूहा दियै, सिंधू राग मभार ।।

राजस्थानी टीका—तिण वेला इण जोधार रा वचन मान नै मिलता ही मरद घोडा सू ऊतरिया अने घोडा आपो आपरा सेल-भाला रै बाधिया । मिजमानी (गोठ) मे मिलता हरष होवै ज्यू जुधरी समे खोबा बाजिया रौ खेल मांचियौ । इसा ऊजला, जाणै आरै आपस मे विरोध हौ ही न्ही ।।इ०।।

सपेखे बाल्हा सगा, मिल गलबत्था मार ।
पहली बाहण पाहुणा, मडीजै मनुहार ।।149।।

व्याख्या—अपने प्रिय सगो (समधियो, अर्थात् शत्रुओ) को देख सब एक दूसरे से गलबाँही भर कर मिले तथा 'आप हमारे पाहुने है, इसलिए पहले वार आपकी तरफ से हो' —यह कहते हुए (दोनो पक्षो के वीरो मे) परस्पर मनुहारे होने लगी ।

अर्थात् वीरोचित अतिथि-धर्म का पालन करते हुए सब एक दूसरे को पहले वार करने हेतु आग्रह करने लगे ।

शब्दार्थ—सपेखे=(स० सप्रेक्षण) देखकर । **बाल्हा**=प्रिय । **सगा**=

---

1. वशभास्कर, षष्ठराशि एकादशमयूख, पृ० 2326
2 बाँकीदास-ग्र थावली, भाग 2, पृष्ठ 99

'सगा' शब्द ससुराल-पक्ष के सम्बन्धियो के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ भावार्थ मे यह 'शत्रुओ' का वाचक है, जिन्हे 'प्यारे पाहुनो' के रूप मे चित्रित किया गया है। **गलबत्वा मार**=गलबाँही भर कर, गाढालिंगन कर। **बाहरण**=वार करने हेतु। **मंडीजै**=हो रही है। **मनुहार**=स्नेह भरा आग्रह।

विशेष—कवि द्वारा किया गया यह वर्णन निरा काल्पनिक नही है। राजस्थान का इतिहास इस वीरोचित आतिथ्य-परपरा का साक्षी है। उदाहरणत राव जोधा के पुत्र वीरवर दूदा तथा मेघा सीधल मे युद्ध छिडने पर दोनो ही वीरो की ओर से अपने प्रतिपक्षी को पहले वार करने हेतु मनुहार कीजाने का यह दृश्य देखिए—"ताहरा दूदौ कहै–मेघा! करि घाव। मेघौ कहै–दूदोजी! करौ घाव। ताहरा दूदौ कहै—मेघाजी! थे घाव करौ।" शत्रुता मे भी यह औदार्य!

राजस्थानी टीका—अबै धरम जुद्ध होवण लागौ तठै कवी कहै छै—अमल लेता वाला सगा हा तिके गलौ मै बाथ घाल–घाल एक-एक नै अमल दीधौ, अनै जुधरी वार-मनुहार करी। आया त्यानै कही – थे पाहुणा हौ, पहली वाह थारी है। कवी कहै इण मनवार नै मीठौ, जमी रै सारू परम सगा पहला, इण तरै मिलिया नै पछै इण तरै मनुहारा कर शस्त्र वाहै, तो इण जमीरौ सिरदारा नै प्राण सू वधतौ जतन करणौ ॥इ०॥

विण नूं तै घण पाहुणा, हेली ठलिया आय।
जाणै पीव परूसणौ, भूखो हेक न जाय ॥150॥

व्याख्या—हे सखी! विना ही निमत्रण के बहुत से पाहुने (शत्रु) आ धमके हैं। किन्तु चिन्ता नही, प्रियतम परोसना बहुत अच्छी तरह जानते है। वे इन्हे ऐसा तृप्त कर देगे कि एक भी भूखा नही लौटेगा।

अर्थात मेरे शूरवीर कत युद्ध की हौस से आए हुए इन शत्रुओ को ऐसा मजा चखाएँगे कि इनमे से एक भी अछूता नही लौटेगा। प्रियतम के हाथो लौह चख (घायल हो) ये फिर कभी युद्ध की इच्छा नही करेगे।

शब्दार्थ—**विण नूं तै**=अनामत्रित। **आय ठलिया**=आ धमके। **परूसणो**=परोसना, पुरसकारी करना (भावार्थ मे युद्ध करके तृप्त करना)।

विशेष—युद्ध की इच्छा से घर आए बैरी को निराश लौटाने वाला (कायर) राजस्थानी साहित्य मे 'कपूत' माना गया है। ऐसे कुपुत्र को जन्म देने वाली माँ व्यर्थ ही दस मास तक गर्भ-भार ढोती है। कहा है—

---

1. राजस्थानी, भाग 1, पृ० 77, स० श्री नरोत्तमदास स्वामी (बात दूदा जोधावत री)।

अजया तै की जाइयो, भार मूंई दस मॉस ।[1]
वैरी, मागरण, प्राहुणा, तीनू गया निरास ।।

राजस्थानी टीका—वीर पुरुष री श्री (स्त्री) आपरा पती ने जूझतौ देख कहै छे, हे सखी ! अँ विना निवतारा पाहुणा (सत्रु) ठलिया; आयने ऊतरिया छै पण म्हारौ पती परूस जाणै है (सस्त्र वाय जाणै है) सो भूखो जाणौ कोई नंई जावैला (सारा नें घावा सू छकाय देसी) ।।इ०।।

जिम जिम कायर थरहरै, तिम् तिम फैले नूर ।
जिम जिम बगतर ऊबडै, तिम तिम फूलै सूर ।।151।।

व्याख्या—ज्यो-ज्यो कायर भय से कॉपतेहै, त्यो-त्यो ही शूरवीर के शौर्य का तेज अधिकाधिक प्रचड होता जाता है, एव ज्यो-ज्यो शूरवीर का बख्तर उसके उल्लसित होने से उभरता (या फटता) है, त्यो-त्यो ही शूरवीर वीरत्व के उन्मेष मे और अधिक फूलता जाता है । (अर्थात सूरातन चढने पर वीर कवच मे समाता नहीं । फलत कवच की कडियाँ वीर के फूलने से टूटने लगती हैं और कवच ढीला होजाता है परन्तु वीर तो अपने जोश मे फूलता ही जाता है । फलत कवच भी तग पडने के कारण उत्तरोत्तर फटता जाता है एव ज्यो-ज्यो कवच फटता है, त्यो-त्यो वीर अपने जोश मे और अधिक फूलता जाता है) ।

शब्दार्थ—**जिम जिम**=ज्यो-ज्यो, जैसे-जैसे । **नूर**=तेज (शौर्य का तेज, जो प्रचड होने के साथ अधिकाधिक फैलता है) । **बगतर**=बख्तर, कवच । **उबडै**=उभरता या फटता है), उदा०—

जिके सूर ढीला जरद, **उबड** ही आराण । श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसका अर्थ उलटा कर दिया है—"सिकुडता है, छोटा (तग) होता है", जो गलत है । यहाँ कवच के उभरने या फटने से आशय हैं, 'सिकुडने' से नही । यह ठीक है कि कवच उभरने पर भी वीर के लिए उत्तरोत्तर तग पडता जाता है, परन्तु जहाँ तक शब्दार्थ का सम्बन्ध है, 'ऊबडै' का अर्थ उभरना या फटना ही है, सिकुडना नही । 'राजरूपक' मे भी यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है —

भीडिया जग आगम भडा अग बगत्तर **ऊबडै** ।

फूलै=वीरता के उन्मेष मे वीर ऐसा उच्छ्वसित होने लगता है कि कवच मे समाता नही । इस प्रकार का वर्णन डिंगल-काव्यो मे प्राय रूढ-सा होगया है, जिसके उदाहरण हम दोहा संख्या २१ की टिप्पणी मे दे आए है । **सूर**=शूरवीर ।

1 एकलगिड दाढ़ालै री वात, पृ० 23, सं० श्री मूलचन्द प्राणेश
2 बाँकीदास-ग्रथावली, भाग 1, पृ० 5,
3 राजरूपक, पृष्ठ 765;

विशेष—दोहे की प्रथम पंक्ति को 'वशभास्कर' की इस पक्ति से मिलाइए .—[1]

" जिकाँवूँ देखताँ हीँ पुलियार कायरा रै कप, वीरा रै वीर रस रा सोगुणाँ जोस ऊगा ।"

राजस्थानी टीका—फेर आपरी सखी ने जोधारा पारख कर कहै छै—देख सखी ! ज्यू-ज्यू कायर धूजै है, त्यू-त्यू जोधारा नूर फूलै है, अनै ज्यू-ज्यू सूरवीरा रा पौरष चढने बगतर री कडिया उवडै है त्यू-त्यू सूरवीर घरण घरणा फूलै है ।।इ०।।

मुणता हाको धव सखी ! मूछ भुहारा छूय ।
एकरण लाखा आगमे, मेटी कर कडूय ।।152।।

व्याख्या—हे सखी ! युद्ध का होहल्ला सुनते ही मेरे कत की मूँछे भौहो के जा लगी (वीर दर्प मे तन गई) तथा उन्होंने अकेले ही लाखो को अ गीकार कर (लाखो शत्रुओ से लडने का भार अपने ऊपर ले) अपने हाथो की खुजली मिटाई । अर्थात् अनेक शत्रुओ को तलवार के घाट उतार कर अपनी युयुत्सा पूरी की ।

शब्दार्थ-- **हाको**=युद्ध का होहल्ला । **धव**=पति, कत । **भुहारा**=भौहो से । **एकरण**=अकेले ही । **आगमे**=स्वीकार या अ गीकार कर, अपने ऊपर ले ।
उदाहरण— १ कित्तिमिह गुहु **अंगवइ**, सत्तु समप्पिअ रज्ज ।[2]
२ अंतरी वात कुरण **आगमइ**, कउरण जम्म सरिसउ जुडइ ।[3]
'आगमे' या 'अ गमे' का अर्थ 'दबाकर' या 'पराभूत कर' भी होता है । यथा—
'अकबरहिं अज्ज को अज्ज रन **अंगमै**, निखिल यह खड भरि दड जिहिपै नमै ।[4]
तदनुसार अर्थ होगा-अकेले ही लाखो शत्रुओ को पराभूत कर अपने हाथो की खुजली मिटाई । **मेटी**=मिटाई । **कर-कंडूय**=हाथ की खुजली । इसमे वीर की प्रबल युद्धेच्छा की व्यजना होती है, जो लडने पर ही चैन का अनुभव करता है ।

विशेष—लडे विना वीर के हाथ की खुजली नही मिटती, इस आशय का वर्णन वशभास्कर मे भी हुआ है[5]—

'इरण रीति अनेक धूकल करि भुजारी कडूया भागी न जारिण जगमाल-

1 वशभास्कर, षष्ठराशि, एकादशमयूख, पृ०2326,
2 कीर्तिलता, विद्यापति, पृ० 43, स० श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ।
3. अचलदास खीची री वचनिका, पृ० 37 (24), स० श्री दीनानाथ खत्री ।
4 वशभास्कर, षष्ठ राशि, पष्ठ मयूख, पृ० 2261,
5. वही, पचमराशि, अष्टम मयूख, पृ० 1772

कुमार अहमदाबाद रा अधीस नूं पाँहुणो नूं तियो ।' 'एकण आगमे' कोमिलाइए—

'एकण लाखाँ आगमैं सीह कहीजै सोय ।[1]

राजस्थानी टीका—फेर आपरा पती रौ पौरष देख सखी नें कहै है—हे सखी ! धव-पती जुद्ध रौ हाकौ सुणताई मूछ तौ रोस मे भूँहारा सूं मेली छै नै एकलै ही लाखा जोधारा नै आगमिया (वासू लड) नें भुजारी कड्डय (खाज) मेटी । भुजा खुजलती राखी ।

पहल मिले धण पूछियौ, किण कीधा किण हत्थ ।
बीजड साहे बोलियौ, इण डाकण भू अत्थ ।।153।।

व्याख्या—प्रथम मिलन की रात ही, पति की हथेली मे पडे कठोर चिह्न (आटण) का स्पर्श होने पर प्रिया ने पूछा—प्राणनाथ ! आपके हाथ मे ये 'आटण' किसने किए है ? तुरन्त अपनी तलवार पकड कर पति ने उत्तर दिया—'इस डायन ने और इस भूमि के लिए!'

[डायन न जाने कितनो का भक्षण करती है, उसी भाँति वीर की तलवार नें भी न जाने कितने शत्रुओ को मौत के घाट उतारा है । अत शूरवीर पति ने उसे 'डायन' कह कर सबोधित किया है । साथ ही भूमि ही सब झगडो की जड है । उसी के लिए सारे युद्ध होते हैं । अत वीर पति का भूमि को ही इसका मूल हेतु बताना सर्वथा उचित है । इससे यह भी पता चलता है कि पति बचपन से ही तलवार चलाने का अभ्यासी रहा है तथा स्वत्व-रक्षा के लिए सतत सन्नद्ध भी]

शब्दार्थ—**धण**=पत्नी, प्रिया । **किण**='किण' शब्द यहाँ दो बार प्रयोग मे आया है । इसका एक अर्थ है वे निशान, जो बार-बार रगड लगने, किसी कठोर वस्तु का स्पर्श करने या उसे उपयोग मे लाने से हथेली या पदतल मे पड जाया करते है, जिन्हे राजस्थानी मे 'आटण' कहते हैं । 'किण' का अपर अर्थ है—किसने । यहाँ दोनो ही प्रयोगो को उक्त दोनो अर्थों मे ग्रहण करते हुए व्याख्या की जा सकती है । **यथा :—**

पक्ति		**अर्थ**
'किण कीधा किण हत्थ'	1	**'किसने** किए **चिन्ह** हाथ मे ?'
	2	**'चिन्ह** किए **किसने** हाथ मे ?'

हत्थ=हाथ (स हस्त) । **बीजड़**=तलवार । **साहे**=पकड कर, उठाकर, लेकर । **डाकण**=डायन । **भू**=पृथ्वी । **अत्थ**=लिए, अर्थ । टीका मे इसका अर्थ

1. हालाँ-झालाँ रा कुडलिया, पृ० 9 ।

'धन' (अर्थ) किया गया है, किन्तु यहाँ यह अव्यय है, सज्ञा नहीं। दूसरे, वीर का धनी होना या धन की रखवाली करना डिंगल–काव्य-परपरा से अनुमोदित नही है। डिंगल–कवियो ने तो 'टोटै सरकाँ भींतडा' को ही वीरो का भूषण माना है।

विशेष—मिलाइए—भूखी डाकणी जेम भभकती[1],

रहे न रोकी रूका।

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरुष ब्याव करियौ। पैली रात श्री (स्त्री) पूछियौ—

पती रा हाथ मे आटण पडिया देख कही—अै हाथा मे कण–आटण किण किया? तद पती जवाब देता तरवार हाथ मे ले ने कयौ—इँण डाकण (घणा शत्रु खाण वाली) भुव–धरती, अथ-धन —आनी रूषाली सारू आठ पौहर तरवार हाथ मैं रही, तिणरा आटण छै ॥ इ० ॥

ढोल सुणता मंगली, मूँछा भूह चढंत।
चँवरी ही पहचाणियौ, कँवरी मरणौ कन्त ॥154॥

व्याख्या—विवाह के अवसर पर मागलिक ढोल की आवाज सुनते ही वर की मूँछे भौहों तक जा चढी। (जोश मे तन गई)। यह देख वधू ने विवाह–मंडप मे ही ताड लिया कि उसका कत जीएगा नही, युद्ध मे मृत्यु का वरण करेगा।

[ध्वनि यह कि जो विवाह का मागलिक ढोल सुनते ही इतना रोमाचित हो उठा, वह युद्ध के समय रण–वाद्यो की ध्वनि सुनकर तो और भी रोषोन्मत्त हो उठेगा। ऐसा रणरसिक भला कब तक जीएगा? भाव यह कि वाद्य–ध्वनि सुन वीरता से रोमाचित हो उठना शूरवीरो का सहज लक्षण है। उदाहरणात वीर रामदास वेरावत की ८४ 'आखडियो' (प्रतिज्ञाओ) मे एक यह भी थी कि ढोल बजने पर वहँ खडा नही रहता था —

'ढोल वाजीया ऊभा रेण री आखडी'[2]

शब्दार्थ—**मंगली**=मागलिक। **चँवरी**=विवाह–मडप या वेदी (मे ही)। **कँवरी**=कुँवरि, वधू (ने)। **मरणौ**=मृत्यु का वरण करने वाला, वीरगति-प्राप्त करने के लिए कृत–सकल्प।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री परणाती ही पती रा वीर पण रा सुभावा रौ हरष सू वरणण करै है —

---

1 गीत रावत माधोसिंह चूँडावत, आमेट रौ, प्रा री. गी., भाग 1, पृ० 76;

2. रामदास वेरावत री आखडी री बात, रा सा स भाग 1, पृ० 21

हे सखी ! परणीजता मगलीक ढोल वाजतौ हौ, उण ढोल रा ही वाजा सू मूछ भुहारा सू मिली ही सो मै तौ चँवरी मे ही परख लीधौ । कंत सूरवीर जुद्ध मै मरण वालौ है, जिकण री मूछ मगलीक ढोल सुणता ही भुँहारा सू मिली है तौ जुद्धरा जु भाऊ वाजा सुणता तौ न जाणै कितरौ रोस चढतो हुसी । औ गीदड वण नै जीवण वालौ नही ।।इ०।।

ग्रीव न मोडै देखणौ, करणौ सत्रु सिराह ।
परणता धण पेखियौ, ओछी ऊमर नाह ।।155।।

व्याख्या—वधू ने, परिणय के अवसर पर ही, अपने पति के दो वीरोचित लक्षणो— बिना ग्रीवा घुमाए देखने तथा शत्रु की भी प्रशसा करने से यह भलीभाँति जान लिया कि उसका कत अल्पजीवी होगा ।

[ध्वनि यह कि पति अत्यन्त निर्भीक, साहसी और शूरवीर है । सिह की भाँति वह सदा निश्शक होकर आगे देखता हुआ ही, मस्ती मे इठलाता चलता है, गीदड की भाँति पद-पद पर सशकित हो अगल-बगल मे देखता हुआ नही । फलत यदि कभी भी कोई कायर और कुटिल शत्रु छल-छद्म का आश्रय लेकर उस पर पीछे से घात कर दे तो वह ग्रीवा मोडकर देखने वाला नही है–प्राण भले ही चले जाएँ । इसी भाँति वह शत्रु की भी वीरता का प्रशसक है । फलतः यदि वह कभी शत्रु के शौर्य पर मुग्ध होजाए तो उसे सहर्ष प्राणदान भी दे सकता है । ऐसा निर्भीक और उदार शूरवीर भला शत्रुओ के बीच कब तक जीवित रहेगा ? उसके इस अप्रतिम वीर-स्वभाव को देखते हुए पत्नी ने यदि उसके अल्पजीवी होने का अनुमान कर लिया हो तो इसमे आश्चर्य क्या है ?] ।

शब्दार्थ—**ग्रीव**=ग्रीवा, गर्दन । **सिराह**=प्रशसा, सराहना । **परणंता**=परिणय के अवसर पर । **पेखियौ**=देख या जान लिया । **ओछी**=थोडी, कम ।

विशेष—मिलाइए –

मैं परणती परखियौ सूरति पाक सनाह ।[1]
घडि लडिसी गुडिसी गयँद नीठि पडेसी नाह ।।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरष री श्री (स्त्री) परणीजता ही धणी री प्रतग्या देखनें कहै छै–हे सखी ! जगत री रीत है आपरी स्त्री ने प्रथम मिलाप री वेला देखलै है अने इण सूरवीर रै पाछै हटण रौ, पूठ लारै देखण रौ प्रण है, कै पाछौ हटू नही, पूठ लारै देखू नही, सो ग्रीवा—गलौ मोड पाछौ नें नहि देखण

1. हालाँ–झालाँ रा कुडलिया पृ० 26

धालौ । भय वालौ (डरतौ) पाछौ देखै जिण सारू न देखै पाछौ अने 'करणू'-करण वालौ शत्रुवारी, 'सिरा' नाम खादारी लारली नाड–प्रमाण 'पश्चाद् ग्रीवा शिरा मन्या इति अमर' अर्थ ग्रीवा--गला रै पश्चाद् (त) लारली शिरा--नाड रौ नाम मन्या है, आपरै ग्रीवा, लारली नाड पाछी फेरने देखण वालौ नही, शत्रुआ रै ग्रीवारी शिरा (नाड) पाछी फेरण वालौ अर्थात् सत्रुआ री गाबड मरोड् नाड नै पाछी फेर देण वालौ तथा भय सू भागा थका शत्रुआ ने गाबड री शिरा, नाड मोड पाछौ पीठ धकै देखावण वालौ--इण तरै धण परणीजता पारख करी कै ओछी ऊँमर बालक ऊँमर वालौ नाह (धणी) तथा घणा जुद्ध करै सो मारीज जासी जिणसू, 'ओछी'-'थोडी' आयुख वालो है—नाह-घर रौ धणी ।।ई०।।

टिप्पणी—राजस्थानी टीकाकार ने इस दोहे के द्वितीय चरण—'करणौ सत्रु सिराह' की व्याख्या मे अनावश्यक क्लिष्ट कल्पना की है। उसने 'सिराह'(शिरा) का अर्थ 'ग्रीवा का पृष्ठभाग' मानते हुए इसका अर्थ जो 'भय से भागे हुए की गर्दन मरोड कर पीछे फेर देने वाला' किया है, वह हमे निरा अयथार्थ और असगत प्रतीत होता है। प्रथम तो यहाँ शब्द 'सिराह' (सराहना का अपभ्रष्ट रूप) है, 'शिरा' नही। दूसरे, इस अर्थ (शत्रुओ की गर्दन पीछे मोड देने वाला) से दोहे के उत्तरार्द्ध की क्या अर्थ-सगति है ? अर्थात्, इससे पति के आयुष्य पर क्या आँच आती है ? तीसरे, टीकाकार का यह अर्थ करना कि 'भय मे भागे हुए शत्रुओ की गर्दन मरोड देता है'—डिंगल–काव्यो मे वर्णित वीर–चरित्र–परपरा के ही सर्वथा विपरीत है, जिसके अनुसार शूरवीर कभी भागे हुए शत्रु पर प्रहार नही करता। उदाहरण वीर रामदास वेरावत की प्रसिद्ध ८४ आखडियो (प्रतिज्ञाओ) मे एक भागते हुए शत्रु का पीछा न करने की भी है —

'भाजे तिण लारे जावा री आखडी' [1]

यही नही, स्वय सूर्यमल्ल ने भी 'वशभास्कर' मे इस आशय का वर्णन किया है:—

'हठी जे न भागै न भागाँ प्रहारै। धराँ लगराँ सगराँ पाव धारै।[2]

इसी भाँति, कवि लब्धोदय कहते है—भाजता नइ घाव घाल्यउ जाय क्षत्री धर्म।[3]

अत टीकाकार की उक्त व्याख्या भ्रान्त है।

---

1. रामदास वेरावत री आखड़ी री वात रा सा. स भाग 1, पृ० 21
2. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2683,
3. पद्मिनी-चरित्र-चौपई : कवि लब्धोदय–कृत, पृ० 99 स. श्री भँवरलाल नाहटा।

इसी भाँति, श्री नरोत्तमदास स्वामी ने दोहे के प्रथम चरण का पाठ 'ग्रीव नमाडे देखणो' मानते हुए इसका अर्थ "गरदन झुका देखने वाला (सकोचशील)" किया है, जो अनर्गल और भ्रान्त है। स्वामीजी इसे वीर पर घटित करना चाहते हैं या कायर पर, इससे यह भी स्पष्ट नही होता। वस्तुत' स्वामीजी ने 'ग्रीव न मोडै देखणौ' मे निहित वीर-व्यक्तित्व के दर्प एव आत्मविश्वास-दीप्त स्वरूप को लक्ष्य नही किया।

पेटी मौड छिपाविया, जाणौ घाव न जीव।
हेलो दिवसा पाहुणौ, पडवै दीठौ पीव ॥156॥

प्रसग—नववधू की अपनी सखी के प्रति उक्ति—

व्याख्या—शयनागार मे प्रियतम को अपने कमरबद मे (मोतियो का) सेहरा छिपाए हुए देखकर ही मैं मन मे समझ गई कि ये घाव नही है, (जिन्हे चोट से सुरक्षित रखने या रिसने न देने के लिए कत ने कमरबन्द बाँध रखा है, अपितु उसमे युद्ध मे मरने-मारने के अटल सकल्प का सूचक सेहरा छिपाए हुए होने के कारण ही उन्होने यह कमरबन्द बाँध रखा है)। हे सखी! मैंने तभी यह जान लिया कि मेरा कत कुछ ही दिनो का मेहमान है, मरण-सकल्पधारी यह शूरवीर अधिक दिन नही जीएगा।

शब्दार्थ—**पेटी**=कमरबन्द। **मौड़**=सेहरा। मध्यकाल मे जो वीर यह सकल्प कर युद्ध मे जाता था कि या तो विजय-श्री वरण करके लौटेगा अन्यथा वीर गति प्राप्त करेगा, किन्तु किसी भी दशा मे पराजित होकर जीवित नही लौटेगा, वह केसरिया बाना धारण कर तथा गले मे तुलसी-माल पहन अपने सिर पर एक सेहरा बाँध लिया करता था, जो उसके उक्त अटल सकल्प का सूचक प्रतीक-चिन्ह होता था। 'वीर विनोद' मे इस आशय का स्पष्ट उल्लेख हुआ है —

"यह रामसिंह केसर के रग की पोशाक के सिवाय सिर पर मोतियो का सेहरा बाँधे हुए था, जो राजपूतो का लडाई मे मरने के इरादे का लिबास है।"[1]

ठीक ऐसा ही उल्लेख कवि जोधराज-कृत 'हम्मीररासो' मे भी हुआ है —
"हम्मीर की आज्ञा माथै धरि राव हम्मीर कै उमरावाँ केसरिया साज बणाया अरु बाँधि पातसाह की फौज परि हाँको कियौ।"[2]

यहाँ भी मौड से मरने-मारने के अटल सकल्प के सूचक, वीरता के उसी प्रतीक-चिन्ह से अभिप्राय है, जिसे यह शूरवीर अपने कमरबन्द मे छिपाए रखता है

1. वीर विनोद, कविराजा श्यामलदास-कृत, भाग 2, पृ० 355
2. हम्मीररासो, कवि जोधराज-कृत, पृ० 156, स० श्री श्यामसुन्दरदास

तथा जिसको देखकर उसकी नव परिणीता प्रिया अह अनुमान कर लेती है कि उसका शूरवीर पति चन्द दिनो का ही मेहमान है ।

वीरता के ऐसे ही प्रतीक–चिन्ह को डिंगल–काव्यो मे कदाचित् 'नेत' के नाम से भी अभिहित किया गया है । डिंगल का 'बानैत' शब्द इसी अर्थ का ज्ञापक है, जो भावार्थ मे उद्भट वीर या प्रचड योद्धा का वाचकत्व करता है (बाना या नेत अर्थात् वीरता के प्रतीक चिन्ह को धारण करने वाला = बानैत, प्रचड वीर या योद्धा) । वीरता के इस प्रतीक–चिन्ह —'नेत' को वीर द्वारा सिर या ललाट पर बाँधे जाने का डिंगल–काव्यो मे स्पष्ट उल्लेख मिलता हे । यथा :—

1 कमधज्ज पित्ता जिम कल्लवा, वेहसि बाधौ नेत सिरि ।[1]

तथा —

2 नायक निलँ बाधियँ नेत ।[2]

आश्चर्य है कि डिंगल–काव्य के इस अति प्रसिद्ध एवम् अतिशय प्रयुक्त शब्द का उक्त प्रतीक-चिन्ह-वाची अर्थ राजस्थानी सबद कोस मे कही नही दिया गया है[3], जिससे इस शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने मे बडी भ्रान्ति हुई है ।

उपर्युक्त उदाहरणो के सदर्भ मे 'मौड' शब्द का अर्थ 'सेहरा' यहाँ उक्त विशिष्टार्थ मे ही ग्रहण किया जाना चाहिए, जो, जैसा कि कह आए है, वीर के मरने–मारने के अटल सकल्प का सूचक है । इसी भाँति, गले मे तुलसी-मजरी धारण करना भी मरने या विजयी होने के अटल सकल्प का सूचक था । कवि दलपतविजय–कृत 'खुमाणरासो' मे भी वीरवर गोरा द्वारा 'मौड' बाँधकर युद्ध करने का स्पष्ट उल्लेख हुआ हे, जो युद्ध मे उसके मरने–मारने के अटल सकल्प का सूचक है :—

बाधे मोड महाबली, बाधे असि गजगाह ।[4]
सिर तुलसी दल घालिया, डहिया खाग दुबाह ।।

'मोड' शब्द का उपर्युक्त विशिष्ट अर्थ न समझ 'वीर सतसई' के विद्वान् सपादको—श्री डा० सहलजी व श्री स्वामीजी आदि ने, अपने द्वारा सपादित

1 गजगुणरूपकवध, पृ० 63,

2 वही, पृ० 214,

3 देखिए राजस्थानी सबद कोस, द्वितीय खण्ड, द्वितीय जिल्द, पृ० 2221-22 स० श्री सीतारामजी लालस ।

4. खुमाणरासो, दलपतविजय, पृ० 174 (पद्मिनी चरित्र चौपई) स० श्री भँवरलाल नाहटा ।

सस्करणो मे जो 'सेहरे से घाव छिपाये जाने' के अर्थ कर दिए है—वे भ्रान्त हैं। इस दृष्टि से राजस्थानी टीकाकार का अर्थ सर्वथा सगत है ।

छिपाविवा=छिपाते हुए । **जाणौ**=जान गई समझ गई । **जीव**=जी मे या मन मे । **हेली**–सखी ! । **दिवसां पाहुणौ**=कुछ ही दिनो का मेहमान । **पडवै**=शयनागार । **दीठौ**=दिखाई दिया, जान लिया । **पीव**=प्रियतम, कत ।

राजस्थानी टीका—कोइ एक वीर पुरुष री स्त्री आपरै पती री प्रतग्या देख कहै–हे हेली ! माहरै पती री वीरता देख। पहली रात पडवै पौढिया सो गौड (पेटी) मे छिपायोडौ है, आ हू म्हारा जीवसू जाणू हूं। औ घाव नही (पेटी रै वासतै वीर की श्री (स्त्री) पूछियौ आपरै पेटी क्यू बाधी है ! तद पती कह्यौ–अठै घाव है वायौडौ तद पिछाणियौ घाव नही नै मौड है—मरण रौ प्रण करै तिके फौज मे मोड वाध, केसरिया कर घोडा ओरदे है—नै मोड अपछरा वरण सारू बाधै है, आ जुद्ध मे रीत है) सो हेली ! म्हारै पती दिना रौ पामणौ है—आ पैली रात पडवै हीज म्है पारख करली है ।। इ० ।।

पावस आया जक पडै, पैला दहल अपार ।
भाजड री घर–घर भणै, हुआ लोह अभिसार ।।157।।

व्याख्या—वर्षाऋतु आने पर ही शत्रुओ को (वीर के आक्रमण से) थोडा चैन मिलता है, अन्यथा उन पर असीम आतक छाया रहता है। युद्ध-यात्रा के पूर्व शस्त्र-पूजन होते ही कायर लोग घर-घर मे भागने की ही बाते करते हैं। अर्थात् वीरो के यहाँ अभियान-पूर्व शस्त्र–पूजन की विधि सपन्न होते ही कायरो के घरो मे भगदड मच जाती है ।

[वर्षाऋतु मे जगह-जगह पानी भर जाने व नदियो आदि मे बाढ आजाने के कारण आवागमन रुद्ध होजाता है, जिसके फलस्वरूप वीरो का सैन्य अभियान प्राय' बद-सा रहता है। फलत. पावस मे ही शत्रुओ को थोडा चैन मिलता है। इसमे परोक्षत. वीर के शौर्य और आतक की व्यजना उद्दिष्ट है] ।

शब्दार्थ—**पावस**=वर्षाऋतु । **जक पड़ै**=चैन मिलता है (मुहा०) **पैला**=शत्रुओ मे । **दहल**=प्रबल भय या आतक । उदा०—

दहल पड़ै ज्या देखनै राणा सुरताँणा ।[1]

भाजड़=भागने की, पलायन की । उदा०—

---

1 पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत पृ० 36

'बिना ही अपराध **भाजड़** मे भीत सकट रै हेठै सपत्नीक सूता जोइया दला नूँ जाइ हणियौ ।[1]

भणै=बात या चर्चा करते है । **हुआँ लोह अभिसार**=युद्ध-यात्रा के पूर्व का शस्त्र-पूजन । प्रमाण –

लोहाभिसारो अस्त्र भृता राज्ञा नीराजना विधिः ।[2]

श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि सपादको ने इसका अर्थ 'सशस्त्र योद्धाओ के प्रयाण करने पर' किया है, जो निराधार हे । 'अभिसार', अभियान या प्रयाण का वाचक नही है । इसी भाँति, श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा किया गया 'शस्त्र-प्रयाण' अर्थ भी निराधार है ।

राजस्थानी टीका—एक कोई वीर री स्त्री कोई सखी ने कहै छै तथा कवी कोई वीर री तारीफ करै है—पावस–चौमासो आया जक पडै, घर रहै, जितरै चौमासो न आवै इतरै पैला, शत्रुआ ने घणी दहल पडै है और भाजड री (भाग जाण री) घरोघर मे तयारी हुवै है, जद कै हुवा लोह अभिसार (दशरावै तरवारा री पूजन) होवता ही ।।इ०।।

राजा आणौ पार री, जग कुबगा जीत ।
राजा पग बाधै रसा, राजा कुल री रीत ।।158।।

व्याख्या— वीर राजागण भीपण युद्धो को जीत कर पराई (शत्रुओ की) भूमि को अपनी कर लेते है तथा उसे अपने पैरो से बाँधे रखते है (अपने बाहुवल से उस पर अपना अटल प्रभुत्व स्थापित किए रहते हैं) । वीर राजकुलो की यही रीति है ।

शब्दार्थ—**आणौ**=लाते हैं (अपने अधिकार मे) । **पार री**=पराई, शत्रुओ की । **जग**=युद्ध । **कुबगां**=भीपण, दुर्धर्प, बाँके । श्री डा० सहलजी व श्री स्वामीजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'शत्रुओ को' किया है परन्तु शत्रुओ का वाचक शब्द 'पार री (शत्रुओ की) दोहे की प्रथम पक्ति मे पहले ही आ चुका है । राजस्थानी टीका कार ने 'कुबगा' को विश्लिष्ट कर 'कु+वगा' अर्थात् बगाल तक की भूमि (कु=पृथ्वी वग=बगाल) अर्थ किया है, जो विलष्ट कल्पना है । हमारे विचार से 'कुबगा' शब्द यहाँ 'जग' का विशेषण है । 'कुबगा' अर्थात् बाँके, विकट, भीपण या दुर्धर्ष । 'वश

1 वशभास्कर, पचमराशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 1844

2 अमरकोष . 2–8–94,

भास्कर' मे भी 'कुबंग' का प्रयोग हुआ है, जहाँ इसका अर्थ 'कुरीति' दिया गया है। वह प्रयोग निम्नांकित है :—

जो मरिहै तो घनों बल जग मे बीतिहै रावरो, रीति कुबग ह्वै ।[1]

'वशभास्कर' मे अन्यत्र 'कुबग' शब्द 'बाँकी' के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है। यथा —

जवसम मध्य वडी कुकुद **कुबग** व्है[2]। तदनुसार 'जग कुबग' का अर्थ 'विकट या दुर्धर्ष युद्ध' करना ही सगत प्रतीत होता है। 'रणबका' शब्द प्रचलित भी है।

राजस्थानी सबद कोस मे इसका अर्थ 'विरुद्ध' दिया गया है।[3]

पंग बांधै=पैरो से बँधी हुई होना मुहावरा है, जिसका अर्थ है सदा के लिए अधिकृता, चरणानुगता। मिलाइए—मेक बहै अरसीह समो भ्रम,

प्रथी बिलग्गी तूझ पह ।[4]

रसा=पृथ्वी। **राजांकुल**=राजकुलो।

विशेष—पराई भूमि को अपने बाहुबल द्वारा अधिकृत करना भी मध्ययुग मे वीर-चरित्र का अनिवार्य गुण माना गया है। इसीलिए वीर के लिए 'पर भौम पचायण' जैसी उपाधियो का प्रयोग हुआ है। वशभास्कर मे सूर्यमल्ल ने एक ऐसे ही वीर का वर्णन करते हुए लिखा है—"अर घणाँ देसाराँ लूटणहार धाराँ रा अधीस **पराई भूमि रा भोगणहार** मेडतिया बलभद्र नूँ रामपुरै लेजाइ बिबाहियौ।"[5]

राजस्थानी टीका—कवी कहै है–राजा है सो पाररी, पैलाँरी, जग मे कु= पृथ्वी, बगा कहै बगाल ताई री जीत नै ले आवै। जद राजाआं रा पगाँ रै बध जाय है वा रसा, धरती (पग मे धूड री बेडी है) आ सदीव राजा रा कुल री रीत है। सारास, राजा पैला सू धरती जीत लै है तद धरती राजाआ रै बधण है ।।इति।।

टिप्पणी—टीकाकार ने 'पग बावै रसा' का अर्थ जो 'धूड री बेडी' ('बधण') किया है, वह असगत है। 'पैरो से बँधी हुई' का अर्थ सदा के लिए अधिकृत है। अर्थात् भूमि राजाओ की चरणानुगता है, उनसे अलग नही की जा सकती।

---

1 वशभास्कर, सप्तमराशि, अष्टम मयूख, पृ० 2828

2 वशभास्कर, द्वितीय राशि, चतुर्थ मयूख, पृ० 315;

3. राजस्थानी सबद कोस, प्रथम खण्ड, पृ० 519,

4 महाराणायशप्रकाश, पृ० 22,

5. वशभास्कर, षष्ठराशि, एकादशमयूख, पृ० 2325;

पहली असिवर पाछटै, अरिया सीस विछोड ।
पाछै अजका भूप रा, दल भड पूगै दौड ॥159॥

व्याख्या—पहले वे शत्रुओ के शीश काट गिराने वाली अपनी तलवार का प्रहार कर चुकते है, उसके बाद ही राजा की सेना के अन्य फुर्तीले सुभट वहाँ दौड कर पहुँच पाते हैं । अर्थात् वे अकेले ही इस प्रचड वेग से शत्रु-मुण्डो को काट गिराते हैं कि दूसरे वीर वहाँ दौडकर पहुँचे—तब तक तो शत्रुओ के सिर धरती पर लौटते नजर आते है । तात्पर्य यह कि अन्य वीर तो शोभा मात्र के लिए है, शत्रुओ के शिरोच्छेदन के लिए तो वे अकेले ही पर्याप्त हैं ।

इसे कवि-वचन अथवा किसी शूरवीर पति के शौर्य की प्रशसा मे उसकी पत्नी का कथन माना जा सकता है ।

शब्दार्थ—असिवर=तलवार । पाछटै=चलाते है, प्रहार करते है । **सीस विछोड़**=सिर अलग कर देने वाली । **पाछै**–पीछै । **अजका**=फुर्नीले, चचल, जिन्हे चैन न पडे ऐसे अदम्य युयुत्सु । हम इसे 'भड़' का विशेषण मानने के पक्ष मे है, अर्थात् 'फुर्नीले वीर' (राजा के) । तद्विपरीत, अन्य सपादको ने इसे 'राजा' (भूप) का विशेषण माना है । **दल**=सेना (के) । **भड़**=योद्धा । **पूगै**–पहुँचते है ।

विशेष—इस दोहे के द्वितीय चरण मे 'सीस विछोड' की जगह 'लोह विछोड' पाठ भी मिलता है, जिसे डा० सहलजी व स्वामीजी आदि सपादको ने स्वीकार किया है । तदनुसार अर्थ होगा 'शस्त्र छुडा देने वाली (तलवार)' । टीका मे 'सीस विछोड' पाठ है । हमने उसे ही स्वीकार किया है । 'वशभास्कर' मे भी इस आशय के प्रचुर उल्लेख मिलते है :—

1. 'तीं पछैं ऊला हाथ री ओझड सूं नाहरराज सिपाह बली रो सीस उडायो ।[1]

2 'अर सोढे सारगदेव चामुण्डराज रै चाचरै चद्रहास झाडियौ ।'[2]

राजस्थानी टीका—राजा है सो जुद्ध मे सारा सुभडा पहला वैरिया रा दल माथै असिवर (तरवार) पछटै और पछे उथा अजका (उतावला) भूप रा जोधार झगडा मे राजा ने पूगै । कारण, राजा झगडा मे लारै चाहीजै सो सारा नकै जाय जुद्ध करै–इसौ टणकौ है ।

---

1. वशभास्कर, चतुर्थराशि, पचदशमयूख, पृ० 1353,
2. वही, चतुर्थराशि, षोडशमयूख, पृ० 1373,

राजा फौज रै विचै रहै, पण औ राजा इसौ वीर है सो फौज सू पहला असिवर—तरवार वैरीया ऊपर वाहै सो सीस विछोड, सिर पडता हीज निजर आवै और पछै उण अजका–घणी फुरती वाला राजा दल दुसमणा ने पूगै ।

ऊगै जिम दूणा अमल, लीजै आज अठेल ।
मरजाणी रा खेल मे, घरजाणी रा खेल ॥160॥

व्याख्या—आज खूब डटकर अफीम ले जिससे और दिनो से दूना नशा हो और फिर मदोन्मत्त होकर ऐसा युद्ध करें कि मर जाने के इस खेल मे घर जाने का भी खेल होजाए ! (अर्थात् प्राणो की परवाह किए बिना घर के सारे ही लोग वीरता पूर्वक लडते हुए कट मरे, घर मे कोई जीता न बचे, जिससे यह मर जाने का तमाशा घर जाने का भी तमाशा बन जाए ।)

शब्दार्थ—**ऊगै**=नशा होना । अमल का नशा होने को राजस्थानी मे 'अमल ऊगणो' कहते हैं । **अठेल**=खूब, अत्यधिक । **मरजाणी**=मरजाने ।

विशेष—मध्य काल मे वीर युद्ध मे जाने से पूर्व अमल के नशे मे छक कर जाते थे । इस आशय के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

"यु कहनै वाहर चढीया । आगै घोडी लीया जाय छै । दिन घणो चढीयौ छै । वीरमदेजी अमल घणो खाधौ थौ ।"[1]

एव योद्धा के ज्यो-ज्यो घाव लगते थे, अमल का नशा गहरा होता जाता था—

"कितराएक ठाकुर बोलिया—घाव लागसी ज्यू ज्यू अमल जागसी, घाव लागणौ द्यौ ।"[2]

ऐसे मदोन्मत्त शूरवीर घर-बार की चिन्ता किए बिना वीरतापूर्वक लडते हुए कट मरते थे । घर की चिन्ता करने वाला मर नही सकता । वीरता और घर की चिन्ता विरुद्ध-पर्याय है । अमल वीरो को घर-बार की सुध भुला कर मदोन्मत्त कर देता था, जिससे वीर रण-रोष मे भर मर मिटते थे । तद्विपरीत, जिन लोगो ने कभी 'काले नाग के झाग' (अमल) का नशा नही किया, वे मरने-मारने की केवल बाते ही सुनते है, मर नही सकते । वे पृथ्वी पर अपना मनुष्य जन्म यो ही खो, जैसे आए थे, वैसे ही मुँह लटकाए चले जाते हैं ! देखिए—

---

1. वीरमदे री वात, वीरवाण, परिशिष्ट, पृ० 2, सं० श्रीमती ल० कु० चूंडावत
2. वात प्रतापमल देवडा री; रा० वाता, भाग 1, पृ० 98, सं० श्री नरोत्तमदास स्वामी ।

मरण-मारण तणी सात समदा मही[1]
कहौ जी उणा री बात सादा कही ।
जकै नर हारिया जनम आया ज्यु ही,
नाग काला तणा झाग खाया नही ।।

सूर्यमल्ल के अमल विषयक उद्गारो का मर्म इसी भाव-सदर्भ मे ग्रहण करना चाहिए ।

राजस्थानी टीका—कोई सिरदार आपरा जोधारा ने जुद्धरी वेला कहै छै-आज जुद्ध री वखत है । अमल दू णा उगै जितरा अठेलमा ले लौ । आज इण मरजाणी-मरने दी जावै, इसी धरती तथा तरवार रा खेल-ख्याल (जुद्ध मे) घर जाणी-घर जावै जिणरा राखणा सू वा काई वीरता वा लाज है सो राखेल कहता राखणी है।।ड ।।

रग अचाही जोगिया, रावत वीरा रग ।
इम खोबा ले ले अमल, जीतण पूगा जग ।।161।।

व्याख्या—रग है उन योगियो को, जिन्हे कोई स्पृहा नही है, रग है उन क्षत्रिय वीरो को, जिन्हे प्राणो का भी मोह नही है—यो कह चुल्लू भर अफीम पी-पी कर योद्धागण मदमत्त हुए युद्ध जीतने जा पहुँचे ।

शब्दार्थ—**रग**=शाबाश, धन्य है । राजस्थान मे किसी वीर को शाबाश देने के प्रसग मे कहा जाता है-रग है अमुक को । ऐसे दोहे 'रग रा दूहा' कहलाते है । **अचाही**=कुछ न चाहने वाले, निस्पृह । **जोगियां**=योगियो को । **रावत**= क्षत्रिय वीर (स राजपुत्र) । सच्चे 'रावत' (शूरवीर क्षत्रिय) के क्या लक्षण हैं—इस आशय का एक राजस्थानी दोहा द्रष्टव्य है —

मन धीरा चित ऊजला, करा ज बरसणहार ।[2]
रावत मु हगा राखसै, सो सुणज्यो सिरदार ।।

खोबां=चुल्लू । **जग**=युद्ध ।

विशेष—कवि यहाँ योगियो और वीरो को इसलिए रग देता है (शाबाश देता है) क्योकि दोनो ही अपने प्राणो के प्रति सर्वथा निस्पृह होते है । योगियो के समान शूरवीर भी युद्ध मे अपने प्राण उत्सर्ग करते हुए नही हिचकिचाता । इसीलिए कविवर केसोदास गाडण ने 'गजगुणरूपकबध' मे अपनी काया का मोह त्याग समराङ्गण मे प्राणो की बाजी लगाने वाले राठौड वीरो की उपमा जोगियो की जमात से दी है—

---

1. गीत अमल री सौभा रौ, डिंगल गीत, पृ० 105, स श्री रावत सारस्वत ।
2. कु वरसी साखला री बात, मरुवाणी, पृ० 75, स. श्री रावत सारस्वत ।

कमधज्ज तजे मनमोह् कायाचौ, वीर तिसोह् विसतयरिय ।[1]
तत ले निरबाण क राज तियाग, गोपीचद भरत्थरिय ।।

इसी भाँति, राजस्थानी साहित्य मे अन्यत्र भी प्राणो का मोह् त्याग समर मे जूझने हेतु जाने वाले रणशूरो को 'जोगीन्द्र' कह् कर पुकारा गया है —
'सो घोडा ऊपर पाखरा घात, बगतर पह्र सारो साथ ह्योय जोगिंद्र फोज चढी[2]

राजस्थानी टीका—अमल रा रग इसा वीर होवै तिकानै देजै । रग है अचाही—स्वारथ विना उपकार करण वाला जोगी ने, आपरा स्वारथ छोड स्यामधरमी वीर रावत है, तिकाने, इण तरै खोबाबाजी कर अमल ले जुद्ध जीतण वाला ने घणा रंग है ।

फजरा चोपा घेरिया, धूली अबर धूद ।
कै धण माट बिलोवसी, कै घट जासी घूंद ।।162।।

व्याख्या—सुबह् होते ही डाकुओ (धाडवियो) ने गोधन को घेर लिया, जिससे उनके व भगाकर ले जाए जारहे पशुओ के पैरो से उडी हुई धूल से आकाश धुँधला होगया । वीर अपने गोधन को छुडाने गया है । यदि वह् छुडा लाया तब तो उसकी पत्नी सदा की भाँति मटके मे दह्री बिलोएगी ही और यदि नही छुडा सका तो शत्रु उसके शरीर को रौद कर ही गोधन ले जा सकेगे, जीतेजी नह्री ।

शब्दार्थ—**फजरां** = सुबह्, प्रात काल । चोपा = चौपाये, गोधन, पशुधन । उदा०—'तठा पछै सिंधल वीदै विसल आय तेजसीजी रा गुढा रौ **चौपो** लियो ।'[3] **धूली** = धूल से । **अबर** = आकाश । **धूद** = धुँधला । **कै** = या तो । धण = पत्नी । **माट** = मटका । **बिलोवसी** = मथेगी, बिलोएगी । **घट** = शरीर । डा० सह्लजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'गला' व 'छाती' कर दिया है, जो अयुक्त है । घट यहाँ शरीर का वाचक है । यथा '—

घट खूदत केसर पौड घणा ।[4]

---

1 गजगुणरूपकबध, पृ० 27,

2. कुवरसी साखला री बात, स. डा० मनोहर शर्मा, 'मरुवाणी' जून-अगस्त, 71 पृ० 69, स श्री रावत सारस्वत ।

3. राव मालदे री बात, ऐतिहासिक बाता; पृ० 64, स० श्री डा० नारायणसिंह भाटी ।

4. पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत पृ० 281

तथा—

> जाइ सकइ सोई जाहु,[1]
> रहइ सोइ मेरा साथी ।
> जव लगु घट महि सासु
> देउ ता लगइ न हाथी ।।

'घट' का अन्य अर्थ 'घडा' भी होता है । तदनुसार एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है कि या तो 'वीर की पत्नी सदा की भाँति माट बिलोएगी या शत्रु घडे फोड जाएँगे' । परतु प्रस्तावित मुख्य अर्थ अधिक सगत है । घू द जासी = रौद या कुचल जाएँगे ।

विशेष—इस दोहे मे मध्ययुगीन राजस्थान के सघर्षमय जीवन का एक यथार्थ चित्र अकित हुआ है, जब एक दूसरे के 'वित' (गोधन) को बलात् हरण कर लेना तत्कालीन जीवन की एक सामान्य चर्या थी । वीरवर पाबू राठौड ने खीचियो से देवल चारणी के गोधन की रक्षा करते हुए ही अपने प्राण दिए थे ।

राजस्थानी टीका--गाया घेरीजी तिण वेला लारै वाहर चढिया तिका बहादराँ रा वचन --

आज वडी फजर गाया रौ वित दुसमणा (मुसलमाना) घेरीयौ है (सूर जितै रिव मडला ओलै अग किया, सूरा छत्री नह छिपै गाया घेर लिया---1. अर्थ–जठा ताई सूरज, रिवमडल, धरती मडल, माथै तपै है, जठा ताई सूरज धरती ऊपर तपै है, उठा ताह तौ सुद्ध कुल रौ सूर छत्री है सो ओलै अग करने जीव लुकाय ने नही रहे, अर्थात् गाया घेरली कानाँ सुणली तौ जल गऊँवा छुडाय ने पीयै–धिन्न हा वे दर्शणीक वीर क्षत्री, कोई दिन इण भारतवर्ष मे घरोघर ओडा लाधता हा ।) पुन दोहार्थ—

सो घोडा रा पौडा सू ने गऊवाँ रा खुरा सू रजी उडी है । असमान धू द-धू धलौ होय गयौ है, सो वे वा दिनाँ रा वीर क्षत्री कहै है कै मार दुसमणा ने ओर गऊवा ले आवा सो लुगायीया दही रा माट विलोवसी कै मर पूरा देसा सो गऊवा ऊपरा सूं दे दे पग ओर घट (सरीर) खू दती जासी ।।इति।।

> मिलियै मन, खोवा अमल, पाते भोजन-पान ।
> भड घोडा अजका सदा, जिण रौ हुकम जहान ।।163।।

---

3. Bardic and Historical Manuscripts, Sect II, Part I, Page 43 Editor—Dr. L P. Tessitori.

व्याख्या—जो मन मे सबसे मेल रखता है (सबके प्रति सौहार्द्रपूर्ण और स्नेहशील होता है), अपने आश्रित सामन्तो का सम्मान करता हुआ उन्हे अपने हाथो से अफीम पिलाता है; उनके साथ बिना किमी भेदभाव के एक ही पक्ति मे बैठकर भोजन करता है तथा जिसके योद्धा और घोडे युद्ध के लिए सतत आकुल (सन्नद्ध) रहते हैं—ऐसे सदाशय और उदारमना शूरवीर का हुक्म सारे ससार पर चलता है। अर्थात् दुनिया भर मे उसकी दुहाई फिरती है।

शब्दार्थ—**मिलियै मन** = मन से मेल रखने वाला, सौहार्द्रपूर्ण। **खोबां** = अजलि। श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'धोबो' किया है परन्तु 'धोबा' और 'खोबा' मे अन्तर है। 'धोबे' मे दोनो हथेलियो को सामने की ओर फैलाकर अजलि बनाई जाती है, जैसीकि अगस्त्य मुनि की समुद्र-शोषण करते समय की मुद्रा थी। किन्तु अफीम इस तरह नही पिलाया जाता। 'खोबा' मे हथेली पर हथेली रख अजलि बनाई जाती है, जो बहुत आदर की विधि है। **पाते** = एक ही पक्ति मे, जो स्नेह और बाधवोचित समानता का द्योतक है। मध्ययुगीन सामन्ती व्यवस्था मे किसी राजा या सरदार का अपने आश्रित राजपूत बधुओ के साथ एक ही पक्ति मे बैठकर भोजन करना उनके प्रति उसके अत्यधिक आदर व सम्मान का ज्ञापक समझा जाता था। वीरवर रामदास वेरावत की प्रसिद्ध 84 'आखडियो' (प्रतिज्ञाओ) मे एक 'आखडी' इस आशय की भी थी—

'गोव भु जाइ सगला साथ ने हुवा विना जीमण री आखडी।'[1]

तथा —

'सगला साथ ने अमल कसु वो कीना विना रहवारी आखडी।[2] भड = योद्धा। **अजका** = युयुत्सु, रणाकुल। **जहान** – ससार।

विशेष—मिलाइए —"अब वीरमदे साथ रा साथ्या नै हाथ सूं अमल देवै छै। घणाँ मन मेलू छै ज्याँकी मनवारचाँ पिण लेवै छै।" [3]

राजस्थानी टीका—कवी कहै है – इसा जोधारा रा हुकम प्रथी ऊपर रहै छै—जकै सिरदार सारा सू मिलियै मन, मन-सुद्ध आपरा रजपूत तालकदारा सू रहै। प्रयोजन सरदार रौ मानभग देख आपरा तालकदार तथा असेंधा ही लेणरी इछा तौ स्वारथ वाला रौ काम है पण सिरदार री क्रपा और सुद्ध मन री चाह सारा रै होवै

1. रामदास वेरावत री आखडी री बात, रा० सा० स०, भाग 1, पृ० 20
2 वही।
3. पना-वीरमदेव की वार्ता, पृ० 83।

है । सुद्ध मन रा सिरदार री चाकर वुरी कहै नही, वुरी सुणै नही तिण सू सुध मन कयौ—इसौ तो मिलियै मन—मन मेलू और आपरा रजपूता रा कुरब वधारण सारू खोबा भर आपरा हाथ सू अमल देणौ और पातियै भोजन, एक पातियै जीमणौ, पान (दारू) सारा रजपूता सैमल लैणो, भड घोडा अजको—ताता भड फुरती वाला—इसा सिरदार ने इसी परचै होवै तौ उणरौ हुकम इण जिंहान मे चालै ।।इति।।

> अमल कचोला ऊझलै, हौदा केसर रग ।
> पीव जिके घर जावता, सीस न लीजै सग ।।164।।

व्याख्या—हे प्रियतम ! जहाँ लबालब भरे कटोरो से अफीम तथा हौजो से केसरिया रग छलकता रहता हे, ऐसे घरो पर चढाई करने जाते समय अपना सिर कभी साथ नही लेजाना चाहिए । अर्थात् वहाँ जाने पर सिर कभी सलामत नही रह सकता (मरण निश्चित हे) । [भाव यह कि जहाँ मदोन्मत्त होकर युद्ध करने हेतु शूरवीर गलाये हुए अफीम से भरे कटोरे तैयार रखते है तथा 'केसरिया' करने हेतु जहा हौजो मे केसरिया रग लबालब भरा रहता हे-ऐसे हर क्षण मरणोद्यत शूरवीर के घर पर आक्रमण करने के वाद जीवित लौटना असभव है ।]

शब्दार्थ—**कचोला=कटोरो से (अपादान) । ऊझलै=छलकता है**, अधिक न समा सकने के कारण छलक-छलक पडता है ।

विशेष—जैसा कि पहले कहा जा चुका हे, योद्धा युद्ध मे जाने से पूर्व 'अमला चाक' होकर जाते थे । साथ ही, जब वे जीवित न लौटने तथा मरने-मारने का सकल्प कर 'केसरिया बाना' पहन कर निकल पडते थे तो इसे 'केसरिया करणौ' कहा जाता था, जिसके शतश उदाहरण राजस्थानी साहित्य मे बिखरे पडे है । यथा —

'ताहरा अणाइ केसरि नै पाँच सौ असवारे केसरिया किया ।'[1]

'वशभास्कर' मे भी सूर्यमल्ल ने इस आशय का वर्णन किया है —[2]

'आपरा अजेय वीराँ रो इसडो अभीष्ट जाणि कु कुम रो कु ड घुलाइ हाडा रो अधीस हालू बासठि वर्ष रा वय में पहली आपरा वस्त्राँ रै बोल दिवाइ उर्बसी रो वीद वणियो ।।" राजस्थान की वे रोमाचक परपराए अब इसके साहित्य मे ही शेप रह गई है !

राजस्थानी टीका—कवी वरणण करै है-एक वीर पुरष री श्री (स्त्री) आपरा पती नै समझावै है, हे पीउ ! जिकण सिरदार रै अमल गलीयौडा रा तो

---

1 वात नान्है वाघेलै री, रा० वाता, भाग 1, पृ० 40, स श्री न० स्वामी ।

2. वशभास्कर, पचमराशि, एकादशमयूख, पृ० 1811,

कचोला-तासला ऊभलै—छिलै है, केशर गलीजी है, जिण सूं हौद भरियौडा उभलै छै (झगडा सारू केशरिया करण ने) तौ हे पीव ! आप सूरवीर हौ, पण इसा रजपूत रै घर माथै जावता माथौ साथे नई लेजावणौ क्यू कि इसा राजपूत केशरिया करियोडा हीज बैठा है, तिके माथौ पाछौ लाण देवै नही, उरौ हीज लेवै । अर्थात इसा घर पर जीवण री आस छोड ने जाणौ ।।इ०।।

विण माथै वाढै दला, पौढे करज उतार ।
तिण सूरा रौ नाम ले, भड बाधे तरवार ।।165।।

व्याख्या—अपना मस्तक कट जाने पर भी जो शत्रुसेना को काट डालता है तथा युद्ध मे स्वामी के ऋण को पाई-पाई चुका कर ही जो रणशय्या पर सोता है (शरीर मे अतिम श्वास रहने तक जो स्वामी के लिए तिल-तिल जूझता हुआ वीरगति प्राप्त करता है)-ऐसे स्वामिभक्त शूरवीर का नाम लेकर ही योद्धागण अपनी तलवार बॉधते है । [अर्थात् युद्ध मे जाने से पहले उसके नाम का सादर स्मरण करते हुए तलवार धारण करते है ताकि उसके शुभ नाम के प्रभाव से उन्हे भी पराक्रम की वैसी ही प्रेरणा मिले तथा विजयश्री प्राप्त हो] ।

शब्दार्थ—**विण माथै**—बिना सिर के, मस्तक कट जाने पर भी (अर्थात् कबध-रूप मे) । मिलाइए—बिण माथै जूझण बलै, बदी बदियो बोल[1] । **वाढै**= काट डालता है । **दला**=सेनाओ को । **पौढ़े**=शयन करता है, धराशायी होता है । **करज उतार**=ऋण चुका कर, स्वामी का जो नमक खाया है, उसके बदले अपने प्राण देकर । अथवा, अपने बाप-दादो के बैर का बदला लेकर ।

विशेष—अपना सिर रहते तो सभी लडते है, परन्तु सिर कट जाने पर भी जो शत्रुसेना को काटता चला जाए, ऐसा शूरवीर 'तोगा' जैसा कोई बिरला ही होता है । साथ ही, वह अपने स्वामी के लिए प्राण निछावर करे, तभी वन्द्य और प्रात स्मरणीय होता है । ऐसे उद्भट शूरवीरो मे वीरवर अमरसिंह राठौड भी एक था, जिसका नाम लेकर योद्धा हथियार बॉधते थे । यथा :—

"सारौ हथियारबध सिपाही **हथियार बधतौ अमरसिंह रो नाम लेय बाधण लागौ** ।[2]

राजस्थानी टीका—कवी सामधरमी वीर रौ वरणण करने कहै छै—

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2687
2. राठौड अमरसिंह गजसिंहोत री बात, राज० बाता, पृ० 165, स० डा० नारायणसिंह भाटी ।

जिको सामधरमी रजपूत काछपाल निकलंक सत्य बोलौ, सच बोलौ, जुध रै माहै विना माथै तरवार वाह नें सत्रुवा रा दल ने वाढण वालौ और धणी रौ करज उतारने जुद्ध मे पौढे, काम आवण वालौ--अरथात माल जितरो मुहगौ परोटियौ होवै इणहीज तरै सत्रुवाने मार तडल कर रण मेझ्या सुवै तौ कवी कहै--हे सुभडा ! थे तरवार उण वीर पुरप रौ नाम लेनें बाधौ, सो नाहरी कठै ही हार न होवै। उण वीर पुरप रा नाम सू जठै जासौ जठै फतै होवसी। प्रयोजन स्यामधरम सारा सूं वध नै छै ॥ इ० ॥

> नानाणै घर जाणता, छावै ऊ छक छाय।
> आप वसाया झूपडा, वैर खला चीताय ॥ 166 ॥

व्याख्या--ननिहाल को ही अपना घर जानते हुए जब वह वीर बालक यौवनोन्मेप को प्राप्त हुआ तो अपने शत्रुओ के बैर का स्मरण कर उसने अपना अलग झोपडा बाँध लिया (स्वतत्र घर बसा लिया)।

[अर्थात् वीर बालक के पिता को बचपन मे ही शत्रुओ ने मार डाला था तथा माँ उसके साथ सती होगई थी। तबसे बालक का ननिहाल मे ही लालन-पालन हुआ और वह उसे ही अपना घर समझता रहा। परतु जब युवा होने पर उसे पिता की मृत्यु के असली कारण का पता चला तो उसका खून खौल उठा एवम् शत्रुओ को मारकर अपने बाप के बैर का बदला लेने के इरादे से वह तुरन्त नाना का घर छोड़ अपना अलग झोपडा बाँधकर रहने लगा।]

शब्दार्थ--**नानाणै** = ननिहाल। **छावै** = बालक ने (स० शावक) **ऊ**=उस, वह। **छकछाय** = यौवनोन्मेष को प्राप्त हो, यौवन के मद मे भर।

उदाहरण--"एगारहीं मल्हनादिवासी रट्ठऊरि सदाकुमरि सुमेरूसाहिपुत्री बरी छक छाइ।"[1]

खला = शत्रुओ के। **चींताय**=स्मरण कर।

राजस्थानी टीका--एक कोई वीर बालक रौ बाप तौ झगडा मे काम आयौ ने मा सती हुई तद आप नाना रै घर वडौ हुवौ। नाना रै घरे रहनै नानेरा नें घर जाणतौ जद तौ वो छक छायोडौ हौ, अरथात टाबर पणै विना ज्ञान रयौ ने पाछा आपरा झूपडा आय वसावता ही वैरिया सू वैर चीतारीयौ (अर्थात् घर रौ वैर भूलौ नही ॥ इ० ॥

---

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, प्रथम मयूख, पृ० 2726,

भड सो ही पहला पडै, चील्ह् विलग्गा चैक ।
नैरा वचावै नाह रा, आप कलेजौ फैक ।।167।।

व्याख्या—सच्चा शूरवीर वही है, जो रणक्षेत्र मे अपने स्वामी से पहले लडता हुआ घायल होकर गिरता है तथा स्वामी के शव का भक्षण करने हेतु जब चील्ह उसकी ओर झपटती है तो क्रुद्ध हो अपने कलेजे के टुकडे-टुकडे कर उसकी ओर फैंकता हुआ अपने स्वामी के नेत्रो की रक्षा करता है ।

शब्दार्थ—**पहला पडै**=स्वामी को बचाने हेतु स्वय शत्रुओ से लडता हुआ पहले घायल होकर गिरता है । **विलग्गा**=लगने पर, भक्षण हेतु छीना-झपटी करने पर । **चैक**=क्रुद्ध होकर । 'चैक' शब्द का, जैसाकि दोहा सख्या 62 के शब्दार्थ मे सोदाहरण बता आए है, सूर्यमल्ल ने 'क्रोध करने' या क्रुद्ध होने के अर्थ मे प्रचुर प्रयोग किया है । अपने आश्रयदाता स्वामी के नेत्रो की ओर चील्हो को झपटते देख स्वामिभक्त शूरवीर का क्रुद्ध होना स्वाभाविक है । उसके लिए यह दृश्य सर्वथा असह्य है । अत यहाँ 'चैक' का अर्थ 'क्रुद्ध होकर' किया जाना चाहिए, 'चौक कर' नही, जैसा कि श्री डा० सहलजी आदि सपादको व श्री स्वामीजी ने किया है । टीकाकार ने 'चैक' का अर्थ "चख – आखे" किया है, जो भ्रान्त है । 'क्रोध करने' के अर्थ मे चैक' के प्रयोग के अनेक उदाहरण दोहा सख्या 62 के शब्दार्थ-प्रसग मे दिए जा चुके है । तथापि, पाठको की सुविधार्थ एक और उदाहरण यहाँ दे रहे है —

चक्रपानि लहि चैकि कुमर सानुज इतीक कहि ।[1] **नाह**=स्वामी ।

विशेष—तुलनीय —

गीधन को पल भख दिये, नृप के नैन बचाय ।[2]
सैदेही बैकुण्ठ मै, गयेजु सयमराय ।।

राजस्थानी टीका—एक स्यामधरमी धणी पहला पडगौ नै पछै कन्है हीज मालक पडियौ ।

भड सोई वो भरोसादार तौ पहला पडगौ ने पछै पाखती मालक घावा छक मुरछा आय पडियौ तद चील्ह मास खाण ने आण-आयने—चैक (चख) आखा पर बैठा तठै घावा मे पडियै ही सामधरमी नैण–आखिया वचाई मालक री, आपरौ कालजौ बारै नीकालियोडौ हो, सौ काट नै आखिया माथै न्हाक दीधौ—कारण, कालजौ कवलौ होवै है सो चील कालजौ खावसी जितरै मुरछा खुल जासी ने नेत्र रह जासी—इण ने सामधरमी सूरवीर कहजै ।।ई०।।

1. वंशभास्कर, चतुर्थराशि, विंशमयूख । पृ० 1409
2. विविध सग्रह, पृ० 117, स० ठा० भूरसिंह शेखावत ।

रण पाखै दुमनौ रहै, लाज न नैण समाय ।
पग लगर पाछा दियण, सो बानैत कहाय ।।168।।

व्याख्या—जो युद्ध के बिना उदास रहता है, जिसकी आँखो मे लाज समाती नही (अर्थात् जिसकी आँखो से आभिजात्य का असीम शील और सकोच झलकता है, जो वीरो का भूषण है) तथा जो युद्ध मे पैर पीछे न हटाने का लाज रूपी लगर धारण किए रहता है (अर्थात् युद्ध मे पलायन करने से कुल-कीर्ति पर कलक लगेगा–यह ध्यान जिसके पैरो को लोहे की बेडी के समान पीछे हटाने मे रोके रहता है)—ऐसा युयुत्सु, शीलवान एव कुल-गौरव की रक्षा मे अडिग् ही वस्तुतः 'बानैत' (सच्चा शूरवीर) कहलाता है ।

शब्दार्थ—**पाखै** – बिना । **दुमनौ** = उदास (स० दुर्मनस्क) । **लाज** = कौलीन्य का परिचायक वह शील और सकोच, जो वीर-व्यक्तित्व का भूषण है । कविवर ईसरदास के शब्दो मे जो "थोडा बोलौ, घणा सहौ" है । यह लाज कुछ वैसी भी हो सकती है, जैसी कविराजा बाँकीदास-वर्णित इस सिंह को होती है —

मृगरिपु नर केई मुणै, मुणै केक मृगराज । [2]
इण गज गजण सीह उर, दुहु प्रकारा लाज ।।

परतु डा० सहलजी आदि सपादको ने इस 'लाज' को जो 'युद्ध का अवसर न मिलने के कारण निठल्लेपन से उत्पन्न लज्जा' माना है—वह अर्थ हमे यहाँ उद्दिष्ट नही प्रतीत होता । युद्ध न होने पर वीर का खिन्न होना तो स्वाभाविक है, परतु इसके लिए उसके लज्जित होने का क्या कारण है ? युद्ध न छिडने पर वह जबरदस्ती तो किसी के गले पडने से रहा !

लगर = लोहे की बेडी, जो मस्त हाथियो को वश मे रखने हेतु उनके पैरो मे डाल दी जाती है । यहाँ लाज रूपी लगर से आशय है । अर्थात् कुल की लाज रखने का ध्यान, जो वीर को रणभूमि मे पैर पीछे हटाने मे रोके रहता है । सूर्यमल्ल ने 'वशभास्कर' मे इसका प्रचुर प्रयोग किया है । यथा —

1 पग रणलगर पहरिया भूखण, उडुगण भास ।[3]
2 अक्खिय अप्प रुप्यो रन रहनो, गिनहू लज्ज लगर नहिं गहनो । [4]

---

1 हालाँ-झालाँ-रा कु डलिया, पृ० 16,
2 बाँकीदास-ग्र थावली, भाग 1, पृ० 20;
3 वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2674;
4 वशभास्कर, सप्तमराशि, द्वादशमयूख, पृ० 2691,

3 हेला सगर बहनहार, लगर लज्जा के। [1]
4 करहु सोक जिन बीर धरहु पायन लज लगर। [2]
यह उपमा अन्य डिंगल-कवियो की भी बहुत प्रिय रही है —

गज भीम गयण लग्गे, पौरसि मदमत जोध परचड। [3]
सोहिया पैहर पगे, साकला लाज राण सीसोदह।।

तथा —

कवसल सुता राजकवार, ऋत जन काजरा। [4]
दरसै चखा दत खग दोय लगर लाजरा।।

बानैत = शूरवीर, योद्धा। श्री डा० सहलजी आदि सपादको ने यहाँ भी इसका अर्थ 'धनुर्धर' कर दिया है, जबकि 'बानैत' यहाँ उद्भट शूरवीर या योद्धा का वाचक है (बाना, अर्थात् वीरता के प्रतीक-चिन्ह को धारण करने वाला = शूरवीर, योद्धा)। इस अर्थ मे इसके प्रयोग के उदाहरणो के लिए पाठक कृपया दोहा स० 128 के शब्दार्थ देखे।

राजस्थानी टीका—कवी कहै कि इण तरै रो वीर वानैत वाजै—रिण पाखै—झगडा विना दुमनौ रहै, लाज इतरी कै चित्त मै ही नही समावै। झगडा री वेला पाछा पग दै नही, जाणै लाजरा लगर पडिया है—उण वीर ने 'वानैत' कहणौ।। इ०।।

टिप्पणी—टीका मे, द्वितीय चरण मे, नैण की जगह 'चीत' पाठ है।

बल खाधै जण जण बहै, कस बाधै करवाल।
परख भडा अर कायरा, त्रह त्रहिया त्रबाल।। 169।।

व्याख्या—अपने कधो मे बल डाल कर (अकड कर, जैसे दुनिया भर का बल उन्ही मे है!) तो हर कोई चलता है, तथा हर कोई अपनी कमर मे कस कर तलवार भी बाँध लेता है, परन्तु शूरवीर और कायर की परख तो त्रह-त्रह ध्वनि करते हुए युद्ध के नगाडे बजने पर ही होती है।

[अर्थात् युद्धारभ होने पर जब नगाडे पर त्रह-त्रह ध्वनि करती हुई डके की चोटे गूँजती है, तब शूरवीरो पर जहाँ सूरातन चढता है—वहाँ कायरो के भय के मारे

---

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, पचदशमयूख, पृ० 2714,
2. वशभास्कर, सप्तमराशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 2971,
3. गजगुणरूपकबंध, पृष्ठ 195,
4. रघुवरजसप्रकास, पृष्ठ 283,

कप-कपी छूटने लगती है। तभी पता चलता है कि कौन शूरवीर हे, कौन कायर। यों वीरता का बाना पहन कर झूठी शान तो हर कोई बघार लेता हे]।

शब्दार्थ--**बल**=अकड। **खाधै**=कन्धे मे। **जण-जण**=हर कोई, सब लोग। **बहै**=चलता हे। **करवाल**=तलवार। **परख**=पहचान, परीक्षा। **त्रबाल**=नगाडा।

विशेष--तुलनीय-'..... ..... समस्त ही खधावार रो भार आप आपरै अ स वहै।'[1]

राजस्थानी टीका—कवी कहै की कायरा री ने सूरवीरा री परिक्षा जुद्ध री समे होवे है।

आडै दिन तौ खाधा मे वल घाल्न नै जण जणौ वै वै है, अनै कस बाधै करवाल--तरवार ही कसने सूरवीरा ज्यू त्राव लेवै, पण भडा, वीरा री नें कायरा री परिक्षा तौ जुद्ध मे त्रवाल--नगारा त्रह-त्रहिया--वाजियाँ थका पडै। कारण औ है--जुद्ध रा वाजा सुण सूरवीरा ने तो सूरापणौ छूटसी नें कायरा ने जुद्ध रा नगारा सुण धूजणी चढसी।। इ०।।

फूटै पुड नौबत पडी, टूटे डड निसाण।
पेख सहेली पीव रं, पू चै बधियौ पाण।। 170।।

व्याख्या--हे सखी! प्रियतम के पहुचे का अतुल बल तो देखो, जिसके फलस्वरूप (नौबत पर मँढा हुआ चमडा तोड दिया जाने से) शत्रुओ की नौबत तो फूटी पडी है और उसका ध्वज-दण्ड टूटा पडा है। [अर्थात् प्रियतम के पहुँचे के भर-पूर प्रहार से शत्रु की नौबत बजनी बन्द होगई है तथा उसका ध्वज टूट कर आ गिरा है]।

शब्दार्थ--**पुड**=नौबत पर मँढा हुआ चमडे का आवरण जिस पर डके की चोट पडने से नौबत वजती है। **नौबत**=बडा नगाडा, जो देवमन्दिरो व राजप्रासादो मे विशिष्ट अवसरो पर बजाया जाता है। श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ "नगाडो का समूह" कर दिया है, जो भ्रान्त है। **डड**=डडा (ध्वज का)। **निसाण**=झडा, ध्वज। **पेख**=देख। **पू चै**=पहुँचे या कलाई मे। **बधियौ**=बधा हुआ। अर्थात् कलाई मे निहित अतुल या अत्यधिक बल। **पाण**=बल, जोर (स० प्राण)।

राजस्थानी टीका—कोइ सूर पुरुष री श्री (स्त्री) आपरै पती रौ आपांण आपरी सखी कहै छै। हे सखी! दुसमणा री नौबत तौ पुड फूटौडो वजै छै

1. वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडशमयूख, पृ० 1356,

अर नीसाण (धजाग्रा रा डड तूटोडा है सो हे सखी ! म्हारा पती रै देख आपांण पुणचा मे वधीयौ—अर्थात् एकलै झगडौ कर दुसमणा री नौबता फोड नाखी, धजाग्रा तोड नाखी, इण वासतै पुणचा रौ आपाण कयौ। तरवार ही पुणचा री जोर सू वहै छै ॥ इ० ॥

नाह न छोडै बीच ही, दडिया जिम दोटाय ।
घर घाते रण हूसिया, आसी अरर जुडाय ॥ 171 ॥

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत शत्रुओ को बीच मार्ग मे ही नही छोडे गे। वे उन युद्ध के हूँसियो (हौस वालो) को गेंद की तरह टोरे लगाते हुए ठेठ उनके घरो मे घुसेड देंगे तथा उन्हे अपने घरो के किवाड बद करवा कर ही लौटेंगे। [अर्थात् भय के मारे शत्रु जब अपने घरो मे घुस कर भीतर से किंवाड बद कर लेगे—तभी उनका पीछा छोडे गे]।

शब्दार्थ—दडियां=गेंद। **दोटाय**=टोरे लगाते हुए, डडो से मारते हुए। **घाते**=पहुँचा कर, घुसा कर। **हूंसिया**=हौस या हविस वालो को (व्यग्य मे कथित)। **अरर**=किंवाड, 'कपाटमररतुल्ये'।[1]

उदाहरण —

झझटि छुराय करम झटिति आयो बाहिर दै अरर।[2]

विशेष—शत्रुओ के मु डो को गेंद की तरह टोरे मारकर काट फैंकने की उपमा का सूर्यमल्ल ने दशभास्कर मे भी प्रयोग किया है। यथा —

कति दट्टि बत्थन मिच्छ मत्थन कहि फैकत कोट सो।[3]
चल बाल दै किमु दोट पिल्लत गोट गैंदन चोट सो।

इसी भाँति अन्य डिंगल–कवियो ने भी —

उडु कपाल खग औझडाह।[4]
दीझति जाण दोटा दडाह ॥

---

1 अमरकोष 2–2–17;
2. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकोनत्रिंश मयूख, पृ० 3122;
3 वशभास्कर, पचमराशि, द्वितीय मयूख, पृ० 1693,
4. गजगुणरूपकबध, पृ० 220,

तथा --

मटका जेहो मू डडो, पड्यो पाछटे खाग ।[5]
तोड उछटे तू वडो, दडो कि दोटे लाग ।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरा पती ने जुद्ध करतौ देख सखी ने कहै छे--हे सखी ! म्हारा पती आगे दुसमण भागा छै--सो औ अबै दुसमणा नें बीच में हीज नहीं छोडै--जिण तरै दडिया रा रमणा मे जेल एक खेल रो नाम है सो उण खेल मे आदमिया रा दोय दल होवै है ने दोही दला रै थापीयोडी एक एक दोनू धकै हद होवै सो, जैसे उत्तर दक्षण सो दक्षणी तौ बीच पडी थकी दडी ने उत्तर वाला ने हटाय नै उत्तर मे हद ताई दडी ले जावै--इणही तरै उत्तर वाला दक्षिणिया ने पेल (हटाय) ने दक्षण री हद ताई दडी ले जावै तौ जीता दक्षणी, ने यू ही उत्तर वाला दक्षण हद ताँई दडी लेजाय तौ उत्तरी जीता । दोहार्थ--ने दडी ज्यू दोटाय-दोटा दे (तरवारा सू कूटने) आ रिण--झगडा रा हुसिया हू -- हू स वाला ने ठेट घर मे घालसी (दडी ने हद ताई ले जावै ज्यू) ने अरड (फिलसौ) जिणरी आगल ने अरर (अरड) कहे छै सो दुसमणा ने घर मे घाल अरड़ जडाय पाछौ आवसी ।। इ० ।।

औरा रा कर औरठै, पडिया पाडै वाग ।
जीव पखै ऊभा जठै, सखी धणी री साग ।। 172 ।।

प्रसग--पत्नी अपने वीर पति तथा अन्य याद्धाओ द्वारा शत्रुओ पर किए गए वार का अन्तर बताती हुई अपनी सखी से कहती है--

व्याख्या--अन्य योद्धाओ के हाथो से शत्रुओ पर जो वार होते है, वे और-और जगह ही होते है, मर्मस्थल पर नही होते, जिसके फलस्वरूप शत्रु बेचारे अधमरे और घायल हुए पडे-पडे रोते-चिल्लाते रहते है । परन्तु जहाँ शत्रु क्षण मात्र मे ही प्राणहीन होकर ज्यो के त्यो स्तब्ध खडे रह जाते है--हे सखी ! समझलो कि वहाँ मेरे कत की ही साग का वार हुआ है ।

[अर्थात् मेरे पति की बरछी का वार ऐसा प्रचड और मर्मान्तिक होता है कि उसके शत्रु की छाती मे लगने के साथ ही शत्रु के प्राण-पखेरु खडे-खडे ही उड जाते है । वह भूमि पर गिर भी नही पाता, घायल होकर रोने-चिल्लाने की तो बात ही दूर है] ।

शब्दार्थ--औरां रा=अन्य योद्धाओ के । कर=हाथो का (प्रहार) । औरठे=

---

5. प्रतापसिंघ म्होकमसिंघरी वात पृ० 29 रा० मा० स० भाग 2, स० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।

और-और जगह ही (मर्मस्थान पर न होकर)। श्री स्वामी जी ने इसका अर्थ "वार करते हैं" किया है, जो आनुमानिक व भ्रान्त है। 'औरठै' का अर्थ है 'और जगह' जो क्रि० वि० है। आज भी राजस्थान मे बोल-चाल मे कहा जाता है-'अठै तो कोनी, औरठै (या औठै) देख'। अर्थात् 'यहाँ तो नही हैं, अन्यत्र देख। **पड़िया**=घायल या अधमरे होकर गिरे हुए। **बाग पाडै**=ढाय-ढाय रोते या चिल्लाते है। **पखै**=बिना। **ऊभा**=खडे हैं (शूरवीर पति की बरछी के वार से बिंध कर)। **जठै**=जहाँ। **सांग**=बरछी, एक आयुध विशेष।

राजस्थानी टीका—एक वीर री स्त्री पती रा हाथ रा सस्त्र लागोडा जोधार सो औरठै (और ठौड) पडिया बागा दै वा रौवै छै, ते बिना जीव ऊभा छै, जिणा माथै सखी! म्हारा धणी री साग-बरछी वुही जाणणी अरथात् दूसरा जोधारा रा हाथ रा सस्त्रा सू तौ अधकटिया-अधमरिया हूवा रौवै छै ने म्हारा पती रा सस्त्र लागोडा जिव पखै (जिव विना) हीज होवै छै-सस्त्र लागौडा कोई वचै नही ।।इ०।।

और तमासा कायरा, बेखै नहँ धव बाण।
घाव हबक्कै भड बकै, जिकै तमासौ जाण ।।173।।

व्याख्या—अन्य खेल–तमाशे तो कायरो के लिए हैं, कायर ही उनसे अपना मनोरजन करते है। मेरे शूरवीर कत को ऐसे तमाशे देखने की आदत (रुचि) नही है। उनके लिए तो वही तमाशा देखने लायक होता है–जहाँ (युद्ध मे घायल योद्धाओ के) घावो से रक्त की धाराएँ छूट रही हो और घायल योद्धा प्रचड क्रोध मे भर प्रतिशोध लेने हेतु बडबडा रहे हो, ऊटपटाग बक रहे हो!

शब्दार्थ—**बेखै**=देखते (पजाबी–बेक्खणा)। **बाण**–आदत (वृत्ति)। **हबक्कै**=छलकते है, जिनसे रक्त की धाराएँ छूटती हैं। **बकै**=बकते या प्रलाप करते है। **जिकै**=उसे, वही।

विशेष—वीर का तमाशा भी वीर के लायक ही होता है! डिंगल–कवियो ने इस वीरोचित तमाशे का चित्रण करने मे बडा रस लिया है। यह काल्पनिक वर्णन नही है। अपितु युद्ध मे घायल होने पर क्रोधोन्मत्त हुए तथा प्रतिशोध लेने हेतु बडबडाते वीरो का यह एक अत्यन्त सजीव एव मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करता है। सूर्यमल्ल ने 'वशभास्कर' मे भी घायलो के घूमने का वर्णन किया है। यथा —

1. 'चालुक्यराज रा सूरबीर लोह छक होय घूँमता लाधा [1] सूर्यमल्ल ने इसे 'वीरधर्म' की सज्ञा दी है :—

---

1. वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडश मयूख, पृ० 1375;

'रनघाय घुम्मन ही बिरचन धर्म वीरन को रच्यो ।[1]

अन्य डिंगल-कवियो ने भी इसका वर्णन किया है। यथा —

घुमैं हिक जोध सहै घरण घाव ।[2]
पडै पिंड हेका स्रोण प्रवाव ।।

सूर्यमल्ल का यह दोहा 'हालाँ-झालाँ रा कुंडलिया' के इस पद्याश से तुलनीय है—

मतिवाला घूमै नही, नहँ घायल बरडाय ।[3]
बालि सखी ऊ द्रंगडौ, भड वापडा कहाय ।।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरै पती रो स्वभाव वरणण करै छै– हे सखी! अै जगत रा और तमासा गौडिया रा जोगिया रा आद देनें सो अै तमासा तौ कायरा रै देखणा रा छै, म्हारा पती रै अै तमासा देखणरी बाण (मुभाव वा आदत) नही । म्हारै पती तौ जोधारा रै लागोडा घाव हबक्कै—बोलै अनै रिग्ण बावला हुवोडा जोधार बकै, जिके तमासा म्हारै पती रै देखण लायक जाणणा ।।इ०।।

सूता घर-घर आलसी, व्रथा गुमावै बेस ।
खग-धारा घोडा-खुरा, दाबै अजका देस ।।174।।

व्याख्या—घर–घर मे आलसी व्यक्ति सोये पडे रहकर अपनी आयु व्यर्थ खोते है। उधर लडने हेतु सतत आकुल शूरवीर तलवार की तीक्ष्ण धार तथा घोडो के खुरो से देश के देश दबाते जाते है।

[अर्थात् सच्चे शूरवीर वेगवान् अश्वो पर आरूढ हो तलवार की धार से शत्रुओ को मौत के घाट उतार कर उनकी भूमि को अपने अधिकार मे करते जाते है।]

शब्दार्थ—**सूता**=सोये हुए । **गुमावै**=गँवा रहे हैं। **बेस**=आयु (म० वयस्) । **अजका**=युद्ध के लिए सतत आकुल ।

राजस्थानी टीका—कवी देश दबावण वाला वीरा रौ वरणण करै छै—हे जोधारा! आलस वाला राजवी घर रा घर मे दारू पी रोटी खाय सूय रैणो, घर रौ काम, परोपकार, वीरता, देस-सेवा आदि आछा काम न करणा मे वृथा यू ही वेस–ऊँमर गमावै है, अर वे ही अजका सूरवीर घोडा तयार राखणा, आछा

---

1 वशभास्कर, द्वितीय राशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 422

2 गजगुणरूपकबध, पृ० 138

3 हाँला-झालाँ-रा कुंडलिया, पृष्ठ 21

भरोसादार रजपूत राखणा जिण सू खगधारा--तरवारा री धारा सू ने घोडा रा खुरा सू देस दबावै है-सारास-आलसू तौ ऊँमर व्रथा खोय मिनख जमारौ खोवै नें सूरवीर मिनख जमारौ सफल कर नाम राख जावै है ।।६०।।

बलण अकेला किम बणै, जोवै ससय जीव ।
वै दिन जो कायर बणौ, पीहर भेजौ जीव ।।175।।

प्रसग—वीर पत्नी अपने पति से कहती है —

व्याख्या—[हे कत ! मेरे मन मे सती होने की प्रवल उत्कठा है, परन्तु यदि आपने युद्ध में वीरगति प्राप्त नही की तो] मुझ अकेली से जलते कैसे बनेगा ? (मैं अकेली कैसे सती होऊँगी ?) । यही सशय मेरे मन मे सदा बना रहता है । अत यदि आप उस दिन (अर्थात् युद्ध के अवसर पर) कायरता दिखाएँ तो कृपा कर मुझे अभी पीहर भेज दीजिए (ताकि यहाँ ससुराल मे अपनी देवरानियो–जेठानियो के बीच मुझे लज्जित तो न होना पडे) ।

[भाव यह कि इस वीर पत्नी के लिए वह दुख सर्वथा असहनीय होगा जब ससुराल मे अन्य स्त्रियाँ—देवरानियाँ-जेठानियाँ आदि तो अपने वीरगति-प्राप्त पतियो के साथ हर्ष और गर्व मे भर सती होगी और वह अपने कायर पति के कारण लज्जा और उपहास का पात्र बनी हुई उन्हे टुकर-टुकर देखा करेगी ! इससे तो यही अच्छा है कि उसे पहले ही पीहर भेज दिया जाए ताकि ससुराल मे शर्मिन्दगी तो न उठानी पडे] ।

शब्दार्थ—**बलण**=जलना, सती होना । **बणै**=बने, हो । **जोवै**=देखता है, अनुभव होता है या बना रहता है । **वै दिन**=उस दिन, युद्ध के अवसर पर । **बणौ**=बनो ।

राजस्थानी टीका—एक कोई सूरवीर स्त्री स्वारथी कायर पती ने कहै–हे पती ! आप कहौ हौ कै राजा म्हाँसू करडी निजर राखै है सो हू जुद्ध कर काम आवू नही, जुद्ध मे सत्रुआ ने पीठ वतावसू—आ म्हारै प्रसन आवै नही । म्हारी तौ इछा है आप लारै सत करूँ—सो आप कहौ हू काम आवू नही—जद म्हारौ बलण–बलणौ, सती होवणौ एकली सू कीकर वणै—औ जीव मे ससय—सासौ छै, सो दोय दिन जो कायर वणने काढू जिण वासतै म्हने पीहर भेज देवौ, सो उठै कायर होय बैठी रहसू ।।

दूसरौ अरथ—एक सूरवीर स्त्री आपरा सूरवीर पति नै कह रही छै—हे पती ! आप कहौ हौ कै हू तो फौज मे जुद्ध कर दुसमणा ने मार काम आवसू और

थू पुत्र ने पालण वासतै सत मत कर सो, हे पती ! आ वरण कीकर आवै ? आप काम आवौ तद वलण अकेला–एकला री आपरौ वलणौ कीकर वणौ ? म्हारौ जीव इण मे बडी ससय—सोच री निजर जोवें छै । हा दोय दिन जे पीहर भेज देगावो सो कायर वण बैठी रहूँ—अर्थात् २ दोय दिन जितरै नही सुणसू इतरै कायर हूवोडी बैठी रहसू —सुणिया पछै तौ मत करणौ होज पडसी ।।ई०।।

तीजौ अरथ—वीर स्त्री आपरै पती नै कहे छै—हे पती ! आप कहो हौ कै धणी री फौज सत्रुआ ऊपरै जावै है सो धणी म्हा सू रूठा रहै है तिण सारू वणियै झगडै हू दूसरा जोधारा ने, मालक ने छोड आय जावसू —सो म्हारै तुलै नही, क्यू कि वलण अकेला किम वणौ ? एकला आपरो ही जुद्ध छोड वलण (पाछौ आवणौ) कीकर वणै ? इण वासतै जीव मै ससय दीसै है, क्यू कै भागणौ आपरौ सुहावै नही, जो आप कहो साचारी कायर वणू तो वे दिन—दोय दिन म्हने पीहर मेल दो । अठै हू रहने आपरौ कायर पणौ सुण सकू नही ।।इ०।।

इण रा अरथ ससय है, फेर कोई अरथ हुसी ।।इ०।।

टिप्पणी—टीका मे दोहे के उत्तरार्द्ध मे 'वै' की जगह 'वे' तथा 'वणौ' की जगह 'वणू' पाठ है। टीकाकार को सभवत इसी कारण अनेक प्रसगोद् भावनाएँ करनी पडी है। जैसा कि टीकाकार ने स्वीकार किया है, उसे इस दोहे के ठीक अर्थ के विषय मे सन्देह है। यही कारण है कि उसने इसके तीन अर्थ दिए है। परन्तु उक्त तीनो ही अर्थों में प्रसगोद्भावनाएँ टीकाकार की अपनी है, जिनके कारण अर्थों मे अस्पष्टता आगई है। हमे अपना प्रस्तावित अर्थ ही सगत प्रतीत होता है। 'वीर सतसई' के प्रकाशित सस्करणो मे भी यही अर्थ किया गया है।

रूस सहर री गामडै, आजे बणियौ ओट।
हाथालै हण हाथिया, कीधा पजर कोट ।।176।।

व्याख्या—लो, शहर के समान आज इस छोटे से गाँव के भी चतुर्दिक ओट होगई है। उस अतुल बाहुवली ने अपने मुष्टि–प्रहार से अनेक हाथियो का हनन कर उनके अस्थि–पजरो का परकोटा बना दिया है।

[अर्थात् हाथियो को मार–मार कर ढेर कर दिया है, जिससे गाँव के चारो ओर एक विशाल चहारदीवारी–सी खडी होगई है]।

शब्दार्थ—रूस=तरह, समान, शोभा। उदाहरण—

1 'जवाहर के जेहर दीपमाला की रूस[1],

---

1. रघुनाथरुपकगीतारो, पृ० 240

2 'रुण्ड नच्चै मोती थाल आरती उतारै रभा[1],
रुद्र गोती गनीमाँ चरच्चै इसी रूस ।।'

3 'रावल बाघो जसो रायगुर[1]
रीझ खीझ सुरपत री रूस ।।

गामड़ै=छोटे गाँव मे ('डै' प्रत्यय राजस्थानी मे लघुता–सूचक है)। **आजे**=आज । **ओट**=आड । **हाथाल्**=बाहुबली, सिंह के समान अपनी हथेली से प्रचड प्रहार करने वाला । **हण**=हनन कर । **कीधा**=किया । **पजर**=[1] अस्थि पजर। उदा० —

झुरि–झुरि नइ पजर हुइ, समर–समर सहिनाण ।[3]

2 देह, शरीर (यहाँ मृत हाथियो के शवो का अर्थ लगेगा) । उदा०—

इहा सु **पजर,** मन उहा, जय जाणइला लोइ ।[4]

कोट=परकोटा, चहारदीवारी ।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री कहै–हे सखि ! राजा होवै तिके कोट करावै, सैर दोलौ, म्हारौ धणी गाम रौ ठाकुर है, इतरौ कर सकै नही जद सहर रूस–छिब गामडा मे वणावण सारू ओट (जीवरखौ) वणायौ आण नें हाथाल, सिंघ, हाथीया ने हण—मारनें अर्थात् हाथीया री फौज मार ने हाथीया रा पिंजर सरकौ कोट गाम दोलौ वणाय दीधौ ।।इ०।।

जोडी हृदा घोर जम, रोडी हृदा राव ।
हू पच हारी हूलसी, वारी बालम आव ।।177।।

प्रसग—एक वीर पत्नी की अपने अतुल शूरवीर एव युयुत्सु पति के प्रति प्रशसापूर्ण उक्ति है—

व्याख्या—जो अपने प्रतिस्पर्द्धी के लिए यमराज के तुल्य प्रचड है तथा जो रणवाद्यो की ध्वनि पर रीझने वाला राजा है (रणवाद्य सुनते ही युद्ध के लिए आकुल हो उठता है)–ऐसे मेरे शूरवीर प्रियतम के शौर्य पर मैं बलिहारी हूँ । मैं तो उनकी वीरता पर उल्लसित (मुग्ध) हुई उन्हे युद्ध से बुलाने का प्रयत्न करते-करते थक गई हूँ ।

1· राजस्थानी वीर गीत, भाग 1, पृ० 63
2. महाराणायशप्रकाश, पृ० 20
3. ढोला–मारु रा दूहा ।
4 ढोला–मारू रा दूहा

[युद्ध से बुलाने का कारण शत्रुसेना का अनवरत सहार है, जिससे दयार्द्र हो वीरागना अपने वीर स्वामी को युद्ध से विरत करना चाहती है। इस दोहे मे वीर के अप्रतिम शौर्य एव उसकी अदम्य युयुत्सा की व्यजना हुई है]।

नोट—यह दोहा 'वीर सतसई' के टीकाकारो के लिए एक समस्या बन गया प्रतीत होता है, क्योकि किसी भी टीकाकार ने इस दोहे का ठीक अर्थ नही दिया है। श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ अस्पष्ट मान कर छोड दिया है, जबकि श्री डा० सहलजी आदि सपादको ने 'जोडी' का अर्थ 'नगाडो की जोडी', 'जम' का अर्थ 'ज्यो, जिमि' तथा 'रोडी' का 'बजी' करते हुए यो व्याख्या की है—"जिस समय नगाडो की जोडी का रव होता है, उस दुदुभि-स्वर के समय, हे वीरश्रेष्ठ! मैं आप पर बलिहारी हूँ।" यह व्याख्या हमे सगत प्रतीत नही होती। कारण, इसमे व्याख्या के आधार-भूत शब्दो के जो अर्थ दिए गए हे, वे ही सदिग्ध है। इसी भाँति, राजस्थानी टीकाकार को भी 'रोडी' शब्द का अर्थ स्पष्ट नही है। फलत टीकाकार की व्याख्या मे अस्पष्टता आगई है। चूकि इस दोहे का अर्थ विवादास्पद होगया है, अत नीचे हम प्रत्येक शब्द के अपने द्वारा प्रस्तावित अर्थ मे प्रयोग के प्रमाणस्वरूप प्रचुर उदाहरण दे रहे है, ताकि विज्ञ पाठक उनके आधार पर इस दोहे के अर्थौचित्य का स्वय निर्णय कर सके।

शब्दार्थ—जोडी हदा = जोड का (Match), प्रतिस्पर्द्धी, शत्रु।

उदाहरण —

1 जगम खडे अपार लीय भड **जोड का**।[1]

2 आख्या देख्यो आज मैं, **जोड़ी हदो** जोय।[2]

'वशभास्कर' मे सूर्यमल्ल ने इसी भाव के द्योतनार्थ 'पैला रा प्रतिमल्ल' का प्रयोग किया है।[3]

जम = यम, काल। भावार्थ मे यमराज के समान प्रचड सहारक। युद्ध-वर्णन के प्रसग मे योद्धा की उपमा प्राय 'जम' (यमराज) से देने की डिंगल-काव्यो मे परपरा रही है। यथा :—

---

1 बात बगमीरामजी प्रोहित हीराँ की, रा० सा० स०, भाग 3, पृ० 7

2 वही, पृ० 18

3. वशभास्कर, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2667

1 धारा मुहि हेक उडावैं धूप । [1]
जुडै हिक जोध हुआ **जम-रूप** ।

2 करत नही राणा कु भक्रन, [2]
जो तूं बलवत बाथ **जम** ।।

3. जिण वार पाल **जम** रूप जाण । [3]

रोड़ी—एक रणवाद्य विशेष । डा० सहलजी आदि संपादको ने इसे क्रिया मानते हुए 'बजी' अर्थ किया है । परंतु 'रोडी' यहाँ सज्ञा है, क्रिया नही, जो एक रणवाद्य विशेष का वचक है । उदाहरणत कविवर केसोदास गाडण-रचित 'गजगुण-रूपकबध' मे जिन 'पच शब्दों' (पच वाद्यो) का उल्लेख हुआ है, उनमे 'रोडी' भी एक है, जो स्पष्ट ही 'नगाडो (नीसाण) से भिन्न है । यथा :—

1 नीसाण, **रोडि**, दमाम, नौबति, भेरि, पच सबद् ए ।[4] इसी भाँति उन्होने अन्य स्थानो पर भी इसका प्रयोग किया है, जिससे इसका रणवाद्यवाची होना असदिग्ध रूप से सिद्ध होता है । यथा —

2. नौबति **रोडि** दमाम बुरग निफेरिया । [5]
3 नीसाण **रोडि** वज्जए । गगन्न जाणि गज्जए । [6]
4 त्रबक नीसाण **रोडि**, तूरारव, भेरी, गुहीर सद्द ए । [7]
5. त्रबक **रोडि** रूडै रिण तूरह ।[8]
6. रीसाइ **रोड़ि** वाजा रउद्रि ।[9]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होजाएगा कि 'रोडि' एक रणवाद्य विशेष का वाचक है । 'रोडि' शब्द 'ध्वनि' के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है । यथा —

---

1. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 139
2. महाराणायशप्रकाश, पृ० 40
3. पाबू प्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत पृ० 263.
4. गजगुणरूपबध, पृष्ठ 22
5 वही, ,, 32
6. वही, ,, 44
7. वही, ,, 57
8 वही, ,, 76
9. छद राउ जइतसी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ, पृ० 41, स० श्री डा० टैसीटरी ।

रूडता दमामा हुय रोडि[1]

इस दृष्टि से इसे 'रणवाद्य-ध्वनि' के अर्थ मे भी ग्रहण किया जा सकता है, परतु प्रयोग को देखते हुए हमे 'ध्वनि' की अपेक्षा रणवाद्य विशेष का अर्थ अधिक सगत लगता है ।

वीर के लिए, रणध्वनि पर रीझने वाला राजा' की उपाधि 'हालॉ—झालॉ रा कु डलिया' मे भी प्रयुक्त हुई है —

गलियारा ढीलौ फिरै हाकॉ वागॉ राव ।[2]

इसी भॉति, भाला चलाने मे दक्ष वीर के लिए 'भालै राव' का प्रयोग भी मिलता है —'यु करता लू को बारह वरस गे हुवौ । भालै राव, घोडै असवार हुवौ । [3]

अत 'रोडो हदा राव' का अर्थ इसी प्रयोग-परपरा के सदर्भ मे ग्रहण किया जाना चाहिए ।

यहॉ प्रासगिक रूप से, यह बता देना भी अयुक्त न होगा कि 'रोडी का राव' व्यग्य मे 'गधे' के लिए भी प्रयुक्त होता है । कुछ विद्वान्, जो इसका अर्थ 'महान् क्षमाशील' करते है, वे कदाचित् क्षमाशीलता के उसी महान् आदर्श (!) को ध्यान मे रख कर दबी जबान से अपना यह ध्वन्यार्थ प्रस्तुत करते है । परन्तु, यहॉ प्रसग वीरता और शौर्य-वर्णन का है, क्षमाशीलता का नही । और फिर सूर्यमल्ल जैसा विदग्ध कवि, चाहे लक्षणा द्वारा ही सही, अपने वीर चरित्रनायको की क्षमाशीलता के लिए क्या इस विचित्र उपमान को स्वीकार करता ? अत यह अर्थ सर्वथा अचिंत्य है ।

राव=राजा, रीझने वाला वीर । हू=मै । **पच हारी**=प्रयत्न करते-करते थक गई । **हूलसी**=उल्लसित हुई । **वारी**=बलिहारी हूँ । **बालम**=प्रियतम ।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर जुद्ध करै है, अर अपछरा वरण आई है, सो उण जोधार ने कहे है—हे जोधार ! म्हारी जोडी रा सत्रवा ने मारण सारू घोर (जबर) जमराज जैडा, रोडी ( ) हदा—वाला, राव—मालक हैं आपने बुलावण सारू पचहारी, मैनत करने थक गई—हूलसी—वरण सारू वरमाल ले केई वार हुलस चूकी पण आप झगडौ करता ढबौ नही, हे बालम ! हू थारा सूरमापणा ऊपर बलिहारी जाऊ, अबै तौ झगडौ छोड सुरग मे पधारौ ॥इ०॥

---

1 गजगुणरूपकवध, पृष्ठ 123

2 हालॉ-झालॉं रा कु डलिया, पृण्ठ 18

3 नैणसी री ख्यात, भाग 3, पृ० 113, स० श्री बदरीप्रसाद साकरिया ।

सेजा मे घर-घर सखी, आणै धजर अजाण।
धारा मे राखै धजर, सो कुण कत समाण ।।178।।

व्याख्या—हे सखी ! सेज पर अपनी प्रिया के साथ रगरेलिया करते समय झूठी शान बघारने वाले मूर्खजन तो घर-घर मे देखे जाते है। परन्तु बताओ, तलवारो की झडी के बीच भी जो अपनी शान रखे—ऐसा मेरे शूरवीर कत के समान और कौन है ?

शब्दार्थ—**आणै**=लाते है, बघारते है। **धजर**=शान या मरोड।

उदाहरण—

कढत जिते आगो कवर धजर अनग री धार।[1]

अजाण=मूर्ख। **धारां**=तलवारो, या तलवारो की झडी मे।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर री स्त्री आपरा पती री सूरमा पणा री तारीफ करै है—हे सखी ! सेझा मे तौ घर-घर मे लुगाया आगै आपरी धजर (टणकाई) अजाँण मुरख केई आणै है पण धारा मे–जुद्धरी वेला तरवारा री धारा मे धजर राखै सो तौ म्हारा कथ (धणी) जैडौ है ही कुण ? ।।इ०।।

विण मरिया विण जीतिया, धणी आविया धाम।
पग-पग चूडी पाछटू, जे रावत री जाम ।।179।।

प्रसग—युद्ध मे जाते हुए अपनी पति को वीराङ्गना की चेतावनी —

व्याख्या—हे नाथ ! युद्ध मे प्राण दिए बिना अथवा विजयश्री वरण किए बिना यदि आप घर आगए, तो सच मानिए, यदि मै राजपूत की बेटी हूँ, तो पग-पग पर इन चूड़ियो के टुकडे-टुकडे कर दूँगी।

[अर्थात् आप युद्ध मे या तो विजयी हो कर आएँ या वीरगति-प्राप्त करे, किन्तु जीतेजी भाग कर न आएँ। इसके विपरीत, यदि आप कायरता दिखा कर युद्ध-स्थल से भाग आए तो मै अपने सुहाग-चिन्ह—इन चूडियो के टुकडे-टुकडे कर डालूँगी। यदि सच्ची वीरजा हूँ, तो जो कहती हूँ वही कर दिखाऊँगी !]

'धणी' को सम्बोधन न मानने पर इसे पत्नी का सामान्य कथन मान कर भी व्याख्या की जा सकती है।

शब्दार्थ—**मरियां**=मरे, वीरगति पाए। **आविया**=आने पर। **धाम**=घर। **पाछटूं**=फोड डालूँगी। **जे**=यदि। **रावत**=राजपूत (स राजपुत्र) क्षत्रिय वीर। **जाम**=बेटी, उत्पन्न।

---

1 केहर प्रकाश, पृ० 63, कवि राव बख्तावरजी-कृत।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर स्त्री आपरा पती ने कायर जांण जुद्ध मे जाता री वेला कहै छै–हे पती ! झगडा मे जीतिया विना तथा विना मरिया वा विना घावाँ, भागल होय नै जो हे धणी ! धाम—घरे, आयगा हौ तौ जे हू साची रावत (जोधार) री बेटी हू तौ औ आपरी सुहाग री चूडिया पग–पग माथै (पछट)—जमी माथै पटकने सुहाग आघौ न्हाकू ला ।।इ०।।

धन ले वीरा धाडवी, अब कीजै न अवेर ।
एथ धणी जे आवसी, सौ रौ विकसी सेर ।।180।।

प्रसग—वीर पति की अनुपस्थिति मे उसके घर पर डाका डालने आए हुए डकैत को वीर–पत्नी की चेतावनी —

व्याख्या—हे भाई डकैत ! धन लेकर अब भागने मे देर न कर (तुरन्त यहाँ से चल दे)। मेरे स्वामी जो यहाँ आगए तो सौ का सेर बिकेगा [अर्थात् यह लूट का सौदा तुझे मँहगा पड़ेगा, क्योंकि इस लूट के माल के बदले तुझे अपने प्राणो से हाथ धोने पडेंगे]।

विशेष—यद्यपि इस दोहे से यह स्पष्ट नही है कि यह कथन किसका है, तथापि आगे के दोहे मे, जो ठीक इसी भाव का है, वीर–पत्नी ही डकैत को सम्बोधन करती हुई यह चेतावनी देती है। इससे यह अनुमान करना सगत होगा कि यहाँ भी यह डकैत को सम्बोधित वीर–पत्नी का कथन है।

वस्तुत यहाँ वीर–पत्नी के उक्त कथन के माध्यम से उसके शूरवीर पति के शौर्य और आतक की व्यजना करना ही कवि का उद्दिष्ट है। वीर की अनुपस्थिति मे चाहे कोई उसके घर डाका भले ही डाल जाए, उसके रहते या लौट आने पर डाका डालने वाले का सुरक्षित लौट जाना असभव है, इस भाव का निदर्शन ही प्रस्तुत तथा आगे वाले दोहे का मूल उद्देश्य है।

शब्दार्थ—वीरा=भाई, व्यग्य–गर्भित आत्मीयतापूर्ण सम्बोधन, जिसमे धाडवी के अपने शूरवीर पति द्वारा मारे जाने की सभावना से, जिसका धाडवी को कोई ज्ञान नही है, उसके प्रति दया व सहानुभूति की ध्वनि निहित है। **धाडवी**=डाकू, लुटेरा। **अवेर**=देर। एथ=यहाँ । **विकसी**=विकेगा । श्री नरोत्तमदास स्वामी ने अन्यार्थ मे 'सौ रौ' को एकात्मक मान कर इसका एक अर्थ 'शोरा' भी किया है। उनका अन्यार्थ है—"शोरा रुपये का सेर बिकेगा, बहुत महगा होजायगा। शोरा घायलो की चिकित्सा के काम आता है। मेरा पति इतने शत्रुओ को मार डालेगा कि शोरे की माग बहुत बढ जायगी ।"

हमें यह क्लिष्ट–कल्पना प्रतीत होती है ।

राजस्थानी टीका—अेक सूरवीर री स्त्री धाडवीया ने कहै छै—कोई राजपूत आपरी स्त्री ने उण रा पीहर सू आग करने आणता मारग मे ढब ने ऊँट भैंक स्त्री ने बैसाण आप दिसा गयौ, इतरै धाडविया आय स्त्री ने कही—गहणौ दे दै । तद वा स्त्री कहै छै—हे वीरा ! (भाई) धाडवी ! औ धन ले अने थारा जीवरी म्हनै दया आवै छै सो थू अबै अठै जेझ मत कर । अठै जो म्हारौ धणी आयौ तौ सौ रुपिया रौ सेर विकसी, मुहगौ हुजासी । अरथात धन जठै रयौ, जीव बचावणौ मुसकल पड़सी ।।इ०।।

> लूट पुलीजै झूंपडौ, वीरा धार विवेक ।
> वामल आया वेचसी, अडबा रौ त्रण एक ।।181।।

व्याख्या—हे भाई धाडवी ! थोडा विवेक से काम ले और इस झोपडे को लूट कर तुरन्त यहाँ से भाग खडा हो, अन्यथा यदि प्रियतम आगए तो इसका एक–एक तिनका वे अरबो के मोल बेचेंगे । अर्थात् इस झोपडे का एक–एक तिनका तुझे मँहगा पडेगा क्योंकि उसके बदले तू अपने प्राणो से हाथ धो बैठेगा ।

शब्दार्थ—**पुलीजै**=भाग जा । उदाहरण

> मूँछ केस खडत नही, नाक न खडत कोर ।[1]
> पडी **पुल ताँ** पाघडी, सुकुलीणी तज सोर ।। 35 ।।

धार=धारण कर । **त्रण**=तृण, तिनका ।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरष री स्त्री धाडविया ने कहै छै—हे धाडवी ! औ म्हारौ झू पडौ लूट नै पुलीजै (न्हास जा) । औ विवेक राख, ने—वाल्हम, जो म्हारौ पती आय गयौ तौ अडब-अडब रुपिया रौ कर एक–एक तिणखलौ ही वेचसी । अर्थात जीव उबारणौ चाहौ तौ न्हास जावौ, सो भागला लार आवै नही । घर लूटण री दवायती दी, सो इण ने वीर स्त्री है, सो धन रौ इचरज नही, न्हासण रौ कयौ सो आ ऊपरै दया आई, पति आया सारा नै मार न्हाकसी तो आरा बाल-बचा मर जासी, मुहगा वेचण रौ कयौ सो पती रा सूरवीर पणा रौ आने जतायौ कै भागला रौ घर नही, सूरवीरा रो छै सो अठा जाय नही सकसौ, नीकलणौ मुसकल होवसी । इसा वीर झूपडा मे क्यू रहै ? सूरवीर कृपण होवै नही, दातार होवै है, सो आपरौ माथौ काटनें देता ही औजौ नही आणै तो धन उण आगै कोई वडी वात नही, सो दातार है, जिण सू धन नही, धन विना मैहल वणै नही । सूरवीर

1. बाँकीदास-ग्रन्थावली, भाग 3, पृ० 26,

पणा सूं धन री कुमी नही, जिण सू धाडायत राचीया, ने खाणार—पीणार, जिण सू धन जमै होवै नही, तद ग्रैवास वर्णै नही ।

टिप्पणी—टीकाकार ने वीर के झोपडे पर धाडवियो (डाकुग्रो) के आक्रमण तथा वीर–पत्नी द्वारा उन्हे कहे गए वचन के विषय मे जो स्पष्टीकरण दिया है, वह सगत है। कवि के उद्दिष्ट मूल भाव को समझने मे यह सहायक होगा ।

सीह न बाजो ठाकुरा, दीन गुजारौ दीह ।
हाथल पाडै हाथियाँ, सौ भड वाजै सीह ।। 182 ।।

व्याख्या—हे ठाकुरो ! अपने आपको 'सिंह' न कहलाओ । किसी तरह दीन होकर दिन गुजारो । क्या तुम जानते नही, जो शूरवीर अपने करतल—प्रहार से हाथियो का हनन करता है, वही सिंह कहलाता है । तुम जैसे कायर और निर्बल का अपने आपको सिंह कहना सिंहत्व (शूरत्व) की विडम्बना है !

प्रथम पक्ति का अर्थ यो भी किया जा सकता है—'हे ठाकुरो ! यो दीनता से दिन गुजारने से सिंह नही कहलाओगे' ।

विशेष—मिलाइए —

1 घात करै गैवर घडा, सीहाँ जात सुभाव ।[1]

2 हाथल रा बल सू हुवौ, ग्रो मृगराज ग्रबीह ।[2]

शब्दार्थ—**बाजो**=कहलाओ । **दीह**=दिन । **हाथल**=पजे का आघात या **करतल**—प्रहार । **पाडै**=गिराए, धराशायी करे ।

राजस्थानी टीका—एक कोई वीर पुरष री स्त्री वणावटी सूरवीरा ने कहै—हे वणावटी रावता ! सीह मत वाजौ, थारै माहै सीह वाजौ, जैडी सकती नही । दीनता सू आपरा दिन गुजारौ । आपरौ पौरष सीह वाजण रौ नही । हाथल (भुजारा) जोर सू हाथीया रा ग्रसु ड (सीस) वैरीजे—वे भड सिंघ वाजै । आपरा पती रौ व्यग्यार्थ छै—सीह कहावण जैडौ म्हारौ पती छै, उण उप्र त थे मोनें किसूं छक वतावो छौ ।। इ० ।।

पीहर पूछै खोलणी, पेई भूखण केर ।
हेडविया वाभी हँसी, नणँद कनै नाले र ।।183।।

---

1. बाँकीदास-ग्रन्थावली, भाग 1, पृ० 16;

2 वही, पृ० 24,

व्याख्या—पीहर पहुँचने पर जब ननद के गहनो की पेटी खोली गई तो उसे देखकर भावज हँसी कि ओह ! ननद बाईसा के पास तो नारियल ! (अर्थात् ये तो सती होने का सामान भी अपने साथ रखती है !)

शब्दार्थ—**पू छै**=पहुँचने पर। **खोलणी**=खोलना हुआ, खोली। **पेई**=पेटी, सदूक। **भूखण**=आभूषण, गहने। **केर**=की। **हेडवियां**=देख कर। डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'खोलने पर' किया है। परतु हमारी समझ मे यह हिन्दी 'हेरना' (देखना) का ही राजस्थानी रूपान्तर है। **कनै**=पास।

विशेष—ननद का अपने गहनो की पेटी मे नारियल रखना यह सूचित करता है कि वह सदा सती होने हेतु लालायित रहती है। सहगमन के अवसर पर सती नारियल हाथ मे लेकर पति के शव के साथ चलती है। उस समय नारियल मिले या न मिले, अत यह वीराङ्गना हरदम नारियल अपने गहनो की पेटी मे ही सहेज कर रखती है। भावज को अपनी ननद की पेटी मे नारियल रखा देखकर गर्व और हर्ष होना स्वाभाविक ही है। साथ ही, यह ननद-भावज की अनन्य प्रीति का भी द्योतक है।

राजस्थानी टीका – एक वीर पुरप री स्त्री ने वाभी कहै—नणद सासरा सू पीहर आई तद पीहर मे भूपण (गहणा) की पेइ खोलण वाली पूछीयौ-औ नालेर क्यू ? इतरै नणद रै कनै नाले र पेइ मे हेडव (देखने) वाभी हसी। हसण रौ कारण—नणद ने पती रौ भरोसौ है जुद्ध मे मारीजसी तद म्हने सत्त करणौ है सो उण वेला रौ नाले र सायत मिलै क नही मिलै—इण सारू गहणा रे भेलौ, नाले र राखियौ, सो देखने इण मे हसी, सो कारण औ है कै नणद तौ सती है और नणदोई सूरवीर है, इण खुसी रौ हसौ आयौ ॥इ०॥

> निरदय दीठा आन भड, कूकावै पर सैन।
> वाहै कत दयाल ह्वै, अरियाँ हाय सुणैन ॥184॥

व्याख्या—मुझे तो अन्य योद्धा निर्दय ही प्रतीत हुए, जो शत्रु सेना मे चीख-पुकार मचवाते है (अर्थात् वे ऐसा अधूरा वार करते है कि शत्रु-पक्ष के लोग घायल होकर ही रह जाते हैं, मरते नही, जिससे वे बेचारे पडे-पडे पीडा से कराहते रहते है)। किन्तु मेरे कत तो शत्रुओ के प्रति दयालु होकर ऐसा अचूक और भरपूर प्रहार करते हैं कि वे शत्रुओ की हाय तक नही सुनते (अर्थात् एक ही वार मे उनका काम तमाम कर देते हैं, जिससे शत्रुओ के पीडा से कराहने की बात तो दूर, उनके मुँह से 'आह !' तक नहीं सुनाई देती।)

शब्दार्थ—**दीठा**=दिखाई दिए, प्रतीत हुए। **आन**=दूसरे। **कूकावै**=चीख पुकार मचवाते है। **पर सैन**=शत्रुसेना को। **वाहै**=प्रहार करते है। **अरियाँ**= शत्रुओ की।

विशेष - वीर की यह दयालुता श्लाघ्य ही है, जो प्राण-हरण मे भी कष्ट से शीघ्र मुक्ति दिलाने की महत् भावना से प्रेरित है।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरै पतीरा आपाण री प्रससा कर कहै छै—

हे सखी! जुद्ध री वेला आन (कहता दूसरा) भड दीठा सो वे निरदय (विना दयारा) है क्यूकि कूकावै परसैन—दुसमणा री फौज नै कूकावै अर्थात हाय बोय करावै। म्हारै पती दयालु—दया वालौ है सो वैरिया री हाय काना ही नही सुणै। कारण, कै वे भड विना पौरख रा है। वावै जिण रै ही सस्त्र कार करै नही। आधा कटियोडा कायर रोवै, अनै माहरा पति री जिण माथै वहै वे निरलग होय जावै सो कोई हाय ह्वै न बोय ह्वै ॥इ०॥

> और चढै गढ ऊपरा, नीसरणी बल नीठ।
> अजकौ धव पूगौ उठै, मॉकड मेल्है पीठ ॥185॥

व्याख्या—अन्य वीर तो दुर्ग पर सीढी के सहारे भी वडी मुश्किल से चढ पाते है, परन्तु मेरा चपल और युयुत्सु पति बन्दर को भी मात देता हुआ वहाँ एक ही छलाँग मे जा पहुँचा।

शब्दार्थ—**नीसरणी**=सीढी, (स० नि श्रेणिका।) **बल**=सहारे। **नीठ**= मुश्किल से। **अजकौ**=चपल, युयुत्सु। **पूगौ**=पहुँच गया। **मॉकड़**—बन्दर (स० मर्कट)। **मेल्है पीठ**=पीठ पीछे रखकर अर्थात् मात कर।

विशेष—सूर्यमल्ल को वीर की स्फूर्ति व वेग का चित्रण करने के लिए मर्कट की उपमा कुछ विशेष प्रिय मालूम होती है। 'वशभास्कर' मे भी उन्होने इसका प्रयोग किया है[1]—

> खगा जीतणाँ घाव मैं दाव खेल्है,
> मलगे तडा **माकड़ाँ पीठ मेल्है** ॥

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरै पती रै आपाण रा वखाण कर कहै—हे सखी! और जोधार तो सत्रुआ रा गढ उपरै नीसरणी दे नै नीठ-नीठ चढै अनै माहरै पति है सो गढ पर धावौ कर चढै। उठै इतरौ कूद ने ऊपर जावै है कै

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2682

माकड (लिगूर) घणा कूदण वाला होवै है पण वानै ही मेलै पीठ (लार मेलै) अरथात लिगूर ही लारै रहै छै ।।इ०।।

दीधा दिस-दिस लूंबिया, ऊठै कत भजाय ।
कु भकरण रा झाडिया, जाणै बदर जाय ।।186।।

व्याख्या—अपने चारो ओर लिपटे हुए शत्रुओ को कतने उठकर ही भगा दिया ! (अर्थात् लडने की नौबत ही नही आई । कत को घर मे सोया देखकर शत्रुओ ने सोचा था कि सोते हुए को ही धर दबोचेगे । किन्तु ज्योही कत उठ कर खडे हुए कि शत्रु सिर पर पैर रख कर भागे ।) बेतहाशा भागते हुए वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो कुंभकर्ण के भडकाए हुए बदर दौडे चले जा रहे हो ।

[यहाँ दो शब्द— 'लूँबिया' और 'झाडिया' विचारणीय हैं । ये दोनो ही यहाँ द्वयर्थक है । किसी के शरीर के लिपट जाने या उसे पकडकर लटक जाने को 'लूँवना' कहते है, जैसे कि प्राय. मुँहलगे बच्चे किया करते हैं । ऐसे 'लू बे' (लिपटे) हुओ को अपने हाथ-पैर पीट कर या अपने शरीर को जोरो से झकझोर कर अपने से अलग करने को 'झाडना' कहते है, जैसे कि मधुमक्खियो का झुड पीछे पडने पर प्राय व्यक्ति किया करता है । यहाँ कुछ ऐसे ही दृश्य की उद्‌भावना की गई है । वीर को सोया देख कर कुछ मनचले उस पर चढ बैठे, यह सोचकर कि हम तो सख्या मे बहुत हैं और यह अकेला और सोया हुआ है । अत इसे लेटे-लेटे को ही दबोच देंगे । किन्तु यहाँ तो पासा उलटा पड गया । वीर क्रुद्ध होकर ज्योही उठा कि कायरो की हिम्मत जवाब दे गई । इतना ही दम था ! वे अपने प्राण लेकर भागे । उपर्युक्त व्याख्या विवेच्य शब्दो के प्रस्तावित अर्थ मानकर ही की गई है । कुंभकर्ण और बन्दरो की उपमा भी इस व्याख्या पर ठीक बैठती है]

अन्यार्थ—'लूँबिया' का एक अर्थ 'घिरना', 'उमडना' या 'झुकना' भी होता है । इसी भाँति 'झाडिया' का 'प्रहार किए हुए' या 'प्रताडित' । तदनुसार व्याख्या यो भी की जा सकती है—

'धावा करने हेतु चारो ओर से घिर-घिर कर चढ आए शत्रुओं को कत ने उठ कर तुरन्त भगा दिया । बेतहाशा भागते हुए वे शत्रु ऐसे प्रतीत होते थे जैसे कुंभकर्ण के प्रहार से प्रताडित हुए बदर भागे जा रहे हो ।'

श्री स्वामी जी व डा० सहलजी आदि सपादको ने 'लूँबिया' का उपर्युक्त अर्थ मानते हुए ही व्याख्या की है, परन्तु हमे अपना प्रस्तावित मुख्यार्थ अधिक सगत लगता है ।

शब्दार्थ—**दीधा**=दिए। **दिस-दिस**=चारो ओर। यदि इसे 'भजाय' का क्रियाविशेषण मानें तो अर्थ यो भी किया जा सकता है कि 'चारो ओर भगा दिया'। **लूँबिया**=[1] लिपटे हुए (राज मे 'भूबे' हुए)।

उदाहरण—

सावण आयउ साहिबा, पगइ विलबी गार।[1]
अच्छ विलबी बेलडया, नराँ विलवी नार।।

2. उमडे या भुके हुए।

उदाहरण—

घर-घर वैर वसाविया, दिन-दिल लूबै धाड।[2]

ऊठै=उठकर। **भजाय**=भगा (भजाय दीधा=भगा दिए)। **भाड़िया**=[1] भडकाये हुए[2], प्रहार किए हुए या प्रताडित हुए। **जाणै**=मानो।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरै पती सू जुद्ध कर सत्रू भागै है तिकाने देख कहै छै—हे सखी! मूता पर जुद्ध मे म्हारा कत सूं दश-दश वीसा आदमी आयनै लडण वासतै लूबिया तिकाने ऊठतै ही कंत भजाय दीधा। किण तरै भजाया जाणै लकारा जुद्ध मै कुंभकरण वादरा ने फैकतो सो जावता दरियाव मे पडता, केई दूजा देसा मे जावता पडता, इण तरै भगाया ।।इ०।।

टोटै सरकाँ भीतडा, घातै ऊपर घास।
वारीजै भड भूपडाँ, अधपतियाँ आवास ।।187।।

व्याख्या—घर मे घाटे के कारण सरकडो की भीते खडी कर उन पर फूस का छप्पर डाले हुए हैं। परन्तु इससे क्या, वीरो के इन भोपडो पर बडे-बडे राजाओ के महल न्योछावर किए जाने चाहिए।

[अर्थात् शूरवीरो की शोभा उनकी वीरता और वदान्यता है, ईट-पत्थर के बने महल नही। वे जिन भोपडो मे रहते हैं (और भोपडो मे रहेगे ही, क्योकि वे अपनी धन-सपत्ति तो सदा औरो को दान मे लुटा देते हैं) वे कायर, क्रूर, कृपण और कुटिल राजाओ के बडे-बडे राजमहलो और धवलहरो से कही अधिक धवल, उज्ज्वल, यशस्वी और गौरवमय हैं। ऐसे 'रणशूरा जगवल्लहा' योद्धाओ के भोंपडो पर राजाओ के शत-शत महल निश्चय ही शत-शत बार न्योछावर हैं!]

शब्दार्थ—**टोटै**=घाटे या धनाभाव के कारण। राजस्थानी कहावत है—

---

1. ढोला-मारू रा दूहा, 2 69, स० शभुसिंह मनोहर,
2. वीर सतसई, दोहा संख्या 96,

टोटा नी टापरी माये रात–दाडा राड ।[1]

सरकाँ=सरकडो की बनी हुई । **घातै**=डालते है या डाले हुए है। **वारीजै**=न्योछावर कर देने चाहिए । **अधपतियाँ**=राजाओ के । **आवास**=महल ।

विशेष—सूर्यमल्ल के इस दोहे को हेमचन्द्राचार्य के इस दोहे से मिलाइए —

जइ पुच्छह घर बडाइ तो बड्डा घर ओइ[2] ।
विहलिअ–जण–अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ।।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री आपरै पती री वीरताई रौ और दातारगी रौ वरणण कर कहै है–हे सखी ! म्हारा पती रै धन नही है, कारण कै दातार है, जिकण सू सो तोटै सर, तोटा (सू का कासरा), झू पडा ऊपरै अधपतिया—राजाओ रा आँवास (मैहल) वारणै करीजै—क्यूकै उणरै कोई कल क लागौ नही—वौ दातार है, सूरवीर है, दोनू पख ऊजलौ है अने मलेछ—मुसलमाना रौ चाकर नही । मुसलमाना सू सगारथ नही, जिण तरै महाराणा प्रतापसीहजी झूपडा मे वसने हिन्दू धरम राख दीधौ, तिकारा झूपडा मैला सूं काई, किला सूं इ वधने हा ।।इ.।।

धण नूँ आलगसी धणी, सुणियाँ वागौ सार ।
हालीजै उण देसडै, प्राणा रौ वौपार ।।188।।

प्रसग—पति द्वारा पत्नी को यह पूछे जाने पर कि उसका मन क्यो नही लगता, पत्नी कहती है —

व्याख्या—हे नाथ ! आपकी प्रिया का मन तो तब लगेगा, जब वह सुनेगी कि लोह बजा है (युद्ध छिड गया है) । इसलिए उस देश को चलिए जहाँ प्राणो का व्यापार होता हो । [अर्थात् जहाँ युद्ध प्राय छिडता रहता हो, शत्रुओ पर नित्य नए–नए सैन्य-अभियान होते हो तथा जहाँ योद्धा मरने–मारने का संकल्प लेकर रणाङ्गण मे जूझते हो, मुझे वही ले चलिए । युद्ध-चर्चा सुने बिना मेरा यहाँ मन नही लगता, जी नही बहलता]

शब्दार्थ—**धण नूँ**=पत्नी को । **आलगसी**=मन लगेगा (राजस्थानी मे 'आवडेगा') । **सुणियाँ**=सुनने पर । **वागौ सार**=लोह बजा, युद्ध छिडा । **हालीजै**=चलिए, चलना चाहिए ।

---

1. राजस्थानी सबद कोस, द्वितीय खण्ड, प्रथम जिल्द, पृ 1311
   स श्री सीतारामजी लालस ।
2. हेमचन्द्राचार्य, अपभ्रंश–व्याकरण ।

प्राणा री वौपार=युद्ध (वौपार=व्यापार)

विशेष—सूर्यमल्ल के इस दोहे पर हेमचन्द्राचार्य के निम्नाकित अपभ्रश-दोहे का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है—

खग्ग विसाहिउ जहिँ लहहु पिय तहिँ देसहिँ जाहु ।[1]
रण दुब्भिक्खे भग्गाइं विणु जुज्झे न बलाहु ।।

राजस्थानी टीका—एक कोई वीर स्त्री आपरा पती ने कहै छै—हे पती ! आप कहौ की आवडं क्यू नही, सो धणने तो जद आवडमी कै आज तरवार वाजी, आ सुणिया आवडै, सो अठै इण सिरदार कने रहा नही । उण देस चालौ जो प्राणा-रौ वोपार, जिण सिरदार रै हम-तम होवै, कठैई सत्रुवा ऊपर चढै है, कठा सू ई दुसमणा री फौज ऊपर आय गई हे—इण तरै प्राणा रो वोपार होवै जठै ले चालौ ।।इ.।।

पूगा रा धड ऊपरा, पेखे सूतौ पीव ।
छकियौ घावाँ हे सखी, जाणौ धण ही जीव ।।189।।

व्याख्या—दिवगतो (गजो ? सुभटो ?) के धडों पर सोए हुए प्रियतम निश्चेष्ट-से देख रहे है । घावो से घायल हुए (अर्द्धमूर्च्छा मे) वे अपने मन मे मानो अपनी प्रिया को ही अकशायिनी समझे हुए हैं ।

[अर्थात् घावो से अर्द्धमूर्च्छित होने के कारण यह सोचकर कि वे अपने द्वारा मारे गए गजो या वीर-शवो के ढेर पर नही, वरन् अपनी प्राणवल्लभा प्रिया की ही पुष्ट-मासल बाँहो अथवा उसके उन्नत-पीन उरोजो का आश्रय लिए हुए हैं, वे तनिक अधखुली आँखो से देखते हुए प्रणय-विभोर हो सोरहे हैं] ।

शब्दार्थ—पूगा=अर्थ सदिग्ध, पहुँचे हुए ? वीरगति-प्राप्त ? दिवगत ? । श्री स्वामीजी व श्री डा. सहलजी आदि सपादको ने 'पूगा' पाठ मानते हुए 'स्वर्ग मे पहुँचे हुए शत्रुओ के धडो पर' अर्थ किया है । परन्तु टीका मे इसका पाठ 'पूगा' है, जिसका अर्थ 'हाथियो' दिया गया है । इससे इस शब्द का अर्थ विचारणीय हो गया है । 'हाथी' के अर्थ मे 'पूगा' शब्द का प्रयोग हमारे देखने मे नही आया । 'वीरवाण' मे 'पूंगा' शब्द का प्रयोग मिलता है, परन्तु वहाँ यह किस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है-हम निश्चित रूप से नही कह सकते । वह प्रयोग निम्नलिखित है —

खबरा मलु धीरपै पुगल पोहोचाई ।[2]
पूगा धड सिर बाटजो, भिड बेनु भाई ।

1. अपभ्रश-व्याकरण ।
1. वीरवाण, पृ० 56 स श्रीमती ल. कु. चूडावत ।

यदि यह 'पवग' या 'पमग' का अपभ्रष्ट हो तो इसका अर्थ 'घोडा' भी सभव है। परन्तु दोहा सख्या 218 मे भी इसका प्रयोग हुआ है—'पूगे हौदै पोढियौ'। इसमे 'हौदे' के साथ 'पूगे' शब्द के प्रयोग को देखते हुए लगता है कि कदाचित् इसका अर्थ 'हाथी' हो। टीकाकार ने वहाँ भी इसका अर्थ 'हाथी' ही किया है। यद्यपि हमे भी टीकाकार का अर्थ सगत प्रतीत होता है, तथापि प्रमाण के अभाव मे हम निश्चित रूप से कुछ नही कह सकते। इस शब्द का ठीक अर्थ अन्वेष्य है। सप्रति हमने 'पहुँचे हुए' अर्थात् वीरगति-प्राप्त या दिवगत अर्थ मानकार ही व्याख्या की है, जो शब्द का सामान्य अभिधार्थ है।

ऊपरा=ऊपर। **पेखे**=देख रहे हैं। **पीव**=प्रियतम। **छकियौ**=छका या घायल हुआ। **जाणै जीव**=मन मे यह समझे हुए है मानो प्रिया ही अक-शायिनी है।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री सखी ने कहै छै—हे सखी! म्हारै पती ने पूग—हाथीयारा धडा ऊपरै घावा सू छकियौडौ सूतौ देख जाणै धण ही, हाथीया रा धड रौ ग्यान नही है। धण=स्त्री रै भेलौ जीव ज्यू गिण सूवै है, जिऊँ सूतौ छै॥ इ०॥

> कायर री धण यूँ कहै, छानै कत छिपाय।
> सीस बिकै जिण देसडै, साँई सौ न दिखाय॥ 190॥

व्याख्या—कायर की पत्नी युद्ध से भाग कर आए हुए अपने पति को छिपा कर चुपचाप मन ही मन यो प्रार्थना करती है—'हे ईश्वर! जिस देश मे सिर का सौदा होता हो, वह भूल कर भी न दिखाना'। [अर्थात् जहाँ स्वामी के उपकारो का बदला मस्तक के मोल चुकाया जाता हो, जहाँ पल-पल प्राणो के लाले पडे रहते हो—वह देश कभी मत दिखलाना]।

इस दोहे मे कायर और कृतघ्न की परोक्षत भर्त्सना कीगई है।

शब्दार्थ—**छानै**=चुपचाप, गुप्त रूप से। इसे 'छिपाय' की अपेक्षा 'कहै' का क्रियाविशेषण मानना सगत होगा। छिपाने की क्रिया तो वैसे भी चुपचाप ही होती है, अत उसके साथ 'छाने' क्रियाविशेषण अनावश्यक है। तद्विपरीत, मन ही मन कहने मे कायर—पत्नी की अतस्थ भीरुता का द्योतन होता है। प्रकट मे तो वह ऐसी प्रार्थना कर नही सकती। **साँई**=ईश्वर (स० स्वामी)।

राजस्थानी टीका—कायर री कायर लुगाई घर रा धणी ने छाने गाघरा रै ओटे तथा ओरी मे छिपायौ है। सत्रू आय पूगा तद अने परमेस्वर नें कहै-हे

साँई ! (परमेस्वर) जिण देस (उगा भड-खावणा सिरदार री सिरकार तौ) ईश्वर म्हांने मत देखावे, म्हे तौ गरीब छा ।। इ० ।।

विशेष— मिलाइए —

काचित नारी इम कहइ, भागां नही भय कोइ ।[1]
जिम तिम आवे जीवतउ सुख भोगवस्यां दोइ ।।

नराँ न ठीणौ नारियाँ, ईखौ संगत एह ।
सूरा घर सूरी महल, कायर कायर गेह ।। 191 ।।

व्याख्या—कविवचन —

हे पुरुषो ! स्त्रियो को उपालभ न दो; यह तो सगत का फल समझो । शूरवीरो के घर मे शूरवीर स्त्रियाँ और कायर के घर मे कायर स्त्री मिलेगी । [अर्थात् पुरुष यदि वीर होगा तो स्त्री भी उसके वीरत्व से प्रभावित होकर तदनुरूप वीरतापूर्ण आचरण करेगी एवम् यदि पुरुष कायर हुआ तो स्त्री स्वभावत' पातिव्रत्य से प्रेरित हुई अपने कायर पति की प्राणरक्षा के लिए स्वय भी कायरतापूर्ण आचरण करने हेतु विवश होगी । अतः स्त्रियो को कायरता के लिए उपालभ देना उचित नही । वह तो पुरुष के प्रति अपने पातिव्रत्य का पालन करती हुई, जैसी वह अपेक्षा करता है, वैसा ही आचरण करती है] ।

शब्दार्थ न ठीणौ=उपालभ न दो; दोप मत दो । ईखो=देखो, समझो । एह=यह । सूरां=शूरवीरो के । सूरी महल= शूरवीर स्त्री ।

विशेष—कवि के इस दोहे का मर्म हम व्याख्या के अन्तर्गत कोष्ठक मे स्पष्ट कर आए हैं । इसका अर्थ यह नही है कि स्त्रियो की वीरता या कायरता एकान्तत पुरुषो पर ही अवलवित है । राजस्थान के इतिहास मे महाराजा जसवतसिंह की हाडी रानी जसमादे जैसी वीराङ्गनाएँ भी हुई हैं, जिन्होने अपने पति की कायरता पर उन्हे धिक्कृत किया है । कवि का उद्देश्य यहाँ केवल यह बताना है कि पुरुष के विचारो का प्रभाव न्यूनाधिक रूप मे उसकी स्त्री पर पडता ही है । पुरुष की वीरता या कायरता से स्त्री का आचरण प्रभावित हुए बिना नही रहता ।

राजस्थानी टीका—कवी कहै है, हे नरा ! नारिया—स्त्रिया रौ नठीणौ—नेठौ नई है, अै तो सूरवीर है, तिकारै घरे नारिया ही सूरवीर है, अने कायरा रै घरै

---

1 सीताराम-चौपाई, पृ० 144, कविवर समयसुन्दर-प्रणीत, स० श्री अगर चन्द नाहटा व श्री भँवरलाल नाहटा ।

कायर होवै है । नारिया ने नठीणौ–दोष मत दौ । आ ही सगत री चाल है । सूरवीर रो सगत सू स्त्री भी सूरवीर होवै है और कायर री संगत सू कायर होवै ।। इ० ।।

टिप्पणी—टीकाकार ने 'न ठीणौ' को एकात्मक मान कर उसका अर्थ जो 'नेठौ नई' किया है, वह भ्रात है ।

मद लेतॉ भाखै मती, भोली चाबुक भॉत ।
छकियौ लाखॉ छॉगसी, खाती डाहल खॉत ।। 192 ।।

प्रसग—किसी वीर की पत्नी को अन्य स्त्री का प्रबोधन —

व्याख्या—हे भोली ! उनके मद्यपान करते समय कोई ऐसी बात मुँह से न निकाल बैठना जो उन्हे चाबुक की भॉति चुभ जाए, अन्यथा सुरा के नशे मे छका हुआ वह वीर लाखो शत्रुओ को वैसे ही काट फैकेगा, जैसे खाती अपनी उमंग मे भर पेड की टहनियो को काटता चला जाता है ।

शब्दार्थ—**मद**=मद्य, सुरा । **भाखै**=बोल, कह । **मत**=नही । **भॉत**=भॉति । **छकियौ**=छका हुआ, मदोन्मत्त । **छॉगसी**=काट फैकेगा, वृक्ष की बढी हुई शाखाओ को कुल्हाडी से काटने को 'छागणौ' कहते है । यहाँ मदोन्मत्त वीर द्वारा शत्रुओ के अन्धाधुध सहार से अभिप्राय है । यह शब्द वीर द्वारा शत्रुओ के काटे जाने की बडी सटीक व्यजना करता है । खाती जब वृक्ष की डालो को छॉगने' लगता है, तो अपने मन की मौज मे एक के बाद एक काटता चला जाता है तथा जो डाल सरलता से नही कटती, उस पर क्रुद्ध होकर कुल्हाडी के उत्तरोत्तर प्रचड वार करता हुआ अन्ततः उसे काट कर ही छोडता है । यहाँ वीर द्वारा सहार मे भी यही व्यजना उद्दिष्ट है । **खाती**=बढई । **डाहल्**=डाली, टहनी । **खॉत**=इच्छा या उमग ।

विशेष—डिंगल–काव्यो मे युद्ध–प्रसग मे वीर द्वारा शत्रु–सेना के अंधाधुंध संहार की व्यजना करने के लिए प्राय खाती का रूपक बाँधकर भी अनेक गीत रचे गए है । यथा —

रीति खाती तणी चीति राखी रूडा, पेढ साखा सहत घडत पाती ।[1]
तरवरा ऊपरै केई नर तरछिया, खरौ हूनर लिया नगा खाती ।

राजस्थानी टीका—एक कोई सूरवीर जुद्ध करता वीच ही घरे आय गयौ, विसराम लेण ने तद उण री वीर स्त्री ने रीस आय गई, तठै जेठाणी कहै—हे देराणी ! म्हारै देवर नें अबार दारू लेता थू कोई अंथार चावक जैडा वचन कहे

1. राजस्थानी–वीर–गीत–सग्रह, भाग 1, पृ० 67, सं० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

मती नही तौ श्रौ दारू रौ छकियोडौ लाखा ने छाग न्हाकैला—वाती डाला छागै है जिए तरै ।। इ० ।।

देराणी वाभी कहे, हाथी ढाहण हेठ ।
पावाँ देवर पौढियौ, जिण रै होदै जेठ ।। 193 ।।

प्रसग – युद्ध के अनन्तर जब देवरानी व जेठानी रणक्षेत्र मे खोज करने ('खेत सोधणौं') गई तो वहाँ अपने पति को हाथी के हौदे पर तथा देवर को हाथी के पैरो तले वीरगति को प्राप्त हुआ देख जेठानी की देवरानी के प्रति उक्ति —

व्याख्या—भाभी (जेठानी) कहती है कि हे देवरानी ! देखो, हाथियो को ढाहने वाले मेरे वीर देवर जिस हाथी के पैरो तले मोए है, उसी के होदे पर तुम्हारे जेठ वीरगति को प्राप्त हुए है ।

[इस दोहे मे दानो भाइयो के शौर्य और परस्पर मर्यादा-निर्वाह की अतीव सुन्दर साकेतिक व्यजना हुई है । हुआ यह कि अतुल वाहुबली छोटे भाई ने अपने मुष्टि-प्रहार से शत्रु के हाथी को गिरा दिया । गिरते-गिरने हाथी ने भी उस वीर को अपने पैरो तले रौद डाला । यह देख क्रुद्ध हुआ बडा भाई उछल कर हाथी के हौदे पर जा चढा तथा शत्रु और उसके हाथी—दोनो का काम तमाम करते हुए स्वय भी हौदे मे उनसे जूझता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ । इस प्रकार वडे भाई ने अपने छोटे भाई की मृत्यु का बदला लेकर तथा छोटे भाई ने उसके चरणो मे अपने प्राण देकर परस्पर वीरोचित भ्रातृ-मर्यादा का निर्वाह किया ।]

शब्दार्थ—**ढाहण** = गिराने या ढाहने वाला । **हेठ** = नीचे । **पोढियौ** = वीरगति को प्राप्त हुआ । **जिणरै** = जिस (हाथी) के ।

राजस्थानी टीका—जुद्ध हुवा पछै देराणी ने जेठाणी खेत देखण गई, तद जेठाणी आपरै देवर नें ने पती ने काम आया देखने जेठाणी कहै—हे देराणी ! देख—

वाभी कहवै है अै दोनू ही हाथी ढाहण (सिंघ है जिसा) हेठ हकारियोड़ा सिंह हाथी नें मार ने हाथी रा पगा मे देवर पौढियौ है अनै जिण हाथी रै होदै जेठ पौढियौ छै ।।इ०।।

ईस घणा जे आखता, तो लीजै सिर तोड ।
धड एकण धण रौ धणी, पडसी बैर बहोड ।।194।।

व्याख्या—हे महेश ! यदि आप अपनी मुण्डमाला के लिए सिर लेने हेतु वहुत ज्यादा उतावले होरहे हो तो फिर मेरे पति के मस्तक को समूचा ही तोड

लीजिए (क्योकि वैसे तो ये शत्रुओ से लडते हुए तिल-तिल कट मरेगे, जिससे इनका मस्तक अक्षत नही रहने पाएगा। अत यदि आप इन्ही का मस्तक अपनी मुण्डमाला के लिए लेने हेतु अतिशय व्यग्र होरहे हो, तो फिर उसका एक ही उपाय है, और वह यह कि आप इनके मस्तक को स्वय अपने हाथ से पहले ही उतार ले)। सिर उतारने पर भी मेरे पति के शौर्य मे कोई अन्तर नही आएगा क्योकि उनका अकेला धड ही शत्रुओ से लडता हुआ अपने बैर का पूरा बदला चुकाकर गिरेगा।

[वीराङ्गना के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि महादेव ने और किसी का सिर उतार लिया तो वह शत्रुओ से अपने बैर का बदला लिए बिना ही गिर पडेगा, परतु उसका शूरवीर पति सिर कटने के बाद भी शत्रुओ से बैर का पूरा बदला लेकर रहेगा। अत कबन्ध-रूप मे लडने वाले उसके शूरवीर पति का मस्तक ही महादेव की मुण्डमाला मे धारण किए जाने योग्य है। उसे पहले उतारना इसलिए जरूरी है कि न उतारे जाने पर वह समूचा मिलेगा ही नही, खड्ग-धारा मे टुकडे-टुकडे हो जाएगा। फिर मु डमाला हेतु लेगे क्या ? इसीलिए वीरङ्गना का उपर्युक्त कथन है]।

शब्दार्थ—**ईस** = महेश, शिव। **आखता** = उतावले, अतिशय व्यग्र या अधीर। उदाहरण —

सुख सेज दैण ढीलौ सदा, अमल लैण न **आखतो**।[1] **धड़** = रुण्ड (कबध)। **एकरण** = अकेला। **धणी** = पति। **पड़सी** = गिरेगा, वीरगति को प्राप्त होगा। **बैर बहोड** – बैर का बदला लेकर।

विशेष—अप्रतिम शूरवीर के मस्तक को महादेव द्वारा अपनी मु डमाला हेतु ग्रहण किए जाने का वर्णन डिंगल-काव्यो मे प्राय पारपरिक-सा होगया है। 'वश भास्कर' मे एक ऐसे ही शूरवीर का वर्णन हुआ है, जिसके मस्तक को महेश अपनी मु डमाला के लिए लेना चाहते थे, किन्तु वह उन्हे विफलमनोरथ करता हुआ पहले ही खड्ग-धारा मे टुकडे-टुकडे होकर गिर पडा। बेचारे महेशजी मुँह ताकते रह गए।—

'जिकणरो सीस महेसरो मनोरथ मोघ करि अनेक धाराधरा री धारामाही लागि लीन थियो।[2] यही बात वीरवर अर्जुन गौड ने कर दिखाई, जिसके शरीर का टुकडा--टुकड़ा तलवारो के चिपक गया, जिसके फलस्वरूप, उसके लिए लालायित— पृथ्वी मासभक्षी पशु-पक्षी, अग्नि, शिव और अप्सराएँ—सब के सब मुँह देखते रह गए —

---

1. ऊमर काव्य।
2 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडशमयूख पृ० 1374

खित पडियौ न पलचरा खाधौ,[1]
पावक नहँ सकियौ परजाल ।
वीठलउत तणौ तन विढता,
त्रिजडा चैठ गयौ रिणताल ।।

× × ×. ×

इण पलचर ग्रानल सिव ग्रपछर ।
जोवौ किण वासतै जग ।
वो हँस जाय ग्रमरपुर वसियौ ।
खाधौ घट म्हे कहै खग ।।

वीराङ्गना के कथन का मर्म इसी भाव-सदर्भ मे ग्रहण किया जाना चाहिए ।

राजस्थानी टीका—एक कोई सूरवीर री स्त्री ग्रापरा पती ऊपर मालक ने रूसता देख कह रहि छै—हे ईस ! (मालक) घणा ही ज ग्राप जो ग्राघता (खाता) हौ तौ ग्रापरै दूजा जोधार ग्रनें माहरौ पती त्यारी परिक्षा कर देखौ तौ सीस तोड लेवौ सो धण (स्त्री) कहै—इणहीज धड सू एकण धणरौ पती ग्ररथात ब्रहमचर्य व्रत वालो एकणहीज धण रो पती ग्रापरौ वैर लेनै पडसी—ग्ररथात ज्यारो ब्रह्मचर्य व्रत निष्ट हुवोडौ है, ग्रौर परस्त्रीगमण ग्रादि कलका सू पूरित है तिके विना सिर तरवार वाह नही सकसी ग्रौर माहरौ पती काछ-पाप-निकलक है सो विना सिर तरवार वाह ग्रापरो वैर ले लेसी ।।इ०।।

टिप्पणी—टीकाकार ने 'ईस' को 'मालिक' (ग्राश्रयदाता स्वामी) के ग्रर्थ मे ग्रहण करते हुए इस दोहे की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, उससे हम ग्रसहमत हैं। स्पष्ट ही, दोहे के मूल भाव को समझने मे टीकाकार को भ्रान्ति हुई है ।

ठकुराणी सतियाँ कहै, भेजौ चून घरॉ न ।
माथा जिण दिन माँगणा, तिण दिन लोभ करॉ न ।।195।।

प्रसग—एक कृपण स्वामिनी को वीर-पत्नियो की प्रताडना —

व्याख्या—वीर पत्नियाँ उलाहना देती हुई कहती हैं कि हे ठकुरानी ! तुम हमारे खाने के लिए चून भी घर नही भेजती हो ! (हमारे जीवन-निर्वाह योग्य दो मुट्ठी चून भेजना भी तुम्हे ग्राज भारी पड रहा है, उसका भी तुम लोभ कर रही

---

1 गीत ग्रर्जुन गौडरो, प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 5, पृ० 1, स० श्री हनुवतसिंह देवडा ।

हो) । परन्तु याद रखो, जिस दिन तुम सिर माँगोगी, उस दिन हम उनका लोभ नही करेगी ।

[अर्थात् युद्ध छिडने पर जिस दिन तुम्हे हमारे पतियो के मस्तको की जरूरत होगी, उस दिन हम तुम्हारी तरह लोभ नही करेगी । अपितु, तुम्हारे लिए प्राण देने हेतु हम अपने पतियो को अविलम्ब युद्ध मे झोक देंगी ।]

शब्दार्थ—**सातियाँ** = वीर पत्नियाँ । **चून** = आटा । **माँगणा** = माँगे जाएँगे, माँगोगी ।

विशेष—मध्ययुग मे शूरवीर, मात्र जीवन-निर्वाह योग्य वृत्ति लेकर अपने आश्रयदाता की सेवामे रहा करते थे तथा अवसर आने पर उसके लिए अपने प्राण तक निछावर कर अपने स्वामिधर्म का पालन करते थे । वे धन के नही, मान के भूखे थे । दान से नही, शौर्य से जीते थे । ऐसे मरणोपजीवी शूरवीरो के लिए यदि चून ('पेटिये') भेजने मे भी कोई स्वामिनी कृपणता दिखलाए तो उसे वीर-पत्नियो का उलाहना देना स्वाभाविक है । खान-पान मे ऐसी कृपणता कुछ तुच्छमना सामत-रानियाँ प्राय: दिखलाती भी थीं । उन्हे डिंगल-कवियो ने ही नहीं, स्वय उनके कृतज्ञ एव शूरवीर पतियो ने भी खूब फटकार बताई है । इसी आशय का एक दोहा है—

कलह करै मत कामणी, घोडाँ घी देताँह ।
आडा कदेक आवसी, वाढाली वहताँह ।।

टिप्पणी—राजस्थानी टीका मे यह दोहा नही है ।

ठकुराणी सतियाँ भणै, चून समप्पौ सेर ।
चूडौ जिण दिन चाहसी, उण दिन केथ अवेर ।।196।।

व्याख्या—वीर-पत्नियाँ कहती है कि हे ठकुरानी ! आप हमे फकत सेर भर चून देती हो और वह भी समय पर नही (उसके लिए भी टालमटोल करती रहती हो कि अभी देर है, ठहरो) । परन्तु जिस दिन आपको हमारे चूडे की चाहना होगी (युद्ध छिडने पर हमारे सुहाग के अवलम्ब—पतियो के सिरो की जरूरत होगी) उस दिन यह देर कहाँ चली जाएगी ? अर्थात् उस दिन यदि हम भी यह कहदें कि हमे भी अपना चूडा चाहिए तब आपको अपनी इस देर का पता चलेगा । अत यह कजूसी छोडो ।

अतिम पक्ति का अन्यार्थ यों भी किया जा सकता है—'जिस दिन आपको हमारे चूडे की जरूरत होगी, उस दिन हमारे यहाँ देर कहाँ ? अर्थात् उस दिन अपने सुहाग को आपके खातिर न्योछावर करते हुए हमे देर नही लगेगी ।'

शब्दार्थ—भरणै = कहती हैं। समप्पौ – देती हो अथवा दो। अपर अर्थ मे 'हे ठकुरानी! हमे तो केवल सेर भर चून ही चाहिए।' चूड़ौ = सुहाग, लक्ष्यार्थ मे पति। उरण = उस। केथ = कहाँ। अवेर = देर।

राजस्थानी टीका—एक ठकुराणी आपरै रजपूता ने पेटिया देण मे जेभ करण ढूकी तठै वा वीर पुरषा री स्त्रिया—सतिया, ठकुराणी ने कहै है—ठकुराणी! तोने वीर पुरषारी स्त्रिया (सतिया) कहै छै—आप म्हाने फगत सेर आटौ देवौ हौ सो इण ही मे कहो हौ कै अबार धान थोडो है, अने म्हारै धान चाहीजै है, सो म्हे ही किण ही दिन सत्रुआ री फौज ऊपर चढ आई, उण वखत कहसा कै म्हारै ही चूडौ चाहिजै है सो घर रा धणी ने जुद्ध मे भेजा नही। उण दिन धाण देण री अवेर, आ जेभ कठी जावसी? ॥इ०॥

नहँ पडौस कायर नराँ, हेली वास सुहाय।
वलिहारी जिण देसडै, माथा मोल बिकाय ॥197॥

व्याख्या—हे सखी! मुझे कायर के घर मे रहना तो दूर, उसके पडोस मे बसना भी नही सुहाता। मैं तो उसी देश पर बलिहारी हूँ, जहाँ सिरो का सौदा होता है (स्वामी के ऋण का बदला सिर देकर चुकाया जाता है)।

[राजस्थानी टीकाकार ने, जैसाकि अन्यत्र भी, इस दोहे की व्याख्या मे अनूठी सूझ का परिचय दिया है, जो टीकाकार की सूक्ष्म अतर्दृष्टि तथा उसकी काव्य-मर्मज्ञता का परिचायक है। टीकाकार के अनुसार यह कदाचित् किसी वीरकुलोत्पन्न सयानी कन्या का कथन है, जिसके द्वारा वह सखी पर अपना यह मनोभाव प्रकट करती है कि वह अपने पति-रूप मे किसी शूरवीर को ही पसद करेगी, कायर को नही। इसमे यह व्यजना है कि जहाँ उसे कायर के पडौस मे बसना तक नही सुहाता, वहाँ वह कायर के घर मे भला क्या रहेगी? सखी से कहने का अभिप्राय यह कि सखी उस वीर बाला की यह मनोवाछा उसके माता-पिता पर प्रकट करदे, ताकि वे किसी कायर पति के साथ, चाहे वह कितना ही प्रभुत्वसम्पन्न व धनी-मानी क्यो न हो, उसका विवाह न करे।]

राजस्थान की वीर कन्या की यह वीरोचित साध धन्य है!

शब्दार्थ— नहँ – नही। वास = निवास, बसना। जिण = जिस।

राजस्थानी टीका—एक कोई कँवारी थकी सूरवीर स्त्री कहै छै–हे हेली! मोनै तौ कायर पुरसा रौ पडोस ही होवै तौ सुहावै नही, इण सारू बलहारी जाऊ उण देसरी जिण मे माथा मोल विकै। इति अक्षरारथ।

अब व्यङ्गारथ—हे हेली ! मोने तौ कायरा रौ पडौस ही सुहावै नही, सो पती जो कायर मिल गयौ तौ किसी क होवसी—इण सोच सारू सखी ने समझावै है कै उण देश री बलिहारी जाऊ जठै माथा मोल विकाय । अरथात् जिण सरदार कने रुजगार ले सिर देण सारै सूरवीर रहै है, वो देस धिन्न है । देस धिन्न कहण रौ तात्परज म्हने सूरवीर ने परणावजो । आ वात सखी माईता ने कहसी तद माईत कायर पती ने नही परणावै । कँवारापणारी प्रतीत होवै है कि मोने कायर रौ पडौस ही नही सुहावै, इण वासतै कँवारी है, पती रै साथ मे नही ।।इति।।

आलस जाणै ऐस मे, वपु ढीलै विलसत ।
सीधू सुणियाँ सौ गुणौ, कवच न मावै कत ।।198।।

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत पर, जो रगमहल मे ऐश करते समय अलसाये-से तथा प्रणय-विलास के समय शिथिल-शरीर दिखाई देते है, सिंधु राग सुनते ही वीरता का ऐसा सौगुना जोश चढ जाता है कि वे कवच मे भी नही समाते ।

[अर्थात् मेरे कत 'भोगी भँवर' ही नही, 'रण-रसिक' भी है । रति-केलि के अवसर पर वे जितने प्रणय के अलस-शिथिल उन्माद मे डूबे रहते है, युद्ध छिडने पर उससे सौगुने रणोन्माद मे भर जूझने हेतु आकुल हो उठते है । उन पर ऐसा सूरातन चढ जाता है कि अदम्य वीरोल्लास मे कवच की कडियाँ भी टूट जाती है] ।

शब्दार्थ—**जाणै**=जानते हैं, अर्थात् छाया रहता है (आलस्य) । **ऐस**=ऐश, भोग-विलास । **वपु**=शरीर । **विलसत**=विलास करते है । श्री स्वामीजी व डॉ. सहलजी आदि सपादकों ने यहाँ 'बिकसत' पाठ माना है, परन्तु टीका मे 'विलसत' पाठ है । हमने टीका का पाठ ही माना है । **सुणियाँ**=सुनने पर । **मावै**=समाता है ।

विशेष—अदम्य वीरोल्लास मे वीर के कवच मे न समाने अथवा कवच की कडियाँ टूट जाने का वर्णन डिंगल-काव्यो मे कुछ रूढ-सा हो गया है, जिसके प्रयोग के उदाहरण हम पहले दे आए है । इसे हालाँ-झालाँ-रा कुडलिया के इस पद्य से मिलाइए.—

सखी अमीणा कत रौ, औ इक बडौ सुभाव ।[1]
गलियारा ढीलौ फिरै, हाकाँ वागाँ राव ।।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरष री वीर स्त्री आपरै पती री तारीफ करै है—हे सखी ! म्हारै पती जाणै कोई आलस खुद देहधारी ऐस मे सुभावी का हीज

1 हालां-झाला-रा कुडलिया, पृ० 18

विलमनौ–सोभतौ होवै जिसौ है, पण सिवू राग—जुद्ध री राग सुणताई तौ सौ गुणौ अ ग फूल पौरस बध जाय अने सरीर बगतर मे ही मावै नही ।।इति।।

राणी सोकल चून री, कमी दिखावौ काय ।
थारा पहली सीलणौ, म्हारा रौ सिर जाय ।।196।।

व्याख्या—हे रानी ! आप हमे देती क्या हैं ? मोटा पिसा हुआ साधारण आटा ही तो ? फिर उसमे भी यह कमी क्यो दिखा रही हैं ? क्या आप जानती नही कि जब कभी भी आप पर आ बनेगी, मेरे शूरवीर पति आपके पति के पहले अपना सिर कटवा कर इस अहसान का बदला चुकाएँगे ? (क्या आपका यह चून मेरे सुहाग से भी मँहगा है ?) ।

शब्दार्थ—सोकल=कदाचित् मोटे पिसे हुए आटे से अभिप्राय है, जिसे चोकर या 'चापड' कहते हैं । सामान्य जनो के लिए प्राय आटा पीसने पर निकलने वाले दाने के भूसे की रोटियाँ बनाई जाती थी । यहाँ 'सोकल चून' से सभवत. उसी मोटे पिसे हुए साधारण चून से अभिप्राय है, जिसकी रोटी खिलाना, खाने वाले के प्रति अवज्ञा का सूचक था । श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'सूखा आटा' किया है, जो निरर्थक–सा है, क्योकि चून या आटा तो सूखा ही होता है । काय=क्यो ? **थारा**= तुम्हारे पति (के मस्तक से) । **सीलणौ**=(अहसान का) बदला चुकाने मे ।

उदाहरण —

'जिणथी स्वतत्र सभव मे एक आपरा आलय हूँ काढि देणरो **उपकार करि जिकण रा सीलणॉ** मे सहियो न जाइ इसडा अनेक अनर्थ कुमाइ मनमत्त बहै, तिकण री अ त तो इसडो खटावै ।'[1]

म्हारा रौ= मेरे पति का ।

राजस्थानी टीका—कोई सूरवीर री स्त्री आपरै मालक री स्त्री ने कहै छै—हे राणी ! इण सौकल—सुलियोडा (?) अ न री ही कुमी काई दिखावै ? थारा अन रै पहली ही सीलवणौ औ होवें है सो म्हारा रा माथा जावै है ।।इ०।।

सुण हेली ढीलै सहज, लेणौ पडवै लोच ।
कत सजता सौ गुणौ, कडी बजता कोच ।।200।।

व्याख्या—हे सखी ! सुन, यह कैसी आश्चर्य की बात है कि शयनागार मे अपने जिन ढीले-ढाले अलसाए–से कत को, मैं जैसे चाहती हूँ, कस कर अपने

---

1 वशभास्कर, पचमराशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 1842

आलिंगन मे बाँध लेती हूँ, वे ही युद्ध-सज्जा से सज्जित होते समय कवच की कडी बजते ही वीरोल्लास से सौ गुने फूल उठते है !

[वीराङ्गना का आश्चर्य-चकित होना स्वाभाविक है। वह देखती है कि रगमहल मे सेज पर जो कत उसके प्रणय-परिरभ मे सहज ही बँध जाते थे, बँध ही नही जाते थे, बल्कि उद्दाम भावावेश मे उसके बाहुपाश मे, वह जैसे व जितना चाहती कस लिए जाते थे, वे ही युद्ध का बाना पहनते ही वीरोल्लास से इतने फूल उठते है कि सौ गुने हो जाते है ! कहाँ प्रिया के बाहुपाश मे आबद्ध रहने वाले प्रियतम और कहाँ यह अप्रमेय वीरोल्लास से स्फीत रूप ! कत के इस असभावित रूपान्तर पर वह वीर-प्रिया आश्चर्य-मुग्ध न हो तो क्या करे !]

शब्दार्थ—**ढीलै**=ढीले-ढाले। **पड़वै**=शयनागार मे। **लोच लैणौ**=अपनी इच्छानुसार प्रगाढ आलिंगन मे कसना या ढीला करना। **सजतां**=सजते हुए। **कोच**=कवच ।

विशेष—श्री स्वामीजी ने प्रथम पक्ति की जो व्याख्या की है, उसका क्या अर्थ है, वे ही जाने। वह निम्नाकित है —

'हे सखी ! सुन, शयनागार मे लोच लेने वाले (विकसित होने वाले) शरीर का ढीला होना (बढना) सहज है ।'

राजस्थानी टीका—आपरी सखी ने सूरवीर री स्त्री कहै छै—हे सखी ! ढीलै, सहज ही आलसू सभाव वालौ पती पडवै (पौढण रा) महल मे दीसै छै, पण जुद्ध ऊपरै सभता थका तौ कथ पौरष मे सौगुणौ दीसै । कडी वाजता ही कोच (बगतर) री, सूरमापणौ चढै, तठै देखणौ चहीजै ।।

इति श्री कविराज मिश्रणचारण ठाकुर सूर्यमल्ल विरचिताया वीर सप्तशत्याँ द्वितीयं शतकम् ।।

खागा अग वखेरियौ, रण रौ भूखौ रूठ ।
बेखै सालौ वीद नू, पछतावै परपूठ ।।201।।

प्रसग—वर विवाह करने ससुराल पहुँचा ही था कि वहाँ युद्ध छिड गया। ससुराल-पक्ष के अन्य लोग जब युद्ध मे जाने लगे तो वर ने भी जाने का आग्रह किया, परन्तु साले-श्वसुरादि सम्बन्धियो ने यह सोच कर कि जँवाई को, जो अभी दूल्हा हो है, युद्ध मे जाने देना उचित नही—उसे जबरन रोक लिया। इस पर —

व्याख्या—रण के भूखे उस शूरवीर वर ने रुष्ट होकर तलवार से अपने ही शरीर के टुकडे-टुकडे कर डाले। साले ने अपनी अनुपस्थिति मे दूल्हे (बहनोई) को

यों क्षत-विक्षत हुआ देख, बहुत पश्चाताप किया (कि मैं इसे ले क्यों नहीं गया)। [अथवा, साले ने दूल्हे की यह दशा देख पीठ पीछे बहुत पछतावा किया कि मैंने इसे अकेला क्यों छोड़ा]।

इस दोहे मे शूरवीर वर की अदम्य युयुत्सा का चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ—**खागा**=तलवारो से। **बखेरियौ**=क्षत-विक्षत या टुकडे-टुकडे कर डाला। **रूठ**=रुष्ट होकर, नाराज होकर। **बेखे**=देख कर। **परपूठ**=पीठ पीछे, अनुपस्थिति मे।

राजस्थानी टीका—कविवचन –

कोई वीर पुरुष परणीजियौ नें दूजै दिन मासरा माथै दुसमण आया तठै सालौ नें बहनोई सत्रुआ नें पूगा तठै वीद वणीयोडै हीज झगडा रै भूखै तरवारा आगै सरीर पुरजा-पुरजा कर विखेरियौ भो देखने सालौ परपूठ दूजा आगै पिछतावै। म्है इणने क्यू म्हारी बहन परणाई। औ तौ वे रौसीज मारीजसी ने बहन ने विधवा कर देमी ॥इति॥

पहर चउत्थै पोढियो, गिरातौ फौज गरीब।
दोय घडी जक जीभ नू, बैरी आण नकीब ॥ 202 ॥

प्रसग सवेरे के समय जब नकीब आवाज लगाने लगा तो वीराङ्गना उसे सम्बोधन करती हुई बोली—

व्याख्या—ओ बैरी नकीब ! दो घडी तो अपनी जीभ को चैन लेने दे (चुप रह)। क्या तू जानता नही, मेरे शूरवीर स्वामी रात भर युद्ध करते रहे है तथा शत्रु-सेना को निपट निर्बल हुई जान रात के चौथे पहर मे कहीं कुछ सोए है। [इसलिए थोडी देर तो इनकी आँख लगने दे। यदि इन्होने तेरी आवाज सुन ली तो हारे-थके भी ये फिर युद्ध के लिए चल पडेगे]।

इस दोहे मे वीर की चिर अतृप्त युयुत्सा की व्यजना हुई है, जो युद्ध के लिए अपनी भूख-नीद सब कुछ त्याग देता है।

शब्दार्थ—**चउत्थै**=चौथे, यानी जब सवेरा होने ही को है। **गिणतौ**=समझते या जानते हुए। **गरीब**=दीन, निर्बल। **जक**=चैन। **आण**=लाओ। **नकीब**=राजा-महाराजाओ की सवारी निकलते समय--'मेहरवान, नजरदौलत, दुश्मनपैमाल' आदि आवाज लगाता हुआ आगे चलने वाला चोबदार। यह एक जगह से दूसरी जगह खबर पहुँचाने का काम भी करता था, जैसा कि 'आईने अकबरी' मे

लिखा है[1]—"कुछ कर्मठ और चतुर मनुष्यों को खबरदारी के लिए नियुक्त करते हैं, जो हर तबीले (अस्तबल का) समाचार दारोगा और मुशरिफ को पहुँचाते है। वे घोडो को तैयार रखते है।"

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरुष री स्त्री कहै—दुसमरण री फौज सूं लडता-लडता च्यार पौहर मे सारा सत्रुआ ने कायल कर गरीब, जाए ने रात री तीन पौर वीताय आयने सूतौ है—इण सारू उण वीर पुरप री स्त्री नकीब ने कहै—रे वैरी! दोय घडी तौ थू ई जीभ नै जक दै। सुहार होवण री वेला नकीब बोलण लागौ तिण सूं कहै छै ॥ इ० ॥

मतवाला माल्है सुहड, घोडा साकल तोड।
हैलां इण घर पाहुणौ, आसी चूड़ विछोड ॥ 203 ॥

व्याख्या—जहाँ मतवाले योद्धा रणोन्माद मे डूबे हुए घूमते है तथा साँकलो को तोड फैंकने वाले अतुल बली और मुँहजोर घोडे युद्ध के लिए बेताब हुए हिन-हिनाते है—ऐसे इस वीर घर मे, हे सखी! जो भी मेहमान बनकर (शत्रु) आएगा, वह पहले अपनी पत्नी का चूडा उतरवा कर ही आएगा।

[अर्थात् उसका मारा जाना निश्चित है। अत. इस घर पर चढ कर आने वाले शत्रु को चाहिए कि अपना मरण अवश्यंभावी समझ अपनी पत्नी का चूडा पहले ही उतरवा दे]।

शब्दार्थ—**माल्है**=मस्ती मे घूमते है। 'माल्हणौ' अपनी मौज या मस्ती में इठलाते हुए घूमने को कहते है। यथा —

माल्हतौ घरि आगणौ, सखी सहेलौ ग्रामि।[2]
जो जाणू पिय माल्हणौ, जै मल्हैं सग्रामि।

सुहड=सुभट, योद्धा। **सांकल तोड़**=ऐसे मुँहजोर और बलवान कि जो अपनी बधन-शृंखलाओ को भी तोड डालें। भावार्थ मे युद्ध के मैदान मे जाने के लिए बेताब। **पाहुणौ**=मेहमान (शत्रु)। **चूड विछोड़**=चूडे को बिछुडवा कर, अलग करवा कर। अर्थात् चूडा उतरवा कर।

राजस्थानी टीका—हे सखी! सुहड रजपूत तौ इण सिरदार रा मतवाला हुवोडा घूमै वा माल्है—आगा-पाछा फिरै छै, अने घोडा साकला तोड रया छै, इसा दतियोडा, सो इण घर माथै तौ प्राहुणा (सत्रू) आवण रौ विचारसी नौ आसी चूड

1 आईने अकबरी, पृ० 129, अनु० श्री हरिवंशराय शर्मा।

2 हालां-झालां-रा कुंडलिया पृ० 8।

विछोड, लुगाया रा चूडा फोडाय नै आवमी, क्यूकि अठै आयोडा पाछा जीवना जावै नही ।। इति ।।

पोता रे बेटा थिया, घर मे वधियौ जाल ।
अब तो छोड़ौ भागणौं, कत लुभायौ काल ।। 204 ।।

प्रसग— अपने वृद्ध किन्तु कायर पति की भर्त्सना करती हुई उसकी वीर पत्नी कहती है —

व्याख्या—हे कत ! आपके पोतो के भी बेटे होगए है (आप प्रपितामह हो गए हे), जिससे घर में सतति का जाल बहुत फैल गया हे, घर बेटो, पोतो व परपोतो से भर गया है । [फिर भी आपके मन मे अभी तक प्राणो का मोह नही गया हे, जिसके फलस्वरूप आप हर बार कायरता दिखा कर युद्ध मे भाग आते हे । किन्तु अपनी आयु-स्थिति का विचार कर] अब तो भागने की आदत छोडिए, क्योकि काल आप पर लुभा गया है, न जाने कब आपके प्राण ले ले । फिर अपने सिर पर यह पाप और अपयश का बोझ क्यों बढाए चले जारहे हे ?

शब्दार्थ—थिया=होगए । वधियौ=बढ गया या फैल गया । **जाल**= सतानो का अनावश्यक विस्तार या गार्हस्थिक प्रपत्र । **लुभायौ काल**=काल लुभा गया है, अर्थात् अब आपकी मृत्यु निकट हे । यह Euphemism (अप्रिय बात को प्रिय बना कर कहने) का सुन्दर उदाहरण हे ।

राजस्थानी टीका—एक कोई वीर स्त्री कायर नै कहै छै—हे कथा जी ! अबै तौ जीवणा रा लालची पोता रै ही बेटा होयनै घर मे जाल वदियौ । अबै झगडा-झगडा सू भागणौ छोडौ । कालराज ही अबै तौ आपरौ लोभायोडौ हे सो वेगा हीज मारसी, तौ पाणी ! रिण-तीरथ मे हीज थारा तीरथ करै नी जो जन्मान्तर रा प्राचत कटै ।।इति।।

जाणौ वाभी जेण गज, लटकतो नीसाण ।
तेथी और न सचरे, देवर रौ आपाण ।। 205 ।।

व्याख्या—हे भाभी ! जिस हाथी पर शत्रु-सेना का झडा लटकता हुआ दिखाई दे, समझ लो कि वह तुम्हारे देवर का ही पराक्रम है । दूसरा वहाँ नही पहुँच सकता ।

[अर्थात् तुम्हारे देवर के सिवा और किसी की यह सामर्थ्य नही है, जो शत्रु-सेनाधिपति के हाथी के हौदे पर पहुँच कर उसे धराशायी करदे, जिसके फलस्वरूप शत्रुसेना का झडा यो लटकता दिखाई दे रहा है । यहाँ झडा लटकने के वर्णन द्वारा परोक्षत देवर के हाथो शत्रु-सेनाधिपति के मारे जाने की व्यजना उद्दिष्ट है] ।

शब्दार्थ—जाणौ=समझ लो । **जेण**=जिस । **लटकतौ**=लटकता हुआ; (शत्रु-सेनापति के मारे जाने का व्यजक) । **नीसाण**=झडा । **तेथी**=वहाँ (स० तत्र)। श्री डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'जिससे' किया है, जो अयुक्त है । **सचरै**=जा सकता या पहुँच सकता । **आपाण**=पराक्रम ।

राजस्थानी टीका—एक वीर री स्त्री आपरै जेठांणी ने कहे छै—हे वाभी सा! जिकण हाथी रौ धुजा-डड देखौ इण फौज मे भागौडौ लटकै छै, उठै दूजारौ आपाण नही, जो हाथी रै हौदै जाय घाव करै । औ तौ आपरै देवर रौ ही ज आपाण है, हाथी रै हौदे पहुच फौज रा धणी ने घाव कीधौ छै ।। इति ।।

किण विध पाऊँ आणियौ बोल ता 'जल लाव' ।
बाट्यो सास बलोबली, भाला हदा घाव ।। 206 ।।

प्रसग—एक शूरवीर रणक्षेत्र मे घावो से तिल-तिल घायल होगया । घायल अवस्था मे प्यास से कठ सूखने पर उसने जल माँगा । परन्तु हाय! ज्योंही पत्नी जल लेकर आई, उस शूरवीर ने सहसा दम तोड दिया । इस पर पत्नी की उक्ति है —

व्याख्या—उनके 'जल ला' कहने पर यह लाया हुआ जल अब उन्हे कैसे पिलाऊँ ? हाय! रोम-रोम मे लगे भालो के घावो ने उनकी साँस को पहले ही चारो ओर से बाँट लिया! [अर्थात् शरीर मे साँस तो थोडी थी और घाव रोम-रोम मे थे । फलत जैसे चलनी मे डाला हुआ पानी एक साथ सारे छिद्रो मे से निकल पडता है, उसी भाँति उस वीर की साँस उसके छलनी हुए शरीर के शत-शत घावो से एक साथ निकल गई । मानो घावो ने उसकी साँस को चारो ओर से बाँट लिया । रणक्षेत्र मे घावो से दम तोडते शूरवीर का कितना करुण-मार्मिक चित्र है!] ।

शब्दार्थ—आणियौ=लाया हुआ । **बोलता**=कहते हुए । **'जल लाव'**=जल ला । **सास**=श्वास । **बलोबली**=चारो ओर से, बारबार (एकसाथ)

उदाहरण—

1. बलाबल छूट बहै चन्द्रबाण ।[1]
2 हूक बल कलल दल बलोबल हुवा हल,
 अहक डक डक अबक बजै तासा तबल ।[2]
3 बलौवलि ऊछलै सोर साहा विढण, बौल जागी बिचै असत बूडे ।[3]

---

1 माताजी री वचनिका, पृ० 88, स० डा० नारायणसिंह भाटी ।

2 डिंगल गीत, पृ० 103, सं० श्री रावत सारस्वत ।

3 राज० वी० गी० स० भाग 2, पृ० 58, म०, श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

टीका मे 'बरोबरी' पाठ है। तदनुसार अर्थ होगा 'बराबर बाँट लिया'। हदा=का।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर रै घणा घाव लागा सो उणारी स्त्री आपरी जेठाणी नै कहै—हे जेठाणी! घावा री धक सू तिरस लागी तद कयौ 'जल लाव' सो औ बोलता ही जल आणीयौ, पण अबै पाऊँ किण तरै? भाला रा इतरा गहरा घाव लागोडा जिणमे सास सारा घावा सू बराबर नीसरै, जल पीधौडो घावा सू बारै निकल आवसी ।। इति ।।

किण दिन देखू' वाटडी, आता पडवै तूझ।
घाव भरता आवगौ, बीत्यौ जोबन मूझ ।। 207 ।।

व्याख्या—हे प्रियतम! मुझे वह दिन तो बताइए जब मैं रगमहल मे आपके आने की प्रतीक्षा करूँ? मेरा तो सारा यौवन आपके घाव भरते-भरते ही बीत गया है!

[अर्थात् विवाह के बाद आपने एक रात भी मुझे अपने सहवास का सुख नही दिया है। कारण, आप एक के बाद एक युद्ध मे जाते रहते है, जिसके फलस्वरूप आपके पिछले घाव ठीक करती हूँ, इतने मे आप और नए घाव कर लाते है। इस तरह मेरा तो सारा यौवन आपके घाव भरते-भरते ही बीत गया है। अब तो कृपा कर मुझे वह शुभ दिन बताइए, जिस दिन मै आपको रगमहल मे आते सुन आपकी प्रतीक्षा का सुख लूँ। आखिर, युद्ध ही युद्ध से इतना क्या प्रेम है? कुछ तो मेरे यौवन की ओर भी दृष्टि डालिए। यह हमेशा तो रहेगा नही!]

विशेष—यह दोहा शृगार और वीर के मणिकाचन सयोग का सुन्दर उदाहरण है। प्रिया के इस उपालभ द्वारा कवि ने परोक्षत शूरवीर की अनत्य युद्धेच्छा का चित्रण किया है, जो किसी सीमा तक मध्ययुगीन दापत्य जीवन का एक कठोर सत्य भी था। मध्ययुग मे वीर की शौर्य-दृप्त हुकारो के बीच उसकी विरहिणी नारी का यह अनर्वेदन वाणी मे कम, आँसुओ मे अधिक मुखरित हुआ है। यौवन की बाल वयस मे लहकती किन्तु प्रिय की वियोग-व्यथा मे दहकती मध्य-युगीन नारी की मनोव्यथा का कुछ अन्दाज इन उद्‌गारो से लगाया जा सकता है —

1 घर पाखइ वगडई वसइ, देस बिना परदेस।[1]
पणि प्रीउ पाखइ नवि सरइ, यौवन बाली वेस ।।

1 माधवानल-कामकदला-प्रवध, कवि गणपति-विरचित।

2 जोबन राखो चोर ज्युं ।[1]
पगी पगी स्वामी लागु हु पाय ।
ईणी भवि उलिगाणौ हुवौ ।
आवत ही भव होई कालो साँप ।।

अत प्रस्तुत दोहे मे वीर-प्रिया ने अपने यौवन को लक्ष्य कर प्रिय को जो उपालभ दिया है, वह वस्तुत मध्ययुगीन नारी का ही उपालभ है । उसने तो अपना यौवन पति के घाव भरते-भरते ही बिता दिया, पर उसके यौवन के घाव को किसने भरा है ?

शब्दार्थ—**बाटड़ी** = राह, मार्ग, भावार्थ मे प्रतीक्षा । **पड़वै** = रगमहल, शयनागार । **आवगौ** = सारा, सपूर्ण । उदाहरण —

मरण वालै लियो जरद अणमावते[2]
सीलियौ **आवगौ** भार सगतावते ।।

श्री स्वामीजी ने डिंगल के इस अति प्रचलित शब्द का अर्थ ठीक से न समझते हुए भ्रान्तिवश 'आवगी' पाठ मान कर "उम्र बीत गई" अर्थ कर दिया है, जो निराधार है ।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर ने स्त्री कहै, हे पती ! हूँ आपरी पडवै पधारण री वाट किसै दिन देखू ? आपरा घाव भरता हीज म्हारौ तौ जोबन वीतौ छै । घाव मिलिया ने फेर जुद्ध, घाव मिलिया ने फेर जुद्ध, इण तरै ऊँबर गयाँ, वश रहै नही सो अबै वश रहणरी उपाय करावाड ।।इति।।

हेली पीहर देखियो, एकण रात सुहाग ।
घर आयाँ धण जाणियौ, दूणा दूण दुहाग ।।208।।

व्याख्या—हे सखी ! मैंने तो केवल पीहर मे एक ही रात (सुहागरात को) सुहाग-सुख देखा था । पति के घर (ससुराल) आने पर तो (उनकी इस) प्रिया ने दिन-दिन दूना दुहाग ही देखा है ।

[अर्थात् पति के अहर्निश युद्धरत रहने के कारण ससुराल मे एक रात के लिए भी प्रिय-समागम का सुख नही मिला, जिसके फलस्वरूप दुहाग रूप प्रिय-वियोग का दु ख दिन-दिन दूना ही हुआ है ।]

---

1 बीसलदेवरासो, पृ० 84, स० श्री सत्यजीवन वर्मा ।
2 गीत शक्तावत प्रतापसिंह रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 1, पृ० 43

शब्दार्थ—एकरण = एक । घर = पति के घर (ससुराल) । धरण—प्रिया ने (अपने प्रति, अन्य पुरुष मे कथित) । दूरणा दूरण=दुगुना ।

विशेष—क्षत्रियो मे यह प्रथा है कि विवाह के दूसरे दिन, 'बढार' की रात को वर-वधू को शयनागार मे प्रथम बार साथ सुलाया जाता है, जहाँ वे सुहागरात मनाते है । दोहे की प्रथम पक्ति मे इसी ओर सकेत है।

यह प्रथा मध्ययुग की सघर्षपूर्ण जीवन-स्थितियो से जुडी हुई है जब क्षत्रिय युवक को किसी भी क्षरण युद्ध के लिए जाना पड सकता था । यहाँ तक कि विवाह की वेदी पर बैठा हुआ या फेरे लेता हुआ क्षत्रिय वर भी, युद्ध का आह्वान सुन, एक क्षरण का भी विलम्ब किए बिना घोडे की पीठ पर आ बैठता था । यथा —

"तरै तीजो फेरो लेता था । तरै घोडै वले हीस कीनी । तरै धीरदे जोवो हथलेवो छुडाय नै चोथो फेरो विरण लीधा चढीयौ "[1]

यह थी मध्ययुगीन क्षत्रिय वीर की कर्तव्यनिष्ठा ! ऐसी स्थिति में, वर की असामयिक मृत्यु के कारण कही वश-परपरा लुप्त न होजाए, इसलिए ससुराल मे विवाह के समय ही वर-वधू के मिलन का विधान कर तत्कालीन आवश्यकता को एक सामाजिक प्रथा का रूप दे दिया गया था, जो अभी तक चली आरही है ।

राजस्थानी टीका—फेर आपरी सखी ने कहै है—हे हेलि ! म्है तौ पती परणिया तद आय पडवै पोढिया, उरण एक रात सुख देखियौ । फेर आया पछै तो दूरणा दूरण दुहाग देखियौ । काररण, झगडा ऊपर झगडा कर घावा पडिया, आराम कीधा चाकरी कर, इतरै फेर वेही झगडा, वे ही घाव । इरण दुख सू दूरणा दूरण दुहाग कयौ छै ।।इति।।

करडौ कुच नूं भाखता, पडवा हदी चोल ।
अब फूला जिम आंगमै, सेलां री घमरोल ।।209।।

प्रसग –वीर–पत्नी अपने पति के शौर्य की प्रशसा करती हुई अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या—हे सखी ! रगमहल मे रति–क्रीड़ा के समय जब मै प्राणनाथ को अपने आलिंगन मे कस लेती थी, तो वे मेरे कुचो को कठोर बताकर उनकी शिकायत

1. वीरमदे री वार्ता (वीरवारण), परिशिष्ट 2, पृ० 19, स० श्रीमती ल. कु. चू डावत ।

किया करते थे, किन्तु अब देख तो, युद्ध मे भालो के भयकर प्रहारो को वे किस तरह फूलो की भाँति अपने सीने पर झेल रहे है !

[यह दोहा भी शृगार और वीर के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। रति–केलि के समय पति, प्रिया के आलिंगन–पाश का आनद लेने के लिए उसके कुचो की कठोरता से पीडित होने का बहाना करता था, जिसे मुग्धा प्रिया अपने सहज भोलेपन से सच समझ उसे अधिक पीडित करने के उद्देश्य से अपना आलिंगन और भी कठोर कर लेती थी, जो पति के लिए असीम रसानुभव का ही हेतु होता था ! किन्तु जब युद्ध मे उसने अपने पति को भालो के भयकर प्रहारो को सीने पर हँसते-हँसते झेलते देखा, तब उसकी समझ मे आया कि कुचो की कठोरता की उस शिकायत के पीछे क्या रहस्य था ! तथापि, अपने प्रियतम के इस शौर्य पर वह निश्चय ही मुग्ध थी !]।

शब्दार्थ—करडौ=कठोर । **कुच**=स्तन । **नूँ**=को । **भाखता**=कहते । **हदी**=की । **चोल**=रति-क्रीडा, प्रणय–केलि । **आँगमै**=अगीकार कर रहे या झेल रहे है । **सेलाँ**=भालो । **घमरोल**=भयकर प्रहार ।

विशेष—सूर्यमल्ल के इस दोहे पर कविवर ईसरदास की इस कुडालिया का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है —

सेल घमोडा किम सह्या, किम सहिया गजदत ।[1]
कठिण पयोहर लागताँ कसमसतौ तू कँत ।।
कत सूँ ओलँबौ दियौ इम कामणी ।
अँण घट आज ग केम सहिया अणी ।।

राजस्थानी टीका--आपरा पती रौ सूरवीरपणौ सखी ने कहै छै–जुद्ध करताँ देखने हे सखी ! म्हारै पती पडवै (सेझाँ) रमताँ म्हारौ मन राखण सारू कुच (छाती) ने ही कहता कठोर है, सो म्हारै छाती मे चुभै छै, पण आज जुद्ध मे देख भाला सामी छाती फूल होवै ज्यू सहै छै । सूरवीरपणा री तारीफ छै । इति ।।

तोरण जाताँ वाहरू, सुणियौ अजकै वीद ।
लाखाँ हण लीधी सखी, माँटै पडवै नीद ।। २१० ।।

व्याख्या—हे सखी ! युद्ध के लिए सदा आकुल उस दूल्हे ने तोरण पर जाते हुए ही 'वाहर' का ढोल सुन लिया । बस, फिर क्या था ! अविलम्ब शत्रुओ

---

1. हालाँ–झालाँ रा कुडलिया, पृष्ठ २०

पर चढ उसने लाखो को मौत के घाट उतार दिया तथा अन्त मे, वीरतापूर्वक लडता हुआ, स्वय भी मृत्यु के महाशयनागार (रणक्षेत्र) मे सदा के लिए सोगया !

[शृ गार के चौखटे मे मडित यह शौर्य का कैसा अद्भुत चित्र है ! वर को बराती तो तोरण मारने हेतु लिए जारहे थे, किन्तु उसने मारा शत्रुओ को ! उसके लिए रगमहल मे फूलो की सेज सजाई गई थी, किन्तु उसने रणक्षेत्र मे मरण–सेज का वरण किया ! प्रिया का आलिगन, उसका स्नेह-समर्पण, सब कुछ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु वह मृत्यु का आलिगन कर स्वय कर्तव्य के समर्पित होगया ! अमरत्व के लोभी उस वीर को रात भर का निद्रा–सुख अल्प जान पडा, इसलिए महाकाल की छाती पर वीरत्व का उज्ज्वल अभिलेख बन वह चिर निद्रा मे मग्न होगया !]

शब्दार्थ—**वाहरू**=आक्रान्ता शत्रुओ से रक्षार्थ या उन पर प्रत्याक्रमण कर अपना पशुधनादि ('वित्त') छुडाने हेतु बजाया जाने वाला ढोल । जब डाकू या धाडवी किसी गॉव का पशुधन लूट कर ले जाते थे तो उसे छुडाने के लिए सब गाँव वालो को इकट्ठा करने हेतु जोर–जोर से ढोल बजाया जाता था । उसे 'वाहरू या 'वाहर का ढोल' तथा इस प्रकार शत्रुओ का पीछा करने को 'वाहर चढना' कहते थे । यथा —

'ताहरा **वाहर चढ़ीयो** सु चुहलराई आपडीयो, ओथ वेढ हुई .. [1]

'वाहरू' शब्द का प्रयोग शत्रुओ का पीछा करने वाले या उनसे अपनी वस्तु छुडाकर पुन अपने अधिकार मे लेने वाले वीर के लिए भी हुआ है । यथा —

1. चढियो गाया **वाहरू** गढा गुरू गगेव ।[2]
2. 'राव' जोधौ वडौ आखाडसिद्ध रजपूत, गई भोम रौ **वाहरू** हूऔ, असख्य प्रवाडा किया, वैर **वाहरू** हूऔ, जैतवादी हूऔ ।'[3]

अजकै=युद्ध के लिए सदा आकुल रहने वाले । **हण**=हनन कर । **लीधो**=

1 A Descriptive Catalogue of Bardic & Historical Mss, Section I, Part II, Page 19, Edi Dr L P Tessitori

2. पाबू प्रकाश, आशिया मोडजी–कृत, पृ० 287

3 A Descriptive Catalogue of Bardic & Historical Mss , Section I, Part I, Page 30, Edi Dr L. P Tessitori Asiatic Society Calcutta

ली (नीद) । **मौटै पड़वै** = महाशयनागार, अर्थात् रणक्षेत्र, जहाँ वीर चिर निद्रा मे सोते हैं । **नींद** = चिर निद्रा, मृत्यु ।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरुष री स्त्री कहै छै–हे सखी ! माहरै पती तोरण माथै आवता वाहर रौ ढोल सुणियौ तठै गायारी वाहर जावणौ परणणा सूं वधने समझियौ सो उण अजकै वींद सूरवीर गौ, वाहर मे लाखो सत्रुवा ने हण (मारने) मौटै पडवै नीद लीधी । अर्थात् ससार रा विषय सुख ने तुछ समझ ने वडी नीद सूतौ, काम आय गयौ ।। इति ।।

दिन दिन भोलौ दीसतौ, सदा गरोबी सूत ।
काकी कुजर काटतॉ, जाणवियौ जेठूत ।। 211 ।।

व्याख्या—वह जब देखो, निपट भोला (सीधा–सादा) ही दिखाई देता था तथा गरीबी ढंग बनाए रहता था (ऐसा लगता था जैसे निरा भोलाभाला और दीन है), किन्तु उसे ही जब काकी ने तलवार से हाथियो को काटते देखा, तब उसने जाना कि उसका जेठूत कैसा पराक्रमी है ।

[इसे जेठूत की स्त्री का अपने पति की वीरता के सम्बन्ध मे, अपनी चचिया सास ('काके सासू') के प्रति कथन मानकर भी अर्थ किया जा सकता है । उक्तार्थ मे 'काकी' को सम्बोधन मानना चाहिए । यथा—'हे काकी ! मेरे पति को आप सदा ही भोलाभाला और गरीब–स्वभाव समझती थी, किन्तु आज युद्ध मे हाथियो को काटते हुए देखकर तो आप जान गई न कि आपका जेठूत कैसा है ?']

शब्दार्थ—**दिन-दिन** = उत्तरोत्तर, जब देखो, नित्य । **भोलौ** = भोला, सीधा-सादा । **दीसतौ** = दिखलाई देता या लगता था । **गरीबी** = दीनता । **सूत** = ढग (लक्षण) । यथा —

'रावला घर मॉहे छै एक एक ईसा रजपूत ।[1]
जिकौ बाधै दिली नै चीतोड सू लडवा रो सूत ।'

कुजर = हाथी । **जाणवियौ** = जाना । **जेठूत** = जेठ का लडका (ज्येष्ठपुत्र) ।

राजस्थानी टीका—जेठूत री स्त्री आपरै सासूरी देराणी नें कहै है—हे काकीजी साह ! आप म्हारै पती—आपरा जेठूत ने दिनोदिन सीधी प्रक्रती रा कारण सू आप भौला जाणता हा, अर आ जाणता हा कै गरीब पणारा सूत–लक्षण है पण हाथिया री फौज ने काटने आपरौ जोग्यपणौ जाणायौ छै ।। इति ।।

---

1 प्रतापसिंघ म्होकमसिघ री वात, रा. सा म ; भाग 2, पृ० 23

भाभी दिन दिन बोल मे, कहता बढणौ कत।
हमै निहारौ हाथियाँ, देवर पाडै दत ॥212॥

प्रसग—देवरानी की जेठानी के प्रति उक्ति—

व्याख्या—हे भाभी ! आप प्रतिदिन अपने देवर (मेरे पति) को व्यग्य मे कहा करती थी कि—'बडे युद्ध मे कटने (मर-मिटने) वाले है !' किन्तु अब प्रत्यक्ष देख लीजिए आपके देवर किस तरह हाथियो को धराशायी कर उनके दाँत उखाड रहे है।

अन्यार्थ—'बोल' शब्द कभी-कभी प्रशसात्मक अर्थ मे वीरो की वीरोक्ति या उनके वीरतापूर्ण उद्‌गारो के लिए भी डिगल-काव्यो मे प्रयुक्त हुआ है। इसीलिए वीर की प्रशस्तिमूलक उपाधि के रूप मे उसके लिए कभी-कभी 'बडबोला' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—

ढालाँ खड खडी सुरण ढोला[1]
बाँका भड ऊठो **बडबोला**।

अत 'बोल' शब्द को व्यग्यवचन के अर्थ मे ग्रहण न कर यदि वीर-बोल या वीर-वचन के अर्थ मे लिया जाए तो इस दोहे का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है —

'हे भाभी ! मेरे वीर स्वामी नित्य जो यह वीरोचित बोल (कथन) कहा करते थे कि सच्चे वीर को तो युद्ध मे कट मरना चाहिए, अब देखिए गजदतो को उखाडते हुए आपके देवर उन्हे कैसे चरितार्थ कर रहे है !

शब्दार्थ—**दिन दिन** – प्रतिदिन, नित्य। **बोल**—1 व्यग्य 2 वीर-वचन। द्वितीय अर्थ मे 'बोल' शब्द के ये उदाहरण द्रष्टव्य है —

1 बलवत बोलै **बोल**, चीतौड नरेस जी।[1]
2. मो ऊभा माहरी धरा, खग जोर धकावै।[2]
बोले मोटा **बोल**, वलै मन मे गरबावै।

इसीसे वीर के लिए 'बड बोलरण' का भी प्रयोग हुआ है —

हत्तै केक बहादुराँ, हवदा-गज हन्दा,[3]
बड बानाँ, **बड़ बोलरणा**, बड चामर-बन्धा।

---

1. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 194,
2 पाबूप्रकाश, पृष्ठ 31,
3 केहरप्रकाश, पृष्ठ 185;

बढणौ=1 कटने या मर-मिटने वाला 2 कटना चाहिए; बढना चाहिए । **हमैं**=अब (स० अधुना <हमणा <हमे) । **पाड़ै** = गिरा रहे है ।

राजस्थानी टीका—देराणी, जेठाणी ने कहै छै—हे जेठाणी ! हे वाभीसा ! आप रोजीना कहता हा म्हारा कत नै —अै तौ बधै है—सो आज इण जुद्ध मे देख लेरावौ, आपरौ देवर इतरा वधिया जिणरौ प्रताप हाथीयारा दाँत उखेले है ।।इति।।

कुल थारौ रण पोढणौ, मोनू कहती माय ।
प्राणा गाहक पेखियौ, कसियौ वरजै काय ।।213।।

प्रसग—वीर बालक की माता के प्रति उक्ति—

व्याख्या—हे माँ ! तू तो मुझे हमेशा यह कहा करती थी कि 'तेरा कुल द्ध मे वीरगति पाने वाला है,' फिर आज प्राणो के ग्राहक—इन शत्रुओ को आया देखकर भी तू मुझ युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए को क्यो रोक रही है ?

[माता के रोकने का कारण पुत्र का अल्पवयस्क होना ही हो सकता है, किन्तु वह सिंहशावक किसी भी प्रकार रोके नही रुक रहा, जो उसके वीर कुल के अनुरूप ही है ।]

शब्दार्थ—**थारौ**=तेरा । **रण पोढणौ**=युद्ध मे लडते हुए वीरगति पाने वाला । **प्राणा गाहक**=प्राणो के ग्राहक, अर्थात् शत्रु । **कसियौ**=कटिवद्ध, युद्ध के लिए सन्नद्ध । **बरजै**=मना कर रही है । **का**=क्यो ।

राजस्थानी टीका—आपरा पती ने श्री (स्त्री) कहै छै—हे पती ! आपरौ कुल रिण मे पोढण वालौ (काम) आवण वालौ है—यू म्हारी माता कहती, अर दूसरी तरै अरथ है, पहला भ्रम सू लिखीजियौ है —

प्राणा ग्राहक (सत्रुवा ने) देखने वर, घर रौ धणी कसियौ—सस्त्र बाधिया, सो किशौक है–वरजै काय, जै—फलै खाटण वालौ, काय (सरीर) सू , इसौ वीरवर देखने उणरी श्री कहै—हे पती ! म्हारी मा म्हने पहला ही कहती ही कै कुल हीज आपरौ रिण पौढणौ—अरथात झगडा मे ही ज मरण वाला, मौचा री मौत मरण वाला नही—अर्थात् सूरवीर घराणौ है ।।इति।।

टिप्पणी—टीकाकार को इस दोहे के सम्बन्ध मे स्पष्ट ही भ्रान्ति है, जैसा कि उसने स्वीकार भी किया है । उसने इसे पति-पत्नी के बीच वार्तालाप माना है । परन्तु हमारे विचार से इसमे वीर बालक का अपनी माता के प्रति कथन है । वीर सतसई के प्रकाशित सस्करणो मे भी इसी भाव से अर्थ किया गया है, जो सगत लगता है ।

बाप बसाया बैर जे, लेवै निडर निराट ।
बेटा सिर रा गाहकी, बलिया जोवै बाट ।।214।।

प्रसग—वीर माता का अपने कायर पुत्र को प्रबोधन'—

व्याख्या—अपने पिता के मोल लिए हुए बैरो का बदला सुपुत्र (दूर, शत्रुओ के घर जाकर भी) निपट निर्भीक होकर लेते है । हे पुत्र ! तेरे सिर के ग्राहक (शत्रु) तो यही आए हुए तेरी प्रतीक्षा कर रहे है । (फिर इन्हे मारने मे विलम्ब क्यो कर रहा है ?) ।

अथवा

अन्यार्थ—तेरे पिता ने जो बैर मोल लिए थे (जिन शत्रुओ से बैर बाँधा था) उनके मरने पर अब वे निपट निश्शक होकर उनका बदला ले रहे हैं । (तेरी कायरता के कारण अब उन्हे तेरा तनिक भी डर नही रहा है) । हे पुत्र ! तेरे सिर के ग्राहक बने हुए (तुझे मारने पर तुले हुए) वे यहाँ आकर तेरी बाट जोह रहे है । [अर्थात् यदि अपनी कायरता के कारण तू उन्हे नही मारेगा तो वे तुझे कभी न कभी अवश्य मार कर अपने बैर का बदला लेगे । इसलिए अच्छा है, निर्भय होकर तू ही उनसे पहले भिड जाए] ।

इस दोहे की दूसरी पक्ति के अर्थ के विषय मे टीकाकारो मे मतैक्य नही है । श्री स्वामीजी ने उक्त पक्ति का अर्थ यो किया है— 'जो निकम्मे है, वे ही पुत्र शत्रुओ के सिरो के ग्राहक होकर भी वैर लेने के लिए प्रतीक्षा किया करते है " तथा श्री डॉ० सहल जी आदि सम्पादको ने "वे भले आदमी इन कामो की प्रतीक्षा ही किया करते है ।" टीकाकार की व्याख्या हमारे द्वितीयार्थ के अनुसार है ।

खीचतान के बावजूद भी उपर्युक्त सभी अर्थ, शब्दो के आधार पर है, अत गलत तो नही कहे जा सकते । परन्तु सगति व स्पष्टता की दृष्टि से कौनसा अधिक उपयुक्त है—इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वय करे ।

शब्दार्थ—**बैर बसाया**=नए बैर मोल लिए, या नए बैर बाँधे । बैर विसावणौ मुहावरा है ।

यथा :—वैर हमेस **विसावणा**, वाड विना वसणौह ।[1]

निराट—निपट, बिल्कुल । उदाहरण —

नेडै **निराट** देखै नही, कोडि कोस अलगौ किसन ।[2]

गाहकी=ग्राहक । **बलिया**=आए हुए, आगए । उदा०

---

1 बाँकीदास-ग्रथावली, भाग 1, पृ० 23,

2. पीरदान लालस-ग्रथावली, पृ० 70, स० श्री अगरचन्द नाहटा

1. 'पहाडि चढियो ग्रर ठाकुर पाछा **वलिया**'[1]
2 पूरब्ब धरा हइ खूदि पाइ ।[2]
वलियउ मुगुल्ल नीसाण वाइ ।।

'बलिया' (रूप० 'बाल्या') एक ग्राम्य—प्रयोग भी है, जिसका ग्रर्थ है 'जला हुग्रा ।' राजस्थान मे बोलचाल मे 'बाल्यौ', 'बालमजोगडौ' ग्रादि गाँवो मे ग्राज भी प्रचलित है । इस ग्रर्थ मे इसे 'सिर के गाहकी' (शत्रुग्रो) का विशेषण मान कर व्याख्या की जा सकती है । परन्तु यह ग्रर्थ हमे यहाँ उद्दिष्ट नही जान पडता ।

जोवै बाट=बाट जोहते या राह देखते हैं, प्रतीक्षा करते है ।

राजस्थानी टीका—एक कोई ग्रसावधान (गीदड) कायर बेटाँ नै माता समुझावै है—हे पूत ! थारै बाप तौ काम ग्राया नै दुसमण थारै माथै जबर है, जो थारै बापरा वसायोडा बैर सत्रु निडर थका लैहे—निडर कहणा सू थू कायर है सो थारो डर वाने नही, तिणसू निडर थका वैर लैहे, नै हे बेटा ! वे सत्रू माथारा गराक है सो बलिग्रा, ग्रवार ग्रावणरी वाट जोवै है—सो थू इयूहीज ग्रसावधान रह्यौ तौ माथौ ले लेसी ।।इ०।।

सखी नथी धव जीवता, ग्ररियाँ पायौ चैन ।
बलता लीधौ गोद मे, तो भी मूछ मुडैन ।।215।।

प्रसग—सती होती हुई वीराङ्गना ग्रपने पति के शौर्य की प्रशसा करती हुई कहती है —

व्याख्या—हे सखी ! पति के जीते जी शत्रुग्रो ने कभी चैन नही पाया (वे इतने शूरवीर ग्रौर पराक्रमी थे कि एक क्षण भी शत्रुग्रो को चैन नही लेने दिया) । यहाँ तक कि ग्रब सती होते समय भी, जबकि मैं इन्हे ग्रपनी गोद मे लिए हुए हूँ, इनकी मूँछे वीरोचित दर्प ग्रौर ग्रमर्ष मे वैसी ही तनी हुई है जैसी पहले थी, रचमात्र भी शिथिल नही हुई है ।

शब्दार्थ—**नथी**=नही । **बलतां**=जलते हुए, ग्रर्थात् सती होते समय । **लीधौ**=लिया ।

---

1 दलपत विलास; पृ० 31, स० श्री रावत सारस्वत ।

2. छन्द राउ जइतसी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ, पृ० 30; स० श्री डा० टैसीटरी ।

विशेष—तुलनीय —

धड धरती पग पागडै, आता तणौ गरट्ट ।
तऊ न छोडै साहिबो, मूँछा तणौ मरट्ट ।।

राजस्थानी टीका—कोई एक सती सत करती वेला ही सखिया ने कहै छै—हे सखी ! म्हारै माण–पांण वाला धव (धणी) रै जीवता कदेई सत्रुआ चैन पायौ नही, रोस देख—अबै तौ मारीजगा है, जीव सुरग गयौ नें म्है बनती (सतकरण) री वार सरीर गोद मे लियौ है—तोई पण रोस सू खडी हुओडी मूछ मे वाहीज बाकाई है, थोडी ही ढ्छी नही लुली नही ।।इति।।

जेठाणी भूलौ हमै, खरच दिखाणी रीस ।
देखो देवर आछटै, हाथ्याँ हाथल सीस ।।216।।

प्रसंग—देवरानी की जेठानी के प्रति उक्ति —

व्याख्या—हे जेठानी ! अपने देवर पर खर्च अधिक होने (या उनके खर्च अधिक करने) पर रोष दिखाना अब आप भूल जाइए (छोड दीजिए) । कारण, उनका पराक्रम तो आप देखिए, कि किस प्रकार अपने प्रचड करतल–प्रहार से वे गज–कु भो को फोडते चले जारहे है ! [उस खर्च का मूल्य क्या ये पाई–पाई नही चुका रहे है ? अत आपका रोष दिखाना उचित नही । शूरवीर अपने पर हुए खर्च का मूल्य धन से नही, शौर्य से चुकाया करते है] ।

शब्दार्थ—**हमै** = अब । **दिखाणी** = दिखलाना । **रीस** = क्रोध, रोष । **आछटै** = प्रहार कर रहे हैं । **हाथ्याँ** = हाथियो के । **हाथल** = पजा, (स० हस्ततल) हथेली की थाप । सिंह के पजे को 'हाथल' कहते है ।

विशेष—इस दाहे मे, वीरत्व के परिवेश मे, प्राय मध्ययुगीन सयुक्त परिवारो मे देवरानी-जेठानी के बीच चलने वाली आतरिक कशमकश की भी एक सजीव झलक मिल जाती है । कुछ सकीर्णमना जेठानियो को अपने पति द्वारा छोटे भाई पर किया जाने वाला खर्च सुहाता नही था, जिसके फलस्वरूप जेठानी की प्रतिक्रियाएँ समय-समय पर तानो–उपालभो के रूप मे देवरानी को लक्ष्य कर प्रकट होती रहती थी, जो स्पष्ट ही देवरानी के मन ही मन चुभती थी । किन्तु कुछ तो जेठ पर निर्भर रहने के कारण तथा कुछ सामाजिक शील–मर्यादा के कारण वह इनका प्रतिवाद नही कर पाती थी । परन्तु युद्ध छिडने पर जब देवर का उद्‌भट पराक्रम ही विजय का हेतु बन गया तब देवरानी को भी अपनी जेठानी के उन सचित उपालभो का दो टूक उत्तर देने का मौका मिल गया । यहाँ एक ऐसी ही पति–गर्विता

देवरानी का चित्रण हुआ ह, जो तत्कालीन सामाजिक स्थिति के सदर्भ मे अवलोकनीय है ।

राजस्थानी टीका—देराणी-जेटाणी पति रौ पौरष वतावै है-हे जेठाणी ! खरच दिखाँणी सीस, म्हारै माथै खरच दिखावणी (कहती ही कै देवर खरच घणौ करै) सो ऑ खरच रौ कहणौ हभ तौ भूल देखौ, आपरौ देवर रीस मे आयोडौ हाथिया माथै हाथल पछटै• हे (अरथात् हाथियाँ रा माथा ऊपर तरवार वावै है) ।।इति।।

टिप्पणी--टीका मे प्रथम पक्ति मे 'सीम' व द्वितीय मे 'रीस' पाठ है ।

सूरा खोटौ सूरपण, चूडा अजब उतार ।
हू वलिहारी कायरा, सदा सुहागण नार ।।217।।

व्याख्या—[**कविवचन**] शूरवीरो का शूरत्व निश्चय ही बहुत बुरा है, जो उनकी सुहागिनो का चूडा आश्चर्यजनक रीति से (देखते-देखते, आनन-फानन मे) उतरवा कर उन्हे विधवा बना देता है । मै तो वस्तुत कायरो पर बलिहारी हूँ, जिनकी स्त्रियाँ सदा सुहागिन रहती है ।

[शूरवीर, चाहे मर भले ही जाए, किन्तु युद्ध मे पीठ दिखाना पाप समझता है । फलत ऐसे मरणधर्मी शूरवीरो की स्त्रियो का विधवा होना स्वाभाविक ही है । तद्विपरीत, कायर, चाहे युद्ध से भागना ही क्यो न पडे, अपने प्राण नही जाने देते । अतः उनकी स्त्रियाँ सदा सुहागिन बनी रहती है । यहाँ कवि ने, जहाँ व्याजस्तुति द्वारा शूरवीरो की प्रशसा की है, वहाँ व्यग्य द्वारा कायरो की भर्त्सना । वीर-पत्नियो के वैधव्य पर कायर-स्त्रियो का सौभाग्य शत-शत बार न्योछावर है] ।

शब्दार्थ—**खोटौ**=बुरा (व्याजस्तुति मे कथित) । **सूरपण**=शूरत्व, शौर्य । **अजब**=आश्चर्यजनक रीति से । कारण, शूरवीर स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करता है । अत उसकी पत्नी को स्वय अपने वीर पति द्वारा दिया गया यह वैधव्य आश्चर्यजनक नही तो और क्या है ? दूसरे, वीर-पत्नी का चूडा उतरने मे किंचित् भी देर नही लगती है । शूरवीर हर समय अपने प्राण हथेली पर लिए घूमता है । अतः वीराङ्गना का चूडा उतरते क्या देर लगती है ?

राजस्थानी टीका—एक कोई वीर री श्री (स्त्री) कायर री स्त्री ने डोड मे कैवै है—देखौ, सूरमा रौ सूरापणौ कितरौ खोटौ है, सो वारी स्त्रीयाँ रा अजब अनोखा चूडा उतारता जेझ नही लागै-अर हूँ बलिहारी जाऊ कायरा री, सो ज्याँरी सदा सुहागण नार । अठै विपरीत लक्षणा है, सो वारी जाऊ नही, धिक्कार है कायराँ ने सदा सुहागण नार, अरथात नीचता सू दिन गुजरावै और चाहै खोटौ

खरौ हुक्म मलेछादि देवै सो सिर पर धारण करै और रजपूत पणारौ गुमर जिकारै हिया मे असर ही नही, इत्यादि नीचता है ।।इति।।

पूगै हौदै पौढियौ, ओडे घाव अथाह ।
कुच भोलै गज कुभ नूं, नाहर भीडै नाह ।।218।।

व्याख्या—अगणित घावो को धारण किए हुए. मेरे शूरवीर कत हाथी के हौदे पर ही सोगए है । अपनी प्रिया के कुचो के भ्रम से वह नर-शार्दूल बारम्बार हाथी के कुभस्थल का ही मर्दन कर रहा है । अर्थात् अर्द्ध-मूर्च्छित दशा मे यह समझ कर कि यह हाथी का कुभस्थल नही, वरन् प्रिया का ही पुष्ट उरोज है, वह शूरवीर उसे उन्मत्त हुआ दबाए जारहा है ।

शब्दार्थ—**पूगै**=1. हाथी के ? 2. पहुँच कर ? अर्थ अन्वेष्य । देखिए दोहा सख्या 189 के शब्दार्थ । **पौढियौ**=सो गए । **ओडे**=लिए हुए या धरण किए हुए । उदाहरण :—

1 'अचलेस' भुजै **ओडवै** भार ।[1]
2 **ओडै** भूडड ब्रह्मड ओट ।[2]

अथाह=अगणित, सख्यातीत । यहाँ 'अथाह' शब्द घावो की अधिकता का द्योतन करता प्रतीत होता है, उनकी गहराई' का नही, जैसाकि श्री स्वामीजी ने अर्थ किया है । **भोलै**=भ्रम से, धोखे मे । **भीडै**=दबा रहे हैं ।

विशेष—तुलनीय—सगर सएहिं जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु ।[3]
अइमत्तह चत्तङकुसह गयकुम्भइ दारन्तु ।।
तथा—पाण पयोहर कठण, मथै मैगल कुंभाथल ।[4]

राजस्थानी टीका—वीर री स्त्री खेत मे मारिजीयोडा पती रा दरसण करण गई तठै पती ने मारीजियौ देख सखीने कहै—हे सखी ! देख, म्हारै पती पूग-हाथी रै हौदे जातौ पौढियो है, ओडे—धारण कीधा है, अथा (ह) (घणा) शस्त्रा रा घाव अने कुचारै भोलै कुभस्थाला ने नौहर पजा मे भीडिया है, नाह नाम पती, कुचा नें कुभस्थल री ओपमा लागै—वीर खेत मे मारीजै जठै रिण-सेझ मे पोढियौ इयू वाजै, जिणसू कुच—कुभ आदि कहिया ।।इति।।

---

1 गजगुणरूपकबध, पृ॰ 224,
2 वही, पृ॰ 226
3. अपभ्रश-व्याकरण, हेमचन्द्राचार्य ।
4 गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 141,

हेली घर घर की हुवै, पूंचां छक पैगांम ।
हाथी हाथल आहणै, नाहर जिणरौ नाम ।।219।।

व्याख्या—हे सखी ! घर के घर मे ही किसी की कलाई के बल का पता क्या औरो को चलता है ? (अर्थात् घर मे तो अपने बाहुबल की डीग हर कोई हाँक लेता है)। परन्तु, जो अपने पजे की प्रचड थाप से हाथियों का हनन करता है, सिंह तो वस्तुत. वही कहलाता है ।

[भाव यह कि शूरवीर के शौर्य का पता युद्ध मे ही चलता है। घर के घर मे अपनी वीरता की शेखी बघारने से नही। मेरे शूरवीर पति सिंह के समान ऐसे ही पराक्रमी है ।]

शब्दार्थ—**घर घर**=घर के घर मे । **की**=क्या । **पूंचां**=पहुँचा, कलाई । छक=बल, शक्ति, गर्व । उदा० -

वलवला अजस सयणा वधै,[1]
भडां खला छक भाजियौ ।

पैगाम=खबर, सूचना । श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'बल' किया है, तथा डॉ० सहलजी आदि संपादको ने 'छक पैगाम' को एक मान कर इसका अर्थ 'बल मे मस्त' किया है। 'पैगाम' शब्द का अर्थ उक्त संपादकों ने 'बल' किस आधार पर किया है, हम नही जानते । डिंगल-साहित्य मे 'बल' के अर्थ मे 'पैगाम' शब्द का प्रयोग हमारे देखने मे नही आया । हमारे विचार से 'पैगाम' का प्रचलित अर्थ खबर या सूचना ही यहाँ उद्दिष्ट है । **हाथल**=पंजा, हथेली की थाप । **आहणै**=मारता या धराशायी करता है ।

राजस्थानी टीका—एक वीर री स्त्री आपरै पती रौ पौरष देख कहै है—हे हेली ! घरोघर मे भड आपरै पुणचां रा जोर रौ छक करै सौ इणरी पैगाम—खबर कद हुवै । खबर तौ हाथल रै जोर सू हाथी नै आहणै—मारै, तद कहणौ नाहर उणरौ नाम, उणरौ नाम नाहर होवै । म्हारौ पती हाथल रै जोर हाथी मारै है, सो औ नाहर इणनै कहण चाहीजै । इती भावारथ ।।इति।।

उर तल बैरी आहणै, बिरचै बयण निबाह ।
हौदा ऊपर हंस गौ, वारी बालम वाह ।।220।।

प्रसंग—अपने पति के शौर्य पर मुग्ध हुई वीराङ्गना की उक्ति —

व्याख्या—क्रुद्ध हो शत्रु को छाती-तले दबा कर मारते हुए तथा अपने

---

1 सूरजप्रकाश,

वचन का निर्वाह करते हुए हाथी के हौदे पर ही आपके प्राण गए ! हे प्रियतम ! आपके इस उद्भट शौर्य पर मैं बलिहारी हूँ । आप धन्य है !

शब्दार्थ—**उरतल्**=छाती-तले । **आहणै**=मार कर । **बिरचै**=क्रुद्ध हुए । श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'करके' किया है, परन्तु यहाँ 'बिरचणौ' क्रुद्ध होने या क्रोध करने का ही द्योतक है । यथा —

1. बीदग **बिरचौ** बीनडो, हठ गाढो लेहल्ल ।[1]
2. श्रीमुख सपथ करे अडसीसुत, सोदा नह **बिरचै** सीसोद ।[2]
3. किते बिरचे गज मत्त करूर, करै गजगीरन के चकचूर ।[3]

बयण=वचन, प्रतिज्ञा । **निबाह**=निर्वाह, पूर्ति । वीरों का यह स्वभाव होता है कि वे मुँह से जो बात कह देते है, उसे निभाते हैं । यथा —

1. तोलिया तिकै भुज भार मुरधर तणा,[4]
   बोलिया जिकै निरवाहिया बोल ।

तथा —

2 **निभावत बोलत बीर सुबान** ।[5]

हंस=प्राण, जीव । उदा०—

बसियौ जाय **हंस** वैकुंठा,[6]
पूगौ दसदसियौ अणपार

गौ=गया । **वारी**–बलिहारी । **बालम**=प्रियतम । **वाह**=वाह-वाह, धन्य ।

विशेष—'हंस' शब्द पर मार्मिक उद्भावना करते हुए एक डिंगल--कवि ने क्या सुन्दर कहा है —

---

1 बाँकीदास-ग्रंथावली, भाग 3, पृ० 1,
2 महाराणायशप्रकाश, पृ० 19; स० श्री ठा० भूरसिंहजी शेखावत ।
3 लावारासा, पृ० 59,
4 गीत ठाकर महेसदास कूंपावत, आसोप रौ, रा०वी०गी० स०, भाग 2, पृ० 70, स० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।
5 पांडवयशेन्दुचन्द्रिका, पृ० 336 ।
6 गीत जैसलमेर रावल दुरजणसाल रौ, सादू हूँपा रौ कहियौ । डिंगल-गीत, पृ० 23, स० श्री रावत सारस्वत ।

हंस राखै जिका नीर अलगौ हुवै,[1]
नीर राखै जिका हस नाही ।

राजस्थानी टीका—रणखेत सती देखण ने गई तठै पती ने हाथी रै हौंदै फौजरा धणी ने मारियौडौ पती री छाती तलै दीठौ और उणरै माथै धणी रौ सरीर पड्यौ देख कहै छै—उर तल-छाती रै हेठै वैरी ने (फौजरा धणी ने) आहणौ-मारियौ देख विरचै-चोरलै निजर-उण फौजरै धणी रा निबाह-रक्षक, मारियौ वैरी ने, तठै सारा भडा उणरा निजर चोरली, गया तो म्हानेई मार लेंवसी सो हौदा, हाथीरा हौदा ऊपर हस गौ-प्राण गयौ, हेटै दुसमण हाथी रै हौदै मरियौ । पती नें देख वीर स्त्री कहै—वारी वालम वारणौ जाऊ, धणी री वाह, हथवाह ने वारणौ । ।।इति।।

उरसां ढालां ऊघडी, खडी अचाणक आय ।
कडी लियंता कत री, बडी बडी विकसाय ।।221।।

प्रसग—पत्नी द्वारा अपने शूरवीर पति के वीरोल्लास की व्यजना —

व्याख्या—आकाश मे चमकती शत्रुओं की ढालें दिखाई पडी और तभी शत्रु-सेना अचानक आ खडी हुई । उसे देख, अपने कवच की कडियाँ कसने के साथ ही (युद्ध-सज्जा से सज्जित होते ही) कत की बडी-बड़ी खिल गई ! लडने की उमग मे रोम-रोम उल्लसित हो उठा ।

शब्दार्थ—उरसां = आकाश मे । उदाहरण—
सखी अमीणा कथ री उरसाँ झूँपडियाँह ।[1]

शत्रुओ के हाथो मे ऊँची उठी हुई ढालें सूर्य के प्रकाश मे दूर से चमकती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे आकाश मे ही चकाचौंध होरही है । ऊघडी = खुली, प्रकट हुई, दिखाई दी; (सं० उद्‌घटन) । कडी = कवच की कडी । लियंता = लेते अर्थात् बद करते हुए । बड़ी-बड़ी = बोटी-बोटी । विकसाय = खिल गई, उमग से फूल उठी ।

विशेष—मिलाइए :—
"उपडबा लागी बगतर की कडी-कडी । हर नाचबा लागी बडी बडी ।"[3]

---

1 महाराणायशप्रकाश, पृ० 79,
2. हालां-झालां रा कु डलिया, पृ० 17 ।
3 प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघ री वात, पृ० 44, रा० सा० सं०; भाग 2, सं० श्री पु० ला० मेनारिया ।

तथा :—

सन्नाहां न मावै सूर बड़ी–बड़ी नाच सूंडै,[1]
आग झडी द्रोह ऊंडै चसम्मा अटेल ।

राजस्थानी टीका—दुसमणा फौज ऊपरै सझनौ देख वीर स्त्री पती नै सरावै है—हे सखी ! घोडा ऊपर चढियोडा दुसमणां री ढालां आकाश मे पलकती तिके अचांणक ही खडी हुई, झगडा मे ढाल खडी करीजै है, उण वेला कडि लियता, बगतर री कडीं, बगतर पहरने कूंटीयौ बीडण सारू कडि हाथ मे लेवै है। सूरवीर पती सो जुद्धरा उछरंग सूं सरीर री बडो–बडी—बोटी–बोटी बिकसै, राजी होवै है ॥३०॥

आपै बाडी अमल री, बैरी रग बिरंग ।
एको रग उतारणौ, जेठ न दीठौ जग ॥222॥

प्रसग—देवरानी अपने जेठ के पराक्रम की सराहना करती हुई कहती है :—

व्याख्या—रग–बिरगे बानों से सज्जित शत्रुसेना ऐसी दिखाई पड रही है, जैसे नाना रगो के फूलो से खिली अफीम की बाडी हो। किन्तु शत्रुसेना की इस बहुवर्णी छटा को अकेले ही मिटा देने वाले मेरे शूरवीर जेठ रणाङ्गण मे दिखाई नही पड रहे ।

[ध्वनि यह कि शत्रुसेना के रग–बिरंगे बानो की शोभा तभी तक है, जब तक कि मेरे शूरवीर जेठ रणक्षेत्र मे नही उतरते। उनके आते ही यह बहुवर्णी छटा क्षणान्तर मे ही विलीन हो जाएगी। अर्थात् वे सबको मौत के घाट उतार देगे ।]

राजस्थानी टीकाकार ने 'जेठ' शब्द मे श्लेष की अतीव सुन्दर उद्भावना की है। उसके अनुसार जैसे अमल की बाडी की शोभा जेठ (ज्येष्ठ) के महीने तक ही रहती है, उसी भाँति शत्रुओं के बानो की बहार भी शूरवीर जेठ के आने तक ही रहेगी ! जेठ का महीना लगते ही जैसे अमल की बाडी के फूल कुम्हला जाते है, वैसे ही शूरवीर जेठ के मैदान मे उतरते ही शत्रु भी एक-एक कर झर पडेगे ।

शब्दार्थ—**आपै**=शोभित होरही है। **बाड़ी**=वाटिका। अमल, तबाखू, खरबूजे, ककडी, मिर्च आदि की जिन्से जिस सीमित भू-क्षेत्र मे बोई जाती हैं, उसे लोक-शब्दावली मे 'बाडी' कहते है। डा० सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ

---

2 गीत रावत पहाडसिह चूंडावत, सन्नूबर रौ; प्र० रा० गी०, भाग 1, पृष्ठ 137,

'क्यारी' किया है, जो अयुक्त है। 'बाडी' और 'क्यारी' मे अन्तर है। एक बाडी मे अनेक क्यारियाँ होती है।

अमल=अफीम। **बैरी**=शत्रु, यहाँ शत्रुओ के रग-बिरगे बानो से तात्पर्य है, जो वे युद्ध मे पहने हुए है। यथा —

'करै रग कै अग बानै अनेक'[1]

एको=एक। **उतारणौ**=उतारने (मिटाने) वाला। **जेठ**=1 जेठ 2. ज्येष्ठ मास। **न दीठौ**=नही दिखाई पडे। **जंग**=युद्ध मे।

विशेष—रग-बिरगे बानो मे सज्जित वीर-समुदाय की अमल की बाडी से उपमा डिंगल-काव्यो मे अति प्रचलित है। यह सर्वथा उपयुक्त भी है, क्योकि अमल की बाडी मे भी नाना रंगो के फूल एक साथ खिले हुए अत्यन्त मनोहारी दृश्य उपस्थित करते है। इसके प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है —

1 'सभा रूप कैसा ? ऐसा जैसा छत्तीस वस वणाव करि बैठा राजेसुर ... .. तिजारा की बाडी फूल फगर।"[2]

2 "सारीही परघे आफूरी-सी क्यारी फूली छै।"[3]

राजस्थानी टीका-देरांणी जेठ री वीरता जेठाणी आगै कहै छै, मुसलमाना रंग विरगी पौसाखाँ करिया देख कहै छै—ओपै वाडी अमल री-आफू री वाडी होवै, जिऊ तरै तरै रा कपडा पैरियोडी दुसमणा री फौज सोभे छै, पण अै रंग उठा ताई है, जठा ताई एकलौ ही वैरियारा रग उतारण वालौ म्हारौ जेठ है, जिणनें जग—झगडा मे नही दीठौ है। जेठ नाम जेठ और जेठ महनौ। वाडी जेठ महीनौ दीठा सूक जावै है, जिण तरै जेठ ने देख दुसमणा री वाडी सूक जावसी ॥इ०॥

लख हेली धण रौ धणी, करै न जुडियौ कोप।
पैंतीसां पग घीसतौ, आवै डूगर ओप ॥223॥

व्याख्या—हे सखी! देख, मेरे प्राणनाथ शत्रुओ से लडते हुए भी क्रोध नही करते, युद्ध मे भी निरुद्विग्न और अविचल रहते है। वे अपने पैरो से बँधे क्षत्रियो के पैतीस कुलो को अपने पीछे घसीटते हुए पर्वत की भाँति शान से चले आरहे है।

---

1 हम्मीररासो, कवि जोधराज कृत, पृ० 149, स० श्री श्यामसुन्दरदास।

2. वचनिका राठौड रतनसिंघजी री, महेसदासोत री, पृ० 30, सं० श्री डा० रघुवीरसिंह व श्री काशीनाथ शर्मा।

3 पना-वीरमदे री वार्ता, पृ० 33, श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित।

[भाव यह कि क्षत्रियो के प्रसिद्ध छत्तीस वशो मे से एक अपने वंश को छोड, बाकी सारे ही पैतीस वंशो, अर्थात् पैतींस वशीय क्षत्रिय वीरो को अपना चरणानुगत बनाए हुए यह वीर पर्वत के समान अटल एव अजेय-सा चला आरहा है] ।

शब्दार्थ—**धण रौ धणी**=प्रिया का पति । **जुडियौ**=लडता हुआ भी । **पैतीसा**=क्षत्रियों के प्रसिद्ध छत्तीस वशो मे से एक स्वयं शूरवीर पति के वंश को छोडकर शेष पैतीस । **पग घींसतौ**=पैरो से घसीट्ता हुआ । मुहावरा है, जिसका अर्थ है अपना चरणानुगामी बनाते हुए । मिलाइए —

सोहो मडल मेवाड नरेसर, पांय बिलागा कुल् पेतीस ।[1]

डूगर=पर्वत । **ओप**=समान, उपमा ।

राजस्थानी टीका—वीर, कोई किणने नही गिणतौ, आवै सो देख उण री स्त्री कहै—हे सखी ! देख धण (म्हारौ धणी) आदमियाँ मे जुड़ियौडौ वा वीटियोडौ है अने कोप नही करै है । पैतीसा छत्तीस कुल् है-राजपूता रा, तिण मे पैतीस ही कुल वाला ने पगरै बाँध डूगर री ओपमा ज्यूं या पहाड होवै ज्यूं सारा ने घीसियां आवै छै ।।३०।।

पैला सुणिया पाँच सै, घर मे तीर हजार ।
आधा किण सिर ओरसी, जे खिजसी जोधार ।।224 ।।

प्रसंग—वीर-पत्नी अथवा किसी अन्य द्वारा शूरवीर के शौर्य की प्रशसा —

व्याख्या—[हे सखी !] सुना है कि शत्रु तो पाँच सौ ही है और घर मे तीर हजार है । यदि वह योद्धा कुपित होजाएगा तो बाकी बचे आधे तीर (पाँच सौ) किस पर छोडेगा ?

[ध्वनि यह कि शूरवीर अचूक निशानेबाज है, जिसका एक भी तीर खाली नही जाता । अत पाँच सौ तीरो से पाँच सौ शत्रुओ को मार चुकने पर भी यदि इसकी क्रोधाग्नि शांत नही हुई तो यह बाकी बचे तीर किस पर छोडेगा ? कहीं ऐसा न हो कि अपने प्रचड क्रोधावेश मे यह उनसे अपनों को ही मार बैठे ! अत इसे अधिक छेडना ठीक नही, क्योकि क्रुद्ध हुए बाद यह अपनो-परायों किसी को नही देखेगा] ।

---

1 गीत राणा रायमल रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 3, पृ० 26; महाराणा-यशप्रकाश, पृष्ठ 46,

शब्दार्थ—**पैला**=शत्रु । **सुणिया**=सुना है, सुने गए । **ओरसी**=बरसाएगा, चलाएगा । **खिजसी**=कुपित होजाएगा । **जोधार**=योद्धा ।

राजस्थानी टीका—फौज आवती सुण सखी ने सूरमा री श्री (स्त्री) कहै छै—दुसमणाँ री फौज रौ सारा रा मन मे सोच देख वीर पुरुष री स्त्री कयौ हे सखी ! पैला—दुसमण आवै है, जिकै तौ सुणियौ है कै पाँच सै हीज है, अर घर मे तीर कबाणिया एक हजार है, सो आधा तौ दुसमणा ऊपर वैह जासी ने आधा बाकी पाँच सै रहसी । वे, औ खीज गयौ जोधार तौ किण माथै ओरसी-वावसी । प्रयोजन—थाँने दुसमणाँ रौ भय है पण म्हने पती रौ भरोसौ है । इण रौ तीर खाली जाय नही ने एक सूं दूजौ वावण रौ किण ही माथै जरूरी नही । इण सारू आपा ने दुसमणा रौ डर काई नही राखणौ ।। इति ।।

या कुमणैती कत री, और न पूगै ओज ।
चमठी खाली होवता, नमठी चाली फोज ।।225।।

व्याख्या—बाण चलाने मे कत के पराक्रम को कोई नही पहुँच सकता, धनुर्विद्या मे ये सर्वथा अद्वितीय है । देखो न, इधर चमठी खाली हुई नही कि उधर फौज का सफाया होगया । अर्थात् चमठी से बाण छूटने के साथ ही शत्रुसेना निश्शेष होगई ।

शब्दार्थ—**कुमणैती**=बाण चलाने का कौशल । **न पूगै**=नही पहुँच सकता, समता नही कर सकता । **ओज**=पराक्रम, कौशल । **चमठी**=(स० चर्मपुटी) चुटकी, तीर चलाते समय अगुलियो की पकड । उदाहरण—किलमायुध हट्ठिय, सायक पट्ठिय, चाप **चमट्ठिय**, जोर दये ।[1] **नमठी चाली**=समाप्त हो चली ।

राजस्थानी टीका—फेर पती री कबणैती पणा री कहै छै—हे सखी ! इण कबणैती पती री औज—रीस ने दूजौ कोई पूगै नही । तीर छूटता, चिबठी खाली होवता ही निमटी—नीवडती चाली, चाली जावै है फौज ।। इति ।।

धाडवियाँ ! अजकौ धणी, भागौ भड न भिडाय ।
जे कर कडू ऊतरै, पौढे अग भिडाय ।।226।।

प्रसग—किसी वीर के घर पर कुछ डकैत डाका डालने आगए । उन्हे पता नही था कि वीर घर पर है । ज्योही उन्हे पता चला, वे भागने को हुए । इस पर वीर-पत्नी उन्हे सम्बोधन कर कहती है —

व्याख्या—हे धाडा डालने वालो ! (तुम बडे अच्छे मौके पर आए !)

1 लावारामा, पृ० 45, स० श्री महताबचद्रजी खारैड ।

मेरे कत को युद्ध के बिना चैन नही पड रहा है। यदि तुम सुभट हो तो इनसे भिड कर अब भागो नहो, क्योकि अगर किसी तरह इनके हाथो की खुजली दूर होजाए (लड कर मन की निकाल ले) तो ये मुझे अपने गाढालिगन मे भर निश्चिन्त हो सो सके। [अत अपने लिए न सही, मेरे भले के लिए ही इनसे जा भिडो, ताकि इनकी युद्धेच्छा पूरी हो और मुझे इनके साथ दो घडी आलिगनबद्ध होकर सोने का सुख मिले]।

इस दोहे मे वीर की अदम्य युयुत्सा की व्यजना हुई है।

दोहे के द्वितीय चरण का अर्थ 'भागे हुए योद्धा से वह नही भिडता' भी किया जा सकता है किन्तु सपूर्ण दोहे के भावार्थ के साथ उसकी विशेष सगति नही बैठती।

श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ यो किया है—"मेरा वीर पति भागे हुए योद्धा से नही भिडता–युद्ध नही करता। उसकी हाथ की खुजली तब मिटती है, जब वह शत्रु के अग से अग मिला कर रणभूमि मे सोता है, शत्रु को मार कर मरता है।"

स्वामीजी के अर्थ से हम सहमत नही है। इसी भाँति राजस्थानी टीकाकार का अर्थ भी अस्पष्ट व सदिग्ध है, जैसाकि टीकाकार ने स्वय स्वीकार किया है।

राजस्थानी टीका—हे धाडवियाँ! भागौ, धणी म्हारौ अजकौ किणरी ही सहण वालौ नही, सो हे भडाँ नमडाय—नीचे होयने तथा नमडाय—नमस्कार, नमण करने सो हु विलमाय व धडवियाँ ने सूंवाण देऊँ तो कर कड्–हाथाँ री कड्—खाज भागै। जुद्ध सारु भुजा खाजलै है, सो म्हासू अग भिडाय ने सूताँ भागसी, नही तौ थाँने सारा ने मार लेसी। इण दोहारा अरथ मे सदेह है, सो दूर हुवौ नही, इण सारू दोहौ ही लिख दीधो है॥

टिप्पणी—टीकाकार ने यहाँ मूल दोहा भी लिख दिया है, जिसके द्वितीय चरण मे "भागौ भड नमडाय" पाठ है।

सुण सुण वीरा धाडवी, आलय देखौ और।
घर री खूणै झूरसी, चख मग आताँ चोर॥227॥

व्याख्या—हे भाई डकैत! सुन, (यदि तू अपना भला चाहता है तो) कोई दूसरा घर देख, यहाँ से चल दे, अन्यथा (मेरे कत के सामने पडने पर) तेरी घरवाली चोर की तरह तेरे आने की बाट जोहती हुई कोने मे बैठ कर रोएगी। अर्थात् तू मारा जाएगा।

[चोर की तरह इसलिए कि प्रकट मे रोने पर उसे सबके सामने लज्जित

होना पडेगा । कहावत है—'चोर की माँ रो कोठल्या मे मूंडो' । अन बेचारी छिपे-छिपे तेरे आने की राह देखती हुई तेरे लिए कोने मे बैठ कर रोएगी ।]

'चख मग आताँ चोर' का अर्थ यो भी किया जा सकता है कि 'यदि तू चोर (लुटेरा), मेरे पति के दृष्टिपथ मे पड गया तो तेरी घरवाली ।' हमे अपना प्रस्तावित मुख्यार्थ अधिक सगत लगता है ।

शब्दार्थ—**धाडवी**=धाडा डालने वाले, डकैत । **आलय**=घर । **खूणै**=कोने मे (स० कोणकम्)[1] । **झूरसी**=शोकार्त्त हो रोएगी या बिसूरेगी । **चख**=चक्षु । **मग**=मार्ग ।

राजस्थानी टीका—फेर धाडविया ने कहै—

ए वीरा (भाई) धाडवी ! चोरी सारू कोई आलय (घर) दूजौ देखौ, म्हारै पती जागगा तौ थारी लुगाया चख, आंखि रै मग, मारग चोर आया (अरथात चोर निजरां देखियाँ) वाँने थे याद आवसौ तद खूंणा मे बैसने झुर (र) सी, सो कुशल चाहौ तो भाग जाओ । लुगाई ने दया आदमी सूं सदैव घणी होवै है । वे जीव-हिंसा करणी तौ घणी ह्वै है, पण देखणी ही चाहै नही, जिण सारू कही भाग जावौ ।।इति।।

गोलाँ किम माडौ गजर, होताँ फजर हगाम ।
नीठ हियाँ आया नजर, जाणौ धजर दुजाम ।।228।।

प्रसग—शत्रुपक्ष द्वारा सवेरे-सवेरे तोप के गोलो की वर्षा के साथ ही युद्धारभ किए जाने पर किसी वीर की उक्ति —

व्याख्या—सवेरे-सवेरे युद्ध छिडते ही यह तोप के गोलो से प्रहार क्यों शुरू कर दिया ? बडी मुश्किल से तो यहाँ दिखाई पडे हो [और उस पर भी आमने-सामने आकर भिडने की अपेक्षा दूर-दूर से तोपो के गोलो की वर्षा कर रहे हो । भला इसमे क्या बहादुरी है ? हिम्मत हो तो तलवार लेकर सामने आओ] पर याद रखो, तुम्हारी यह शान केवल दो पहर की ही है । अर्थात् तोपो के बल पर तुम अधिक से अधिक दो पहर तक अपनी शान और दिखालो, इससे अधिक नहीं टिक सकोगे ।

डॉ० सहलजी आदि सम्पादको ने 'गोलाँ' को सम्बोधन मान कर 'हे तोप के गोलो' अर्थ किया है, किन्तु गोलो के प्रति यह कहना कि 'तुम भी कठिनाई से छाती आगे नजर आए हो' कोई अर्थ नही रखता ।

---

1 उक्तिरत्नाकर, पृ० 32,

तद्विपरीत, श्री स्वामी जी ने 'गोलाँ' के स्थान पर 'गोलाँ' ('गौले' दास) पाठ मान कर दोहे को 'दासो' पर घटित कर दिया है, जो सर्वथा भ्रान्त है। वस्तुतः यहाँ 'गोलाँ', 'तोप के गोलो' का वाचक है, न कि दासो का, एव 'गोलाँ री गजर', तोप के गोलो से होने वाले निरन्तर प्रहार के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। स्वय सूर्यमल्ल ने वशभास्कर' मे इसका प्रचुर प्रयोग किया है, जिसके उदाहरण नीचे शब्दार्थ मे दिए जारहे है। अतः दासो पर घटित की गई श्री नरोत्तमैदास स्वामी की व्याख्या निराधार है।

शब्दाथ— **गोलाँ गजर**=तोप के गोलो का निरन्तर प्रहार; गोलो की अधाधु ध बौछार। उदाहरण .—

1 'अर पर्बताँ रै सीस पविपात रै प्रमाण गढगजण तोपाँ रै श्रवणाँ अलात दे दे'र **गोलाँ रो गजर** लगायो।'[1]

2 अब दुलभ दोलताबाद आइ,[2]
घेर्‌यो गढ **गोलन गजर** घाइ ॥

3 प्रथम **गजर** तोपाँ पडे, **गोला** बजर गुडाण।[3]

4 'दो ही तरफ **गोलाँ री गजर** हू ओट आवै जिता ही घोडाँ, सिपाहाँ समेत हाथियाँ रा गोल उडण लागा।'[4]

5 अजर धोम **गोलाँ गजर** सार कैमर उडै,
ऊमडै समर तूटै खला आव।[5]

श्री डा० सहलजी आदि सम्पादको ने 'गजर' का अर्थ 'तहलका' तथा श्री स्वामीजी ने हो–हल्ला' किया है, परन्तु 'गजर' शब्द निरन्तर होने वाली चोट, प्रहार या आघात का वाचक है। यथा —

'अठै सफीला उपरा निपट अमामी तरवारिया री झडाझड वागी। ·। घणी अमामी **गजर** पडै छै।'[6]

---

1 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडशमयूख, पृ० 1360

2 वही, सप्तमराशि, षष्ठमयूख, पृ० 2617

3 वही, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2666

4 वही, वही, वही, वही

5 महाराणायशप्रकाश, पृ० 185

6. प्रतापसिंघ—म्होकमसिंघ री वात, पृ० 55, रा० सा० स०, भाग 2, स० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया।

माडौ=करते हो (राज० मांडते हो)। **होताँ**=होते ही। **फजर**=सुबह। **हगाम**= युद्ध (स० सग्राम)। **नीठ**=मुश्किल से। **हियाँ**=यहाँ। **धजर**=शान। **दुजाम**= दो याम, दो पहर।

राजस्थानी टीका—एक वीर री स्त्री फौज वाला न कहै —

अबार रात रा हीज क्यू' गोला री गजर माडौ हौ ? सुहारे, फजर (परभात) रा हीज हगाम—जुद्ध है, नेठाव किया नजर देख लेसो, दोय जाम—पौहर ताईज थॉरी धजर है, पछै तौ माहरौ हीज धणी जीतसी ।। इति ।।

टिप्पणी—टीका मे, द्वितीय चरण मे 'नेठहिया' पाठ है ।

> पेख सहेली पार रा, झडा खिण न रहाय ।
> एकण बाण उतारिया, जाण सिखडी जाय ।।229।।

प्रसंग—सखी को सम्बोधन होने से कदाचित् शूरवीर पति के शौर्य की प्रशसा मे वीराङ्गना का कथन :—

व्याख्या—हे सखी ! देख शत्रुओ के झडे क्षण भर के लिए भी मैदान में ठहर नही पाए है। [कत ने] एक ही बाण मे उन्हे उतार फैंका है, जिसके फलस्वरूप कटे हुए ध्वजदडो सहित वे आकाश मे उडते हुए ऐसे प्रतीत होते है, मानो मोर सवेग उडान भरे चले जारहे हो ।

[इस दोहे मे कवि ने शत्रुसेना के कटे हुए ध्वजो की अत्यन्त सजीव उपमा दी हैं। मोर जब किसी पर्वत या पेंड पर से धरती पर उतरने के लिए लम्बी उडान भरता है तो उसकी ग्रीवा किंचित् आगे की ओर निकली हुई तथा पिच्छ पीछे की ओर लहराता-सा दिखाई देता है। शूरवीर के बाण से छिन्न शत्रु-ध्वज भी ऐसा ही दृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं। बाण से कट जाने के कारण उनके छिन्न दंडभाग आगे की ओर तथा ध्वज पीछे की ओर फहराते जारहे हैं। साथ ही, छिन्न होने के कारण वे दडभाग ईषत् झुके हुए भी हैं, जो मानो किसी पर्वतादि ऊ'चे स्थान से धरती की ओर उडान भरते शिखी का दृश्य मूर्तिमान कर देते है] ।

शब्दार्थ—**पेख**=देख । **पार रा**=शत्रुओ के । **खिण**=क्षण भर । **रहाय**=रहते है। **एकण**=एक ही। **उतारिया**=उतार दिए । **जाण**=मानो । **सिखडी**=मोर। शिखण्डी महाभारत के एक कायर पात्र का नाम होने से यह शब्द सामान्य कायर का वाचक भी माना जा सकता है, किन्तु यहाँ मोर का अर्थ ही उद्दिष्ट प्रतीत होता है, जिसकी उपमा कटे हुए ध्वजो से सटीक बैठती है ।

राजस्थानी टीका—दुसमणां री फौज भागती देख सूरवीर री श्री (स्त्री) कहै—

हे सहेली ! पेख—देख पार वैरीया रा झडा एक खिण ही पती आगै नही ठेरीया सो भागा जावै है—सो वे भागता झडा कैडाक दीसै है, जाणै एकणवार रा-एक साथे, वा ए-ग्रै-कणवार-धान रा रुखाला रा—उडायोडा सिखडी, मोरिया जाय है । धुजारै आगलौ डड, मोर रै गरदन ज्यू नें ल्लारै धुजा लबी होवै, जिण तरै पूछ वा पाखा, इण सारू एकठा भागोडा नीसाण जावै, जिऊ गऊँआँरा खेत रौ रुखालौ हाकी करै, उणहीज साथे घग मोर एक साथ उडनै न्हासै, तिणसू आ ओपमा दीधी ।। इति ।।

टिप्पणी—टीका मे तृतीय चरण मे 'एकण बाण' की जगह 'एकण वार' पाठ है, जिसे विश्लिष्ट कर टीकाकार ने 'ए कणवार'—गेहू के खेत का जो अर्थ किया है, वह हमे क्लिष्ट कल्पना ही लगता है । यदि 'एकण वार' पाठ भी मान लिया जाए तो अर्थ 'एक ही वार मे', 'एक ही प्रहार मे' करना अधिक सगत होगा ।

मतवाला दल आविया, छोडीजै गलबाँह ।
आभ त्रिभागाँ ढकियौ, छोणी पाखर छाँह ।।230।।

प्रसग—वीर-पत्नी अपने आलिगनबद्ध एव मदोन्मत्त शूरवीर पति को जगाती हुई कहती है '—

व्याख्या—हे मतवाले प्रियतम ! शत्रुदल आ चढा है । अब तो गलबाँही (कठालिगन) छोडिए । देखिए, आकाश भालो से तथा पृथ्वी घोडो की पाखरो की छाया से ढक गई है ।

शब्दार्थ—**दल** = शत्रुदल । **छोडीजै** = छोड दीजिए । **गलबाँह** = गलबहियाँ; कठालिगन । **आभ**=आकाश । **त्रिभागाँ** = भालो से । "भाला चलाते समय उसके दो भाग आगे को और एक भाग पीछे को रख कर थामने से उसे 'त्रिभागा' कहते है ।"[1] इसीलिए इस प्रकार भाला हाथ मे लेने को 'त्रभागो कियाँ' जैसे प्रयोग मिलते है । यथा '—

'**त्रभागो किया** चढियौ तुरी, रज थलवट रौ रूप रे' ।[2]

एक राजस्थानी वीर गीत मे हुए प्रयोग 'धजर भाला खेवण त्रभागौ धारिया' मे 'त्रभागौ' का अर्थ श्री सौभाग्यसिह शेखावत ने 'तीन धाराओ वाला सेल' किया है[3]

1 वशभास्कर, षष्ठराशि, एकादशमयूख, पृ० 2326

2. पाबूप्रकाश (बडा) आशिया मोडजी-कृत, पृ०, 30

3 राजस्थानी-वीर-गीत-सग्रह, भाग 1, पृ० 167, स० श्री सौभाग्यसिह शेखावत ।

परतु व्यौत्पत्तिक दृष्टि से 'त्रभागौ' का यह अर्थ हमे सगत नही लगता। तद्विपरीत, भाले को धारण करते समय उक्त विधि से ग्रहण करने के कारण ही इसका नाम 'त्रभागो' पड गया, जैसा कि वशभास्कर के टीकाकार बारैठ श्री कृष्णसिहजी शोदा का मत है।

शब्दार्थ—**ढकियौ**=ढक गया। **छोणी**=पृथ्वी (स० क्षोणी)। **पाखर**= लोहे की बनी घोडो की झूल। यहाँ ऐसी पाखर-सज्जित अश्व-सेना से तात्पर्य है।

विशेष—मिलाइए —

तथा—1. घोर घमकी **पक्खरों छोनीतल छाया।**[1]

2. **भालो की अणिया से आसमान छाया।**[2]

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरष री स्त्री फौज आई देख पती नै कहै छै—हे पती! आप दारू मे मतवाला होयने पौढिया छौ अने ऊपर दुसमणा री फौज आई छै, सो अबै छोडीजै गलबाँह—गला सू बाह छोडावाडौ ने जुद्ध री तयारी करावौ, देखावाडौ आकाश तौ त्रिभागा—भाला छायो छै नै छानी—धरती पाखर-घोडा रै पाखरा सू छायौ छै। प्रयोजन—वीर स्त्री है, सो विना घबराया जुद्ध सारू पती ने जगावै छै। पती रहीस छै, जिणसू ऊपरै इतरी फौज आई। पती-पतिनी दोनू सूरवीर छै, जिणसूं जुद्ध री दहल नही ॥ इति ॥

तोपा धर दरजा पडै, झडै गिरा सिर झाट।
जाणै सागर खीर रै, मदर रौ अरराट ॥231॥

व्याख्या—तोपो के भीषण गर्जन से धरती मे दरारे पड गई है तथा गोलो के प्रचड प्रहार से पर्वत-शिखर, टूट-टूट कर गिर रहे हैं। यह भयकर रणगर्जना ऐसी प्रतीत होती है, मानो समुद्र-मथन के समय क्षीरसागर मे मदराचल के विलोडन की तुमुल घडघडाहट होरही हो।

शब्दार्थ—**तोपां**=तोपो से। **धर**=धरती। **दरजा**=दरारें। **गिरां सिर**= पर्वत-शिखर। **झाट**=प्रहार (गोलो का)। **सागर खीर**=क्षीरसागर। **मदर**= मदराचल। **अरराट**=मथन का रव, तुमुल घडघडाहट।

विशेष—तुलनीय—'मथकाल असज्ज अैचित ज्यो पयोनिधि मज्झ मदर[3]

---

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, दशममयूख, पृ० 2958
2. शिखर-वशोत्पत्ति, पृ० 15, स० श्री पुरोहित हरिनारायणजी।
3 वशभास्कर, चतुर्थराशि, त्रयोविंशमयूख पृ० 1457

राजस्थानी टीका—अबै ऊपर कहीयौ सो वडी फजर रौ जुद्ध आरभ हुवौ सो किसोक है।

तोपां री अवाज री तौ धरती ऊपरै दरजां हौल पडै, पहाडां रा सिर, टूक, गोलारी झाट सू तूट-तूट पडै, उण वेला जुद्ध किसौक दीसै है ? जांणै खीर सागर मे मद्राचल परबत नहाकियौ हौ मथण नै, उणरौ अरड़ाट होवतौ हौ, जिसौ तोपा रौ घोर शबद माचियौ ।। इति ।।

सखी भरोसौ नाह रौ, सूनौ सदन म जाण।
फूल सुगधी फौज मे, आसी भँवर उडाण ।।232।।

प्रसंग—वीर पति कही बाहर गया हुआ है, इतने मे युद्ध छिड जाता है। इस पर वीर–पत्नी सखी से कहती है —

व्याख्या—हे सखी ! मुझे अपने शूरवीर कंत का पूरा भरोसा है। अत तू मेरे घर को सूना मत समझ। शत्रुसेना की खबर पाते ही मेरा रण–रसिक कत वैसे ही उडा चला आएगा, जैसे फूल की सुगंध पाते ही भँवरा उडा चला आता है।

शब्दार्थ—सदन=घर। म=मत। भँवर=श्लिष्ट पद है।

1 रसिक प्रियतम; प्राणनाथ। उदाहरण :—

कुरजाँ ए म्हारौ भँवर मिला दे ए।[1]

2 भँवरा, भ्रमर। उडाण=उडान भर कर, उड कर। यह भी श्लिष्ट प्रयोग है। भँवरे के अर्थ मे तो उडने का अर्थ स्पष्ट है ही, वीर के अर्थ मे इसका तात्पर्य है शत्रु पर वायुवेग से झपट कर। अपने इसी गुण के कारण महाराणा श्री रायमल्लजी के ज्येठ पुत्र पृथ्वीराजजी को डिंगल–कवियो ने 'उडणा प्रथीराज' की उपाधि से विभूषित किया है जिस आशय की ये पक्तियाँ प्रसिद्ध है :—

भाग लल्ला ! पृथ्वीराज आयो।[2]
सिंह कै साँथरै स्याल व्यायो।

राजस्थानी टीका—इण झगडा में सिरदार कानलौ कोई सुभट बारै, जद उण री स्त्री कहै है —

हैं सखी ! म्हने पती रौ भरौसौ है, थू म्हारौ सदन—घर सूनौ मत जाँण।

---

1 राजस्थानी लोकगीत।

2. महाराणायशप्रकाश, पृ० 50।

फौज माथै आयोइज रहसी, जिण तरै वाडी मे फूल री सुगध माथै भवरौ आवै है, इण तरै आवै । भँवर ज्यू उडाण उडियोडौ ।। इति ।।

> और मुवा सुण ओहडै, बरसॉ पॉच विचाल ।
> घर मे मायड घातियौ, बटकै पूँचॉ बाल ।।233।।

व्याख्या---घर के अन्य लोग युद्ध मे मारे गए, यह सुन मॉ ने अपने बालक पुत्र को, जिसकी आयु पॉच वर्ष के बीच ही थी, युद्ध मे जाने से रोक कर घर मे बद कर दिया [इस डर से कि कही औरो के मरने की बात सुन उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिए यह भी न चल पडे] । किन्तु, मॉ के द्वारा यो रोक दिए जाने पर वह वीर बालक क्रुद्ध हो अपनी ही कलाई के बटके भरने लगा ।

[इस दोहे मे वीर बालक की अदम्य युयुत्सा एव वीरोचित रोप का अत्यन्त सजीव चित्र अकित हुआ है । प्रचड क्रोधावेश मे अपनी ही कलाई को दॉतो से काटना एक यथार्थ मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है, जो केवल बालको मे ही नही, अपितु बडो मे भी परिलक्षित होती है । यथा वीरवर अमरसिंह राठौड का यह रोषाविष्ट रूप देखिए ---

"हाथ पटकै, **दांतां सू हथेली नू बटका** भरै, कटारी सू तकियौ फाड नाखियौ ।"[1]

प्रस्तुत दोहे मे एक ऐसे ही रोषाविष्ट बालक का चित्र अकित हुआ है । मॉ द्वारा उसे रोकने का कारण उसकी अल्पायु है, किन्तु सिंहशावक किसके रोके रुके हैं ?] ।

शब्दार्थ=**मुवा**=मारे गए, काम आए । **ओहडै**=रोककर, रोकती है । उदाहरण ---

अब तो देवर **ओहड़ौ**, सचै भार न सीस ।[2]

डा० सहलजी आदि सम्पादको ने यहॉ इसका अर्थ 'पीछे हटते हैं' किया है और यही अर्थ राजस्थानी सबद कोस मे किया गया है ।[3] परतु, प्रसगानुसार यह अर्थ यहाँ उद्दिष्ट नही है । यहाँ 'ओहडै' का अर्थ मॉ द्वारा अपने बालक पुत्र को

---

1 अमरसिंह गजसिंहोतरी वात । राज० बात स०, पृ० 156, स० डा० नारायणसिंह भाटी ।
2. वीर सतसई, दोहा स० 137
3. राजस्थानी सबद कोस, प्रथम खण्ड, पृ० 373, स० श्री सीतारामजी लालस ।

रोकने से है। इसी भाँति टीकाकार का अर्थ--'आडौ' (हठ) भी निराधार है। **बिचाल्**=बीच। **मायड़**=माता। **घातियौ**=डाल दिया, बद कर दिया। **बटकै**= दाँतो से काटता है (प्रचड क्रोधावेश मे)। दाँतो से इस तरह काटने को राजस्थानी मे 'बटका भरणौ' कहते है। **पूँचाँ**=पहुँचे या कलाई को। **बाल**=बालक (पुत्र)।

राजस्थानी टीका—अबै इण वीर पुरष रै पाचां वरसा रौ बालक सौ—

और मुवा, और सारा घर रा जोधार मरिया सुणनें औहडे आडौ लीधौ—हुई जुध करसू; जद माता घर मे घाल दियौ, पण वो बालक रोस रौ भरियौ पुणचा रै बटका भरै छै ।।इति।।

> इला न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।
> पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय ।।234।।

व्याख्या—'अपनी भूमि पर कदापि दूसरो को अधिकार नही करने देना'—यो लोरी गा-गाकर झूला झुलाती हुई वीर माता पालने मे ही अपने पुत्र को मरण का महत्त्व सिखा देती है।

[अर्थात् 'अपनी भूमि की रक्षा के लिए प्राण दे देना, किन्तु जीते-जी शत्रु का उस पर आधिपत्य न होने देना'—यह लोरी गा-गा कर ही वीर जननियाँ अपने पुत्रो को पालने मे ही शूर–धर्म का मर्म सिखा देती है।]

शब्दार्थ—**इला**=भूमि। **देणी**=देनी, अर्थात् बलात् किसी शत्रु को उस पर अधिकार नही करने देना चाहिए। यो स्वेच्छा से भूमि दान मे देना तो वीरो का धर्म ही है। **हालरिया**=लोरी, झूले के गीत। **हुलराय**=झुलाती हुई। यथा.—

> हुलरै नान्या हुल रै[1]
> तू दूध पतासा पी रै,
> थारै रेसम की गज डोर लालजी,
> आगण नाचै मोर।

पूत—पुत्र (को)।

विशेष—सूर्यमल्ल का यह दोहा राजस्थान मे इतना लोकप्रिय हुआ है कि वीरत्व की ऋचा के समान् उद्धृत किया जाता है। यह हेमचद्राचार्य के निम्नोक्त अप-भ्र श-दोहे से तुलनीय है —

---

1 एक राजस्थानी लोकगीतांश, मेरी पत्नी श्रीमती सायरकुमारी राठौर से श्रुत।

पुत्तो जाए कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।[1]
जा बप्पी की भुंहडी चंपिज्जइ अवरेण ।।

तथा :—

" आपणौ आ इला किण रीति छोडीजै, इसडी बात महा उदार बिचार में हेरी नहीं ।"[2]

यहाँ तक कि सूर्यमल्ल तो शूरवीर सरदार ही उसे मानते है, जिसके पास भूमि होती है । भूमिहीन सरदार कैसा शूरवीर ? वे लिखते है —

"इण कारण जिण रै जमी होइ सोही सूरबीर ठाकुर कहावै ।"[3]

शूरवीर की ऐसी परिभाषा करने वाला कवि क्या अपनी भूमि दूसरो के अधिकार मे जाती हुई देखना सहन कर सकता था ?

राजस्थानी टीका—एक वीर सुया सती आपरा पुत्र ने हीडा देती घर री रीत सिखावै है—

हालरिया पुत्र ने माता हुलरावती सीखावै है–बेटा ! मोटौ हुवौडौ सूरवीर होवजे । कायर वणने आपारी इला–जमी दुसमणाँ ने मत देजे । इण तरै पालणा मे पूत ने माता सूरवीर ह्वै मरणौ, आ मरणारी हीज वडाई सीखावै है ।।इति।।

कहै भतीजौ कूकतौ, सूना लोग हँसाय ।
आवौ काका आज दिन, बट बरोबर थाय ।।235।।

प्रसग—भतीजे के वीर-स्वभाव की प्रशसा । कारणवश, चाचे–भतीजे मे सपत्ति के विभाजन को लेकर विवाद होने पर भतीजे का चाचा के प्रति कथन —

व्याख्या—भतीजा अपने चाचा को पुकारता हुआ कहता है—आप रोज-रोज झगडा कर क्यो व्यर्थ लोगो को हँसाते है ? (जगहँसाई कराते हैं) । काका ! आओ, आज [शक्ति-परीक्षण द्वारा] अपने बराबर का बँटवारा होजाए !

[अर्थात् आप हमेशा बँटवारे को लेकर झगडा किया करते है कि तुम्हारे हिस्से मे ज्यादा है, मेरे कम । किसी भी तरह से किया गया बँटवारा आपको जचता नही व आप उसे कम-ज्यादा ही समझते है । फलत रोज-रोज विवाद होता है और लोग अपने इस गृह-कलह पर हँसते है । इससे तो यही अच्छा है कि आज दोनो दो-दो हाथ

---

1 अपभ्र श-व्याकरण. हेमचद्राचार्य ।

2. वशभास्कर पचमराशि, एकादशमयूख, पृ० 1819

3. वही चतुर्थराशि, षट्त्रिंशमयूख, पृ० 1621,

कर झगडे को हमेशा के लिए सुलटालें। बाहुबल से दोनो के बीच न्यायोचित बँटवारा होजाए !]।

शब्दार्थ—**कूकतौ**=पुकारता या चिल्लाता हुआ। **सूना**=व्यर्थ मे। **हँसाय**=हँसाते हो। **बट**=बँटवारा, विभाजन। **बरोबर**—भावार्थ मे न्यायोचित। **थाय**=होजाए।

राजस्थानी टीका—भतीजौ जोधार ने काकौ कायर, लोभी। घर मे झगडा घालै। इतरै दुसमणा री फौज ऊपर आय गई, तरै भतीज कहै–हे काका! थे सूना कूकने लोक हसावता हा सो आवौ उरा, अबै आज इण दिन बराबर बट होवै है सो आछौ वँट ह्वै, वो आप ले लेजो। प्रयोजन-जुद्ध होवै हे, इणमे एक अणी ढाबलौ। जमी आने मारिया आपा री छै ।।इति।।

टिप्पणी—टीकाकार ने इसे युद्ध पर घटित करके अर्थ किया है, परन्तु दोहे मे निहित भाव को देखते हुए यह सपत्ति के विभाजन को लेकर चाचे-भतीजे मे नित्य होने वाले विवाद से ही सबद्ध प्रतीत होता है, जैसाकि सयुक्त परिवारो मे प्राय देखने मे आता है।

तेग बखाणौ कत री, आडै बाज अछट।
बेखीजै जिम बाप रै, बेटा दो घर बट ।।236।।

व्याख्या—तलवार चलाना तो मेरे कत का सराहो, जो आडे घोडे को चीरती हुई यो साफ पार होजाती है कि उसके लहू की एक छाँट तक नही लगती। वह घोडे के, बराबर के दो टुकडे कर देती है, जो ऐसे दिखाई देते है, जैसे किसी बाप के घर मे, दो बेटो मे, [सपत्ति का] परस्पर बराबर-बराबर बँटवारा होगया हो।

शब्दार्थ—**तेग**=तलवार। **बखाणौ**=सराहो, प्रशसा करो। **आडै**=आडे, अर्थात् आरूढ होते समय खडा किए जाने जैसी स्थिति मे। **बाज**=घोडा (स वाजि)। **अछट**=‘अछट’ तलवार या खड्ग आदि के उस वार को कहते हैं, जिसमे दो टुकडे होजाएँ एव तलवार या खड्ग के लहू की एक छाँट (बूँद) भी न लगे।

उदाहरण —

1 “धीरण रा पाणि रा प्रहारण हूँ बीरमदेव रो मुंड **अछट** उडि पडियो ।”[1]

2 जिण खग्ग! गखड रो खग झुकत, **अछट** मत्थ, हथ, उड्डियो।[2] इसे

---

1 वशभास्कर, पचमराशि, त्रयोदशमयूख, पृ० 1843,

2 केहरप्रकाश, कवि बख्तावरजी–कृत, पृ० 124

डिंगल मे 'ऊजलो लोह' के नाम से भी अभिहित किया गया है, जैसाकि सूर्यमल्ल ने 'वशभास्कर' मे प्रयोग किया है —

" ...... दोइ हजार बीरा थी दहिया बलराज नू साम्हों झेलि **ऊजलो लोह** चलायो ।"[1]

बेखीजै = दिखाई देता है । **बेटां**=बेटो मे । **बंट**=बँटवारा, हिस्सा । दोहे के उत्तरार्द्ध का पद-विन्यास निम्नानुसार किया जाकर अर्थ किया जाना चाहिए–'जिम बाप रै घर बेटा दो बट बेखीजै' ।

विशेष—मिलाइए —

अरि तब सिराहि बलवन अधिप, पुनि असि झारिय मत्थ पर[2]
कटि टोप सीस कट्टिय सकल, मनहुँ बि बँधव बटि घर ।

राजस्थानी टीका—एक वीर श्री (स्त्री) आपरै पती नै तरवार वावतौ देख कहै छै–हे सखी ! म्हारै कत–धणी तरवार वाहै सो थनें कहु छु । सुण, आडै घोडै पडै है, सो घोडा असवार रा दोय टुकडा होवै है, जाण दोय भाया आपरै बापरै घर रा दोय वट करिया । अर्थात् आधोआध घोडौ सवार बराबर दोय भाग होवै है, इसा पौरस री तरवार वहै छै ।।इति।।

देख सखी धव री दया, पैला उर दल चाढ ।
आडै भालै ओहडै, आवै काकड काढ ।।237।।

व्याख्या—हे सखी ! कत की दया तो देख कि शत्रुओ की छाती पर अपनी सेना चढाकर भी, वे बिना किसी को मारे ही, आडे भाले से उन्हे ठेलते हुए अपनी सीमा से बाहर निकाल आते हैं ।

[शत्रु सीमा मे घुस आए है–इसलिए शूरवीर पति अपनी सेना लेकर उन पर चढाई करने हेतु विवश हो जाता हैं । किन्तु वह अत्यन्त दयालु है, अत. किसी को मारता नही । प्रत्युत, अपने आडे भाले से सबको पीछे धकेलता हुआ ही अपनी सीमा से बाहर खदेड आता है । भाव यह कि शूरवीर कत के लिए शत्रु भेड-बकरियो से अधिक महत्व नही रखते, उन्हे जैसे सवेरे चरने हेतु लकडी से हाँकते हुए वनखड की ओर भगा दिया जाता है, वैसे ही वीर पति ने भी केवल भाले के डडे से शत्रुदल को सीमापार खदेड दिया है । उनसे लडने या उन्हे मारने की नौबत ही नही आई ।]

---

1 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षट्त्रिंशमयूख, पृ० 1627,

2 वही, सप्तमराशि, त्रयस्त्रिंशमयूख, पृ० 3159,

शब्दार्थ—**पैलां** – शत्रुओ । **उर**=छाती (पर) । **दल**=सेना । **चाढ**=चढा कर । **ओहड़ै**=ठेल कर या धकेल कर । **कांकड़**=सीमा । **काढ**=निकाल कर ।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री पती रौ आपाण देख कहै छै–हे सखी ! म्हारै धव-धणी री दया देख । सत्रुआ री फौज छाती चढाय ने आडै भालै ओहडै-टोन्ल नें काकड बारै काढ आवै नै किण ने ही मारै नही । प्रयोजन, देखतां'ही सत्रु धकै भाग जावै, पण जुद्ध री आसग न होवै ।।इति।।

काय उताली ककणी, जे मद पीवण जेज ।
कत समप्पै हेकलो, कटका ढाहि कलेज ।।238।।

व्याख्या—हे ककिनी ! तू कलेजा खाने के लिए इतनी उतावली क्यो हो रही है ? थोडी सब्र रख । बस, मेरे पति के मद्य पीने भर की देर है । उसके बाद तो वे मदोन्मत्त हो फौज पर फौज धराशायी करते हुए तुझे अकेले ही जी भर कलेजा दे देगे, अर्थात् तुझे केवल कलेजा खिला-खिला कर ही तृप्त कर देगे ।

शब्दार्थ—**काय**=क्यो । **उताली**=उतावली, व्यग्र । **ककणी**=सफेद गीधनी । **जे**=जो, बस । **जेज**=देर । **समप्पै**–दे देगे (स समर्पण), खिला-खिला कर तृप्त कर देगे । **हेकलौ**=अकेले ही । **कटका**=फौजो को । **ढाहि**=धराशायी कर । **कलेज**=कलेजा ।

राजस्थानी टीका—पती री वीरता देख कहै छै–हे कंकणी ! (ग्रीधणी) काय-क्यूं इतरी उतावली हुई है ? दारू पीयै, इतरी जेज है । पछै एकलौ ही म्हारौ पती कटका ने ढाह (मारने) थने कालजा ही कालजा दे देसी ।।इति।।

उर बूडी अटकावता, बाहै काल बसीठ ।
रीझै इसडा रावता, नाह उबारै नीठ ।।239।।

प्रसग—एक वीर पत्नी द्वारा अपने पति के आश्रित शूरवीर सामंतो के शौर्य की प्रशसा —

व्याख्या—[शत्रु द्वारा] छाती मे 'बूडी' अडाए जाने के साथ ही जो शूरवीर अपने काल के दूत-रूप—भाले का वार कर शत्रु को यमलोक पहुँचा देते है, ऐसे उद्भट क्षत्रिय वीरो की वीरता पर रीझ कर भी कत उन्हे मुश्किल से ही बचा पाते है ।

[अर्थात् शत्रु द्वारा छाती मे 'बूडी' का प्रहार करना तो दूर, उसे अडाने के साथ ही जो शूरवीर तमक कर उस पर ऐसा प्राणघाती वार करते हैं कि वह वही ढेर हो जाता है–ऐसे शूरवीर सामतो को मेरे कत युद्ध मे मरने देना नही चाहते ।

कारण, कत शूरो का सम्मान करने वाले है। वे नही चाहते कि उनके परिग्रह की शोभा तथा वीरता के शृ गार ऐसे शूरवीर सामंत युद्ध मे काम आएँ। किन्तु, दूसरी ओर वे शूरवीर सामत अपने स्वामी के लिए हर क्षण अपने प्राण झोकने हेतु लालायित रहते है। अत उनकी वीरता पर मुग्ध हुए कत उन्हे बडी मुश्किल से ही बचा पाते है।]

दोहे की दूसरी पंक्ति का एक अन्यार्थ यो भी किया जा सकता है–'ऐसे स्वामिभक्त शूरवीरो की वीरता पर मैं मुग्ध हूँ, जो सकट मे पडकर भी स्वामी की प्राण-रक्षा करते है'। इसे शत्रुपक्ष के वीरो पर घटित करके भी अर्थ किया जा सकता है।

शब्दार्थ—**बूडी**=भाले के डडे का अत्य भाग। **अटकावता**=अटकाते अर्थात् अडाते ही, (आगे बढने से रोकने के उद्देश्य से)। यह शब्द वीर की अतिशय त्वरा की व्यजनार्थ प्रयुक्त किया गया है, जो शत्रु द्वारा अपनी छाती मे भाले के डडे का छोर **अडाये जाते ही** उस पर तमक कर ऐसा वार करते है कि वह उसके लिए मौत का पैगाम बन जाता है। **बाहै**=वार करते है। **काल बसीठ**=काल का दूत, यहाँ भाले से अभिप्राय है। **इसडा**=ऐसे। **रावता**=शूरवीर सामतो। **उबारै**=बचा पाते है। **नीठ**=मुश्किल से।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री पतीरा आपाण री बडाई करै है–हे सखी! म्हारै पती कोई जोधार नें मारण री इच्छा न होवै तद उणनें उर–छाती मे भालारी बूडी दे अटकावै–रोकै, पण काल तौ उठा सू प्राण लेणने वसीठ–दूत भेज देवै। परत भडरा निरभै पणा सू रीझ ने म्हारौ नाह-पती नीठ–मुस्कल सू उबारै है।।इति।।

नहँ वीरा त्रण झूपडै, धाडो एथ खटाय।
थावै दादुर थाप री, काला रै फण काय।।240।।

व्याख्या—भाई धाडवी! यह फूस का झोपडा है। यहाँ तेरा धाडा (डाका) पार नही पडेगा। भला, काले साँप के फन पर मैढक की थप्पड का क्या परिणाम होगा?

[स्पष्ट है, साँप का तो कुछ बिगडेगा नही। किन्तु वह मैंढक को अवश्य समूचा निगल जाएगा। ठीक इसी भाँति, वीर के झोपडे पर डाका डालने वाले को धन तो कुछ मिलेगा नही, उलटे वह अपने प्राणो से हाथ अवश्य धो बैठेगा।]

द्वितीय पक्ति का अर्थ यो भी किया जा सकता है —

'भला, मैंढक की थप्पड का काले साँप के फन पर क्या असर होगा ?'

इस दोहे मे यह ध्वनि है कि वेतनभोगी रक्षको से रक्षित धनिको के महलो पर डाका डालना आसान है, किन्तु स्वय वीरो से रक्षित उनके झोपडो पर डाका डालने का दुस्साहस तो प्राणो के मोल पर ही किया जा सकता है। उसका एक-एक तिनका मँहगा पडता है।

शब्दार्थ—**त्रण**=तृण, फूसका। **धाडो**=डाका। **एथ**=यहाँ। **खटाय**=पार पडेगा; चल सकेगा। **थावै**=होगा। **दादुर**=मैढक। **थाप**=थप्पड। **काला**=काला साँप। **काय**=क्या।

राजस्थानी टीका—कोई धाडायत ने जोधार री स्त्री समुझावै है–हे वीरा! अठै इण झूपडै तिणखलारौ ही धाडौ खटै नही, ने जो थू की लेजावसी तौ देख काला नाग री फणरै डेडरौ थाप री देवै तो काई होवै? प्रयोजन–कत तौ काला सरप, धायत–डेडरौ, धाडौ-विगाड उणरै करणौ है, सो कालदार री फण रै डेडरा री थाप है। डेडरा री थाप सू तौ कुछ न होवै, ने सरप डेडरा ने खाजाय ।।इति।।

की हेली अचरज कहूँ कत धणी रै काज।
मच अधूरै मावतौ, ऑख न मावै आज ।।241।।

प्रसग—पति की स्वामिभक्ति एव शूरवीरता पर वीर–पत्नी के मनोल्लास की अतीव फडकती हुई व्यजना है —

व्याख्या—हे सखी! इस आश्चर्य का क्या वर्णन करूँ! जो कन्त मेरे साथ शयन करते हुए आधे पलग मे ही समा जाते थे, वे ही आज स्वामी के लिए युद्ध करने जाते हुए (या युद्ध करते हुए) मेरी आँखो मे भी नही समा रहे हे! अर्थात् उन्हे देख-देख कर मैं आज हर्ष और गर्व से फूली नही समा रही हूँ।

[कहने का आशय यह है कि पति के शौर्य एव स्वामिभक्ति मे दीप्त रूप को निरखने के लिए आज पत्नी की आँखे भी मानो छोटी पड रही है। पति का शौर्य और स्वामिभक्ति-स्फीत व्यक्तित्व पत्नी को अपने असीम मनोल्लास की दशा मे सर्वथा अप्रमेय प्रतीत होरहा है]

अथवा, आँखो मे न समाने का कारण वीर का असीम वीरोल्लास या जोश मे फूल उठना भी हो सकता है। डिंगल–काव्यो मे सूरातन चढने पर वीर के शरीर के आकाश तक जा अड़ने का वर्णन मिलता है, जिसे बेचारी दृष्टि कैसे नाप सकती है? यथा :—

1. मडलीक कलोधर मारकौ, ऊससि लग्गौ अंबहर[1]
2. गयणाग लागि ऊससै गात ।[2]

'आँख मे न समाने' का एक कारण यह भी सभव है (जैसाकि 'वीर सतसई' के अन्य सपादको ने माना है) कि वीर युद्ध मे इस अद्भुत त्वरा व वीरता से लड रहा है कि वह समस्त युद्ध-क्षेत्र पर छाया हुआ है । एक क्षण यहाँ जूझता दिखाई देता है, तो दूसरे क्षण वहाँ । फलतः दृष्टि उसके अखिल रणक्षेत्र–व्यापी युद्ध–व्यापार का अनुगमन करने मे अपने को अक्षम एव असमर्थ अनुभव कर रही है । किन्तु हमे अपना प्रथम लाक्षणिक अर्थ ही अधिक रुचिकर लगता है, जिससे वीर-पत्नी के असीम मनोल्लास की अतीव सुन्दर साकेतिक व्यंजना होती है । अ तिम अन्यार्थ मे, वीर का युद्ध-व्यापार बहुत कुछ बाजीगरी अथवा सरकसी करिश्मे का-सा रूप ले लेता है ।

शब्दार्थ—कौ=क्या । **धणी रै काज**=स्वामी के लिए (युद्ध करने जाते हुए या युद्ध मे पराक्रम दिखाते हुए) । **मच**=पलग । **मावतौ**=समाता । **आँख न मावै**= देखते-देखते तृप्त न होने अथवा दृष्टि से थाह न ले पाने का भाव । पत्नी के गौरव-विमुग्ध रूप का व्यजक भावोद्गार ।

राजस्थानी टीका—जुद्ध सारु सझ नें जावतौ देख पती ने वीर स्त्री कहै हैं–हे हेली ! कात–स्त्री, मो स्त्री रा धणी, धणी रै सारू, थने काई इचरज री बात कहूँ ? सदाई म्हारै साथे सूवतां आधै मावतौ हौ सो आज जुद्ध सारू जावता म्हारी आख मे नईं मावै है–इतरौ वीरारस चढियौ है ।

महलाँ लूटण धाडवी, झूँपडियाँ न सुहाय ।
झूँपडियाँ री लूट मे, जीव सीलणौ जाय ।।242।।

व्याख्या—महलो को लूटने वाले धाडवियो को झोपडियो का लूटना पसन्द नही ! कारण, झोपडियो की लूट मे, बदले मे, प्राण जाते है । (फिर कौन धाडवी ऐसा है, जो उन्हे लूट कर अपने प्राण देना चाहेगा ?) ।

[तात्पर्य यह कि धनिको के महल लूटना सरल है, वीरो के झोपडे नही, क्योकि उन्हे लूटने का अर्थ है प्राणो से हाथ धोना । अत धाडवियो को झोपडे लूटना भला क्यो सुहाएगा ? यहाँ 'न सुहाय' मे विवशताजन्य व्यंग्य लक्ष्य करने योग्य है । धाडवियो को झोपडियाँ लूटना सुहाए तो बहुत, परतु लूटने देगा कौन ?]

---

1. गजगुणरूपकबध, पृष्ठ 100,
2. वही, पृ० 214;

शब्दार्थ—**महलाँ**=महलो को। **लूटण**=लूटने वाले। **धाडवी**=डाकू। **सीलणै**=बदले मे।

राजस्थानी टीका—एक घर रा धणी सूरवीर री स्त्री धाडवी नै कहै छै–हे धाडवी! थे मैला रा लूटण वाला हो। झूपडी लूटता आछा नही लागो क्यूकि झूपडा री लूट मे पाछौ सीलणौ करणौ पडै छै। महला वाला तौ मौटा है, सो वारै धन री गिनरत नही और झूपडा वाला तिणखलो ही ले नै रैण को दैनी, सो उण रा सीलवणा मे जीव देणौ पडैला। सारास, सूरवीर रै झूपडा सू वचनै रहौ, औ थासू घणौ सूरवीर है, सो मार नाखैला ।।इति।।

जीवीजै ऊमर जितै, सोय घरे धण सग।
भोलाँ किण भरमावियां, इण घर लूट उमग ।।243।।

प्रसग—वीर-पत्नी की लूटने आए हुए धाडवियो को प्रताडना —

व्याख्या—जितनी आयु शेष है, उसे घर मे अपनी प्रिया के साथ सुख भोगते हुए बिताओ (धन के पीछे इधर-उधर क्यो मारे-मारे फिरते हो?)। अरे मूर्खो! तुम्हे किसने बहका दिया है, जो इस घर पर लूटने की हौस लिए चले आए? (अब तुरंत यहाँ से भागो वरना मारे जाओगे)।

शब्दार्थ—**जीवीजै**=जीवित रहो, जीवन बिताओ। **जितै**=जब तक जितनी। **सोय**=सोकर, सुखोपभोग करते हुए। **भोलाँ**=मूर्खो! **भरमाविया**=बहका दिया। **लूट उमग**=लूटने की हौस (लिए चले आए)।

राजस्थानी टीका—फेर धाडवीया ने कहै–हे धाडायता! ऊँमर है जितरै, जीतरै सुख सू क्यूं जीवौनी, नै आपरी स्त्री सू क्यू छेटी पडौ? धण रै साथ क्यू सूवौनी? अठै तौ रिणखेत मे सूवणौ पडसो। अरे भोला धाडवी! थनै किण भरमायौ है सो इण घर मे लूटण री उमग करने आया? अठै सूरवीर रौ घर छै–मार नाखैला ।।इति।।

लोह चणा रै चाबणौ, दाँत विहूणा थाय।
इण घर भोला आवणौ, जम री कूट कढाय ।।244।।

व्याख्या—लोहे के चने चबाने से दाँतो से हाथ धोने पडते है। ठीक वैसे ही, यहाँ लूटने आने वाले को प्राणो से हाथ धोने पडेगे। इसलिए हे भोले! इस घर पर डाका डालने आना हो तो पहले यमराज को चिढाकर (छेड कर) आना। (अर्थात् यह मान कर आना कि मरना निश्चित है)।

शब्दार्थ—**विहूणा**=(स० विहीन) बिना। **थाय**=होना। **जम री कूट**

कढ़ाय=यमराज की नकल कर । अर्थात् उन्हे चिढा या छेडकर, जो निश्चित मृत्यु का पर्याय है ।

राजस्थानी टीका—फेर कहै, अरे भोला । लोह रा चिणा चाबण री मनसा करै जके दाता विना होवै है । इण घर माथै लूटण नें वा वैर करण नै आवणौ है सो, तौ जमरी—जमराज री कूटिया काढणी है । श्रौ सूरवीर रौ घर है । कुशले रैणरी इछा होवै तौ पाछा छानै-छानै जावौ परा ।। इति ।।

पैला रै बहकाविया, पडै सयाणा डूल ।
डाकण रै घर डावडा, भेजै जिकण म भूल ।।245।।

व्याख्या—दूसरो (धूर्त शत्रुओ) के बहकाने से सयाने-समझदार भी चक्कर मे पड जाते है (उनकी बातो मे आकर वीरो से बैर मोल ले लेते हैं) । किन्तु इसमे दोष तो वस्तुत' उन धूर्तों का है, जो डायन के घर बच्चो को भेजते है । अर्थात् जैसे डायन के घर भेजा हुआ बालक जीवित नही लौटता, उसी भाँति जो धूर्त शत्रु भोले-भाले लोगो को बहकाकार वीरो के घर डाका डालने या उनसे बैर मोल लेने हेतु भेज देते है, वे वस्तुत उन्हे मौत के मुँह मे ही झोकते है । ऐसे भोले-भाले निरीह लोगो को मरवाने का दोष वस्तुत. उन धूर्त शत्रुओ पर ही है ।

भाव यह कि दूसरो के बहकाये जो लोग वीरो से बैर मोल लेते है, वे मूर्ख होते है ।

श्री स्वामीजी ने दोहे के अतिम चरण का अर्थ 'इसमे कोई भूल नही' किया है, जो भ्रान्त है ।

इसी भाँति डा० सहलजी आदि सम्पादको ने प्रस्तुत दोहे पर टिप्पणी करते हुए इसमे जो तत्कालीन स्थिति की यथार्थता की ओर सकेत देखा है, वह वस्तुत कष्ट-कल्पना ही है । तद्विपरीत, इसमे तो धाडवियो को सम्बोधन के माध्यम से वीर की वीरता का वर्णन करना ही उद्दिष्ट है, जैसा कि दोहा सख्या 240 से आगे के दोहो मे हुआ है ।

शब्दार्थ—**पैला**=दूसरो के (शत्रुओ के) । **बहकावियां**=बहकाने से । **डूल पडै**=भ्रम या चक्कर मे पड जाते है । **डावड़ा**=लडको को, बेटो को । **जिकण म**=जिसमे, उसमे (अर्थात् भेजने मे) । श्री स्वामीजी ने इसे विश्लिष्ट कर इसका अर्थ 'जिसमे नही' (म=नही) कर दिया है, जिससे अर्थ-भ्रान्ति होगई । वस्तुत 'जिकण म' का अर्थ है 'जिसमे', 'उसमे' जैसा कि कवि ने 'वशभास्कर' मे प्राय प्रयोग किया है .—

'इसडी कहि अत्यजॉ रै उचित बाडा मैं बारूद बिछाइ जिकण मैं बरात हूँ एक प्रहर पहली सबधियाँ समेत समग्र ही मीणॉ नूँ बुलाइ आसव मे मत्त कीधा ।'[1]

राजस्थानी टीका—फेर समभावै है—साची वात है । पैलाँ रा बैकावणा सूं सैणौ आदमी ही भूल जावै है (डूल=भूल जाणौ) । देखौ, डाकण रा घर मे डावडा नै जकौ मेलै, उणरी भूल, क्यूकि डाकण तौ वीर चढै तद खाय हीज—चाहै घर रौ चाहै पारकौ, उणसू तो आधौ रहै वो हीज वचै, 'सो इण वीर आदमी रा घर सू विरोध करणौ—मरणा री नीसाणी है । इण सारू वचने रहौ ।। इति ।।

पग पग थटिया पाहुणा, खागा सहणी खात ।
पीव परूसै पात मै, भूलै केम दुभात ।।246।।

व्याख्या—तलवारो की टक्कर लेने के इच्छुक पाहुने (शत्रु) पद-पद पर डटे हुए हैं । इधर प्रियतम भी मेजबानी (युद्धातिथ्य) मे कम नही है । वे सबको एक पगत मे बैठा कर अच्छी तरह परोस (मार) रहे है । फिर भला वे किसी को कैसे भूल सकते है व भेदभाव कर सकते है ? अर्थात् वे बिना किसी को भूले या भेदभाव किए सबको तृप्त कर देगे ।

[भाव यह कि प्रियनम से लोहा लेने का इच्छुक कोई भी शत्रु निराश नही लौटेगा । वे एक-एक को अपनी तलवार के घाट उतार कर ही छोडे गे । एक पगत मे बैठने वालो को जैसे परोसने वाला बिना किसी भेदभाव के जिमाता है, वैसे ही प्रियतम भी सभी शत्रुओ को एक साथ तलवार के घाट उतार देगे] ।

शब्दार्थ—**थटिया**=डटे है, खडे है । **पाहुणा**=शत्रु । **खांत**=इच्छा, रुचि । **पांत**=(स० पक्ति) पगत, जीमने वालो की कतार । **केम**=कैसे । **दुभात**=परोसने मे अनुचित पक्षपात या भेदभाव ।

विशेष—प्रस्तुत दोहे मे आतिथ्य-सत्कार की प्राचीन परपरा के अनुरूप वीर के वीरोचित आतिथ्य का चित्रण हुआ है ।

राजस्थानी टीका—आपरी सखी ने, पती जुद्ध करै, सो देखनें कहै छै—हे सखी ! देख, पग-पग माथै तौ पाहुणा (वैरी) थटिया ऊभा छै और खागा—तरवारा री सहणी खात, अरथात तरवारा री वहणौ सहणौ ने दूजा ने पाछी वाह करणी सो पती इण सत्रु (पाहुणा) री पात—फौज मे परूसणौ करीयौडौ है । पात=फौज मे, सो दुभात सू भूलै नही । अरथात किणनें ही विना लोहा रहण दै नही । अरथात सारा ने साभ लेसी ।। इति ।।

---

1 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षटत्रिशमयूख, पृ० 1624

जात पिछाणै जात री, ओरां पीड न एस ।
रे भोला धण रोवसी, सो दुख मूझ विसेस ।।247।।

व्याख्या—सजातीय ही सजातीय की पीडा को समझता है—औरो को वैसी पीडा नही होती । हे भोले ! तेरे मारे जाने पर तेरी पत्नी रोएगी—मुझे इसी का विशेष दु ख है ।

[अर्थात् तेरे मारे जाने पर तेरी प्रिया को जो असहनीय दु ख होगा, वह मैं ही समझ सकती हूँ, क्योकि मै भी स्त्री हूँ । अत तू अपने प्राण लेकर चला जा क्योकि तेरी पत्नी का स्मरण कर मेरा मन भर आता है] ।

इस दोहे में शत्रु-पत्नी के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के माध्यम से वीर द्वारा शत्रु के मारे जाने की बात ध्वनि द्वारा कहदी गई है ।

शब्दार्थ—**जात** = जाति की, सजातीय । एस=ऐसी । **रोवसी** = रोएगी ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर पुरष री स्त्री कोई सत्रुआ नें कहै—हे सत्रुआ ! थे भौला थका म्हारै पती माथै चढनै आया हौ, सो जात री पीड जात पिछाणै, दूजा नै मालम न होवै, सो हे भोला ! थारी धण—लुगाया रोवसी सो औ दुख म्हानै विशेष है, क्यू कि पती विना स्त्री नै जो दुख होवै है, इसौ और कोई दु ख इण सू वधनै नही ।। इति ।।

जम री मूंछा ताणबौ, अग लगाबौ आग ।
एक न भोला ऊबरौ, जे खीजाणौ जाग ।।248।।

प्रसंग—धाडवियो को वीर-पत्नी की चेतावनी —

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत को छेडना मानो यमराज की मूँछ खीचना है, या फिर अपने ही शरीर मे आग लगाना है । हे भोले लोगो ! यदि यह महाक्रोधी जाग गया, तो तुम मे से एक भी जीवित नही बचेगा । सब के सब मारे जाओगे ।

[भाव यह कि यमराज की मूँछ खीचने व अपने शरीर मे आग लगाने का अनिवार्य परिणाम जैसे मृत्यु है, वैसे ही इस शूरवीर को छेडने या ललकारने का परिणाम भी निश्चितरूपेण मृत्यु हैं ।]

शब्दार्थ—**मूँछ ताणबौ** = मूँछ पकड कर खीचना । डिंगल-काव्यो मे यमराज की नकल करना (चिढाना), उसकी मूँछ पकड कर खीचना, उससे रास्ते चलते छेडखानी करना आदि मृत्यु को निमत्रण देने के पर्याय-रूप मे प्रयुक्त हुए हैं । सूर्यमल्ल को इस प्रकार की व्यजना-गर्भित शब्दावली के प्रयोग मे कुछ विशेष आनंद आता है । कवि ने 'वशभास्कर' मे भी ऐसे प्रयोग किए हैं । यथा :—

'या सुणतां ही जाणे बारूद रा गज मैं दमग दीधो, किनाँ खीजिया—नागराज री पूँछ पर पग आरिणयो ।

चालता काल सूँ चालो कीधो, किनाँ सूता मृगराज री नासिका रो लोम ताणियो ।"[1]

लगाबौ=लगाना । **ऊबरौ**=बचोगे । **जे**=यदि । **खीजाणौ**=क्रुद्ध होने वाला, महाक्रोधी । श्री स्वामीजी ने 'खीजाणौ जाग' का अर्थ "जाग कर क्रुद्ध हो उठा" किया है, जो अयुक्त है, क्योंकि 'खीजाणौ' शब्द यहाँ वीर के लिए प्रशस्तिमूलक उपाधि के रूप मे प्रयुक्त हुआ है, वैसे ही जैसे 'अजको' (दोहा सख्या 54) 'टेकलौ' (दोहा सख्या 59) आदि । वीरोचित अमर्ष सदा से ही वीरो का भूषण माना गया है । महाभारत के युद्ध मे पराजित होकर निराशा धारण करने वाले अपने पुत्र को वीरमाता अन्य भर्त्सनासूचक शब्दो के साथ उसे 'निरमर्ष' कह कर भी फटकारती है :—

> निरमर्षं, निरुत्साह, निर्वीर्यमरिन्दतम् ।[2]
> मा स्म सीमतिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ।।28।।

अत 'खीजाणौ' का अर्थ 'महाक्रोधी' या 'वीरोचित अमर्षधारी' ही किया जाना चाहिए । 'जाग कर क्रुद्ध होगया' मे वह भाव नही आता, जो 'यदि यह महाक्रोधी जाग गया' से व्यजित होता है । शब्दो की ये सूक्ष्म अर्थच्छाएँ उपेक्षणीय नही है ।

राजस्थानी टीका—फेर दुसमणा ने समझावै है—अरे भोला ! म्हारै पती सू वैर करणो है, सो जमराज री मूछा ताणणी है, अने चाहिने शरीर मे आग लगावणौ है । अरे भोला ! म्हारा पती सू जुद्ध करणौ चाहौ हौ पण एक ही जीवता नही जावौला, जो सूतौ है सो जागगौ ने खिजियौ तौ थाने सारा ने मार न्हाकसी ।। इति ।।

> देवर वाभी देखणौ, ढाहण गज नीसाण ।
> सोकरडा रा सिन्धु मे, पूगौ पवन प्रमाण ।।249।।

प्रसग—अपने पति के शौर्य की प्रशसा करती हुई देवरानी की भावज के प्रति उक्ति :—

व्याख्या—हे भाभी ! हाथियो पर लगे ध्वजों को गिराने वाले आपके देवर

---

1 वशभास्कर, चतुर्थराशि, षोडशमयूख, पृ० 1358

2. महाभारत, उद्योगपर्व, अ० 131–32–33 (पूना सस्करण) ।

का पराक्रम तो देखिए (या देखने ही योग्य है)। [भीपरा अग्निवर्षा करती हुई] बदूको से लैस गाडियो के समुद्र मे वे पवन की भाँति जा पहुँचे है।

[अर्थात् बदूके लगी गाडियो के अपार समूह से एक साथ होने वाले भीषरा अग्निप्रहार की परवाह न कर वे उसमे पवन–वेग–से जा धँसे है तथा हाथियो पर लगे शत्रु–ध्वजो को भूमि पर गिरा दिया है। कैसा उद्‌भट पराक्रम है आपके देवर का !]

शब्दार्थ—**देखरणौ**=देखिए, या देखने ही योग्य है। **ढाहरण**=ढाहने या गिराने वाले। **नीसारण**=झडा, ध्वज।

सोकरडां=वे बैलगाडियाँ या घोडा-गाडियाँ, जिनके पीछे के हिस्से मे बदूके (जिनकी सख्या लगभग सौ होती है) फिट की हुई रहती हैं तथा जो मशीनगन की तरह एक साथ धडाधड प्रहार करती है।

'सोकरडा' शब्द का उक्त अर्थ इन पक्तियो के लेखक को स्पष्ट नही था परन्तु सौभाग्यवश अभी कुछ ही दिनो पूर्व राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि एव प्राचीन राजस्थानी शब्दावली के मर्मज्ञ श्री रेवतसिहजी भाटी, राजस्थानी सबद कोस के विद्वान् कोशकार श्री सीतारामजी लालस सहित लेखक की कुटिया पर पधारे तथा प्राचीन राजस्थानी के कुछ विशिष्टार्थक शब्दो की अर्थ–चर्चा के दौरान श्री रेवतसिह जी भाटी ने लेखक को 'सोकरडा' शब्द के उपर्युक्त अर्थ से अवगत किया, जिसके लिए लेखक उनका अत्यन्त आभारी है। राजस्थानी टीकाकार ने भी कदाचित् इसी अर्थ की ओर संकेत किया है, यद्यपि टीका से 'सोकरडा' शब्द का उक्त अर्थ पूर्णत. स्पष्ट नही होता।

'सोक' शब्द सवेग छोडे गए बारगो तथा घोडो के सरपट दौडने आदि से उत्पन्न ध्वनि का भी वाचक है। यदि 'सोकरडा' शब्द उक्त 'सोक' का ही अपभ्रष्ट रूप हो, तो इसका अन्यार्थ शस्त्रप्रहार अथवा सवेग चलने या दौडने से उत्पन्न ध्वनि भी किया जा सकता है। इस अर्थ मे 'सोक' शब्द के प्रयोग के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

1 वहै बाण विपरीत, ...**सोक** जाणै सीचाणा।[1]

2. बाणा **सोक** बाग सत्रा थोक भाग जेण बोला,
गॉज थार झोक लाग दूसरा गगेव।[2]

---

1. गजगुणरूपकबध, पृ० 85, स० श्री सीतारामजी लालस।
2 गीत राजाधिराज बखतसिंह नागौर रौ, रा० वी० गी० स०, भाग 1, पृ० 50; स० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत।

3 'अजण' जेहा अजण रचेबा सु महारण,
बाणा री सोकां बहण कलै करण ।[1]

4 बजत सोक पाइ बे उबारतै बिहार वै ।[2]

'सोकरडा' शब्द के उपर्युक्त अन्यार्थानुसार व्याख्या यो भी की सकती है—

"[सनसनाते तीरो अथवा सरपट दौडते अश्वो से उत्पन्न युद्ध के भीषण] ध्वनि–समूह के बीच पवन की भाँति जा पहुँचा ।"

परन्तु हमारे विचार से 'सोकरडा' शब्द का प्रस्तावित मुख्यार्थ ही यहाँ सगत व उद्दिष्ट प्रतीत होता है । श्री डा० कन्हैयालाल सहल आदि सम्पादको ने इसका अर्थ "बाणो की बौछार" एव श्री नरोत्तमदास स्वामी ने 'घोडो' तथा अन्यार्थ मे 'बाण' किया है, जो निराधार है । 'सोकरडा' शब्द को 'सोक' का रूपभेद मानने पर इसका अर्थ घोडो या बाणो आदि के सवेग चलने से उत्पन्न ध्वनि किया जा सकता है, जैसा कि हमने अन्यार्थ मे निर्देश किया है, परतु 'सोकरडा' शब्द 'बाणो की बौछार' या 'घोडो' का वाचक नही है, जैसा कि 'वीर सतसई' के दोनो सस्करणो के सम्पादको ने अर्थ किया है ।

शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र, भावार्थ मे समूह । अर्थात् बंदूको से लैस गाडियो का समूह । **पूगौ**=पहुँचा । **प्रमाण**=समान ।

राजस्थानी टीका—देराणी कहै–हे वाभीसा ! थारा देवर रौ जुद्ध देखौ । देवर ने, आपरा ने, वाभीजीसा देखौ । हाथीया रा नीसाण पाड रयौ है, अनें सौकरडा रा सिंधु मे, सौकरडा री गाडिया होवै है, वा गाडिया रा सिंधु—दरयाव मे पवन पूगै ज्यू पूगौ है । तात्परज, सोकरडा री गाडिया सू आग वरसै, सो अगनी री दरियाव है । इण मै पडै सो बल जावै, पण औ वीर पवन जाय ज्यू गयौ । पवन कयौ अगनी मे रुकै नही, जिणसू पवन ज्यू गयौ ।। इति ।।

कढतौ कै दीठौ सखी, मिलतौ बाण समाण ।
कुबणैता कर कपिया, वलै न छूटा बाण ।। 250 ।।

व्याख्या—हे सखी ! कत शत्रुओ पर इस वेग से टूट कर पडे कि या तो उन्हे तीर की तरह छूटते ही देखा या शत्रुओ से भिडते ही । उन्हे यो अचानक अपने सामने आया देख धनुर्धरो के हाथ मारे भय के काँप गए तथा उनके हाथ से फिर बाण

1 विन्है रासो, पृ० 65, स० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

2 सूरजप्रकास, भाग 2, पृ० 168, स० श्री सीतारामजी लालस ।

नही छूटे । [अर्थात् मूर्तिमान काल के समान उस वीर को अपने सामने खडा देख धनुर्धरो के होश उड गए । वे भय के मारे स्तम्भित किवा जडीभूत–से होगए] ।

शब्दार्थ—कढतौ=निकलते या छूटते हुए । **कै**=अथवा । **मिलतौ**=भिडते हुए । **समाण**=समान । **कुबणैता**=कमनैतो, धनुर्धरो । श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ " 'कु+बानैत' (कुत्सित या कायर योधा)" किया है, जो भ्रान्त है । वस्तुत 'कुबणैत' का मूल रूप 'कमनैत' है, 'कु+बानैत' नही । दूसरे, स्वामीजी ने 'कायर योधा' जो अर्थ किया है, वह अपने आप मे अतर्विरोधपूर्ण है । 'योद्धा' है, तो फिर 'कायर' कैसे हुआ ? 'कमनेती' के अर्थ मे 'कुबणैंर्ना' का प्रयोग डिंगल–काव्यो मे अति प्रचलित है । यथा —

> **'कुबणैती'** लख कथ री, अरि धण नैणा नीर ।[1]
> मायड इण दु ख दूबली, मो नथ काढे तीर ।।189।।

राजस्थानी टीका –पती जुद्ध करण गयौ, तिण री तारीफ करै है — हे सखी ! म्हारौ पती सत्रुवा ऊपर तीर जावै ज्यू गयौ । कढता—नीकलती वखत किण दीठौ ? बाण नीकलता दीसै नही, इण तरै किण ही दीठौ नही ने सत्रुवा सू मिलता ही बाण रै जिसौ हीज । बाण लागता ही पड जाय है, इण तरै मिलीयौ ही बाण रै ज्यू । मिलता ही सत्रू पडण लागा, धकै कबणैत हा, जिकारा हाथ धूजण ढूकगा, सो वलै वासू पाछा बाण छूटा नही ।। इति ।।

> पूजीजै गजमोतिया, सखी भडा भुज आज ।
> नाह निलोहौ आणियौ, करै अगाऊ काज ।।251।।

व्याख्या—हे सखी ! सुभटो की भुजाओ को आज गजमोतियो से पूजना चाहिए, जिन्होने सब काम अगाऊ (पहले) ही कर दिया (शत्रुओ से स्वय युद्ध कर उन्हे मार भगाया) तथा कत को एक भी घाव लगने दिए बिना सुरक्षित ले आए ।

इस दोहे मे स्वामिभक्त शूरवीरो के पराक्रम की प्रशसा कीगई है ।

शब्दार्थ—पूजीजै=पूजना चाहिए, मिलाइए —

> सामेलो आया सकल, घुरिया जेत नीसाण ।[2]
> बधायो गज मोतीया, गुनियन करे बखान ।।28।।

भड़ाँ=योद्धाओ के । **निलोहो**=बिना घाव के, अक्षत । **आणियो**=ले आए ।

---

1. वीरसतसई, श्री नाथूसिहजी महियारिया, पृ० 86,
2 खुमाणरासो, दलपतिविजय-कृत, पृ० 177, सं० श्री भँवरलाल नाहटा ।

अगाऊ=अग्रिम, पहले ही । **काज**=कार्य, यहाँ शत्रुओ से युद्ध कर उन्हे मार भगाने से अभिप्राय है, जिसके फलस्वरूप स्वामी को युद्ध करने की नौबत ही नही आई । जैन कवि आचार्य समयसुन्दर ने भी ऐसे ही सुभट को प्रशसा के योग्य माना है —

सुभट तिके ज सराहिए, जे रण पहिलो भेलि,[1]
सेना भाँजइ सत्रुनी, अणिए अणिए मेलि ।। 24 ।।

राजस्थानी टीका—कोई मालक री श्री (स्त्री) आपरा रजपूता री वीरता देख कहै छै—हे सखी ! आज म्हारै भड—रजपूत तिकारा भुजा गजमोतीया सू पूजणा चहीजै । रण (जुद्ध) मैं म्हारै पी नै निलौहौ ले आया और कीधौ पहलै काज, शत्रुआ ने मार भगावण रौ काम हौ सो पहला ही ज कीधौ । अरथात मार भगाया ।। इति ।।

पर दल पाडै घूमता, नाह जुहारै आय ।
राणी इसडा रावता, हाथा नीम बटाय ।। 252 ।।

व्याख्या—जो योद्धा घावो से छक कर रणोन्मत्त हुए शत्रुदल को धराशायी कर देते है और फिर विजयी हो अपने स्वामी से आकर प्रणाम करते है-ऐसे स्वामिभक्त शूरवीरो के घावो पर लगाने के लिए तो हे रानी ! अपने हाथो मे ही नीम पीसना चाहिए ।

[अर्थात् ऐसे स्वामिभक्त शूरवीरो के बल पर ही स्वामी की भूमि और रानी का सुहाग सुरक्षित रहता है । अत उनके घावो के लिए, जो स्वामी-हेतु युद्ध करते हुए ही घायल होते है, यदि रानियाँ स्वय अपने हाथो मे नीम पीसे, तो यह सर्वथा उचित ही है । ऐसे शूरवीरो की स्वामिभक्ति का प्रतिदान किसी भी मूल्य पर चुकाया नही जा सकता ।

शब्दार्थ—**पर दल**=शत्रुदल । **पाडै**=धराशायी करते या सहार करते है । **घूमता**=झूमते हुए, घावो से छके या रणोन्मत्त हुए । **जुहारै**='जुहार' (प्रणाम) करते है । राजाओ-सामतो मे परस्पर अभिवादन के लिए प्रयुक्त आदरसूचक शब्द, जिसका मूल रूप कदाचित् 'जयकार' है (जयकार 7 जयहार 7 जउहार 7 जुहार) उदाहरण —

मूदा ! सुप्रभातनी वार, जई राजा-प्रति करु जुहार ।[2]

---

1 सीताराम-चौपाई, पृ० 144, सं० श्री अगरचंद नाहटा व श्री भँवरलाल नाहटा ।

2 श्री सदयवत्सवीरप्रबध, कवि भीम-विरचित, पृ० 16, स० डा० मजुलाल मजुमदार ।

रावतां=योद्धाओ, शूरवीरो। **हाथां**=हाथो से। **नीम**=नीम के पत्ते, जिन्हे पीस कर पुल्टिश बना कर घावो पर बाँधने से घाव ठीक होजाते है। मध्ययुग मे घावो पर लेपन के लिए प्राय इसी का प्रयोग किया जाता था। **बटाय**=पीसना चाहिए। राजस्थानी मे हाथो से सिल पर पीसने को 'बाँटणौ' कहते हैं।

राजस्थानी टीका—आ वात सुणने सखी राणी ने कहै छै—हे राणी! जिके राजपूत घावा छकिया लोहा सू मतवाला हुआ घूमता थका परदल—वैरीयारी फौज पाड रया छै—घाव वींह—बुहाय आय मालक सु जुहार करै है—सो हे राणी! इसा सामधरमी जोधारा रा घाव आछा करण सारु तौ राणीया हाथा नीब वाटै जद आछी है, क्यू कै सुहाग अने जमी वा रजपूता दीधोडा है ।। इति ।।

पडै डहोला छातिया, नजर पडंता नाह ।
आवै आवै ऊचरै, ओडौ हेर सिपाह ।।253।।

प्रसग—वीराङ्गना द्वारा अपने शूरवीर पति के आतक की व्यजना —

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत दिखाई पडते ही शत्रुओ की छाती मे भय के मारे गड्ढे पड जाते है (दिल दहल उठता है) तथा सिपाही भयभीत हो—'यह आया,' 'यह आया' चिल्लाते हुए प्राणरक्षा के लिए किसी ओट की तलाश मे भागने लगते हैं।

शब्दार्थ—**डहोला**=गड्ढे, भय के मारे दिल दहल उठना।

यथा :—

सामद्र **डहोला** ओद्रका, जांण हिलोला हल्लियौ।[1]

तथा —

दहल पड़ै ज्या देखनै राणा सुरताण।[2]

नजर पडंता नाह=कत दिखाई पडते ही। डा सहलजी आदि सपादको ने इसका अर्थ 'नाथ की नजर पडते ही' किया है, परतु यह हमे युक्त प्रतीत नही होता। **ऊचरै**=पुकारते है, उच्चारण करते है। **ओडौ**=ओट, आड। **हेर**=देख कर, तलाश कर।

राजस्थानी टीका—पती वैरियां ऊपर जावै, जद जोधार घबरावै सो कहे हे सखी! वैरियाँ री फौज रै म्हारौ पती जावता ही दुसमणां री छाती मे हौल-खाडा पडण ढूक जावै वा डहोला (भै रा गोटा उठै छाती मे) निजर पडता ही, अर

1 राजरूपक, पृ० 164,

2. पाबूप्रकाश (बडा), पृ० 36, आशिया मोडजी-कृत।

सिपाही औडौ—ओला ताक ताकने कहै–आयौ–आयौ। भय सू, हरष सू, इचरज सू आदि मे मिनष शब्द दोय वार बोलै, सो भय सू कहै–आयौ–आयौ। अर्थात् वचजो नही तौ मार नाखैला ।।इति।।

> घण तोपा घर धूजियौ, कत सहेली केथ।
> एथ न भोली ईखणौ, जुकिया मैगलं जेथ ।।254।।

व्याख्या—अगणित तोपो की भीषण गर्जन-ध्वनि से घर धूज उठा है। हे सखी! कत कहाँ है?

[सखी उत्तर देती है—] हे भोली! उन्हे यहाँ न देख, उन्हे तो वहाँ देख, जहाँ शत्रु के मदोन्मत्त हाथी आक्रमण के लिए झुक आए (उमड पडे) है।

[अर्थात् हाथियो का हनन करने वाले तेरे पराक्रमी पति यहाँ नही, वहाँ मिलेगे, जहाँ शत्रुओ की मत्त गजसेना घनघटा-सी घुमड आई है।]

शब्दार्थ—घण=अनेक, अगणित अथवा भीषण। **धजियौ**=धूज उठा, कपित होगया। **केथ**=कहाँ (सं कुत्र)। **एथ**=यहाँ (स अत्र)। **ईखणो**=देखना। **जुकिया**=झुक आए अर्थात् उमड पडे, घिर आए।
उदाहरण —

> झुकै धर हैमर सूर झुझार,[1]
> भमै किर साख तिडा दल भार।

राजस्थानी टीका—जुद्ध होवतौ देख स्त्री पती नै पूछियौ—तोपारी घणी आवाज सू घर धूजण लागा जद राणी आपरा पती ने कही–कन्त! सहेली म्हारी केथ? तद पती कहै—भौली! अठै आ वात नही देखणी कै सहेली कठै गई, सो तोपारी अवाज सू जकीया (चुपका) रह गया है, मैगल–मदोन्मत्र हाथी ही, तौ वे तौ सहेली तुछमति, अकुलीण स्त्रीया है, सो भय सू छिप गई ।।इति।।

टिप्पणी—टीका का अर्थ असगत है। टीका मे 'जुकिया' की जगह 'जकिया' पाठ है।

> आक पलासा झूपडौ, दैवै कीध न हत।
> हियै न तो भी ऊतरै, कीस लुभावै कत ।।255।।

व्याख्या—हाय! विधाता ने कत को आक-पलाश से बना झोपडा तक नही

---

1 सूरजप्रकाश

दिया है, पर तो भी उन्होने मुझे न जाने कैसे लुभा लिया है कि मन से उतरते ही नही (अर्थात् प्राणो से भी प्यारे लगते है !)।

[वीराङ्गना के, अपने शूरवीर पति के प्रति, निश्छल एव अनन्य प्रेम का परिचायक यह एक मार्मिक दोहा है, जिसमे पति के शौर्य की अतीव सुन्दर साकेतिक व्यजना हुई है। वीर-पत्नी अपने शूरवीर पति के शौर्य पर मुग्ध है ! विधाता ने चाहे उसे आक-पलाश का झोपडा तक न दिया हो, किन्तु बडे-बडे अधिपतियो के आवास उसकी भुजाओ के बल पर खडे रहते है-यह गर्व ही इस निर्धन वीर-ललना को असीम उल्लास से उद्वेलित किए रहता है। यह आत्मगर्व, यह वीरोल्लास ही वीर ललनाओ का भूषण है, जिसके आगे रत्नालकृता राजमहिषियो का सुख-वैभव तुच्छ है !]

शब्दार्थ—**दैवै**=दैव या विधाता ने। **कीध**=किया, अर्थात् दिया। **हत**=हाय !। **हियै**=हृदय से। **कीस**=कैसे, (स. कीदृश)।

राजस्थानी टीका—एक घर रा धणी वीर पुरष री स्त्री धाडविया ने देख ने कहै छै क आपगा मालक नै–हे पती ! आपारै तौ औ आकडा और पलास रा झूपडा है। दे देवौ तौ काई धन हंत–मारियौ जावै नही, तो भी आपरै हीयै ऊतरै नही, इण काई लालच करौ। सारास, इसी वीरताई है सो आकारा ही झूपडा न देवैं। वडा-वडा राजाआ गढ दे वीरता री मरजाद खोयदी, परत इण वीर री ईसी वीरता आदि राजपूती अडग है ॥इति॥

टिप्पणी—टीकाकार का अर्थ हमे सगत नही लगता। यह वीर-पत्नी के भी अनुरूप नही है, जो अपने पति को अपने झोपडे डाकुओ को सौप देने की बात कहती है। टीकाकार ने 'कीध न' की जगह 'की धन' पाठ माना है। वस्तुत. टीकाकार ने दोहे मे निहित वीराङ्गना के आत्मगर्वपूर्ण उल्लास को कदाचित् लक्ष्य नहीं किया है।

अरियाँ जे त्रण आपणा, मुख मुख लीधा माय।
जाण न धव दीधा जिके, लीधा फेर पडाय ॥256॥

व्याख्या—हे सखी ! शत्रुओ ने प्राणो की भिक्षा माँगते हुए अपने-अपने मुँह मे जो घर के तिनके ले लिए थे, वे तक मेरे शूरवीर कत ने उन्हें नही ले जाने दिए तथा उन्हे भी गिरवा लिया।

[ध्वनि यह कि कत ने जब मुँह मे लिए हुए तिनके तक गिरवा लिए तो घर की अन्य वस्तु तो वे लेजाने ही क्या देते ? तिनके इसलिए गिरवाए कि कही शत्रु दूसरों के सामने शेखी बघारते हुए यह न कहे कि हम अमुक वीर के घर के तिनके ले आए हैं ! वीर, शत्रुओ की ऐसी गर्वोक्ति भला कैसे सहन कर सकता है ?]

शब्दार्थ—**अरियाँ**=शत्रुओ ने । **आपरणा**=अपने (घर के) । **माय**=सखी । 'वीर सतसई' के सभी टीकाकारो ने यहाँ 'माय' का अर्थ 'माता' किया है, जो शाब्दिक दृष्टि से असगत नही । किन्तु यहाँ 'माय' शब्द का अर्थ कदाचित् 'सखी' है, जैसा कि इस प्रसग के अन्य दोहो मे भी सखी को ही सबोधन किया गया है । राजस्थानी मे 'माय' या 'माई' शब्द ऐसे प्रसगो मे प्राय 'सखी' के अर्थ का ही वाचकत्व करता है, जैसा कि भक्तिमूर्ति मीरॉबाई के पदो मे हुआ है । यथा —

1 **माई** ! सॉवरे रग राची ।[1]

तथा —

2. हे **मा** बडी-बडी अँखियन वारो, सॉवरो मो तन हेरत हँसिके ।[2]

× × × ×

कौन जतन करो मोरी **आली**, चन्दन लाऊँ घसिके ।

ऊपर, द्वितीय उद्धरण मे जिसे 'मा' कह कर सम्बोधन किया गया है, उसे ही आगे की पक्ति मे '**आली**' कहकर पुकारा गया है । इससे स्पष्ट है कि 'मा' यहाँ 'आली' अर्थात् 'सखी' के ही पर्याय-रूप मे प्रयुक्त हुआ है ।

इसी भॉति एक राजस्थानी लोकगीत की निम्नाकित पक्ति मे भी 'माय' शब्द 'सखी' के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है :—

आज म्हानै रमती नै लाड्डो सो लाद्यो ए **माय**[3]

अत प्रस्तुत दोहे मे प्रयुक्त 'माय' शब्द को हम सखी के अर्थ मे ही ग्रहण करने के पक्ष मे है ।

हमारे विचार से 'सखी' के अर्थ मे 'मा', 'माई' या 'माय' शब्द के सम्बोधन का मूल अपभ्र श-साहित्य मे है । उदाहरणत , आचार्य हेमचन्द्र के इस दोहे में प्रयुक्त 'अम्मडि' शब्द हमारे मतानुसार कदाचित् 'सखी' का ही बोध करता है, 'मा' का नही, क्योकि कोई भी स्त्री प्रिय के प्रति अपने मन के ऐसे प्रणयमूलक भावोद्गार अपनी सखी से ही कह सकती है–माँ से नही । यथा —

अम्मडि पच्छायावडा, पिउ कलहियउ विआलि ।[4]
घइ विवरीरी बुद्धडी, होइ विणासहो कालि ।।

---

1 मीराँ-पदावली, पृ 130, स शभुसिंह मनोहर

2. वही, पृ 116

3 लोकसाहित्य की सास्कृतिक परपरा, ले डा मनोहर शर्मा; पृ 115

4 अपभ्र श-व्याकरण, हेमचंद्राचार्य । अनु श्री शालिग्राम उपाध्याय ।

इसके अनुवादक श्री शालिग्राम उपाध्याय ने इसका अर्थ यो किया है[1]–"री अम्मा ! पश्चाताप हो रहा है कि प्रिय से विकाल मे (साय समय) झगडा हुआ, निश्चय ही विनाश काल मे विपरीत बुद्धि होती है।" हमारी समझ मे यहाँ 'अम्मडि' का अर्थ 'सखी' ही किया जाना चाहिए।

जिके=उनको। **पडाय लीधा**=गिरवा लिया।

विशेष – मध्ययुग मे पराजित होकर आत्मसमर्पण करने वाला अपने मुँह मे तिनका ले लेता था, जो उसके प्राणो की भिक्षा माँगने का सूचक था। 'वश भास्कर' मे भी तृण मुख मे लेने का उल्लेख हुआ है —

तृण मुख अब लीधो तिकाँ, तो उचिताँ परिणाइ।[2]

इसी भाँति 'गजगुणरूपकबध' मे भी —

जिह भखतौ आमख, तेह **दतै त्रिण खध्धौ**।[3]

वीरमदे री वार्ता मे इस आशय का स्पष्ट उल्लेख हुआ है —

'तरै कवरा उतरि नै **दांता तिणा लीया नै कह्यौ-माने जीवता जाण द्यो**।'[4]

जैन कवि समयसुन्दर ने भी इसका उल्लेख किया है —

मारता मारता केइ नाठा, कईक **मुख लीधा तृण काठा**।[5]

राजस्थानी टीका—हे माता ! म्हारा पती रा घर माथै दुसमण आया और जुद्ध कर हारिया तठै उण झूपडा रा तिणखला लीधा। अरथात अरिया जिके आपरा झूपडा रा तिणखला मूढा मूढा प्रतै पकडिया, पण धव–धणी वे ही तिण ले ने जावण दीधा नही और पाछा पडाय लीधा, क्यूकी धकै जाता कह दै उणा रै घर रा त्रण ले आया, इण कारण सू ।।इति।।

'आघा-आघा' ऊचरै, राउत तेथ हरौल।
पग खरडै हलवल पडै, बरडै गलबल वोल ।।257।।

---

1 अपभ्र श-व्याकरण, पृ. 77,

2 वशभास्कर, पंचमराशि, एकादशमयूख, पृ, 1817,

3 गजगुणरूपकबध, पृ 127,

4 वीरमदे री वार्ता, वीरमाण, पृ० 3, (परिशिष्ट), स. श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूडावत।

5. सीताराम-चौपाई, कविवर समयसुंदर–कृत, पृ० 54, स श्री अगरचद नाहटा, श्री भँवरलाल नाहटा।

प्रसंग--वीराङ्गना द्वारा अपने शूरवीर पति के शौर्य और आतक की व्यजना —

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत जब शत्रुसेना पर धावा बोलते है तो उसके हरावल (अग्रभाग) मे स्थित योद्धा भयत्रस्त हो अपने साथियो को–'दूर रहना, दूर रहना' (बचना-बचना) पुकार उठते है, उनके पैर लडखडाने लगते है, उनमे भागने के लिए खलबली मच जाती है और डर के मारे उनके मुँह से अटपटे बोल निकलने लगते है (भय के कारण उनकी वोली भी बन्द होजाती है, जिसके फलस्वरूप प्राण-रक्षा के लिए किया गया उनका कातर प्रलाप भी समझ मे नही आता)।

अन्यार्थ—प्रथम पक्ति का अर्थ यो भी किया जा सकता है—शत्रुसेना के हरावल के योद्धा वही खडे-खडे अपने साथियो को 'आगे बढो,' 'आगे बढो' कह कर पुकारते है किन्तु मेरे शूरवीर कत को देखते ही उन योद्धाओ के पैर लडखडाने लगते है, उनमे भागने के लिए भगदड मच जाती है तथा भय के मारे वे अस्पष्ट प्रलाप करने लगते है।

शब्दार्थ—**आघा-आघा** – 1 दूर ही रहना, दूर ही रहना (बचना-बचना)। 2 द्वितीयार्थ मे–आगे-बढ़ो, आगे-बढो।

तुलनीय —

> **अग्घे अग्घे** होउ यो बैडे भट वक्कै।[1]
> त्यों त्यों पय पच्छे लगै छत्ती धक धक्कैं॥

ऊचरै=पुकारते है। **राउत**=योद्धा। **तेथ**=वहाँ। **हरौल**=हरावल, सेना का अग्रभाग। **खरडै**=पैर मे काँटा चुभ जाने या कोई घाव होजाने पर जब मनुष्य या पशु अपने पैर को थोडा–थोडा करके उठाता, पटकता व घसीटता हुआ चलता है, तो उसे खरडना कहते है। यहाँ भय के मारे पैर लडखडाने से आशय है।

हलवल=खलबली, भगदड, प्राण बचाने के लिए एक दूसरे से पहले भागने की होड मे। **बरड़ै**=प्रलाप करते। **गलबल बोल**=अस्पष्ट वचन, अटपटे बोल। मिलाइए —

> बोले पारसी ऐरसी **गल्ल बल्लो**।[2]

राजस्थानी टीका—फेर जुद्ध मे जावै तठारी वीरता कहै—जिण वेलां

---

1 वशभास्कर, सप्तमराशि, त्रयस्त्रिशमयूख, पृष्ठ 3181

2. वचनिका राठौड रतनसिंघ महेसदासोत री, पृ० 50, स० श्री डा० रघुबीरसिंह एव श्री काशीराम शर्मा।

स्त्री कहै-म्हारौ पती जुद्ध मे जावै तौ हरोल—आगली अणी रा रावत है तिकै कहै—'आघा रहजो', 'आघा रहजो'—उण वेला रावतारा पग खरडै—डिगण ढूक जावै, हलवल—न्हासण री आगत लाग जावै ने घणा जणा बरडै—कायरता सू कहै 'मारै रै मारै'। गलबल बोल-मूढा माय स्पष्ट वाणी नही नीसरै, गलबल बोल नीकलै—इसौ वीर है ।। इति ।।

भाजड भागाँ लूटियाँ, करता कवण सिराह ।
ई घर आयाँ राउताँ, ई रजपूती वाह ।।258।।

प्रसग—कवि अथवा वीर-पत्नी की आक्रमणकारी शत्रुओ के प्रति उक्ति —

व्याख्या—युद्ध मे भगदड मच जाने पर भागते हुए कायरो को लूटने की भला क्या सराहना कीजाए ? हे योद्धाओ ! प्रशसा तो आपके इस घर पर चढ आने की—इस रजपूती की है । शाबाश है आपको, जो इस घर पर पधारे है ! !

[अर्थात् अब आपको पता चलेगा कि शूरवीर के घर पर 'धाडा' डालना क्या होता है ! आपकी रजपूती अब निकल जाएगी !]

पाठान्तर—इस दोहे के प्रथम चरण मे, टीका मे, 'माजन मागा लूटियाँ' पाठ है, जिसे श्री स्वामीजी ने भी स्वीकार किया है । किन्तु टीकाकार ने जहाँ 'माजन मागा' का अर्थ 'महजना री लुगाया' किया है, वहाँ श्री स्वामीजी ने दोनो शब्दो का अर्थ क्रमश 'महाजनो (व्यापारियो) और माँग खाने वालो' किया है ।

हमारी समझ मे उपर्युक्त पाठान्तर मानने पर अर्थ यो किया जाना चाहिए —

'महाजनो (व्यापारियो) को **मार्ग मे** लूटने पर भला कौन सराहना करता है ?'

अर्थात् 'मागा' का अर्थ 'मार्ग मे' किया जाना चाहिए, न कि 'माँगने वालो' एव 'स्त्रियो', जैसा कि क्रमश श्री स्वामी जी व राजस्थानी टीकाकार ने किया है । मध्ययुग मे व्यापारियो को बीच मार्ग मे डाका डाल कर लूट लेना एक सामान्य बात थी । हमने डा० कन्हैयालालजी सहल आदि सम्पादको द्वारा सम्पादित सस्करण के पाठ को स्वीकार किया है ।

शब्दार्थ—**भाजड़**=भगदड (मचने पर) । **भागाँ**=भागते हुओ को । **कवण**=कौन । **सिराह**=सराहना । **ई रजपूती**=इस क्षत्रियत्व (वीरता) ।

राजस्थानी टीका—धाडायना नै वीर आदमी री लुगाई कहै छै—हे भडा ! माहजना री लुगाया नें, लूटता ताहरी कुण सराहना करतौ ? बिणिया-

णीया नें तो हर कोई लूटलै, पण इण वीर जोधार रा घर माथै आया हौ तौ रग है थारी रजपूती ने ! व्यग-पाछा कुशल नही जासौ ।। इति ।।

कत घणौ ही साकडौ, घेरौ घर रै दौल ।
वाभी देखण हूलसै, सेला री घमरोल ।। 259 ।।

व्याख्या—हे कत ! शत्रु का घेरा घर के चारो ओर निपट समीप ही पडा हुआ है। इधर भाभी भालो के घमाघम प्रहार देखने के लिए उल्लसित होरही है।

[अत. भाभी को भालो का भयकर युद्ध दिखला कर उसका मनोरथ पूर्ण कीजिए। इतने निकट से अपने मनचाहे युद्ध का दृश्य देखने का ऐसा अच्छा अवसर फिर उन्हे कब मिलेगा ?]

अपने शूरवीर पति को युद्धार्थ प्रेरित करने की कैसी सुन्दर युक्ति है ! भाभी के अनुरोध को भला कौन देवर टाल सका है ? इसमे वीर-पत्नी की वीरतापूर्ण मनोवृत्ति का भी सहज ज्ञापन होगया है, जो स्वय अपने पति को लडते देखने मे रसानुभव करती है।

शब्दार्थ—**सांकड़ौ**=समीप। **दौल**=चारो ओर। **हूलसै**=उल्लसित या उत्कठित होरही है। **घमरोल**=भयकर शस्त्र-प्रहार।

राजस्थानी टीका—जुद्ध करता पती नै कहै—हे कथ ! घर रै दोलौ घणौई साकडौ दुसमणा रौ घेरौ है। अरथात घर रै नैडा आय गया है, तोई वाभी दुसमणा सू लडता भाला री घमरोल देखण ने हुलसै छै। दोनू सूरवीर अडर स्त्रीया है, क्यू कि कायर होवै, तिकै कै तो कूकै कै न्हासण री करै अर आरा मन मे ओ विसवास है म्हॉराइज जीतसी। ईण वासतै भाला री घमरोल देखण रौ कहै। केइ वार पहला जुद्ध देखियौ है—औ भावारथ छै ।। इति ।।

कत मचाडै नहँ कधी, काचाँ रै घर कूक ।
मुडै विरोलै माझिया, रोलै सोणित रूक ।।260।।

व्याख्या—कत कभी भी कायरो के घर रोना-पीटना नही मचवाते (दीनो व कायरो को नही मारते)। वे तो युद्ध मे रण के माँझी (मुखिया) शूरवीरो को ही मौत के घाट उतार कर उनके रुधिर से अपनी तलवार तृप्त कर लौटते हैं।

शब्दार्थ—**मचाड़ै**=मचवाते है। **कधी**=कभी। **काचाँ रै**=कायरो के, युद्ध मे कच्चाई दिखाने वाले। यथा —

मारुवै राव **काचौ** मतौ मडियौ।[1]

---

1 बिन्हैरासो; पृ० 52; स० श्री सौभाग्यसिंह शेखावत।

कूक = रोना-पीटना । **मुडै** = लौटते है । **विरोलै** = दलन कर; मार कर; मौत के घाट उतार कर। **माझियां**=रण के मुखिया शूरवीर। **रोलै** = युद्ध मे, 'रोला' राजस्थानी मे युद्ध का भी वाचक है । यथा —

रौला हेक माहि दो रौला ।[1]

डा० सहलजी आदि सपादको व श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'सानता है' किया है । **सोणित** = रक्त । **रूक** = तलवार ।

राजस्थानी टीका—फेर आपरी किण ही सखी नै कहै—हे सखी ! म्हारै कथ कदेई काचा—कायरा रै घरे हाक मचावै नही । जुद्ध मे माझिया ने विरोलै मारने सोणित—लोही सू रूक-तरवार रग नें पाछौ मुडै छै—इण मे पती री वीरता दिखाई है ।। इति ।।

पग पग हैवर पाडिया, गैवर माता गाज ।
रण सेजा धव पौढियौ, भडा गरूरी भाज ।।261।।

व्याख्या—पद-पद पर घोडो का दलन कर, मदोन्मत्त हाथियो का गजन कर तथा सुभटो के गर्व का भजन कर मेरे शूरवीर कत रणशय्या पर सोगए है !

शब्दार्थ—**हैंवर** = (स० हयवर) घोडे । **पाड़िया** = मार गिराया, दलन किया । **गैवर** = हाथी, गजवर । **माता** = मदोन्मत्त । **गाज**=गजन कर, हनन कर । **धव**= कत, पति । **पौढियौ**=सोगया, वीरगति को प्राप्त हुआ । **भडां**= सुभटो के । **गरूरी**=गर्व । **भांज** = नष्ट कर ।

राजस्थानी टीका—कोई सखी पती मारिजियौ सो खेत देख सखी ने कहै छै—हे सखी ! पग-पग माथै तो जुद्ध मे जिण हैवर—घोडा पाडीया है, माता—मतवाला हाथीयारा गरा (घणा) कर दीधा है, पछै रिणसेझ मे धव (पती) पौढीयौ है—घणा भडा रै मगरूरी ही, सो भाग ने ।। इति ।।

इसडै टोटै हू सखी, वारी वार अनत ।
पोत जणीमे मोतियाँ, चूडौ मैंगल दत ।।262।।

व्याख्या—हे सखी ! कत की ऐसी निर्धनता पर मैं तो असख्यश बलिहारी हूँ, अगणित बार न्योछावर हूँ, जिसमे मुझे [केवल] गजमुक्ताओ का कठहार और गजदतो का चूडा प्राप्त हुआ है ।

[अर्थात् पति निर्धन है, किन्तु वीर है । अत उसने शत्रु के हाथियो का हनन

---

1. सूरजप्रकास, भाग 1, पृ० 129,

कर घर मे गजमुक्ताओ और गजदतो का ढेर लगा दिया है। फलत वीर-पत्नी को अपने कठहार (टेवटे) मे पिरोने के लिए गजमोतियो तथा चूडे के लिए गजदतो की कमी नही है। बस, ये दो ही सुहागचिन्ह उसके शरीर की शोभा वढाते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई आभरण उस वीर ललना को सुलभ नही। निर्धन पति स्वर्णाभूषण कहाँ से लाए ? परन्तु उसकी आवश्यकता ही क्या है ? शौर्य ही जिस वीर दम्पति का शृगार हो, उसके लिए रत्नाभरणो का क्या मूल्य है ?]।

शब्दार्थ—**इसडँ**=ऐसे। **टोटै**=धनाभाव, निर्धनता। **वारी**=बलिहारी। **पोत**=वे बारीक मोती (चीड), जो 'टेवटे' मे पिरोए जाते है, कठाभरण। **जणीमे**=जिनमे। **मैगल**=हाथी (स० मदकल)।

विशेष—सामान्य स्त्रियो को ही नही, अपितु रभादि अप्सराओ तक को गजमोतियो का कठहार व गजदतो का चूडा अत्यन्त प्रिय है —

हुड हुड नारद हस्सिय, पाणग्रहण पेखिय सुहडा।[1]
मोताहल गजडसण, रभा आभूखण चुणए॥

राजस्थानी टीका—कोई वीर री स्त्री पती रौ पौरष कहै छै, हे सखी ! इसा तोटा ऊपरै तौ हूँ अनेक वेळा वारणैं जाऊ, जिण तोटा मे ही पोत (तेवटा री चीडा) तौ गजमोतीया री, ने चूडौ ही उणहीज मैंगल (मदगल) मदोन्मत्त हाथीरा दात रौ है। प्रयोजन—पती जुद्ध मे दुसमणा री फौजा रा हाथी मारने तौ मोतिया रा ढिगला दिया है, जिणरा प्रोत वा पोत-चीडा, ने हाथिया रै दाता रा चूडा मोल माँगणा रौ काम नही, सो इसा वीर पती रा घर रा तोटा पर ही वारणैं जाऊँ छू ॥इति॥

बीजा गामा बाहरू, नीदाणौ घर नाह।
ढोलणियाँ धण तेडवे, गान मडाडै गाह ॥263॥

कविवचन —

व्याख्या—कत घर मे सोए हुए हैं और उधर दूसरे गाँवो मे 'वाहर' (शत्रु का पीछा करने के आह्वान) का ढोल बज उठा। इस पर वीर-पत्नी ने अपने शूरवीर स्वामी को जगाने के लिए ढोलनियो को बुलवा कर घर मे सिधूराग गवाना शुरू कर दिया।

[प्रस्तुत दोहे मे पति व पत्नी—दोनो की वीरता का चित्रण हुआ है। पति दूसरे गाँवो मे बजने वाले 'वाहर' के ढोल को सुनकर ही युद्ध मे चल पडता है—यह उसकी वीरता का परिचायक है एव पत्नी, पति-सयोग-सुख से अधिक युद्ध को महत्त्व

गजगुण रूपकबध, पृष्ठ 142,

देती हुई सिंधू राग छिडवा कर उसे जगाने का उपक्रम करती है। ढोलियो के स्थान पर ढोलनियो को बुलाने का कारण यह है कि पति रगमहल मे सोया हुआ है, अतः ढोली वहाँ जा नही सकते। परन्तु वीर घरो की ढोलनियाँ भी रणराग गाने मे उतनी ही विदग्ध है, जितने ढोली।]

शब्दार्थ—**बीजा**=दूसरे। **बाहरू**=आक्रमण करने वाले या वित्त लेकर भागने वाले शत्रु का पीछा करने हेतु बजाया जाने वाला आह्वानसूचक ढोल। **नींदाणौ**=सोया हुआ। **तेडवे**=बुला कर। **मडाड़ै**=शुरू करवाती है। **गाह**=1 घर मे (स० गृह) उदाहरण —

लखपतिसाह रतन्न रे, बटे बधाई **गाह**।[1]

अथवा 2 नाश का या युद्ध का (गान), अर्थात् सिधूराग। 'नाश' या युद्ध के अर्थ मे 'गाह' शब्द के प्रयोग का उदाहरण —

धरी खरी स रीत निबाही बाज फूलधारा,[2]
गोलकू डे रीत चू डे अरी करे **गाह**॥

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर री निसक स्त्री सारू कवी कहै छै—पती केई जुद्ध कर थाकौ आयौ है, सो तौ निसक घर मे सूतौ छै, दुसमणा री डर नही है नै गामा-गामा री वाहरा ऊपर आवण ने तयार होवै है। अठी इण री स्त्री सो ढोलणिया ने बुलाय झगडा री तेवड नें गाह—जुद्ध रा गान गावणा सिंधू राग गवाडै छै। प्रयोजन, दोनू ईसा वीर सो वो तौ खूनी थकौ निसक सूतौ है, गुमर औ है कै आया जिता ने ही मार भगावसूं, ने इण ही भरोसा पर स्त्री सिंधू करावै है—आदि कारण है॥ इति॥

रण सूता सब गेहरा, बचियौ देवर आय।
वाभी सुणताँ वाहरू, लीधा लोह लुकाय॥ 264॥

व्याख्या—घर के सब लोग तो एक–एक कर रणशय्या पर सोगए (वीरगति को प्राप्त हुए), केवल एक देवर ही बचा हुआ घर आया। इतने मे पुन वाहर का ढोल बज उठा, जिसे सुनते ही भाभी ने शस्त्र छिपा दिए ताकि उन्हे लेकर देवर फिर युद्धार्थ न चल पडे।

[इस दोहे मे एक वीर कुल की उत्सर्गमयी परम्पराओ के सदर्भ मे देवर की

---

1 पन्ना-वीरमदे की वार्ता, पृ० 6, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।
2 बदरीदास खिडियौ, रा० स० कोस, प्रथम खड, प्र० जिल्द, पृ० 773 से उद्धृत।

कर्तव्यशीलता एव वीरता का चित्रण हुआ है । भाभी को विश्वास था कि युद्ध से हारा थका एव घायल होकर आने पर भी उसका वीर देवर 'वाहर' का ढोल सुनने पर एक क्षण के लिए भी नही रुकेगा। अत यदि कदाचित् यह भी युद्ध मे मारा गया तो वश ही समाप्त होजाएगा—इस डर से भाभी ने उसके शस्त्र छिपाना ही उचित समझा ।]

शब्दार्थ—**रण सूता** = युद्ध मे मारे गए; वीरगति को प्राप्त हुए । **गेहरा** = घर के । **लोह** = शस्त्र ।

उदाहरण—सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड सिर,[1]
विषम उण मोड सिर लोह बूठो ।

लीधा लुकाय = छिपा लिए ।

राजस्थानी टीका—कवी एक वीर आदमी रै घर री वात कहै—रिणखेत मे घर रा सारा मारीजगा, एक देवर ऊबरियौ । इतरै धडायतां सारू गामरी वाहर हुई । आ सुणतां ही वाभी देवर रा लोह—सस्त्र छिपाय दिया । कारण, कै सारा सूं पहला औ भिडसी, सो मारीज गौ, तो बाल-बचा मोटा कुण करसी ? देवर, सारा घर रा मारीजगा, तौ ही मरण ने तयार हुयौडौ—आदि प्रयोजन ।। इति ।।

बैरी बाडे बासडौ, सदा खणकै खाग ।
हेली कै दिन पाहुणौ, ऊढा भाग सुहाग ।।265।।

व्याख्या—बैरियो की बस्ती बीच तो घर है और ऊपर से नित्य तलवारें खनखनाती रहती हैं (लडाई ठनती रहती है) । ऐसे मे, हे सखी ! इस विवाहिता के भाग्य मे सुहाग भला कितने दिन का मेहमान है ? (अर्थात् मेरे सुहाग का कोई भरोसा नही ।)

अथवा, 'भाग सुहाग' को एकात्मक मान कर इसका अर्थ 'सौभाग्य' अर्थात् 'पति-सुख' भी किया जा सकता है, जैसेकि 'ये दोनो शब्द इस अर्थ मे राजस्थानी साहित्य मे प्राय एक साथ प्रयुक्त हुए है, देखो 'शब्दार्थ' मे उदाहरण ।

[भाव यह कि पति शूरवीर और स्वाभिमानी है । अत शत्रुओ के बीच रहने पर भी वह उनसे दब कर रहने वाला नही है । फलत आए दिन तलवारो की झडप होती रहती है । ऐसी स्थिति मे वह उनसे लडता हुआ कभी भी मारा जा सकता है । फलत इस सुहागिन का सुहाग, मेहमान की भाँति, कभी भी विदा ले

1 गीत पाबू राठौड रौ; कविराजा बाँकीदास रौ कियौ ।

सकता है! ध्वनि यह कि शूरवीर, बैरियो मे बस कर भी, अपने प्राणो की परवाह किए बिना सदा स्वाभिमान से ही जीता है।]

शब्दार्थ—**बाडै** = घरो के बीच, अहाते या बस्ती मे। **बासडौ** = निवास, घर। **खणकै** = खनखनाती है। यथा —

सणणंकै खुरसाण, खागधाराँ **खणणकै**।[1]
रणणकै 'रगराग, झलमपाखर झणणकै।

खाग = खड्ग। **हेली** = सखी। **कै दिन** = कितने दिन। **ऊढा** = विवाहिता। **भाग** = भाग्य मे। **सुहाग** – सौभाग्य, पतिसुख। श्री स्वामीजी ने 'भाग सुहाग' का अर्थ 'सौभाग्य और सुहाग' किया है। 'भाग-सुहाग' राजस्थानी मे प्राय साथ-साथ भी प्रयुक्त हुए है एव सामान्यतः 'सौभाग्य' (पति-सुख) के ही वाचक होकर आए है।

यथा —थारो **भाग सुहाग** थिर, कहूँ जिका सुन कॉन।[2]

तथा —प्यारी पीतम हित बधौ, बधौ **भाग सौभाग**।[3]

'भाग सुहाग' को क्रमश धन-समृद्धि एव पति-सयोग जन्य सुख का भी वाचक माना जा सकता है। बोलचाल मे भी सौभाग्यवती को 'सुहागण भागण' ही कहा जाता है।

विशेष—तुलनीय—

घर घोडी, पिव अचपलो, बैरी बाडे वास।[4]
नित उठ ढोल खडक्कवै, कद चुडलै री आस।

राजस्थानी टीका—एक वीर स्त्री सखी नें कहै छै—हे सखी! बैरिया रै विचै तौ वास, सदा खणकै खाग—सदा तरवार वाजै, सो हेली! ऊढा, विवाह, विवाह कियौ है। पण म्हारै भाग नै सुहाग कितरा एक दिना रौ प्रामणौ? अर्थात् किण ही न किण ही झगडा मे पती काम आवसी और हू सत करसू। सारास—औ सूरवीर है, किण री सहै नही, मारीजसी, जद हू सत करसू ॥इति॥

बैद रहीजै राजघर, पावै केथ गरीब।
हेली दूध धपाडियौ, म्हारै नीम तबीब ॥266॥

---

1. वशभास्कर, सप्तमराशि, एकादशमयूख, पृ० 2674
2. पना-वीरमदेव की वार्ता, पृ० 132
3. वही, पृ० 135
4. श्री डा० कन्हैयालालजी सहल आदि सम्पादको द्वारा सपादित 'वीर सतसई' से उद्धृत।

प्रसग—किसी वीराङ्गना का पति युद्ध मे घायल होने पर नीम के पत्तो की पुल्टिश से ठीक होगया। इस पर वीराङ्गना नीम के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता प्रकट करती हुई कहती है —

व्याख्या—वैद्य तो राजघरानो की ही शोभा बढाएँ। हम गरीब भला उन्हे कहाँ पाएँगे ? अर्थात् उन तक हमारी कहाँ पहुँच है ? हे सखी ! अपने तो दूध पिलापिला कर तृप्त किया हुआ नीम ही वैद्य है।

इसे वैद्य को सम्बोधन मान कर भी अर्थ किया जा सकता है।

शब्दार्थ—**रहीजे** = रहे। **केथ** = कहाँ। **दूध धपाड़ियौ** = दूध से सीच-सीच कर तृप्त किया हुआ, अर्थात् पुत्र की तरह अत्यन्त प्यार व यत्न से पाला हुआ। **तबीब** = वैद्य।

विशेष—नीम की प्रशसा मे एक अन्य डिंगल-गीत मे व्यक्त भावोद्गारो के लिए देखिए दोहा-सख्या 99 की टिप्पणी।

राजस्थानी टीका—एक वीर पुरुष री स्त्री कहै—पती झगडा कर केइ बार नीब रा पाटा बाध चगौ हुवौ। इण स्त्री पाटा सारू घर मे नीब वाय, दूद पाय वडौ कियो, सो कहै—वैद तो राजाग्रा रै घरे रहौ—म्हारै गरीबा रै मिलै नही, म्है तौ दूद पाय मौटो कियौ है सो म्हारै नीब तबीब है। सारास—पती नीब रा पाटा सूं चगौ हुवौ। सूरवीर है, सो कोई जुद्ध कीधोडौ है ॥ इति ॥

धवल पयपै रे धणी, की दुमनौ घण भार।
ग्रोडे घर रौ ग्रावगौ, करूं पहाडा पार ॥267॥

व्याख्या—बली धवल (श्वेत वृषभ) अपने स्वामी से कहता है—हे स्वामी ! गाडे मे भार अधिक हो जाने से तुम उदास क्यो होरहे हो ? तुम चिन्ता न करो। मै अकेला ही तुम्हारे घर का सारा बोझ खीचता हुआ तुम्हे पहाडो के पार कर दूँगा।

[यहाँ धवल के माध्यम से स्वामिभक्त शूरवीर के शौर्य की व्यजना कीगई है, जो अपने आश्रयदाता स्वामी के सारे बोझ को स्वय वहन करता हुआ उसके सकटो का निवारण करने हेतु सदैव तत्पर रहता है।]

शब्दार्थ— **धवल** = श्वेत वृषभ, जो डिंगल-काव्यो मे अतुलित बल, पराक्रम एव स्वामिभक्ति के प्रतीक-रूप मे गृहीत हुआ है। 'धवल' की परिभाषा करते हुए कविराजा बाँकीदास लिखते है :—

कालौ धवल कहाय नह, धोलौ धवल कहाय ।[1]

पयंपै=कहता है । उदा०—

चहुवाणा दिल्ली गई, राठोडा कनवज्ज ।[2]
राण **पयपै** षान नै, वो दिन दीसै अज्ज ।।

की=क्यो । **दुमनौ**=उदास (स० दुर्मनस्क) । **ओडे**=वहन कर, झेल कर । उदाहरण —

विसमे दीहडौ लियै व्रहमड,[3]
अणभग भुजि **ओडै** असमान ।

आवगौ=भार, यथा —

सारी धर भोगवि गढ साजा[4]
रिण **आवगो** मूझ दे राजा ।

'आवगो' का अर्थ 'सारा', 'सपूर्ण' भी होता है, परन्तु यहाँ हमारी समझ मे यह 'भार' या बोझ का ही वाचक प्रतीत होता है । 'घर रौ आवगौ' अर्थात् घर का भार, बोझ । 'रौ' विभक्ति इसके सज्ञापद होने का ही सूचन करती है । श्री नाथूसिंह महियारिया-कृत 'वीरसतसई' मे भी इसका प्रयोग हुआ है, जहाँ इसका अर्थ 'अकेला' किया गया है, किन्तु इस अर्थ मे 'आवगो' का प्रयोग हमारे देखने मे नही आया । वह प्रयोग निम्नाकित है :—

देखीजै मो नाह री, रीत अनोखी भत ।[5]
घर भाया भेला रहै, रण **आवगो** रचत ।।

विशेष—जैसा कि हम दोहा सख्या 56 की टिप्पणी मे कह आए है, 'धवल' डिंगल-काव्यो मे अपराजेय साहस, स्वामिभक्ति और पराक्रम का प्रतीक मान ागया है, जिसे लेकर अपभ्र श और डिगल-काव्यो मे एक से एक अनूठे भावोद्गार व्यक्त किए गए है । सूर्यमल्ल का यह दोहा हेमचद्राचार्य के निम्न दोहे से तुलनीय है —

---

1 बाँकीदास-ग्र थावली, भाग 1, पृ० 39,
2. महाराणायशप्रकाश, पृ० 149,
3. राठौड सुजानसिंह रौ गीत, प्राचीन रा० गीत, भाग 10, पृ० 142 स० कविराव मोहनसिंह, साँवलदान आशिया ।
4. वचनिका, राठौड रतनसिंघ महेसदासोत री, पृ० 24, स० श्री डा० रघुवीरसिंह व श्री काशीराम शर्मा ।
5 वीरसतसई, श्री नाथूसिंहजी महियारिया, पृ० 27,

धवल विसूरइ सामि अहो, गरुआ भरि पिक्खेवि ।[1]
हउँ कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहिं, खण्डइँ दोण्णि करेवि ।

इस सदर्भ मे कविराजा बॉकीदास का यह दोहा भी द्रष्टव्य है —

कोयक सकट कुसागडी, भार विसेस भरत ।[2]
धवल पडप्पण आपरै, खाधै ले निबहत ।।

राजस्थानी टीका—धवल—धौलौ धोरी धणी ने कहै—हे खाडेती ! धवलौ पयपै—कहै रे हो धणी ! थू दुमनौ क्यू ? इतरौ भार गाडा मे देखने सारा घर रौ भार एकलौ खैच नै पहाड रै परै कर देऊँ ।

अन्योक्ती अलकार है । खुद चीज रौ नाम न लेवै ने दूसरा रा नाम सू वरणण करै सो अन्योक्ती । अठै आदमी रो नाम न हयौ ने धोरी रौ वरणण कीयौ । —कोई सिरदार रै कनें वीर आदमी है । वो कैवै है कै आप सत्रुआ रौ भार देख क्यूं विचार करौ ? सारी सिरकार रौ काम हु एकलौ पार कर सकू हु । धोरी तौ राजपूत; भार जुद्ध रौ गाडौ । काम रूपी गाडौ । पहाड रूपी मुसकल । ठौड सूं ही काम काढ सकू हू । आप सोच मत करौ–इति भावार्थ ।। इति ।।

भोग मिलीजै किम जठै, नरा नारिया नास ।
यौ ही मायड डायजौ, दीजै सूबस बास ।।268।।

प्रसग—इसमे कायर कन्या की मनोवृत्ति अभिव्यक्त हुई है, जिसके माध्यम से कवि ने परोक्षत कायर कन्या की भर्त्सना की है ।

व्याख्या—जहाँ आए दिन नर नारियो का विनाश होता हो (युद्ध छिडता रहता हो) वहाँ भला दापत्य सुखोपभोग की क्या आशा की जा सकती है ? इसलिए हे माँ ! मैं तो इसी को दहेज समझ लूँगी कि तू मुझे ऐसी जगह देना (ब्याहना), जहाँ सीधे–सादे दीन लोग रहते हो । अर्थात् सुख–शान्ति का वास हो । (लडाई–झगडा न हो एवं मैं शातिपूर्वक दाम्पत्य जीवन का आनन्द ले सकूँ) ।

[ध्वनि यह कि तू मुझे किसी रणबाँके शूरवीर से न ब्याहना, जो अपने स्वभाववश नित्य नए–नए झगडे मोल लेता हो । ऐसे रणरसिक को भला मेरे साथ विलास करने का अवकाश कहाँ मिलेगा ? और यदि वह कही युद्ध मे मारा गया तो मुझे सती और होना पडेगा !] ।

शब्दाथ **भोग**=दाम्पत्य सुखोपभोग । **मिलीजै**=मिले । **जठै**=जहाँ ।

---

1. हेमचद्राचार्य, अपभ्र श-व्याकरण ।
2 बाँकीदास-ग्र थावली, भाग 1, पृ० 42

नास = विनाश; सहार । **मायड़** = हे माँ ! **डायजौ** = दहेज । **सूबस** = सहज ही दूसरो के वश मे होजाने वाले लोग (स० सुवश ?) । अर्थात् सीधे-सादे, दीन-और दब्बू । **बास** = वास हो, रहते हो ।

राजस्थानी टीका—एक कायर स्त्री आपरी मा ने कहै—भाग मे काई मिलै जठै आदमिया रौ नै लुगाया रौ नास होवे । अर्थात् आदमी जूंझ मरै ने लुगाया सत करले—एडा भाग मे काई मिलै ? म्हारै तो माता ओहीज डायजो है । म्हानै तो सुख रै वास परणाजे । अरथात अैडौ सुवस होवै—किणसूई लडै न भिडै । गरीब होवै तो सुख है ।

टिप्पणी—टीका मे प्रथम चरण मे 'भोग' की जगह 'भाग' पाठ है ।

कायर नारी सौक दुख, रोकै वालम गेह ।
धारा अजकौ मो धणी, भला लगाडै देह ।।269।।

प्रसंग—वीराङ्गना की उक्ति है —

व्याख्या—कायर पत्नी सौत (अप्सरा) के डर से अपने पति को घर मे ही रोके रखती है–युद्ध मे नही जाने देती । (अर्थात् युद्ध मे मरने पर स्वर्ग मे अप्सरा पति का वरण कर लेगी, जिसके फलस्वरूप उसे सपत्नी-जन्य दु ख होजाएगा—इस भय से कायर स्त्री अपने पति को युद्ध मे ही नही जाने देती ।) परन्तु मेरा युयुत्सु पति भले ही तलवारो का आलिंगन कर अपनी देह के टुकडे-टुकडे कर दे–मुझे इसकी चिन्ता नही ।

[कारण, पति के वीरगति को प्राप्त होते ही मै भी चितारोहण कर स्वर्ग चली जाऊँगी, जिससे अप्सरा को वरण करने का मौका ही नही मिलेगा । अत मुझे सौत का कोई डर नही ।]

शब्दार्थ—**सौक** = सौत (अप्सरा) । **वालम** = प्रियतम, पति । **धारा** = तलवारो के । **अजकौ** = युयुत्सु, रणाकुल । **भला** = 1 भले ही, अथवा 2 अहो भाग्य है, धन्य है; जैसे—

1 आज रो सूरज **भलां** ऊगो, जो कुवरजी रो दरसण कीयौ ।[1]

2. **भला** हुवो आज रो दिन सुकियारथो, कुवरजी पधारीया'[2]

---

1. कुंवरसी साखला री वात, स डा मनोहर शर्मा, 'मरुवाणी', पृ. 56, सं. श्री रावत सारस्वत ।

2 वही, पृ 39;

तदनुसार पक्ति का अर्थ होगा ' मेरा शूरवीर एव युयुत्सु कत धन्य है, जो तलवारो की धारा मे अपनी देह को झोक देता है, धारा–तीर्थ मे स्नान करता है ।'

लगाड़ै देह = देह लगाते है, अर्थात् आलिंगन करते है ।

राजस्थानी टीका—वीर स्त्री आपरी माता नै कहै–हे माता ! कायर लुगाई सौक रा दुख सू धणी ने जुद्ध मे जाण न दै नें घरे रोकै, हु तौ कहू म्हारौ अजकौ सूरवीर पती भलाई तरवार री धारा रै सरीर लगावौ, हू सोक रै डर सू नही डरू । सारास–पती मारीजै तद अपछरा वर लै वा सोक होजाय जिणसू कायर लुगाया डरै । हू धणी मारियौ सुणता ही सत कर म्हारै पती सू जाय मिलू–पछै सौक अपछरा काही करै ? ॥इति॥

काली चूडौ की तजै, मगल वेला रोय ।
रावत जाई डीकरी, सदा सुहागण होय ॥270॥

प्रसंग—पति के, युद्ध मे वीरगति प्राप्त करने पर उसकी कायर पत्नी सती नही हुई । फलत उसका सुहाग-चिन्ह चूडा उतारा जाने लगा । चूडा उतारते समय वह रोने लगी । इस पर सती होती हुई वीराङ्गना उससे कहती है —

व्याख्या—अरी मूर्खे ! इस मंगल-वेला मे तू रो-रो कर चूड़ा क्यो उतार रही है ? क्या तू जानती नही कि शूरवीर क्षत्रिय-कन्या तो सदा ही सुहागिन हाती है ।

[अर्थात् शूरवीर की बेटी अपने पति के जीवित रहते तो सुहागिन रहती ही है, उसकी मृत्यु पर वह सौभाग्य-परिधान पहने ही सती होकर उससे स्वग मे जा मिलती है । फलतः उसका सुहाग सदा अखड और अटूट बना रहता है, पहले इह लोक मे, फिर परलोक मे । वह कभी विधवा नही होती । तद्विपरीत, पति के मरने पर भी जो स्त्री जीवित रहती है, वही वैधव्य का दु ख देखती है—वीरजा नही । अत सहगमन की इस मगल वेला मे रो नही, हँसते-हँसते चितारोहण कर, ताकि स्वर्ग मे पति के शाश्वत सौभाग्य का सुख प्राप्त हो] ।

सती अपने पति के साथ चितारोहण कर स्वर्ग जाने को अपने विवाह अथवा पुर्नमिलन का ही शुभ पर्व समझती है । अत. उसे वह 'मगल वेला' कर कर पुकारती है ।

शब्दार्थ—**काली** – पगली, मूर्खा । **मंगल वेला** = सती होने के शुभ अवसर पर । **रावत जाई** = शूरवीर क्षत्रिय से उत्पन्न, वीरजा । **डीकरी** = बेटी ।

राजस्थानी टीका—कायर स्त्री ने वीर स्त्री कहै–हे काली! मगल री वेला

(पती काम ग्राया सत कर सुरग मे जाणौ व्याव गिरणौ छै, जिण सूं मगल वेला कही) रोय ने चूडौ क्यूं न्हाकै ? रावत-सूरवीर री डोकरी राड न होवै, सदा सुहागण होवै। अर्थात् पती जीवता सुहाग है, काम ग्राया सुहाग सहत अगनीस्नान कर पती सू स्वर्ग मे जाय मिलै। सुहाग सदा अमर छै ।।इति।।

कै दीठौ हय ग्रावतौ, कै दीठौ पर फौज।
हेली कवण सिखावियौ, उडणौ उडणौ ग्रोज ।।271।।

प्रसंग—पति की युद्ध-त्वरा व उमग की प्रशसा करते हुए वीर-पत्नी कहती है :—

व्याख्या—या तो उन्हे अश्वारूढ हो रणाङ्गण मे आते ही देखा या फिर वज्रवेग से शत्रुसेना पर टूट कर पडते हुए ही। (अर्थात् एक क्षण वे घोडे पर चढ युद्ध मे आते दिखाई दिए, तो दूसरे ही क्षण शत्रुसेना पर बाग उठाते नजर आए)। हे सखी ! इस प्रकार उड-उड कर आक्रमण करने का यह प्रचड पराक्रम उनको किसने सिखला दिया ?

शब्दार्थ—**कै** = या तो। **हय** = घोडे पर। **पर फौज** = शत्रुसेना। **उडणौ-उडणौ ग्रोज** = उड-उड कर आक्रमण करने का तेज या पराक्रम।मिलाइए :—

'हे पीथा, ग्रमरु वडा हिन्दू था, वा **उडरणा सेर था**'।[1]

राजस्थानी टीका—पति री वीरता देख कहै-हे सखी ! जुद्ध मे जावता कै तो हय-घोडो ग्रावता दीठौ कै पर-वैरियाँ री फौज मे जावता वैरियौ दीठौ। इण ग्रोज-तेज सू उडण वाला नें (लोकीक मे कहै है-फलाणो वाता मै उडतौ हौ, इण तरैतेज मे उडतौ हौ) ग्रौ इण तरै उडणौ किण सीखायौ ? सारास-जुद्ध रौ इतरौ उमग छै, ग्रने सूरवीर छै ।।इति।।

दिन मे देखूँ जूझतौ, निस घावां बरडाय।
घडी न सूती नीद भर, हेली इण घर ग्राय ।।272।।

प्रसग—वीर-पत्नी अपने शूरवीर पति के विषय मे कहती है :—

व्याख्या—दिन मे तो उन्हे शत्रुओ से जूझते देखती हूँ और रात मे घावो से घायल होकर बडबडाते हुए (हर क्षण शत्रु को मारने का ध्यान मन मे बसा होने के कारण वे नीद मे भी 'मारो-काटो' आदि शब्द ही बडबडाते रहते है)। हे सखी ! यो इस घर मे आए बाद मैं तो एक घडी के लिए भी सुख की नीद नही सो सकी हूँ। अर्थात् रात और दिन युद्ध ही युद्ध का आलम छाया रहता है।

---

1 दयालदास री ख्यात, पृ 133

शब्दार्थ—घावां = घावों से । **बरडाय** = नीद मे बडबडाते है, प्रलाप करते है । यह वर्णन मनोवैज्ञानिक है, जो इस बात का परिचायक है कि वीर के अवचेतन मे भी शत्रु से प्रतिशोध लेने का भाव कितना प्रबल था, जिसके फलस्वरूप वह नीद मे क्रुद्ध हो बडबडाता है ।

विशेष—तुलनीय —

मतिवाला घूमै नही, नहँ घायल बरडाय ।[1]
बालि सखी ऊ द्रंगडौ, भड बापडा कहाय ।।

राजस्थानी टीका—एक सूरवीर री स्त्री कहै—हे हेली ! म्हारा पती नै दिन रा तौ जुद्ध करतौ देखू छू ने कै रात रा घावा मे बरडावतौ—बकतौ— मारौ-मारौ—इयू करता देखियौ है । आज ताई इण घर मे आय नै सुख भर कदेई सूती नही । अर्थात् इसौ सूरवीर है, सो जुद्ध बिना कोई दिन खाली न जावै ।।इति।।

हू हेली अचरज कहूँ, घर मे ,बाथ समाय ।
हाकौ सुणता हूलसै, मरणौ कोच न माय ।।273।।

व्याख्या—हे सखी ! तुझे एक आश्चर्य की बात बताती हूँ कि मेरे प्रियतम, जो रगमहल मे मेरी बाहुओ मे सहज ही समा जाते है, वे ही मरणोत्सुक कत, युद्ध का हल्ला सुनते ही रण की उमग मे ऐसे उल्लसित हो उठते है कि कवच मे भी नही समाते !

शब्दार्थ—बाथ = बाहुपाश, बाहुओ । **हाकौ** = युद्ध का होहल्ला । **मरणौ** = मरने वाला, मरणोत्सुक शूरवीर । **कौच** = कवच ।

विशेष—सूर्यमल्ल ने अपने अनक दोहो मे एक ही भाव की पुनरावृत्ति की है, जो कभी-कभी नीरस लगने लगती है । प्रस्तुत दोहा भी उन्ही मे से एक है, जिसमे व्यजित भाव दोहा-सख्या १९८ व २०० मे व्यक्त किया जा चुका है । साथ ही, आशिक रूप मे दोहा-सख्या १५१ व २२१ मे भी । जान पडता है, सूर्यमल्ल को वीरोल्लास से उल्लसित होने के इस भाव के प्रति कुछ विशेष अनुरक्ति है, जिसका बार-बार उल्लेख करते हुए हुए वे थकते नही है । परन्तु पाठक के लिए इन पुनरुक्तियो मे कोई रसवत्ता नही रही है ।

राजस्थानी टीका—पती री वीरता कहै छै—हे हेली ! हु आ इचरज री बात कहू हु म्हारै पती री । घर मैं तौ म्हारी बाथ मैं समाय जावै छै ने जुद्ध रौ हाकौ सुण

---

1. हालाँ—झालाँ रा कु डलिया, पृ 21, स. डा मोतीलाल मेनारिया ।

सत्रुआ माथै जावतौ मरणा री वखत तौ अग कवच–वगतर मैं ही न मावै छै। सूर-वीर इसौ है–औ सारास ।।इति।।

गोरण दिन सूती सखी, बागौ ढोल बिणास ।
बाह उसीसौ खींचियौ, जागी पटक निसास ।।274।।

व्याख्या—हे सखी ! विवाह के दूसरे ही दिन–सुहागरात को मैं प्रथम बार प्रियतम के साथ सोई थी कि विनाश (युद्ध, वाहर) का ढोल बज उठा। बस, फिर क्या था ! मेरे सिर का उपधान बनी हुई अपनी बाहु को उन्होने अविलम्ब खीच लिया (युद्ध के लिए चल पडे), जिससे सहसा निद्राभग होने पर [अपने को अकेली पा] मैं निश्वास छोडती हुई ही जागी !

[इस दोहे मे वीर और शृगार का एक अत्यन्त भावपूर्ण एव सश्लिष्ट चित्र उभरा है। कवि ने युद्ध की पृष्ठभूमि मे कुछ ही क्षणो मे घटित प्रणय सवेगो को कितनी मार्मिकता से चित्रित कर दिया है–यह दर्शनीय है। युद्ध के आह्वान-सूचक ढोल की आवाज सुनते ही शूरवीर वर ने अपनी आलिगन-बद्ध प्रिया के सिरहाने से अपना हाथ धीरे से खीच लिया। हल्के से झटके के साथ ज्यो ही प्रिया की नीद खुली, उसने देखा कि वह अकेली है। प्रणय के उन्माद मे डूबी उनीदी आँखे अभी पूरी तरह खुल भी नही पाई थी कि उसके मुँह से एक सिसकनी-सी निश्वास निकल गई ! जागरण और निश्वास की ये क्रियाएँ एक साथ ही घटित हुई।

प्रथम मिलन की रात, और उस पर अपनी नव परिणीता प्रिया को बाहुओ मे कसे हुए भी जो प्रेमी, यो युद्ध का आह्वान सुनने मात्र से ही सब कुछ छोड कर चल देता है, उसकी प्रिया का सुहाग कितने क्षणो का मेहमान है, कौन कह सकता है ? उसकी माँग का सिन्दूर न जाने कब रक्त की लालिमा बन उसकी भाग्यलिपि पर छाजाए–यह सोच यदि वह नववधू अज्ञात आशका से सिहर उठी हो, तो इसमे अस्वाभाविक क्या है !]

शब्दार्थ—**गोरण दिन**=विवाह के दूसरे दिन, सुहागरात को।

उदाहरण–

गोरन दिवस अतीत व्है, समय निसीथ सु आय।[1]

तथा —

रती हूँथ **गोरण-रयण**, मिल्यो जाण मनमत्थ।[2]

---

1 वशभास्कर, सप्तमराशि, तृतीयमयूख, पृ 2913,

2 केहरप्रकाश, पृ. 59, कविराव बख्तावरजी-कृत।

यहाँ 'गोरण दिन' का प्रयोग साभिप्राय है। इसका अर्थ है प्रथम मिलन की रात को। यह केवल तथ्य-कथन नही है, अपितु इसके द्वारा कवि शृंगार की पृष्ठ-भूमि मे वीरत्व का अन्यतम उत्कर्ष दिखाना चाहता है। साधारण रात मे सवेदना का वह स्पर्श नही है, जो 'गोरण की रात' (सुहागरात) मे निहित है।

बागौ=बज उठा। **बिणास**=विनाश, अर्थात् युद्ध का। अथवा, सुहाग का विनाश-कारी। **उसीसौ**=तकिया, उपधान। उदा०—

> लच्छी के **उसीसा** बधकील जय-कुंजर के,[3]
> कज कुच-भृंग के पताका दड रन के।

पटक=छोड कर, छोडती हुई। **निसास**=नि श्वास।

राजस्थानी टीका—कोई सूर पुरष री स्त्री कहै-हे सखी ! गोरण निस–गौरा री रात–परणीजण रै वासै घरै जावै, वातौ रातीजुगा री, ने परणीजण रै दूसरा दिन री रात गौरा री, सो गौरा री रात सूता म्हारै विणास रौ, सत्रुआ लारै चढण ने वाहर रौ ढोल वाजियौ। उण वेला बाहरौ ओसीसौ खैंच ने म्है निसासो जागता ही नाखियौ। खुलासै अरथ पाछौ लिखू छू।—

हे सखी ! गौरा री रात सूती ही, इतरै म्हारै सुहाग रौ विनासकारी वाहर रौ ढोल वाजिऔ। इतरै पती व्याव कियौ हौ, एक रात ही भेलौ रहीयौ नही, इण रौ विचार न कीधौ ने आपरा वीरपणा रौ विचार कर जुद्ध सारू ऊठ खडौ हुवौ, तद म्है म्हारी बांह रौ पती रै सिरहेटै ओसीसो दियौ हौ, सो हाथ ने पाछौ खैंच निसासौ न्हाक ने जागी। कारण, कै आजरी रात ही नही रयौ न जुद्ध मे पती तयार हुवौ, सो ओ सुहाग म्हारै कितराक दिन रौ ।।इति।।

टिप्पणी—टीका मे 'खैंचिया' पाठ है। अतः व्याख्या तदनुसार है।

> सुण मरियौ सुत एकलौ, सासू प्रभणै धार।
> मो जणियौ कायर थियौ, बेटी बलण निवार ।।275।।

व्याख्या—यह सुन कर कि बेटा अकेला ही युद्ध में मर गया है (शत्रुओ को मार कर नही मरा) सास ने विचार कर (सहगमन के लिए उद्यत हुई) अपनी पुत्र-वधू से कहा—बेटी ! मेरा बेटा कायर निकल गया है ! अत तू सती होने का विचार छोड दे। (ऐसे कायर पति के साथ सती होना तुझ जैसी वीराङ्गना के गौरव के अनुरूप नही है, जो बिना शत्रुओ को मारे ही अकेला उनके हाथो मारा गया है।)

---

3 वशभास्कर, प्रथमराशि, षष्ठममयूख, पृ 55

शब्दार्थ—प्रभणै = कहती है। धार = विचार करके। जणियौ = पुत्र। थियौ = हुआ। बलण = सती होना। निवार = रोक दे, छोड दे।

विशेष—शत्रुओ को मारे बिना ही मर जाने वाले पुत्र को राजस्थान की वीर जननी कायर समझती है। इस आशय का एक ऐतिहासिक प्रवाद प्रसिद्ध है, जिसका राजस्थानी टीकाकार ने अपनी टीका मे सविस्तार उल्लेख किया है। अत यहाँ हम उसकी पुनरावृत्ति नही कर रहे है।

राजस्थानी टीका—वीर री माता कहै–बेटौ सत्रुआ रै हाथ एकलौ मारिजियौ (किणने ही विना मारिया मरियौ) सुण इण वात ने धारण कर सासू बेटा री बहू ने कहै—बेटा! म्हारौ जायौ एकलौ मारीजियौ सो कायर हुवौ। थू लारै सत करणौ निवार–मत कर। कारण, मात-पिता दोनू सुद्ध, दोनू पखा, राय हर वौ एकलौ मरियौ, किणनै ही न मारियो।

आ बात बूदी महाराव छत्रसालजी ने उदैपुर राणै अडसीजी सिकार रमता चूक कर गोली लगाई सो मुरछा आय गई। इतरै बूदी रणवास मे मौलियौ गयौ तद वारै माता कयौ—थे सत मत करौ, इण म्हारौ दूध लजायौ। आ कह थाबा मे दूद री धार दी सो थाबौ फाटौ ने उठै राणैजी माथै हाथी पेल लोथ रै ठोकर देराई, इतरै मुरछा खुलतॉ ही हाथी रै हौदे उछल चढ कटारी मू राणाजी रौ काम तमाम कर साथे सुरग गया, हथवाहा ने लीधा। तद माजी ने खबर हुई राणाजी ने मारिया तद माजी कही—इतरी दूर मुरछा आई, सो एक छोरी चुगायौ हौ, सो खबर होता ही म्है उलटौ कर फेर दूद न्हकाय दियौ, पण वो असर अत समे आयौ, जिणरी मुरछा आई। दूजौ म्हारौ पूत म्हारा दूध ने क्यू लजावै? अबै थे सत करौ। इण वातरै कारण औ दुहौ है। थोडा सौ भास मात्र औ अरथ राखियौ छै।। इति।।

पायौ हेली पूत नूँ, सोमल थण लिपटाय।
अचरज अतरै जीवियौ, क्यू न मरै अब जाय।।276।।

प्रसग—वीर माता की उक्ति है —

व्याख्या—हे सखी! मैने अपने स्तनो के विष का लेपन करके ही पुत्र को दूध पिलाया था। अतः वह इतने दिन जीवित रह गया—इसी मे आश्चर्य है। अब वह भला क्यो न मरेगा? अर्थात् अब युद्ध छिडने पर तो उसे मरना ही है।

[भाव यह कि वीर जननियो के दूध मे विष का–सा गुण निहित है, जिसे पीकर पुत्र वीरता से जीने–मरने का महत्त्व जन्म से ही सीख लेता है। यह उस दूध का ही प्रभाव है, जिसके फलस्वरूप उसका वीर पुत्र अपने स्वत्व व स्वाभिमान की

रक्षा के लिए प्राणो की तनिक भी चिन्ता किए बिना हर क्षण मरने-मारने के लिए उद्यत रहता है। अत वीर माता मानो अपने स्तनो से दूध नही, विष ही पिलाती है, जो पुत्र के लिए प्राणघाती सिद्ध होता है। वीर जननियो के ऐसे विषपायी स्तनो ने ही अमृतपुत्रो को जन्म दिया है।]

शब्दार्थ--**सोमल**=विष। उदाहरण —

'अरु रात नू पौढ़ण नू गया तठै दारू मैं **सोमल** दियौ, जिणसू वनमालीदास मर गयौ'।[1]

थण=स्तनो के। **लिपटाय**=लिपटा कर, लेपन कर। **अतरै**=इतने।

राजस्थानी टीका—फेर माता कहै—हे हेली! म्है पुत्र ने दूध थणा रै सोमल लगाय ने पायौ (अरथात साबत रजोगुण रौ उफाण है म्हारै अंग मे, वौ दूध पायौ)। सोमल रौ दूध पी इतरा दिन जीवियौ, जिण रौ इचरज है। अबै जायने क्यू नी मरै? अर्थात् साबत वीरपणा रौ दूध चू गायौ हो॥ इति॥

सुण हाकौ रण आगणै, क्यू न मरै धण ईठ।
मूझ भरोसौ दूध रौ, जहर भजाडै पीठ॥277॥

प्रसग—वीर माता की पुत्रवधू के प्रति उक्ति —

व्याख्या—रणाङ्गण मे युद्ध का हल्ला (वीरो की हुकारो, ललकारो आदि का शब्द) सुन इस प्रिया का इष्ट (प्रियतम)-मेरा शूरवीर पुत्र भला क्यो न मरेगा? मुझे अपने दूध का भरोसा है, जिसे पीकर युद्ध मे पीठ दिखाकर भागना तो जहर है।

अन्तिम चरण का अर्थ यो भी किया जा सकता है 'मेरा विष (दूध का प्रभाव) पीठ के विष को भगा देगा—दूर कर देगा।' विष ही विष के प्रभाव को दूर करता है। वीर के लिए युद्ध मे पीठ दिखा कर भागना विष लेने के समान अर्थात् मरण-तुल्य है। किन्तु माता के दूध का प्रभाव ऐसा है, जो पीठ दिखाने के विष (मरण-तुल्य आचरण) को भगा देता है। अर्थात् उसके अमोघ प्रभाव से पुत्र युद्ध मे प्राण भले ही झोक दे—उससे कभी पीठ नही फेर सकता। यह अर्थ राजस्थानी टीका मे किया गया है।

शब्दार्थ—**रण आगणै**=रणाङ्गण मे, युद्धस्थल मे। **धण ईठ**=प्रिया का इष्ट अर्थात् प्रियतम। अपनी पुत्रवधू के सम्बन्ध से अपने पुत्र के प्रति कथित वीरमाता

---

1 दयालदास री ख्यात, पृ० 218, स० श्री डा० दशरथ शर्मा

का सम्बोधन। **जहर भजाड़ै पीठ** = [1]पीठ दिखा कर भागना जहर है।[2] मेरे दूध का विष (प्रभाव) पीठ दिखाकर भागने के विष को भगा देगा।

राजस्थानी टीका—फेर कहै—जुद्ध रो हाकौ सुणता ही जुद्ध आगमे, जुद्ध करणौ तेवडै, सो हे धण—बेटा री बहु ! ईठ, (देख) वौ कीकर नही मरै ? म्हनै म्हारा दूध रौ भरोसौ है। जहर, जहर ने ही भजाडै—भगावै। पीठ लारै—जैर ने ही म्हारौ दूध लारै राखण वालौ है ।। इति ।।

टिप्पणी—टीकाकार ने 'ईठ' का अर्थ 'देख' किया है, जो सदिग्ध है। उक्तार्थ मे 'ईठ' का प्रयोग हमारे देखने मे नही आया। कदाचित् 'ईख' के साम्य पर उसने 'ईठ' का अर्थ भी 'देख' कर दिया है—'नराँ न ठीणौ नारियाँ, ईखो संगत एह', दोहा स० 191।

और जहर मुख आविया, झट भेजै परधाम।
अतरौ अतर मूझ पै, मारै पडिया काम ।। 278 ।।

व्याख्या—अन्य विष तो मुँह मे लेते ही तुरन्त परलोक भेज देते हैं, किन्तु मेरे विष (दूध) मे इतना अन्तर अवश्य है कि वह काम पडने पर ही मारता है।

शब्दार्थ—**अतरो** = इतना। **मूझ** = मरे। **पै** = 1 दूध मे (स० पय), भावार्थ मे दूध रूपी विष मे। अथवा, 2 परन्तु। **काम पड़ियाँ** – काम पडने पर अर्थात् युद्ध छिडने पर, समर मे।

विशेष—दूध विपयक इन दौहो मे भी प्रायः एक ही भाव की पुनरावृत्ति हुई है।

राजस्थानी टीका—फेर कहै वीर माता—और जैर तौ मूढा मे आवता ही झट परलोक ने भेज दै है, पण म्हारा पय—दूध मै ओ आतरौ—फरक है कै काम पडिया मारै। अर्थात् सत्रुआ सूं जूझनै मरे ।। इति ।।

सासू आखै तेडवी, की मणिहारी आज।
मूझ भरोसौ दूध रौ, चूडा रौ जमराज ।।279।।

प्रसग—अपने युद्धगत पति के वीरगति प्राप्त करने पर वह नया चूडा धारण कर सती होगी—इस आशा से वीर-पत्नी ने पहले ही मनिहारिन को बुला भेजा। इस पर —

व्याख्या—सास अपनी पुत्रवधू (वीर-पत्नी) से कहती है कि मनिहारिन को भला आज किसलिए बुलाया है ? मुझे अपने दूध का पूरा भरोसा है, इसे पीने वाला मेरा वीर पुत्र शत्रु-स्त्रियो के चूडे के लिए ही यमराज सिद्ध होगा।

[ध्वनि यह कि तुझे सती होने की आवश्यकता नही पडेगी क्योकि मेरा शूरवीर पुत्र शत्रुओ को मार कर विजयी हो लौटेगा। अतः शत्रु-स्त्रियो का ही चूडा उतरेगा, वे ही विधवा होगी।]

शब्दार्थ—**आखै** – कहती है। **तेड़वी** = बुलाया है ('तेडो' का ही रूपभेद)। **की** = क्यो, किसलिए।

राजस्थानी टीका—फेर कहै वीर माता —

सासू पूछै—हे मणीहारी! आज काही तेवडी? (चूडौ लायो देख कहै छै) म्हने भरोसौ है–म्हारा पुत्र रौ, सो वो चूडा रौ जमराज है। अर्थात् थू चूडौ लाई है, वो जुद्ध मे गयौ है, सो पाछो भागै नही और उठा सू जीवतौ आवै तौ पग पग माथै वैर कीधा है, सो मारीजसी जद चूडौ न्हाकणौ पडसी। इण सारू चूडा रौ जमराज है और केउई सत्रुमार सत्रूवा री स्त्रीयाँ रा चूडा फोडाया है, सो इण सू ही चूड़ा रौ जमराज है॥ इति॥

टिप्पणी—टीकाकार के अर्थ से हम सहमत नही। टीका मे पाठ 'तेडवी' होते हुए भी टीकाकार ने 'तेवडी' मान कर अर्थ किया है।

मूँछ न तोडौ कोट मे, कढिया छोडै काल।
काला घर चेजो करै, मूसा पण मूँछाल॥ 280॥

व्याख्या—किले मे घुसे-घुसे यो मूँछे न मरोडो, तुम्हारा काल—यह प्रचड शूरवीर तुम्हे यहाँ से निकलने पर ही जीता छोडेगा। देखो, कैसी विडम्बना है कि आज चूहे भी मूँछधारी वीर बने काले साँपो के घर मे चुग्गा-पानी कर रहे है!

[ये मूर्ख यह नही जानते कि काले साँपो के घर मे घुसने का क्या परिणाम होता है। साँप इन्हे देखते ही उदरस्थ कर लेगे—अपनी इस नियति से ये बेखबर है। फलत अपनी मूँछो की झूठी शान मे ये अपने को जवाँमद समझ बैठे हैं, परन्तु केवल मूँछे होने से ही क्या कोई जवाँमर्द होजाता है? चूहे के मूँछे ही कितनी?

इसी भाँति, केवल मूँछे मरोड कर (झूठा गर्व दिखलाकर) शूरवीर के घर मे प्रवेश करने वाले वस्तुतः काल की गोद मे ही खेलते है। वहाँ से भाग निकलने पर ही वे जीवित लौट सकते हैं]।

शब्दार्थ—**मूँछ न तोड़ौ** = मूँछे न मरोडो, मूँछो की झूठी शान न दिखाओ **कोट** = किला। **कढियां** = भाग निकलने पर ही। **काला** = काले साँपो के। **चेजो** = चुग्गा–पानी, खाना-पीना। उदा० :—

'दाढालो तो **चेजो** करै छै । भूंडण नै पाच चेलर थह–रा दाखल छै ।'[1]

मूसां=चूहे । **पण**=भी । **मूंछाल**=मूँछो वाले जवाँमर्द ।

राजस्थानी टीका—कोई वीर री स्त्री कायरा ने कहै छै—घणा बकता देखनै—थाँरै ज्यू म्हारौ पती कोट मैं हीज ऊभौ मू छा नही तोडै है । कढिया बारै जुध सारू नीकलै है, जद छोडै काल, काल ही उणने डरतौ छोड दे है—और थें कहौ कै रैवा, तौ साराई इणीज कोट मे हा—तो काल। सरप रा घर मे—बिल मैं ऊँदरा ही वडै है, उठैइज चेजौ करै सो मूंसा ही कह देसी कै म्हैई मूछाल—मूछाँ वाला हाँ । मूछा मूछां आँतरो है ।। इति ।।

तन दुरग अर जीव तन, कढणौ मरणौ हेक ।
जीव विणट्ठा जे कढौ, नाम रहीजै नेक ।। 281 ।।

व्याख्या—शरीर का जीते जी दुर्ग से निकलना और प्राणो का शरीर से निकलना—दोनो मरणपर्याय है, मृत्यु के ही दो रूप है । अर्थात् जीते जी शत्रु को अपना दुर्ग सौप कर निकल भागना वैसा ही जीवित मरण है, जैसा प्राणो का शरीर से निकल जाना मरण कहलाता है । तद्विपरीत, यदि प्राण जाने पर ही दुर्ग से निकलोगे, तो ससार मे तुम्हारा यशस्वी नाम सदा अमर रहेगा (अथवा, तनिक नाम बना रहेगा ।)

[अर्थात् मरने पर तुम्हारी लाश भले ही बाहर निकले, किन्तु जीतेजी यदि किला छोड कर नही भागोगे तो ससार मे तुम्हारी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी] ।

शब्दार्थ— **तन**=शरीर का । **दुरंग**=दुर्ग, किला (किले से) उदा० :—
'भारी **दुरग** गढ भट्टनेर'[2]

जीव=प्राण (का) । **तन**=शरीर से । **कढणौ**=निकलना । **हेक**=एक ही है, समान है । **जीव विणट्ठा**=प्राण नष्ट होने पर अर्थात प्राण निकलने पर । **जे**=यदि । **नेक**=श्रेष्ठ, यशस्वी । अथवा तनिक ।

विशेष—कवि के उपर्युक्त दोहे को पढ कर हमे अनायास जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह का प्रसग याद हो आता है । जब उन्हे जोधपुर के तत्कालीन प्रतिस्पर्द्धी राजा भीमसिहजी ने जालोर का दुर्ग छोड देने को कहा तो महाराजा मानसिंह ने जो उत्तर दिया, वह वीरता के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लेख्य है । उन्होने कहलाया '—

---

1 एकलगिंड दाढालै री वात, पृ० 9, स० श्री मूलचन्द्र 'प्राणेश' ।

2. छद राउ जइत सी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ, पृ० 38, स० डा० टैसीटरी ।

आभ फटै, धर ऊलटै, कटै बगतराँ कोर ।[1]
सिर टूटै, धड तडफडै, जद छूटै जालोर ।।

अर्थात् जब आकाश फट पडेगा, धरती उलट जाएगी, कवचो की कोरे कट जाएँगी मिर के टुकडे-टुकडे होजाएँगे—और धड पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगेगा तभी जालोर छूट सकता है, अन्यथा नही ।

ठीक ऐसा ही जवाब दिया था भटनेर के महाशूरवीर दुर्गपाल काँधलोत राठोड खेतसी अरडक्कमलोत ने, जब हुमायू के भाई कामरान ने बीकानेर के राव जैतसी पर आक्रमण किया । उस समय खेतसी भटनेर का दुर्गपाल था । जब कामरान के भेजे मुगल दूतो ने भटनेर का दुर्ग उन्हे सौप देने को कहा, तो उस वीर ने इस पर जो उत्तर दिया, वह वीठू सूजइ–रचित 'छद राउ जइत सी रउ' मे यो वर्णित हुआ है :—

झूझार झँडीलउ सीस झाडि[2]
बोलियउ बोल फाडी वराडि ।
ठाहुरियउ परधान ठेलि ।
सुरिताण आउ सामहइ सेलि ।।

यद्यपि राव खेतसी उद्भट वीरता से लडता हुआ काम आया, तथापि उसने जीतेजी दुर्ग को शत्रु के हाथ मे नही जाने दिया । इस पर डिंगल के प्रकाड विद्वान् एव अनन्य प्रेमी, स्वनामधन्य डा० टैसीटरी ने 'छद राउ जइतसी रउ' की विद्वतापूर्ण भूमिका मे राव खेतसी की प्रशसा मे जो उद्गार व्यक्त किए है, वे उन्ही के योग्य है । डा० टैसीटरी लिखते है —

"Fven though he is killed and Bhatneia is taken, the banner of glory, which he has planted in the sands of Marwar, flies high and conspicuous over the whole plain ot Hindustan !"[3]

सूर्यमल्ल के विवेच्य दोहे का मर्म ऊपर वर्णित प्रसगो के सदर्भ मे कदाचित् अधिक अच्छी तरह समझा जा सकेगा ।

राजस्थानी टीका—कवी कहै है–हे सूरवीर जोधारा ! देखौ, गढ है सो तन-सरीर है, जीव रै दुरग (गढ़) तन (सरीर) है, इण गढ माहि सू कढणौ (दुसमणा रा भय सू नीकल् जाणौ) अर मरणौ एक है । जीव विणट्ठा, विणास हुवा, पछै गढ बारै

1 विविध सग्रह, पृ० 157, सं० ठा० भूरसिंह शेखावत ।
2 छंद राउ जइतसी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ, पृ० 38, स० डा० टैसीटरी ।
3 वही, भूमिका, पृ० 6,

नीकलै, जिकाँरा नेक नाम रहवै है । अरथात जीव रै तन है, ज्यू रजपूता रै गढ है सो मारिया गढ छोडै, वाने घणा रग है, ने जीवता छोडै तौ वे मरिया जैडा है ।। इति ।।

भागीजै तज भीतडा, ओडे जिम तिम, अत ।
किण दिन दीठा ठाकुरे, काला दरड करत ।।282।।

व्याख्या—[यदि अपने प्राणो की कुशल चाहते हो तो] जैसे-तैसे किसी की आड मे हो, इन भीतडो (घर, भवन) को छोड, यहाँ से भाग खडे हो अन्यथा अब तुम्हारा अन्त आगया है, क्योकि तुमसे सबल शूरवीर अब इन पर अपना अधिकार जमाना चाहते है । (वीरो की तो यही रीति है । वे स्वय घर बनाने का कष्ट नही करते—दूसरो के बने-बनाए घरो पर ही अपना अधिकार स्थापित कर उपभोग करते है ।) हे ठाकुरो ! काले साँप को बिल खोदते हुए किस दिन देखा है ?

[अर्थात् बिल खोदना तो चूहो का काम है । साँप तो उन बने-बनाए बिलो मे घुस कर चूहो को निगल जाता है । वैसे ही, बाहुबल के धनी शूरवीर भी पराए भूमि-भवनो को अधिकृत कर उनका बलात् उपभोग करते है ।]

शब्दार्थ—**भींतड़ा**=घर, भवन । डिंगल-काव्यो मे घरो-भवनो के लिए 'भीत' व 'भीतडा' का प्रयोग सामान्य है । कहावत है—'कै गीतडा 'र कै भीतडा' (या तो गीत अमर रहते है, या भवन ही) । किन्तु ईसर राठौड़ ने इसका प्रतिवाद करते हुए बहुत सुन्दर लिखा है —

भींतां तणा गोखडा भाजै,[1]
गीता तणा न भाजै गोख ।

ओडे=ओट या आड मे । उदाहरण —

सिंघ रा सावक चहुवाण रा पुत्र और कौई रै **ओडै** न रहसी ।'[2]

जिम-तिम=जैसे-तैसे, ज्यो-त्यो । **अंत**=अत या काल आगया है । श्री डा० सहलजी आदि सम्पादको ने इस शब्द का अर्थ छोड दिया है एव श्री स्वामीजी ने इसका अर्थ 'अन्यत्र' किया है, जो हमे प्रयोग-पुष्ट नही लगता । कारण, 'अन्यत्र' के अर्थ मे 'अन्त' का प्रयोग देखने मे नही आया । सूर्यमल्ल ने 'वीर सतसई' मे भी 'अन्त' का 'काल' या 'मृत्यु' के अर्थ मे ही प्रयोग किया है । यथा —

---

1 गीत, गीता री तारीफ रौ, ईसर राठौड रौ कह्यौ, डिंगल-गीत, पृ० 11, स० श्री रावत सारस्वत व कुँवर चण्डीदान साँदू ।

2 वशभास्कर, चतुर्थराशि, पचदशमयूख, पृ० 1345 ।

भोला की डर भागियौ, अंत न पहडै ऐण । (दोहा स० 116)

दीठा=देखा है । **ठाकुरे**=हे ठाकुरो ! **काला**=काले साँपो को । **दरड**=बिल । **करन्त**=करते, खोदते ।

विशेष—वीरता के मध्ययुगीन जीवन-मूल्यो मे पराई भूमि का उपभोग करना भी एक था । इसे वीरोचित आचरण का एक अनिवार्य लक्षण माना जाता था । यथा —

'अर जिणरो पट्टप कुमार देवसिह भी इसडा पितारा प्रताप मै जुदो ही नाम काढण रै काज **पराई पुहवी लेणरा बीर रस मे रगियो** ।'[1]

कविराजा बाँकीदास ने भी 'सिंघ जिकै वन सचरै, सो सिघाँ रौ बन्न' कह कर इसी भाव को व्यक्त किया है ।

खैर है, कि मध्ययुगीन शौर्य की यह उदात्त परपरा वर्तमान युग मे हमारे कतिपय किरायेदार बधुओ के कारण निश्शेष नही होने पाई है ! !

राजस्थानी टीका—एक कोई विखायत सूरवीर, किणरै ही गढ मे रहने, चाने काढ, आप गढ अपणाय लियौ । गढ रा धणीया कयौ-जावौ परा । तरै कहैः—

हे गढ रा रहण वाला ! अबै अठा रा भीतडा छोड भागौ, अने ज्यू-त्यू अ त और जगा ओडे-ओठ मलौ—तद वा कही-थे पैलारा ईज घर खोसौ हौक काई ? तद सूरवीर कही कि किण दिन दीठा हा थे, ठाकुरा ! काला नाग दरडा करता ? ऊँदरा खोदै नै वे रैवै, इण तरै गढ बाधौ, म्हे रहसा ।। इति ।।

> कायर घर ऊढा कहै, की धव जोडे काम ।
> कण कण सचै कीडियाँ, जोवै तीतर जाम ।।283।।

व्याख्या—कायर के घर मे ब्याही दुलहिन अपने पति को कौडी-कौडी धन जोडते देख कर कहती है कि हे नाथ ! यह धन जोडना किस काम आएगा ? आप देखते नही, चीटियाँ बडे कष्ट से एक-एक कण लाकर सचय करती है, किन्तु तीतर का बच्चा उन्हे बैठा-बैठा कौतुक से ताका करता है एव मौका पाते ही उस संचित कणराशि को तुरत उदरस्थ कर लेता है । [इसी भाँति कृपण एव धनलोलुप कायरो का धन भी शूरवीर बलात् छीन कर उपभोग करते है । अत. कायर होकर कृपण होना घोर मूर्खता है क्योकि ऐसे लोभी, कृपण और कायरो का धन औरो के ही पल्ले पडता है ।]

शब्दार्थ—**ऊढा**=विवाहिता । **की**=क्या । **धव**=हे नाथ ! **जोड़े**=जोडने

---

1. वही, चतुर्थराशि, पचत्रिशमयूख, पृ० 1611 ।

से । **सचै**=सचय करती है । **जोवै**=ताकता है । **जाम**=बच्चा ।

विशेष—कहावत है—'कीडी सचै तीतर खाय, पापी को धन परलै जाय ।'

राजस्थानी टीका--एक सचगर कायर ने उणरी स्त्री कहै--हे पती ! कायर घर री ऊढा (व्याव कियोडी) उण री स्त्री कहै—हे धव !—धणी ! श्रै जोडण रौ आपरै काई काम है ? क्यूकी देखौ, कण–कण कणू कौ करने कीडिया जोडै, ने तीतर जाम जरै हीं जोयने लेलेवै । इण तरै, कोई सूरवीर, जोडियौडो उरो लेसी ।। इति ।।

कीधी घर–घर जोगणी, दीधी नर–नर दाह ।
जोबन गौ आई जरा, की अब नाह सनाह ।। 284 ।।

प्रसग—अपने शूरवीर वृद्ध पति को युद्ध के लिए सज्जित होते देख वीराङ्गना कहती है —

व्याख्या—[हे रणशूर प्रियतम !] आपने घर-घर मे स्त्रियो को विधवा बना दिया तथा पुरुष-पुरुष को चिताग्नि की भेट कर दिया । आपका सारा यौवन शत्रुओ को मारने–काटने मे ही बीत गया और बुढापा आगया । हे नाथ ! अब इस बुढापे मे पुन कवच से क्या प्रयोजन ?

[अर्थात् आप बहुत पुण्य कमा चुके; अब तो इन कवचादि युद्धोपकरणो का पिंड छोडिए । लोगो को शान्ति से जीने दीजिए !]

इस दोहे मे वृद्ध पति के शौर्य और उसकी अदम्य युयुत्सा की मार्मिक व्यजना हुई है ।

शब्दार्थ—**जोगणी**=विधवा । **दीधी**=दी । **दाह**=1 चिता-दहन, 2 उत्ताप, पीडा । **गौ**=गया । **जरा**=वृद्धावस्था । **की**=क्या । **सनाह**=कवच ।

राजस्थानी टीका—एक पती ने वीर स्त्री कहै है—हे पती ! थे जुद्धकर सत्रुआ रा आदमी-आदमी दीठ काई न काई दाह दीधी है । अबै जोबन-मोटीयार-पणौ गयो, जरा—वूढापणौ आयौ । अबै झगडा मे जावता हे नाह ! पती ! सनाह–बगतर रौ काई करौ ? अर्थात् उघाडी छाती लड काम आवौ, सो हू लारै सत कर लेऊ ।। इति ।।

जिण वन भूल न जावता, गैद गवय गिडराज ।
तिण वन जबुक ताखडा, ऊधम मडै आज ।।285।।

व्याख्या—[हाय ! दैवगति कितनी विचित्र है कि] जिस वन मे बडे-बडे गजराज, रोझ (नीलगाय) तथा महाबली वराह तक भूल कर भी पैर नही रखते थे

—उसी वन मे ग्राज उद्धत शृगाल निश्शक हो ऊधम मचा रहे हैं। विध्वस का ताण्डव रच रहे है।।

ग्रर्थात शूरवीर की ग्रनुपस्थिति मे कायरो की बन ग्राई है ग्रौर वे उद्धत हो ग्रनाचार एव ग्रनधिकार चेष्टा करने लगे हैं।

शब्दार्थ—**गैंद**=गजेन्द्र, गजराज। **गवय**=रोझ, नीलगाय। 'गवय' का ग्रर्थ प्रकाशित सस्करणो मे 'गैंडा' किया गया है परतु कोशानुसार गवय 'रोझ' या 'नीलगाय' का वाचक है (गो सदृशो गवय)। कवि ने 'वशभास्कर' मे भी 'गवय' का प्रयोग 'नीलगाय' या 'रोझ' के ग्रर्थ मे ही किया है —

'चरनन करि गज बाजि सरभ मृग उट **गवय** गन।'[1]

'टीका' मे भी 'गवल' पाठ मान कर इसका ग्रर्थ 'रोझ' किया गया है, जो सगत है। **गिड़राज**=शूकरराज, महाबली वराह। **जबुक**=शृगाल, गीदड। **ताखड़ा**=उद्धत, मुस्तैद। **मडै**=मचा रहे हैं।

विशेष—इस दोहे मे ग्रन्योक्ति के द्वारा कवि का उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की ग्रोर इगित करना हो सकता है, परन्तु इसके ग्राधार पर यह सुनिश्चित स्थापना करना, जैसी कि श्री डा० कन्हैयालालजी सहल ग्रादि सम्पादको ने 'वीर सतसई' की भूमिका में की है, कि तत्कालीन स्वातन्त्र्य-क्रान्ति के विफल हो जाने के फलस्वरूप कवि का स्वर टूटने लगा एव उस नैराश्यपूर्ण मनस्थिति मे उसके हृदयोद्गार इस दोहे मे फूट पडे, तथ्यपरक नही होगा। कारण, सूर्यमल्ल से पूर्व पडितराज जगन्नाथ 'भामिनीविलास' की एक ग्रन्योक्ति मे ठीक ऐसा ही भाव व्यक्त कर चुके हैं। सूर्यमल्ल का यह दोहा 'भामिनीविलास' के उक्त सस्कृत-छद का ही डिंगल-रूपान्तर है। वह छद निम्नलिखित है .—

न यत्र स्थेमान दधुरति भयभ्रान्तनयना,[1]
गलद्दानोद्रेक भ्रमदलिकदम्बा करटिन ।
लुठन्मुक्ताभारे भवति परलोक गतवतो,
हरेरद्य द्वारे शिव शिव शिवाना कलकल: ।।32।।

दूसरे, इस प्रकार के ग्रन्योक्तिपरक कथन तो प्राय हर समय, हर स्थिति पर घटित किए जा सकते है। ग्रत इसके ग्राधार पर 'वीर सतसई' मे तत्कालीन स्वातंत्र्य-सग्राम की ग्रभिव्यक्ति जैसी कोई स्थापना नही की जा सकती।

---

1 वशभास्कर, प्रथराशि, सप्तदशमयूख, पृ० 175

2 भामिनीविलास, पडितराज जगन्नाथ-कृत।

राजस्थानी टीका—कोई सूरवीर मारीजगो, तद उणरा राज मे छोटा नीच ही उपद्र(व) करता देख कोई कहै—देखो, जिण वन मे ऊ सिंघ हो, जद उँण वन मे गैद (हाथी) गवल (रोझ) गिडराज (सूर) ग्रै नही जाता, सो ग्राज वौ नाहर नही तरै उणहीज वन मे ताखडा ग्राचै ग्राचै, फिर फिरने जबुक (स्याल) ही उद्धम माडै छै ।। इति ।।

टिप्पणी—टीका मे 'गवय' की जगह 'गवल' पाठ है, जिसका ग्रर्थ 'रोझ' किया गया है । 'गवय' ग्रौर 'गवल' समानार्थक है ।

मरता सब खेर्ता मिटै, जीवन्ता जय लाह ।
वरसा सोलह वैरिया, नथी विणासै नाह ।।286।।

व्याख्या—मेरे शूरवीर कत सोलह वर्षीय ऐसे शत्रुग्रो को कभी नही मारते, जिनके मारने से रणखेती का व्यवसाय ही चौपट होजाता है (वीरत्व की परपरा निश्शेष होजाती है) तथा उनके जीवित रहने से जय-लाभ का सुयश प्राप्त होता है ।

[युवा वीरो के बल पर ही रणखेती का व्यवसाय चलता है, वीरता की परपराएँ जीवित रहती है । यदि उन्हे ग्रसमय ही मार डाला जाए तो वीरता ग्रौर शौर्य को कौन ग्राश्रय देगा ? साथ ही, उनके जीवित रहने से ही शूरवीर को विजय-प्राप्ति का यश मिलता है । यदि युवावस्था-पूर्व ही किशोरो को मार डाला जाए तो पति किस पर विजय प्राप्त कर सुयश ग्रर्जित करेगा ? ग्रत सच्चे शूरवीर वीरत्व की परपरा को ही समूल नष्ट कर सस्ती कीर्ति ग्रर्जित नही करते । उसका शौर्य भी वीरोचित ग्रौदार्य से प्रेरित होता है ।]

शब्दार्थ—**खेती** = रणखेती, वीरता का व्यवसाय । **लाह**=लाभ । **नथी** = नही । **विणासै** = नाश करते हैं, मारते हैं ।

राजस्थानी टीका—एक पती थोडी उमर रो है, तिण सूं स्त्री कहै—हे पती ! ग्राप जुद्ध मे जाग्रो हो, सौ मारीज जासौ तौ घर री सब वीर-विद्या री खेती मिट जासी, ग्रर जीवता रहसौ तो केइवार सत्रुग्रा ने मार हटावसौ, सो जय रौ लाभ हुसी । सोलं वरस रा हीज हो, सौ हमार सत्रुग्रा रै हाथ, हे नाह ! "मत मारीजौ ।। इति ।।

टिप्पणी—टीका मे 'विणस्सै' पाठ है । तदनुसार भी टीकाकार के ग्रर्थ से हम सहमत नही हैं ।

बलती ग्राखै वीर धण, पाय जरा लग जीत ।
वारी धण गलबाह मे, भीडौ नाह नचीत ।। 287 ।।

व्याख्या—सती होती हुई वीर-पत्नी कहती है कि हे नाथ ! वृद्धावस्था

पर्यन्त निरन्तर विजय प्राप्त कर आप वीरगति को प्राप्त हुए है। आपके शौर्य पर मैं बलिहारी हूँ। अब आप (स्वर्ग मे सदा के लिए) अपनी इस प्रिया को अपने बाहुपाश मे भर निश्चिन्त हो प्रेमालिगन का सुख लूटिए।

[शूरवीर पति युद्धो मे सदैव विजयी रहा है तथा युद्ध करता–करता ही वृद्धावस्था मे वीरगति को प्राप्त हुआ है। अत· अपने शूरवीर पति पर मुग्ध हुई वीराङ्गना सती होते समय यह मंगल कामना करती है कि परलोक मे भी उसका साथ न छूटे तथा उसे अपने शूरवीर पति के शाश्वत प्रेमालिगन का सुख प्राप्त हो। ऐसे रंणशूर ही वस्तुत. मृत्यु के पश्चात् भी अपनी प्रियाओ के साथ स्वर्गिक सुखो के चिरन्तन उपभोग के अधिकारी होते है]।

शब्दार्थ—**बलती**=सती होती हुई। **आखै**=कहती है। **धरण**=पत्नी, प्रिया। **पाय**=प्राप्त कर। **जरा लग**=वृद्धावस्था पर्यन्त। **वारी**=बलिहारी हूँ, 'वारी–वारी जाती हूँ'। **गलबाह**=बाहुपाश। **भीडौ**=कस लो, प्रगाढ प्रेमालिगन मे भरलो। **नचीत**=निश्चिन्त।

राजस्थानी टीका—वीर धरण-सूरवीर स्त्री रीसा बलती भागल पती नें कहै—हे पती ! आपरो हेत म्हनै आछौ नही लागै, सो पाय जरा लग जीत। कठैइ झगडा मे थोडी ही जीत पायनै तौ गलबाह घाल नचीता भीड नें प्यार करौ, सो हू वारणै जाऊं, पण भागल हुवा प्यार करो, वौ म्हाने आछौ नही लागै है ।। इति ।।

टिप्पणी—टीकाकार का अर्थ अनर्गल है। दोहे मे निबद्ध वीर-पत्नी की गम्भीर प्रेम-व्यजना को वह कदाचित् लक्ष्य नही कर पाया है।

डोहै गिड वन वाडिया, द्रह ऊंडा गज दीह।
सीहरण नेह सकैक तौ, सहल भुलाणौ सीह ।।288।।

व्याख्या—शूकर वन–वाटिकाओ का विध्वस कर रहे हैं तथा दीर्घकाय गजेन्द्र गहरे जलाशयो को विलोडित कर गँदला कर रहे हैं। लगता है, शायद सिंहनी के प्रेम मे फँस कर सिंह वन–विचरण करना भूल गया है (अन्यथा सुअरों और हाथियो का यह उत्पात नजर नही आता !)।

कामिनी के प्रेम मे आसक्त हो, अपने कुल–कर्तव्य को विस्मृत कर देने वाले शूरवीर के प्रति कवि की मार्मिक अन्योक्ति है।

शब्दार्थ—**डोहै**=विध्वस कर रहे है, विलोड़ित कर रहे हैं। **द्रह**=जलाशय। **ऊंडा**=गहरे। **दीह**=दीर्घकाय। **सीहरण**=सिंहनी। **सकैकतो**=शायद, कदाचित्। उदाहरण :—

1. "तद लालमरण वीचारी जो सकैक तो केरडा अरणी वावडी माहे पारणी पीवानें पैठा सो अठै अरणी माहै अलोप हुवा है ।[1]

2 चढियौ वाजिंद चुरस सौं, सकैक राजिंद होय ।[2]

सहल=सैर, वन-विचरण । सीह=सिह ।

राजस्थानी टीका—कोई एक सूरवीर चुपको होय गढ मे बैठगो अर सत्रू उपद्रव करै, तद देखनै कवी कहै छै —

गिड—सूर तौ वन-वाडिया नें डोहै है अर ऊँडा-ऊँडा पहाडी नदीधा रा दहा ने गजराज डोह रहिया छै, सौ सकेक तो सिहरणी रा सनेह मे सिह भूलीजगौ दीसै है—बारै आयनें देखै नही । कोई वीर पुरष रा राज मे राजा रा भुजबल सू सान्ती ही, परण जिनाना-गैर महला मे रहरणा सू सत्रू देस मे निरभै रहरण लागगा है ।। इति ।।

इति श्रीमत कविकुलतिलक कविराज मिश्ररण चारण सूर्यमल्ल विरचित वीर सतसई दोहा 288 । और वधता दोहा मिलिया नही, तद आ उपरला दोहा रा अर्थं ग्राम लोलावस निवासी बारहट सक्तीदानात्मज किशोरदान करने लिखिया छै । भूल चूक कवी सुधार लेसी । विस्तार भय सू अलकार, रस, व्यगादि लिखिया नही । पठनार्थं परम प्रससनीय वीरवर श्रीमान ठाकुरा साहब राजश्री श्री 108 श्री माधोसिह जी रणजीतसिहोत् सुभ भवतु—सवत 1972 जेठ सुदि 8 ।

हस्ताक्षर बारट किशोरदान । ता॰ 20 जून, ईस्वी सन् 1915.

इति श्री कविराजा मिश्ररणचारण ठाकुर सूर्यमल्ल विरचिताया वीर सप्तशस्या तृतीय शतक ।।

---

1. लालमरण कुंवर री वात, राजस्थानी वार्ता, भाग 4, सं॰ श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।
2. पना-वीरमदेव की वार्ता, पृ॰ 72,

दोहानुक्रमणिका

नोट—निम्नलिखित दोहो की क्रम-सख्या अशुद्ध छप गई है। कृपया शुद्ध करलें—

क्रमाक	प्र चरण	अशुद्ध सं	शुद्ध सं
1	भूल न दीजै ठाकुरे	34	–33
2	भोला की हठ ठाकुरे	35	–34
3	राणी सोकल चून री	196	–199

शुद्धिपत्र

दोहा-संख्या	अशुद्धि—शोधन
1	'गणहू' (पृ० 1–2, 'विशेष' मे) के स्थान पर 'गणह्व' पढें ।
2	'ऊपने' (पृ० 4, प्रथम पंक्ति) के स्थान पर 'अपने' पढें ।
3	'वालियाँ' (पृ० 5, मूल दोहा) के स्थान पर 'वालि्याँ' पढें ।
5	'एकडको' (पृ० 9, राज० टीका) के स्थान पर 'एकडकी' पढें ।
10	राजस्थानी टीका मे टीकाकार ने दोहे के उत्तराद्ध मे प्रयुक्त 'जेथ' का अर्थ 'जीत' या 'जय' नही किया है, जैसा कि मैंने शब्दार्थ मे गलती से लिख दिया है । प्रत्युत, टीकाकार ने 'जुडीजै' शब्द को विश्लिष्ट कर उसके अन्तिम अक्षर—'जै' का अर्थ 'फतै' या 'जीत' किया है । यद्यपि 'जुडीजै' शब्द को एकात्मक मानने के कारण मैं उसके उक्त अर्थ से सहमत नही हूँ, तथापि जहाँ तक 'जेथ' शब्द का सम्बन्ध है, टीकाकार का अर्थ सर्वथा समीचीन है ।
11	'घ्यातव्य' (पृ० 8, शब्दार्थ 'धरा') के स्थान पर 'ध्यातव्य' पढें ।
18	'निश्शक' (पृ० 28, शब्दार्थ 'जबुक') के स्थान पर 'निश्शक' पढें ।
24	'भाड़ाणा' (पृ० 35, मूल दोहा) के स्थान पर 'भीड़ाणा' पढें ।
31	'छुटै' (पृ० 44, मूल दोहा) के स्थान पर 'छूटै' पढें ।
38	'जणौ' (पृ० 54, मूल दोहा) के स्थान पर 'जाणौ' पढें ।
48	'बधवाव' (पृ० 63, मूल दोहा) के स्थान पर 'बधवाव' पढ़ें ।
60	'थंम' (पृ० 77, मूल दोहा) के स्थान पर 'थभ' पढें ।
62	'धावाँ (पृ० 79, मूल दोहा) के स्थान पर 'धावाँ' पढें ।
113	पृ० 133 के नीचे 'जाग' शब्द से सबद्ध उद्धरण के आधारभूत ग्रथ का उल्लेख भूल से छूट गया है । उक्त उदाहरण महाराजा जसवतसिंह जोधपुर पर रचित एक डिंगल–गीत का है, जो श्री सीतारामजी लालस द्वारा सम्पादित 'गजगुणरूपकबध' के 'परिशिष्ट' (पृ० 303) से उद्धृत है ।
121	'पाहणा' (पृ० 141, मूल दोहा) के स्थान पर 'पाहुणा' पढें ।
134	'वीव' (पृ० 153, मूल दोहा) के स्थान पर 'वींव' पढें ।
158	राजस्थानी टीकाकार ने 'राजा पग-बाधे रसा' की व्याख्या करते हुए जो यह लिखा है कि 'धरती' पग मे धूड री केड़ी' है, वह सर्वथा सगत एव

दोहा-संख्या　　　अशुद्धि—शोधन

आशयगर्भित है । मैंने (पुस्तक लिखते समय) इस प्रयोग से अपरिचित होने के कारण 'टिप्पणी' मे जो इसे 'असगत' बता दिया है, वह मेरी भूल है ।

'डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति' शीर्षक अपने एक लेख मे 'धूड री बेडी' का अर्थ स्पष्ट करते हुए श्री उदयराजजी उज्ज्वल ने लिखा है—"राजपूताने मे राजपूत के पास जागीर की भूमि के प्रति 'बूंड की वेड़ी' की कहावत है ।" उन्होने इसे लेकर 'धूडसार' नामक एक काव्य की भी रचना की है, जिसके कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं:—

धरती बेड़ी धूड़री इणारा दोय अरत्थ ।
स्वारथ रो जाणौं सकल, गहरो बियो गरत्थ ।। 1 ।।

धरती बेड़ी धूड़ री, रही पगा महाराण ।
अडग रया ध्रम ऊपरा, है गौरव हिंदवाण ।। 2 ।।

(देखिए 'राजस्थान भारती', पृ॰ 51–52, मार्च 1949)

अत. दोहे के विवेच्य चरण का मर्म इस उक्ति के सदर्भ मे ग्रहण करना सगत है ।

161　　पृ॰ 183, 'विशेष' मे राठौड वीरो की उपमा **'जोगियों की जमात'** के स्थान पर **'गोपीचन्द-भर्तृहरि' से दी गई है'**—पढे ।

171　　**'कहि'** (पृ॰ 194, 'विशेष' मे) के स्थान पर **'कढ्ढि'** पढ़े ।

175　　**'बीव'** (पृ॰ 198, दोहे के उत्तरार्द्ध मे) के स्थान पर **'पीव'** पढ़ें ।

181　　**'बामल'** (पृ॰ 206, मूल दोहा) के स्थान पर **'बालम'** पढ़ें ।

नोट,—कही-कही अनुस्वार आदि छापे मे छपने से छूट गई हैं, विज्ञ पाठक वहाँ स्वय संशोधन कर लेने की कृपा करें ।

सपादक